राजस्थानी लोक-साहित्य का सैद्धांतिक विवेचन

डॉ० सोहनदान चारण
पी-एच० डी०

हिन्दी विभाग,
जोधपुर विश्वविद्यालय,
जोधपुर

प्रकाशक
राजस्थान साहित्य मन्दिर
सोजती दरवाजा, जोधपुर-३४२००१

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की वित्तीय सहायता से प्रकाशित

प्रथम संस्करण : १९८०

मूल्य
साठ रुपये

प्रकाशक
सुखवीरसिंह गहलोत द्वारा
राजस्थान साहित्य मन्दिर
सोजती दरवाजा, जोधपुर-३४२००१

मुद्रक
कमल प्रेस, गांधीनगर द्वारा
गोपाल प्रिंटिंग प्रेस, दिल्ली-११००३२

पूज्य पिता श्री शक्तिदानजी

एवं

पूज्या माताजी प्यारबाई

को सश्रद्ध समर्पित

निवेदन

किशोरावस्था में परिजनों द्वारा सुनी 'मतवेबाज' जैसी वीरत्व-व्यंजक एवं 'खीवकी मेघमाळ' जैसी करुणा-विगलित लोक-कथाएँ ही शोध-हेतु इस विषय-चयन (राजस्थानी लोक-साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन) में कारण स्वरूप रही हैं। अध्ययन के प्रारम्भ में सामग्री संकलन में कतिपय समस्याएँ उपस्थित हुई पर इस अवसर पर भी उसी बाल-सुलभ जिज्ञासा ने सम्बल प्रदान किया जो इस केन्द्र-बिन्दु पर पहुँचकर लोक-साहित्य की इन इतस्ततः प्रकीर्ण स्वयप्रभा समुज्वला विपुल मणियों के वैज्ञानिक परीक्षण के लिए अत्यन्त व्यग्र हो उठी थी। इसी के परिणामस्वरूप लोक-साहित्य के अथाह सागर में गहरे पैठ अनेक भाव-मणियाँ प्राप्त कर सका हूँ। अध्याय-मौक्तिकों से गुँथा यह ग्रन्थ-हार पाठक-वृंद के समक्ष प्रस्तुत है।

राजस्थान की प्रकृति की कृपणता की क्षतिपूर्ति हुई है—यहाँ के निवासियों के मानस की भाव-सम्पदा से। इस प्रदेश के लोक-कलाकार जीवन की रंगीनियों और कुरीतियों को चित्रित करने में सिद्धहस्त हैं। धर्म में अटूट आस्था व्यक्त करते हुए इन्होंने कर्मशीलता का अमर सन्देश दिया है। इन पृथ्वी पुत्रों ने राम और कृष्ण का भेद मिटाकर बुद्धिजीवियों को भी भेदक नीति के परित्याग हेतु प्रेरित किया है। लोक-साहित्य के समवेत अध्ययन से यह भाव मेरे मन में और अधिक प्रबल हो गया कि अत्याचारियों, शोषकों एवं उत्पीड़कों को दो-टूक उत्तर देने की सामर्थ्य लोक-साहित्य के सबल स्रष्टाओं एवं अभय अध्येताओं में ही है। आवश्यकता है ऐसे प्रसंगों को सामाजिकता के सन्दर्भ में परखने की।

हृदय से आभारी हूँ—गुरुवर डॉ० नित्यानन्दजी शर्मा का, जिन्होंने इस विषय पर कार्य करने की प्रेरणा भी दी और समय-समय पर मार्ग-दर्शन किया। आदरणीय कोमलजी एवं विजजी का सहयोग न मिलता तो सम्भवतः इस शोध-कार्य के पूर्ण होने में देर लगती।

जोधपुर विश्वविद्यालय ने इसकी प्रकाशनार्यता का महत्त्व समझकर इसके प्रकाशनार्थ तीन हजार रुपयों का वित्तीय अनुदान देना स्वीकार किया, इसके लिए मैं विश्वविद्यालय का आभारी हूँ। इस अनुदान का सदुपयोग मेरे द्वारा किसी भी रूप मे नही हो पाता यदि राजस्थान साहित्य मन्दिर के सचालक एव राजस्थानी साहित्यप्रेमी श्री सुखवीरसिंह गहलोत मेरे इस ग्रन्थ के प्रकाशन का दायित्व लेकर मेरा उत्साह नहीं बढ़ाते। उनके सत्प्रयास से ही यह ग्रन्थ प्रकाश मे आया है। अन्त मे मैं आभारी हूँ उन लाखो अज्ञात स्रष्टाओं का, जिनकी प्रभूत सामग्री (लोक-साहित्य की विविध विधाओं के रूप मे) का उपयोग इस ग्रन्थ के निर्माण मे किया गया है।

इति शुभम्।

६ जुलाई, १९८० सोहनदान चारण

विषय-क्रम

अध्याय : १

लोक-साहित्य क्या है ?

मानव की प्रारम्भिक बर्बरावस्था से आज की सुसभ्यावस्था तक की विकास यात्र
में मनुष्य की भावाभिव्यक्ति एवं विचाराभिव्यक्ति हेतु अनेक भाषाओं का क्रमश
प्रादुर्भाव हुआ। इन सभी भाषाओं में न्यूनाधिक रूप में साहित्य-सर्जना भी हुई
परन्तु अनेक भाषाओं के साहित्य का आज कई लोगों को ज्ञान भी नहीं है। प
'लोक-साहित्य' संज्ञा से अभिहित किया जाने वाला साहित्य आज भी सर्वसाधा
रण द्वारा पूर्ववत समादृत है। इस साहित्य की जीवन्त और युगसापेक्ष शक्ति
कराल काल की विस्मयकर विभूति को भी पराभूत कर अद्यावधि सर्वसाधारण
आह्लादन के साथ ही उसमें विकट विषमताओं तथा सामाजिक विडम्बनाओं क
सहर्ष स्वीकारने की भावना सचरित कर रही है। युग विशेष में सवेग प्रसूत हो
वाली भावना या धारणा एवं प्रचुर परिमाण में तद्विषयक सर्जित होने वा
साहित्य (यथा—भक्तिकालीन साहित्य, रीतिकालीन साहित्य, डिंगल का वी
गाथात्मक साहित्य) की भाँति लोक-साहित्य ने कभी भी एकांगी दृष्टिकोण न
अपनाया। सर्वत्र और सभी कालों में सभी प्रकार के विचारों एवं तथ्यों क
वर्णन कर लोक-साहित्य ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय दिया है। कु
विद्वानों के अनुसार लोक-साहित्य यान्त्रिकता के प्रसार के फलस्वरूप लुप्तप्रा
होता जा रहा है। नहीं, वस्तुस्थिति इससे सर्वथा भिन्न है। इस कालज
साहित्य की परिवर्तनधर्मा प्रवृत्ति ने युगानुरूप आवश्यक परिवर्तनों को स्वीका
कर अपने अक्षुण्ण अस्तित्व को सदैव बनाये रखा है और भविष्य में भी बना
रखेगा। लोक-साहित्य के अध्ययन के पूर्व तद्वाचित 'लोक' का समझना आ
श्यक है।

'लोक' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ और प्रयोग प्राचीनता

भारत में आर्य-भाषाओं का आदिरूप हमें संस्कृत भाषा में मिलता है
'लोक' शब्द भी हमें संस्कृत में शुद्ध तत्सम रूप में मिलता है। व्युत्पत्ति के अ

सार 'लोक' शब्द 'लोकृदर्शने' धातु में 'घञ्' प्रत्यय लगाने से व्युत्पन्न है।[1] संस्कृत में इस धातु से देखने के भाव का अर्थ बोध होता है। व्युत्पत्ति के आधार पर 'लोक' का शाब्दिक अर्थ 'देखने वाला' होता है। इस निष्पत्ति के अनुसार वह समस्त जन समुदाय, जो देखने के कार्य को सम्पन्न करता है, 'लोक' कहलाता है। इसके अतिरिक्त अन्य कुछ कोशों में 'लोक' शब्द के विविध अर्थ इस प्रकार दिये गये है। यथा—

लोक—भुवन, जगत जन, प्रजा, मनुष्य।[2]

—संसार, विश्व का विभाग, पृथ्वी, मानव जाति, प्रजा, समूह, प्रान्त, दृश्य, दृष्टा, सात और चौदह की संख्या।[3]

—लोग, मनुष्य, व्याकरण, यश, यश, नाम, कीर्ति, सन्तान, सृष्टि के विभाग आदि।[4]

आंग्ल भाषा में 'लोक' शब्द का समानार्थी शब्द 'फोक' (Folk) है, जिसके बारे में आंग्ल-भाषा के प्रसिद्ध शब्द कोश[5] में इस प्रकार से विचार व्यक्त किये गये हैं—

1 People in general, or any part of them without distinction, formerely alike in both singular and plural, but now the plural folks is most used, as folks will *talk, some folks say so*

2 The members of one s family, one's relatives, a collo quial use in the plural in the United States, as, the folks down home on the farm his folks are Yankees

3 A race of people, a nation, a community

उपर्युक्त विविध अर्थों को देखने पर पता चलता है कि प्राय सभी ने 'लोक' शब्द को जन, प्रजा, मानव-जाति आदि के पर्याय शब्द के रूप में ग्रहण किया है। 'लोक' के शाब्दिक अर्थ पर विचार कर लेने के पश्चात इस शब्द के प्रयोग की प्राचीनता एवं इस शब्द के विविध सन्दर्भों के अन्तर्गत किये गये प्रयोगों का उल्लेख करना भी आवश्यक है।

ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष-सूक्त में 'लोक' शब्द का प्रयोग जीव एव स्थान—दोनों अर्थों में हुआ है—

---

१ सिद्धान्त-कौमुदी (वेंकटेश्वर प्रेस, बम्बई, १९८६), पृ० ४१६

२ हलायुध-कोश, स० जयशंकर जोशी, पृ० ५८१

3 The Practical Sanskrit English Dictionary, V S Apte, p 820

४ हिन्दी शब्द-कल्पद्रुम, स० प० रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ६३४ ३५

5. Webster s New Twentieth Centuary Dictionary, p 681

'नाभ्या आसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ।
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ।'[1]

इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में 'लोक' शब्द के लिए 'जन'[2] शब्द भी प्रयुक्त हुआ है।

यजुर्वेद में 'लोक' (समाज) की विराट् कल्पना की गयी है। वह पुरुष रूप ईश्वर है। उसके सहस्र मुख, सहस्र नेत्र और सहस्र पद हैं।[3] जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण[4] ग्रन्थ में 'लोक' की विशालता की ओर इंगित करते हुए कहा गया है कि नानाविध प्रसृत 'लोक' प्रत्येक वस्तु में परिव्याप्त है एवं प्रयत्नपूर्वक भी इसे पूरी तरह नहीं जाना जा सकता।

'लोक', जिसे समाज के पर्याय के रूप में स्वीकृत किया गया, कालान्तर में समाज का एक अंग मात्र रह गया। शनैः शनैः समाज दो भागों में विभाजित हो गया—वेद-रीति प्रधान समाज और लोक रीति प्रधान समाज। इस प्रकार अनेक प्रकार से फैला हुआ 'लोक' सीमित अर्थ को ग्रहण करके वेद से विलग हो गया। वेद दर्शन और ज्ञान में गर्वित रहा और लोक परम्परा से पालित। वेद और लोक के विभेद को कई मनीषियों ने अपनी पोथियों में व्यक्त किया है।

महावैयाकरण पाणिनी ने वेद से विलग लोक की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया है। उन्होंने अनेकानेक शब्दों की निष्पत्ति बतलाते हुए स्पष्टतः उल्लेख किया है कि वेद में इसका स्वरूप इस प्रकार का है, परन्तु लोक में इसका स्वरूप भिन्न समझना चाहिए। महाभाष्यकार पतञ्जलि ने लोक में प्रचलित 'गौ' शब्द के अनेक रूपों का उल्लेख अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ में किया है।[5] भरतमुनि ने नाट्यशास्त्र में अनेक नाट्य धर्मी तथा लोक धर्मी प्रवृत्तियों का उल्लेख कर लोक की पृथक सत्ता को स्वीकार किया है।[6] महर्षि व्यास ने 'लोक' शब्द का प्रयोग जन-साधारण के अर्थ में किया है।[7] अन्यत्र महाभारत में ही व्यास ने 'प्रत्यक्षदर्शी लोकानां सर्वदर्शी भवेन्नरः' कहकर लोक की महत्ता स्वीकार की है।

---

१ ऋग्वेद १०।९०।१४

२ य इमे रोदसी उभे अहमिन्द्रमतुष्टव । विश्वामित्रस्य रक्षति ब्रह्मेदं भारतं जनम् ।
—ऋग्वेद ३।५३।१२

३ सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ।—यजुर्वेद ३१

४ बहु व्याहितो वा अयं बहुशो लोकः । क एतद् अस्य पुनरीहितो अगात् ।—जैमिनीय उपनिषद् ब्राह्मण ३।२८

५ केषां शब्दानाम् ? लौकिकानां च । एकैकस्य शब्दस्य बहवो अपभ्रंशाः । तद्यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी-गोणी गोता गोपोतलिकेत्येवमादयोऽपभ्रंशाः ।—महाभाष्य पश्पशाह्निक प्रमाणातिविरोधस्य लोकस्य तु विवेचनम् ।

६ नाट्यशास्त्र चौदहवाँ अध्याय, भरतमुनि ।

७ आदिपर्व १।१।०१२

भगवान श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में लोक-संग्रह पर बहुत बल दिया है। वे अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं—

'कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादय ।
लोकसंग्रहमेवापि सम्पश्यन्कर्तुमर्हसि ।'[1]

महाभारत और भगवद्गीता में क्रमशः 'वेदाश्च वैदिका शब्दा सिद्धा लोकाश्च लौकिका', तथा 'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथित पुरुषोत्तम.' आदि लोक-वेद-विधि में विरोध का व्यंजन करने वाले और भी अनेक वाक्य मिलते हैं। प्राकृत तथा अपभ्रंश में प्रयुक्त 'लोकजत्ता', 'लोअणवाय' आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्त्व व्यक्त करते हैं। बौद्ध-धर्म के प्रचार के साथ ही 'लोक' शब्द मनुष्य-मात्र के भाव से भूषित हुआ। प्रजापालक नृपति अशोक के शिलालेखों में व्यवहृत 'लोक' का शाब्दिक अर्थ समग्र प्रजाजनों के हित में हुआ है।

उक्त विवरण पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि यहाँ 'लोक' शब्द वेद-विरोधी होते हुए भी अपने-आपमें विशद अर्थ को समेटे हुए है। पर साहित्यिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त 'लोक' शब्द इतना विशदार्थी नहीं है। अतः यहाँ पर साहित्य विशेष को द्योतित करने वाले शब्द 'लोक' की कुछ महत्त्वपूर्ण परिभाषाएँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

'लोक शब्द का अर्थ 'जानपद' या 'ग्राम्य' नहीं है, बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिए जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती हैं, उनको उत्पन्न करते हैं।'[2]

"लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो आभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य की चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्त्व मिलते हैं, वे लोक-तत्त्व कहलाते हैं।'[3]

विश्वभारती, शांतिनिकेतन के उड़िया विभागाध्यक्ष डॉ० कुंजविहारी दास ने लोक गीतों को परिभाषित करते समय 'लोक' शब्द की सुन्दर व्याख्या की है—

'लोक-गीत उन लोगों के जीवन की अनायास प्रवाहात्मक अभिव्यक्ति है जो

---

१ गीता ३।२०
२ जनपद, वर्ष १, अंक १, डॉ० हजारीप्रसाद द्विवेदी पृ० ६५

सुसंस्कृत तथा सुसभ्य प्रभावों से बाहर रहकर कम या अधिक रूप में आदिम अवस्था में निवास करते हैं।"[1]

'लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान—सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है। अर्वाचीन मानव के लिए लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वभूत माता पृथिवी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म-शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार और निर्माण का नवीन रूप है। लोक-पृथिवी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।'[2]

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने निम्न पंक्तियों में 'लोक' और 'शास्त्र' के विभेद को बहुत ही सुन्दर ढंग से समझाया है—

'किसी व्रत, नियम या छन्द के भीतर बँधा हुआ जो धार्मिक जीवन है वह शास्त्रीय या मार्गीय या नियमानुगत कहा जायेगा। किन्तु इसके अतिरिक्त जो शास्त्रीय सीमाओं और व्रतों से व्यतिरिक्त है, जिसे अथर्ववेद के शब्दों में व्रात्य-जीवन कहेंगे, वह लोक-धरातल पर विकसित होने वाले समाज का विराट जीवन माना जायगा। × × × शास्त्र परिष्कृत उपवन है, और लोक अरण्य है। × × शास्त्र की दृष्टि बुद्धि के मथन का फल है। लोक की दृष्टि हृदय के मथन से मिलने वाला वरदान है। हृदय और बुद्धि का अन्तर ही लोक और शास्त्र का अन्तर है, जैसा कि गोसाईंजी ने कहा है—'हृदय सिन्धु मति सीप समाना'।'[3]

इसके अतिरिक्त आपने यह भी बताया है कि वर्तमान में जो लोक है, वही भूतकाल का शास्त्र बन जाता है। प्राचीन को आपने शास्त्र बताया है एवं नूतन को लोक।

' लोक साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्यापक एवं प्राचीन परम्पराओं की श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता, संस्कृति के कल्याणमय विकास का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न

---

1 '...the people that live in more or less primitive condition outside the sphere of sophisticated influences.'

—A Study of Orissan Folklore, Dr Kunji Bihari Dass

२. सम्मेलन, (लोक संस्कृति विशेषांक, २०१०), डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ६५

३ वरदा, जनवरी १६२८, वर्ष १ अंक १ (भारतीय संस्कृति में लोक-तत्त्व), डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ३-४

संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु 'लोक' दोनों संस्कृतियों में विद्यमान है। वही समाज का गतिशील अंग है।'[1]

डॉ० श्याम परमार ने साहित्यिक विशेषण के रूप में प्रयुक्त होने वाले 'लोक' शब्द की उक्त सन्दर्भ में सीमा निम्न प्रकार से निर्धारित की है—

'आधुनिक साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों में 'लोक' का प्रयोग गीत, वार्ता, कथा, संगीत, साहित्य आदि से युक्त होकर साधारण जन-समाज, जिसमें पूर्व-संचित परम्पराएँ, भावनाएँ, विश्वास और आदर्श सुरक्षित हैं तथा जिसमें भाषा और साहित्यगत सामग्री ही नहीं, अपितु अनेक विषयों के अनगढ़ किन्तु ठोस रत्न छिपे हैं, के अर्थ में होता है।'[2]

उक्त विवेचन से बोध होता है कि समाज दो वर्गों में विभक्त है। एक उच्च एवं सुसभ्य वर्ग है जो पांडित्य से परिपूर्ण है, और दूसरा निम्न या असभ्य वर्ग है जो परम्परा-पालनकर्ता है एवं जिसे 'लोक' संज्ञा से अभिहित किया जाता है। परन्तु यहाँ यह ज्ञातव्य है कि लोक-साहित्य में लोक-मानस की अभिव्यक्ति होती है। अतः हमें साहित्यिक विशेषण 'लोक' की लोक-मानस को ध्यान में रखकर व्याख्या करनी होगी। सभ्य से-सभ्य एवं सुशिक्षित व्यक्ति में भी कुछ-न कुछ अंश में हमें आदिम मानस-तत्त्व मिलता है। फलतः कहा जा सकता है कि सम्पूर्ण समाज में जहाँ तक परम्पराएँ पथ प्रदर्शित करती हैं, प्राकृतिक विश्वास (देवी-देवता में, जादू टोने में, मन्त्र-तन्त्र में) संबल प्रदान करते हैं, शकुन राह के अवरोधक तत्त्व बनते एवं अग्रसर होने के लिए प्रेरित करते हैं, विविध पशु-पक्षियों की बोलियाँ भवितव्यता का बोध कराती हैं, सूत्र-बन्धन मात्र से भूत-प्रेतादि पीड़ित का पिंड त्यागकर भाग खड़े होते हैं, अति-प्राकृतिक तत्त्वों की विद्यमानता की पुष्टि में प्रबल तर्क पेश किए जाते हैं, धार्मिक भावना से अभिभूत होकर औषधि का त्याग करके किसी पीर-पैगम्बर या देव के चरणामृत का पान कर सन्तुष्ट हुआ जाता है, उस सीमा तक प्रत्येक व्यक्ति 'लोक' की श्रेणी में परिगणित होगा—नागरिक या ग्रामीण कोई भी क्यों न हो।

'लोक' शब्द के आंग्ल-भाषा के प्रतिरूप (Folk) फोक शब्द का पूर्व रूप Folc निश्चित किया गया है। यह शब्द ऐंग्लो-सेक्शन शब्द है और यह जर्मनी में Volk रूप में प्रचलित है। आंग्ल-भाषा में यह शब्द असंस्कृत और मूढ़-समाज अथवा जाति का बोध करवाता है। इसके साथ ही-साथ सर्वसाधारण एवं राष्ट्र के समग्र लोगों के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। Folk के विषय में 'एनसाइक्लो-पीडिया ब्रिटेनिका' ने बताया है कि आदिम समाज में तो उसके समस्त सदस्य ही

---

१ भारतीय लोक-साहित्य, डॉ० श्याम परमार, पृ० ९-१०

२ वही, पृ० ११

लोक (Folk) होते हैं और विस्तृत अर्थ में इस शब्द से सभ्य-से-सभ्य राष्ट्र की समस्त जनसंख्या को भी अभिहित किया जा सकता है। किन्तु सामान्य प्रयोग में पाश्चात्य प्रणाली की सभ्यता के लिए ऐसे संयुक्त शब्दों (जैसे लोक-वार्ता Folklore, लोक संगीत Folkmusic) में इसका अर्थ संकुचित होकर केवल उन्हीं का ज्ञान कराता है जो नागरिक-संस्कृति और सविधि शिक्षा की धाराओं से मुख्यत परे है, जो निरक्षर-भट्टाचार्य हैं, अथवा जिन्हें मामूली-सा अक्षर-ज्ञान है—ग्रामीण और गँवार।

एक अन्य विद्वान डॉ० बार्कर ने 'फोक' शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है कि 'फोक' से सभ्यता से सुदूर रहने वाली किसी पूरी जाति का बोध होता है, परन्तु इसका यदि विस्तृत अर्थ लिया जाये तो किसी सुसंस्कृत राष्ट्र के समग्र लोग इसी नाम से पुकारे जायेंगे।

'लोक' शब्द को लेकर पौर्वात्य तथा पाश्चात्य मनीषियों ने प्रायः साम्य रखने वाले विचारों को ही अभिव्यक्त किया है। आधुनिक परिस्थितियों पर दृष्टिपात करने पर पता चलता है कि 'लोक' शब्द ने न केवल एक विशिष्ट प्रकार के साहित्य को ही अलंकृत किया अपितु आज के समाज के एक बहुत बड़े वर्ग का भी वाचक बन गया है। साहित्यिक सन्दर्भ को ध्यान में रखते हुए 'लोक' को निम्न प्रकार से परिभाषित किया जा सकता है—

'वह वर्ग-विशेष, जो अतर्क्य भाव से अन्ध श्रद्धालु की भाँति पूर्ण आश्वस्त होकर प्रकृति के कण-कण में दैविक-सत्ता के दर्शन करता है, शुद्ध-प्रबुद्ध एवं पुस्तकीय ज्ञान से गर्वित मानस की तरह छल-प्रपंचों से परिपूर्ण नहीं है, शास्त्रीयता की शृंखलाओं से आबद्ध नहीं है, स्वानुभूत ज्ञान के आधार पर जीवित है, राजनीति के दाँव-पेंचों में पूर्णत अनभिज्ञ है, आधुनिक वैज्ञानिक युग की जटिलताओं से आपूर्ण जीवन से सतत संघर्ष करता हुआ आज भी दृढ परम्पराओं का पुजारी है, पावस-काल रूपी पावन-अतिथि को सस्नेह आमन्त्रित करने हेतु नरमेध आदि अनेक अन्धविश्वासों को पूर्णतया स्वीकारने वाला है—लोक है। इसके मानस से प्रणीत निरलंकृत-नैसर्गिक भाव-सौन्दर्य से सम्पन्न, आदि-कवि वाल्मीकि के मुखारविन्द से सहजाभिव्यक्त प्रथम श्लोक की भाँति प्रकट होने वाला साहित्य ही लोक-साहित्य की संज्ञा से अभिहित किया जाता है। स्वाभाविकता, सहजोद्रेकता एवं सरलता इसके प्रधान गुण हैं। इसके प्रत्येक शब्द में हृदयस्पर्शिणी अद्वितीय शक्ति है। विद्वानों के वैचारिक जाटिल्य से अनवगत भाव-जगत का निवासी जन ही लोक है।'

उक्त विवेचित लोक की शाश्वत अभिव्यक्ति-परम्परा ही लोक-साहित्य है। इस लोक के मानस की अभिव्यंजना नाना प्रकारेण हुई है। लोक प्रतिदिन जिस

प्रकार का जीवन-यापन करता है, उसी की उसने अनेक रूपों में अभिव्यक्ति की है। इस सम्पूर्ण अभिव्यक्ति में साहित्यिक रूपों के साथ नैतिक मूल्यों, रीति-रिवाजों, विश्वासों, धारणाओं आदि को भी यथेष्ट स्थान मिला है। आज के युग में आदिम मानव-अध्ययन हेतु उन समस्त तत्त्वों और रूपों का पूरा-पूरा महत्त्व है। समग्र लोकाभिव्यक्ति के एक अंग (लोक-साहित्य) की साहित्यिक दृष्टिकोण से अत्यन्त महत्ता है। 'लोक' का गम्भीर अध्ययन करने वाले अध्येताओं ने इस सम्पूर्ण लोकाभिव्यक्ति को 'लोक-वार्ता' शब्द से अभिहित किया है। लोक-साहित्य लोक-वार्ता का एक अंग मात्र है। परम्परा के पुजारी, पूर्वजों के रीति रिवाजों, अन्धविश्वासों आदि को अतर्क्य भाव से सम्बद्ध स्वीकारने वाले लोक-मानस ने गीतों, कहानियों, गाथाओं, नाट्यों, प्रहेलिकाओं आदि के माध्यम से सामाजिक पक्षों को समक्ष रखकर अपने मधुरिम तथा विषम भावों और विचारों की अभिव्यक्ति की, वही लोक-साहित्य की संज्ञा से जानी जाती है।

लोक-साहित्य के साथ लोक वार्ता के सम्बन्ध में भी थोड़ी-बहुत जानकारी होना आवश्यक है।

सर्वप्रथम १८४६ ई० में इंगलैंड के प्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता जॉन थामस ने 'फोकलोर' शब्द का प्रयोग किया था।[1] हिन्दी में इसके लिए 'लोक-वार्ता' शब्द का प्रचलन है। निरक्षर भट्टाचार्य एवं साहित्य से परे रहने वाले प्रकृति के परम पुजारी लोक से सम्बन्धित समस्त बातें लोक-वार्ता के अन्तर्गत परिगणित की जाती हैं। अत: यहाँ लोक-वार्ता के सम्बन्ध में कुछ विचार किया जा रहा है।

लोक-वार्ता—एक विवेचन

लोक-वार्ता से सुसभ्य एवं असभ्य मानव के परम्परा विधानों का बोध होता है। यह विषय लोक-विश्वासों की सुदृढ़ भित्ति पर टिका हुआ है। जहाँ भी लोरी की मधुर तान शिशु को सुलाने में सफल होती हो, सरलहृदया रमणियाँ आगतिक विपदाओं को गीतों की स्वरलहरियों में विस्मृत कर देती हों, पहेलियाँ मानस-उद्वेलन का कारण बनी हों, दिन भर के कठिन परिश्रम से थान्त जन आग के चारों ओर वृत्ताकार बैठ जाड़े की रात्रियों में हृदयस्पर्शी कथाओं से आनन्दानुभूति करते हों, प्राचीन खेलों का समायोजन हो, जन-साधारण के अन्तस्तल में रात्रि-भर जागकर लोकानुरञ्जक नाटकों के अवलोकन की अतृप्त लालसा हो, वैवाहिक एवं धार्मिक विनोदवर्द्धक उत्सवों का विधान हो, ममतामयी माँ तरुण-तनया को पाणिग्रहण योग्य समझ गार्हस्थिक कर्मों में पटु करने के निश्चय से विविध कर्म-विधियाँ बताने में व्यस्त हो, निष्कपट कृषक अपनी बपौती की धरा

पर हल चला-चलाकर अपने सुपात्रपुत्र को पारंगत करता दिखायी दे एवं चन्द्र-कला के सम्वर्द्धन आदि में समय निर्धारण का कौशल सिखाता हो, बढ़ई एवं लुहार अपने कर्म में प्रवृत्त होने से पूर्व धूप-दीप करते हुए दिखायी देते हों, अन्धविश्वासी गड़रिया स्थान या तरु-विशेष में भूत-प्रेतादि के निवास की धारणा से उद्भ्रान्त हो उस तरफ पाँव तक न रखने की शपथ ले बैठा हो, मृण्मयी या पाषाण-मूर्ति पर देवत्व आरोपित कर उस तरफ पाँव मात्र करके रख जाने पर सुर-अभिशाप से शापित होने की मान्यता रखता हो, गमन-प्रत्यागमन शकुन की स्वीकारोक्तियों एवं अवरोधों पर आधारित हो, पूज्य परम्पराओं का सश्रद्ध पालन किया जाता हो, जहाँ पुस्तकीय ज्ञान विरोध की वस्तु बन जाये और पैतृक सम्पदा के रूप में अर्जित ज्ञान एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता हो, जहाँ वेद-वर्णित विधान गौण एवं लोक-लोक लब्धप्रतिष्ठ हो—वहाँ-वहाँ सर्वत्र हमें लोक-वार्ता के दर्शन होते हैं। लोक-वार्ता लोक का रत्नाकर है, जिसमें लोक के अनेक रत्न अन्तर्निहित हैं। सोफिया-बर्न ने लोक-वार्ता की विस्तृत परिधि की ओर इंगित किया है, जिसका अविकल अनुवाद लोक-साहित्य-विज्ञान के मर्मज्ञ डॉ० सत्येन्द्र ने इस प्रकार किया है—

'यह एक जातिबोधक शब्द की भाँति प्रतिष्ठित हो गया है, जिसके अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास, रीति-रिवाज, कहानियाँ, गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में, भूत-प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में, जादू, टोना, सम्मोहन, वशीकरण, तावीज, भाग्य, शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह, उत्तराधिकार, बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति-रिवाज और अनुष्ठान और त्योहार, युद्ध, आखेट, मत्स्य-व्यवसाय, पशु-पालन आदि विषयों के भी रीति-रिवाज और अनुष्ठान इसमें आते हैं। तथा धर्म-गाथाएँ, अवदान (Legend), लोक-कहानियाँ, साके (Ballad), गीत, किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप में, लोक की मानसिक सम्पन्नता के अन्तर्गत जो भी वस्तु आ सकती है वह सभी इसके क्षेत्र में हैं। यह किसान के हल की आकृति नहीं जो लोक वार्ताकार को अपनी ओर आकर्षित करती है, किन्तु वे उपचार अथवा अनुष्ठान हैं जो किसान हल को भूमि जोतने के काम में लेने के समय करता है, जाल अथवा वंशी की बनावट नहीं, वरन् वे टोटके हैं जो मछुआ समुद्र पर करता है, पुल अथवा निवास का निर्माण नहीं, वरन् वह बलि जो उसके बनाते समय दी जाती है और उसको उपयोग में लाने वालों के विश्वास। लोक वार्ता वस्तुतः आदिम

मानव की मनोवैज्ञानिक अभिव्यक्ति है, वह चाहे दर्शन, धर्म, विज्ञान तथा औषध के क्षेत्र मे हुई हो, चाहे सामाजिक सगठन तथा अनुष्ठानो मे अथवा विशेषत इतिहास, काव्य और साहित्य के अपेक्षाकृत बौद्धिक प्रदेश मे।"[1]

मानवीय मानस को प्राधान्यता प्रदान करते हुए समाज को स्थूल रूप से दो भागो मे विभक्त किया गया—

(१) उच्च-वर्ग (तर्क ज्ञान से सम्पन्न), और

(२) निम्न-वर्ग (परम्परित ज्ञान स सम्पन्न)।

अधिकाश लोगो ने प्राय इसी निम्न-वर्ग की समग्र अभिव्यक्तियो को लोक-वार्ता की सज्ञा प्रदान की है। इसी निम्न या असभ्य समझे जाने वाले वर्ग में परिलक्षित होने वाली सस्कृति, परम्परागत विषय, किंवदन्तियाँ, आचार-विचार, गीत, कथाएँ, कहावतें, नृत्यादि को 'लोक-वार्ता' शब्द से अभिहित किया जाता है। पर यदि सूक्ष्म पर्यालोचन किया जाय तो ज्ञात होता है कि सभ्य-से-सभ्य कही जाने वाली जातियो मे भी परम्परा, विश्वास एव धार्मिक अनुष्ठान के कुछ ऐसे अवशेष मिलते हैं कि उस स्थिति का प्रमुखता देते हुए उन समग्र कृत्यो को लोक-वार्ता के क्षेत्र मे ही परिगणित किया जायेगा। पुस्तकीय ज्ञान से गर्वित नागरिको मे प्राप्य असभ्य-जनो से साम्य रखने वाले विश्वास, रूढियाँ, भ्रम, श्रद्धा-भावनाएँ, कथाएँ, गीत आदि भी लोक-वार्ता की परिधि मे ही आते हैं। यद्यपि डॉ० चाटुर्ज्या न लोक-वार्ता के लिए 'लोकायन' शब्द का प्रयोग किया है, तथापि इस सम्बन्ध म अभिव्यक्त उनके विचार द्रष्टव्य है—

'पितृ-परम्परागत जीवन-यात्रा की पद्धति जिन सामाजिक अनुष्ठानो, विश्वास-विचारो तथा वाङ्मय स अपने लौकिक प्रकाश को प्राप्त करती है, उन्हे अग्रेजी मे फाकलोर' कहते है। इस शब्द का भारतीय प्रतिशब्द हमने 'लोकायन' यो बना लिया है।'[2]

उक्त परिभाषा म भी डॉ० चाटुर्ज्या ने लाक वार्ता के परिधि-विस्तार को ओर ही इगित किया है। इसके लिए महत्त्वपूर्ण बात बतायी है—परम्परा की। परम्परा मानव समाज के उच्च और निम्न दानो वर्गों मे पायी जा सकती है। परन्तु अधिकाशत निम्न वर्ग ही (जिस विद्वानो ने 'लोक' शब्द स भी अभिहित किया है) परम्परा का पोषक प्रतीत होता है। और लोक-वार्ता इसी लाक की शाश्वत विचाराभिव्यक्ति है। यह लोक-मानस के लिए चिरप्राचीन होते हुए भी नितनवीन है। समय-सापेक्षता लाक-वार्ता पर प्रतिबन्ध नही लगा सकती। इसका अस्तित्व सार्वदेशिक एव सार्वकालिक है। इसी भाव से अभिभूत होकर बोटकिन ने कहा

१ ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ४-५

२ राजस्थानी कहावतें, भूमिका, भाग १, डॉ० सुनीतिकुमार चाटुर्ज्या, पृ० ११

है कि 'लोक वार्ता अत्यधिक दूर और अत्यन्त प्राचीन कोई वस्तु नहीं है। वह तो हमारे मध्य, सत्य और जीवित है।'[1] क्योंकि यहाँ भूतकाल को वर्तमान में और पुस्तकहीन समाज को उस समाज से कुछ कहना है जो अपने ही विषय में पढ़ना चाहता है, जिसका सम्बन्ध हमारी मौखिक और लोकतान्त्रिक संस्कृति की मूल कलाओं के प्रारम्भिक रूपों और इतिहास से एक अंग के प्रकाश में है।'[2]

अत कहा जा सकता है कि लोक वार्ता केवल प्राचीन, अवशेष-मात्र रूढ़ियों का अध्ययन ही प्रस्तुत नहीं करती वरन् जीवित लोक-भावों, लोकाभिव्यक्तियों एवं उनकी प्रवहमान प्रक्रियाओं का भी अध्ययन करती है। सविधि शिक्षितों से यह प्रभावित अवश्य होता है। परन्तु समग्र रूप से लोक वार्ता लोक का सर्वांग निरूपक शास्त्र रहा है, है और रहेगा। लोक की अपरिमित शक्ति, साहस, मनोभाव, मान्यताएँ, विश्वास, राग-द्वेष, परम्पराएँ, टोने टोटके अनुष्ठान, रीति रिवाज, गीत-कथाएँ, वेश भूषा आदि संयुक्त रूप में लोक-वार्ता के चेतन अस्तित्व की उद्घोषणा करते हैं। समग्र संस्कृति की मुखेच्छु होते हुए भी यह आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति एवं यान्त्रिकता से बचकर रहना चाहती है। इनसे प्रभावित हो जाने से उत्तरोत्तर इसका नैसर्गिक सौन्दर्य मिटता जा रहा है। नितान्त असभ्य कहे जाने वाले आदिम समाज में (जिसके सदस्यों को अक्षर ज्ञान तक नहीं है) तो लोक-वार्ता पूर्णरूपेण सादर प्रतिष्ठित है ही, पर साथ-ही-साथ सभ्य एवं शिक्षित समाज में भी समादृत। परम्परा के तारों पर झंकृत हो लोक वार्ता का जितना अंश समयान्तर से विस्मृत हो जाता है उससे भी दूना नव निर्मित होता है। जितना अधिक विद्रूप होता है उससे कहीं अधिक बढ़कर विकसित होता है। परिणामतः कहा जा सकता है कि लोक-वार्ता की सतत पयस्विनी के गति-नैरन्तर्य में कदापि मन्दता नहीं आती। लोक-वार्ता की जीवन्त शक्ति एवं क्षेत्र-विस्तार के सम्बन्ध में अभिव्यक्त डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के विचार द्रष्टव्य हैं—

> 'लोक-वार्ता एक जीवित शास्त्र है। लोक का जितना जीवन है उतना ही लोक-वार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन में भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव होता है, और लोक-वार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं से साथ है।'[3]

लोक-वार्ता के अध्ययन से हम संस्कृति के अर्थों एवं रूपों से अवगत होते हैं। लोक-वार्ता मानवीय संस्कृति-बोधक वह शास्त्र है जो चेतन या अचेतन भाव

---

1 American Folklore (Intro), Botkin

2 Ibid, p 15

३ पृथिवी-पुत्र, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, पृ० ८५

से विश्वासों एवं रीति-रिवाजों में संचित है तथा जिसकी सामूहिक अभिव्यक्ति विविध कलाओं एवं उद्योगों में की गयी है। सूक्ष्म पर्यवेक्षण से ज्ञात होता है कि लोक वार्ता उसी अर्थ में वैयक्तिक-सामूहिक सम्पदा है जिस अर्थ में आँखें, हाथ और भाषा प्रत्येक व्यक्ति की अपनी होते हुए भी सभी को प्राप्त है। लोक वार्ता वह जीवन्त शास्त्र है जो कदापि मरना नहीं चाहता। कभी कभी समयानुकूल परिवर्तित अवश्य हो जाता है। यह शैशववान की निश्छल एवं सरल प्रबोधिनी शक्ति है जो शिशु की प्रसन्नतापूर्वक स्वीकृति की आधार-शिला है, युवाहृदय का सहजोन्माद है जो प्रति पल प्रत्यक यौवन सम्पन्न सामाजिक को आह्लादित करता रहता है और साथ ही साथ विवेकी वृद्धों का अवर्ण्य आनन्द है जो उन्हें एक बार से यौवन की दहलीज पर पहुँचा देता है, क्योंकि लोक-वार्ता में आत्माभिव्यक्ति का सारल्य सदैव विद्यमान रहता है। यह वह लोकानुरंजक लोकाभिव्यक्ति है जो लोक के द्वारा लोक के लिए ही की गयी है। लोक-वार्ता एक विशदार्थ का द्योतक है, जिसकी ओर लेनिन ने भी इंगित करते हुए कहा है कि लोक-वार्ता जन की आशाओं और आत्म-भावों (स्नेह-सम्बन्धों) से सम्बन्धित हैं।[1]

उपर्युक्त सम्पूर्ण विवेचन पर सम्यक्‌रूपेण दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि लोक वार्ता का क्षेत्र असीमित है। समग्र लोकाभिव्यंजना को वह अपने-आप में अन्तर्निहित किये हुए है। हमारा अपना विवेच्य विषय लोक-साहित्य इसका एक अंग मात्र प्रतीत होता है। विभिन्न विद्वानों के अभिव्यक्त विचारों पर दृष्टि डालने से ज्ञात होता है कि लोक वार्ता के क्षेत्र में इन सभी का—धर्म-कथाएँ, अवदान, लोक-कथाएँ, लोक गीत, लोक-गाथा, लोक-नाट्य, चुटकुले एवं हास्यास्पद मजाक, कहावतें, पहेलियाँ व्यंग्य-वाक्य, लोक नृत्य, लोक-संगीत, अभिशाप, शपथ, परस्पर नीचा दिखाने के लिए कहे गये कथन, मेल-मिलाप की बातें, समझौते, अनिच्छित कार्यों को टालने के तरीके, लोक-रीति-रिवाज, लोक-विश्वास, लोक कलाएँ, लोक-औषधियाँ एवं लोक-उपचार, लोक-वाद्ययन्त्र, लोक-प्रचलित उपमाएँ, लोक खेल, लोक प्रतीक, लोक प्रार्थनाएँ, मन्त्र-तन्त्र, झाड़-फूँक, जादू-टोना, शब्द व्युत्पत्ति में लोक निर्मित विविध धारणाएँ, परम्पराएँ, घरेलू पशुओं को पुकारने के प्रकार, पशुओं को हाँकने एवं पक्षियों को उड़ाने में प्रयुक्त होने वाली ध्वनियाँ शकुन विचार, टोटके, उत्सव विधान, अन्ध-विश्वास, अपने वर्ण को श्रेष्ठ सिद्ध करने के लिए गठित कथाएँ एवं स्व वर्णेतर वर्ण को ओछा सिद्ध करने वाली काल्पनिक कथाएँ आदि अनेकानेक बातों का—समाहार हो जाता है। पर इसके विपरीत लोक-साहित्य का क्षेत्र अपेक्षतया सीमित है। लोक-

---

1 Folklore is material about the hopes and yearnings of the people

वार्ता के अति विस्तृत क्षेत्र को विभिन्न उपखंडों में विभक्त करते हुए सोफिया-बर्न ने लोक साहित्य को लोक वार्ता का एक अंग विशेष स्वीकारा है, जो उचित जान पड़ता है। अत यहाँ पर सोफिया बर्न कृत लोक-वार्ता के वर्गीकरण को हिन्दी रूपान्तर में प्रस्तुत किया जा रहा है। सोफिया बर्न ने लोक-वार्ता के विषयों को निम्न तीन प्रमुख समूहों में विभाजित किया है—

(१) वे विश्वास और आचरण अभ्यास जो सम्बन्धित हैं—
पृथ्वी और आकाश से, वनस्पति-जगत से, पशु-जगत से, मानव से, मानव निर्मित वस्तुओं से, आत्मा तथा दूसरे जीवन से, परा-मानवी शक्तियों से, शकुनों अपशकुनों, भविष्य वाणियों, आकाश-वाणियों से, जादू टोनों से, रोगों तथा स्यानों की कला से।

(२) रीति-रिवाज—
सामाजिक और राजनीतिक संस्थाएँ, व्यक्तिगत जीवन के अधिकार, व्यवसाय, धंधे तथा उद्योग, तिथियाँ, व्रत और त्यौहार, खेल तथा मनोरंजन।

(३) कहानियाँ, गीत तथा कहावतें—
(क) कहानियाँ— (अ) जो सच्ची मानकर कही जाय,
(आ) मनोरंजन हेतु।
(ख) गीत—सभी प्रकार के,
(ग) कहावतें तथा पहेलियाँ।

उक्त विवेचन से भी यही पुष्ट होता है कि लोक-साहित्य लोक-वार्ता का एक अंग है। परन्तु लोक-साहित्य को हम लोक वार्ता से कदापि विलग नहीं कर सकते हैं। लोक साहित्य भी अपनी विविध विधाओं के कलेवर में लोक-वार्ता की अनेक अमूल्य मणियों को संजोए रखता है। लोक साहित्य एवं लोक-वार्ता का चोली दामन का सम्बन्ध है। अत यहाँ हम लोक वार्ता एवं लोक साहित्य के अविभाज्य सम्बन्ध का दिग्दर्शन कराते हैं।

लोक-वार्ता का एक अभिन्न अंग—लोक-साहित्य

यद्यपि लोक वार्ता की विषय तालिका बहुत बड़ी है, तथापि उसमें से अधिकांश विषय लोक-साहित्य की सीमा में समाविष्ट किए जा सकते हैं। यह सर्वविदित है कि लोक-वार्ता का प्रधान गुण मौखिकता है। यहाँ तक कि कुछ विद्वानों ने तो लोक साहित्य को बिना अक्षरों (लिपिबद्धता से तात्पर्य) का साहित्य (Literature without letters) कहा है। चूँकि लोक-वार्ता की अमूल्य निधि परम्परित मौखिक लोकाभिव्यक्ति है, अत लोक ने अपनी समग्र बहुमूल्य सम्पदा को पद्यबद्ध कर देना ही समुचित समझा। परिणामस्वरूप लोक वार्ता के बहुत

सारे विषय लोक-साहित्य के क्षेत्र मे सन्निहित हो गये। अपने कथन की पुष्टि मे हम कहना चाहते है कि बालक-बालिकाओ के खेलो को लोक-वार्ता के मर्मज्ञ विद्वानो ने लोक वार्ता का एक अग स्वीकारा है। निस्सन्देह बालको के खेल लोक-वार्ता क्षेत्राधिकार मे हैं, परन्तु खेल के साथ उच्चरित पद्यात्मक पक्तियाँ लोक-साहित्य की निजी सम्पदा हैं। बालक स्वाभाविक रूप से खेलते समय कुछ-न-कुछ गाते ही रहते है। उन गेय पक्तियो का भी साहित्य की दृष्टि से अत्यधिक महत्व होता है। इन पक्तियो मे भी नैसर्गिक अलकार-योजना, सरस प्रतीकात्मकता आदि साहित्यिक गुणो को ढूंढा जा सकता है। उदाहरणस्वरूप राजस्थान मे छोटे-छोटे बच्चे-बच्चियो द्वारा खेलते समय गाये जाने वाले गीतो या पद्यो की पक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

'फूदी रो फडाको, जीरा बाई रो कारो।'
'बोल म्हारी मछली ! थारै तळाव मे कित्तो पाणी।
······ ·· ·······   ··, म्हारै बराबर इत्तो पाणी।'

उक्त उदाहरण मे 'फूदी रो फडाको' मे डिंगल के अति प्रचलित एव बहु-प्रयुक्त वयण-सगाई अलकार के दर्शन होते हैं। 'जीरा बाई' प्रतीकात्मक प्रयोग प्रतीत होता है। इन पक्तियो की सार्थकता क्या है, ये किन परिस्थितियों को अपने-आपमे अन्तर्निहित किये हुए हैं, कौन से पुराख्यानो का इनमे बोध हो सकता है आदि-आदि बातें गम्भीर गवेषणा के विषय है। (जीरा बाई कोई पहले हुई थी या कोई पारिवारिक सम्बोधन का प्रतीक है, दुनिया-भर की नाना-विषयक बातों को विस्मृत कर मछली और तालाब की ही बात क्यो कही गयी · आदि प्रश्न), पर निश्चित रूप से यह सिद्ध किया जा सकता है कि ऐसी पक्तियाँ लोक-साहित्य की अमूल्य मणियाँ हैं। इस रूप मे हम देखते है कि लोक-वार्ता एव लोक-साहित्य मे घनिष्ठ सम्बन्ध है।

लोक-साहित्य लोक-वार्ता विषयक अनेक ऐतिह्यवृत्तो को अपने कलेवर मे सजाकर युग-युगान्तर तक जीवित रखता है। लोक वार्ता बहुमूल्य मणियों से परिपूर्ण एक भडार है। लोक-नायक तुलसी के शब्दों का (तुलसी नर का क्या बडा, समय बडा बलवान) स्मरण कर हमे भी स्वीकार करना पडेगा कि शक्तिशाली एव कराल-काल ने लोक की अनेकानेक अमूल्य मणियाँ नष्टप्राय कर दी, परन्तु जितनी भी मणियाँ लोक-साहित्य रूपी प्रहरी के हाथों पड गयी वे अद्यावधि अपनी ज्योतित-प्रभा विस्तीर्ण करने मे सक्षम हैं। फलत कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य लोक-वार्ता की अनमोल निधियो का रक्षक है। राजस्थान के इतिहास मे ही अनेकानेक दानवी प्रवृत्ति वाले व्यक्ति हुए होंगे जिन्होंने घुडला खाँ की भाँति कुत्सित कर्म करने की विचारी होगी। पर 'नूवी बात नउ दिन, खाची ताणी तेरै दिन' के अनुसार ऐसी अनेकानेक लोक-हृदय-विदारिणी घटनाएँ विस्मृति

के गर्त में गिर गयी, जबकि उक्त घटना 'घुड़लो घूमैला जी घूमैला' लोक-गीत के कमनीय कलेवर में प्रश्रय पाकर आज भी उस अधम मनुष्य के आसुरी हृदय एवं उसे मौत के घाट उतारने वाले शूरवीरों के शौर्य की कथा को मूर्तिमन्त कर देती है।

लोक-वार्ता विषयक विपुल सामग्री के अन्वेषण के लिए लोक साहित्य रूपी दर्पण को देखना अत्यावश्यक है। यह वह रत्नाकर है जिसका गहन मन्थन करके ही हम लोक से सम्बन्धित विविध रत्नों को प्राप्त कर सकते हैं। लोक-साहित्य एक ऐसा उत्तुंग-शृंग है जिस पर आरोहण करने के पश्चात् ही लोक-वार्ता के अति विस्तीर्ण क्षेत्र में चतुर्दिक (लोक-वार्ता के अन्य अंगों से तात्पर्य है) दृष्टि-पात किया जा सकता है। और यह है समग्र सभृति के क्षितिज का वह मिलन-बिन्दु, जहाँ देश-काल और वातावरण की सीमा को लाँघ, स्थित होकर मानव-मात्र 'वसुधैवकुटुम्बकम्' की भावना को ग्रहण कर सकता है। क्योंकि प्रायः सभी देशों में पाये जाने वाले लोक-साहित्य में भावनात्मक साम्य दिखायी देता है। अतः लोक का प्रत्येक सदस्य इन गीतों, कथाओं, पहेलियों आदि को अपनी निजी वस्तु समझता है। लोक-वार्ता जिस लोक को इतनी महत्ता देती है, उसी समग्र लोक को लोक-साहित्य एक ही रंगमंच पर ला उपस्थित करता है। इस दृष्टि से विचार करने पर भी प्रतीत होता है कि लोक-साहित्य लोक-वार्ता का एक अंग होने के साथ-ही-साथ लोक-वार्ता की सामग्री का संरक्षक भी है, लोक-वार्ता के जिज्ञासु का सहायक है और लोकानुरंजन का सफल साधन है। उक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि लोक-साहित्य का लोक-वार्ता से अटूट सम्बन्ध है।

लोक-साहित्य का सूक्ष्म अध्ययन करने पर विदित होता है कि कुछ विधाओं के सृजन में भावाभिव्यक्ति के साथ-ही-साथ कोई और भी उद्देश्य रहा है। वह है —धर्म के प्रचार एवं प्रसार की भावना। कतिपय विद्वानों ने लोक-साहित्य एवं धर्म गाथा के वर्ण्य विषय में बहुत कुछ साम्य देखकर उन्हें एक ही विषय स्वीकारने की भ्रामक धारणा निर्मित की। अतः उक्त भ्रान्त धारणा को निर्मूल सिद्ध करने हेतु लोक-साहित्य तथा धर्म-गाथा के सम्बन्ध एवं विभेद को स्पष्ट-तया समझ लेना समीचीन है। यद्यपि धार्मिकता प्रधान भावाभिव्यक्ति को भी साहित्य की श्रेणी में परिगणित किया जा सकता है, पर इस प्रकार के साहित्य पर धार्मिक साहित्य की मुहर लग जायेगी। एतदर्थ यहाँ लोक-साहित्य एवं धर्म-गाथा के विभेद का पर्यवेक्षण किया जा रहा है।

लोक-साहित्य एवं धर्म-गाथा

सभृति के प्राथमिक प्रभात में जिज्ञासु हृदय मानव ने जब सर्वप्रथम नयनो-न्मीलन किया तो कल-कल निनादिनी सरिता, कलरव करती एवं चहकती चटु-

रंगीय विहंगावली, उछलते-फुदकते तथा क्रीडारत मृग-शावक, स्निग्ध एवं शुभ्र ज्योत्स्ना विस्तारक निर्मल विधु, द्रुमालिंगित पर मलयानिल के मन्द झोंकों से लहराती लता, अपनी मृदु-महक से समग्र वातावरण को सुगन्धित करने वाले प्रसूनो आदि का अवलोकन कर अपूर्व एवं अद्वितीय आह्लाद की अनुभूति की। साथ ही कराल-काल जैसे प्रतीत होने वाले वन्य-हिंस्र-पशुओं की भीषण गर्जना, भयंकर ज्वालामुखियों के विप्लवी विस्फोट, सघन अरण्य की काट खाने वाली एकान्तता, उत्ताल तरंगों से तरंगायित क्षुब्ध सागर के रौरव-गर्जन से वह विस्मित और भयभीत हुआ। इसके अतिरिक्त कालक्रमानुसार पादप प्रसूनों के प्रस्फुटन-फलन, निश्चित समय पर सूर्य चन्द्रोदय, समय चक्र के अनुकूल ऋतु परिवर्तन आदि ने मानव को आश्चर्यान्वित किया तथा उसकी जिज्ञासा-वृत्ति को उद्बोधित भी किया। फलतः मानव-मानस ने इन विविध प्राकृतिक कृत्यों को लेकर अनेक प्रकार की कल्पनाएँ की। अपनी आरम्भिक अवस्था में अत्यधिक भावना प्रधान होने के फलस्वरूप मानव ने इन सभी कृत्यों का मानवीय शक्ति से परे एक अलौकिक सर्वशक्तिमान शक्ति द्वारा सचालित होना स्वीकार किया। इन प्रसंगो को लेकर मनुष्य ने अनेकानेक कथाओं की सर्जना की। इनमें से अधिकांश कथाओं पर धर्म-भीरु मानव ने धार्मिकता का आरोपण किया। इसके साथ-ही-साथ यह भी मान्यता प्रस्थापित कर ली कि इन धर्म-कथाओं या धर्म-गाथाओं के कथन श्रवण से धर्मलाभ होगा। कालान्तर में विद्वानों ने इन्हीं कथाओं एवं गाथाओं को 'धर्म-गाथा' संज्ञा से सम्बोधित किया। धर्म-गाथा के स्वरूप की 'हिन्दी-साहित्य कोश' में बड़ी ही सुन्दर एवं संक्षिप्त व्याख्या प्रस्तुत की गयी है, जो इस प्रकार है—

> 'यह किसी देवता अथवा पराप्राकृत सत्ता का एक विवरण होता है, इसे साधारणतः आदिम विचारों की शैली में लाक्षणिकता से अभिव्यक्त किया जाता है। यह वह प्रयत्न है जिसके द्वारा मनुष्य का विश्व से सम्बन्ध समझाया जाता है और जो इसे कहते हैं उनके लिए प्रमुखतः धार्मिक महत्त्व रखता है अथवा इसका जन्म किसी सामाजिक संस्था, रीति रिवाज अथवा परिस्थितियों की किसी विशेषता की व्याख्या करने के निमित्त होता है।'[१]

उक्त विवरण से यही स्पष्ट होता है कि धार्मिक पुट-समन्वित कथा धर्म-गाथा के क्षेत्र में परिगणित की जायगी। दैविक शक्तियों का अभ्युदय किस प्रकार हुआ? पशु पदार्थ की व्युत्पत्ति का क्या रहस्य है? कौए की एक ही आँख क्यों होती है? आदि प्रश्नों का उत्तर धर्म गाथा में ही प्राप्त होता है। यहाँ एक

---

१ हिन्दी साहित्य-कोश, खंड १ पृ० ३८५

और प्रश्न उठता है कि ऐसे विचार तो कई लोक-कथाओ मे भी अभिव्यक्त हुए हैं, तो क्या वे लोक कथाएँ भी धर्म गाथा के क्षेत्र मे गिनी जायेंगी ? पर यहाँ यह ध्यातव्य है कि धर्म-गाथा मे धार्मिक आस्था ही नही, धार्मिक पृष्ठभूमि का होना भी परमावश्यक है। उसमे किसी दैविक-शक्ति का समावेश होना भी आवश्यक है। यदि यह दोनो बातें किसी कथा मे प्राप्त नही होती हैं तो वह कथा लोक-कथा ही स्वीकार की जायेगी। यद्यपि दैविक-शक्ति-सम्पन्न पात्रो का तो लोक कथा मे भी वर्णन हो सकता है परन्तु धर्म गाथा के लिए धार्मिक पृष्ठभूमि का होना नितान्त आवश्यक है। सूर्य और ऊषा की प्रेम-कथा लोक कथा हो सकती है परन्तु ज्यो ही सूर्य पर ईश्वरत्व का आरोपण कर दिया जाता है (अर्थात ऐसा मानना कि सूर्य भगवान है प्रात इनकी अर्चना करने से अनेक प्रकार के लौकिक एव पारलौकिक सुखो की प्राप्ति होगी) तो ऐसी अवस्था मे हमे उस कथा को धर्म गाथा मे परिगणित करना होगा। लोक साहित्य की कोई भी विधा मात्र लोकानुरजन के लिए निर्मित होती है, पर धर्म-गाथा मे आह्लादन के साथ-ही-साथ वक्ता एव श्रोता को यह विश्वास रहता है कि उसके कथन-श्रवण से उसे धार्मिक लाभ होगा, माहात्म्य होगा। उक्त विवेचन से स्पष्टतया बोध होता है कि बाह्य परीक्षण से धर्म-गाथा और लोक कथा या लोक-गाथा एक सी प्रतीत होने पर भी उद्देश्य की दृष्टि से एक से दूसरी भिन्न है।

यद्यपि धर्म-गाथा एव लोक गाथा या लोक-कथा लोक की सम्पत्ति हैं, तथापि इनसे लोक पर भिन्न प्रकार का प्रभाव पडता है। धर्म-गाथा पर दृष्टि स्थिर कर लेने पर लोक एक सीमित दृष्टिकोण से विचार करता है जबकि लोक-साहित्य की विधाओ (लोक कथा, लोक गाथा आदि) को परखने पर लोक का व्यापक दृष्टिकोण हमारे समक्ष उभर आता है। धार्मिकता की भावना मे अभिभूत होकर धर्मांध लोगो ने अपने धर्म की ही बढ-चढकर चर्चा की है। अपने धर्म का सर्वश्रेष्ठ सिद्ध करने एव ईर्ष्यावश अन्य धर्मों को ओछा बताने के लिए अनेकानेक धर्म-गाथाओं एव धार्मिक-कथाओ की सर्जना की गयी। इसके विपरीत लोक-कथाओ मे अभिव्यक्त लोक-मानस ने बहुत ही व्यापक दृष्टिकोण रखा है। एक धर्म को मानने वाला दूसरे धर्म की धर्म गाथाओ एव धर्म कथाओ के प्रति विरोधी विचार रख सकता है पर एक परिवार की भाषा का प्रयोक्ता दूसरी भाषा के लोक साहित्य को सदैव सम्मान की दृष्टि से ही देखता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि प्रत्येक देश के लोक-साहित्य मे भावात्मक धरातल पर पर्याप्त साम्य पाया जाता है। निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि वर्ण्य विषय की दृष्टि से साम्य होते हुए भी लोक साहित्य एव धर्म-गाथा मे उद्देश्य की दृष्टि से पर्याप्त अन्तर है।

लोक-साहित्य का क्षेत्र-विस्तार

पहले यह स्पष्ट कर दिया गया है कि लोक-साहित्य लोक-वार्ता का अग है। अत यहां लोक-साहित्य के क्षेत्र-विस्तार पर विचार करना समीचीन है। लोक-वार्ता मे परिगणित किये जाने वाले कई विषय लोक-साहित्य मे भी प्रवेश पा जाते हैं। यद्यपि जादू-टोनो, लोक-कलाओ, लोक-सगीत, लोक वेशभूषा आदि में अभिव्यक्त लोक-मानस निश्चित रूप से लोक-वार्ता के क्षेत्राधिकार मे है, पर यदि इन विषयो की अभिव्यक्ति साहित्यिक विधाओ के माध्यम से हुई है तो ये विषय लोक-साहित्य मे ही परिगणित किये जायेंगे। बालको द्वारा खेले जाने वाले खेल लोक वार्ता के विषयाधीन हो सकते हैं, पर खेलते समय गाये जाने वाले पद्यांश लोक-साहित्य की सम्पदा हैं। इस दृष्टि से विचार करने पर विदित होता है कि साहित्येतर विधाओ के अतिरिक्त लोक वार्ता के अन्य कुछ पहलुओ का अध्ययन भी लोक-साहित्य के अन्तर्गत किया जा सकता है।

लोक-साहित्य की पहुँच पर्ण कुटी से लेकर राज-प्रासाद तक है। लोक-साहित्य लोक से सम्बन्धित होने के कारण हर घर म समादृत है। प्रत्येक व्यक्ति के मुख पर शोभायमान हो रहा है। सार्वजनिक सम्पदा के रूप मे जन-मन का मोदन कर रहा है।

शिशु अपनी निश्छल अभिव्यक्ति लोक-साहित्य के माध्यम से करते हैं। यौवन का सहज उन्माद लोक साहित्य में मिलेगा। वार्धक्य का जीवन-सचित अनुभव लोक साहित्य मे अभिव्यक्त है। पारिवारिक सम्बन्धो का, सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध लोक साहित्य ही कराता है। सौभाग्यवति के मान-प्रसग और नाज नखरे, विरहिणी का करुण क्रन्दन और सन्देश-प्रेषण, सौतिया-डाह से प्रपीडित नारी का रोष, सास-जेठानी एव ननद के बुरे व्यवहार से विक्षिप्तहृदया, नव परिणीता की कातर वाक्यावली आदि अनेक बातें लोक साहित्य मे ही मूर्तिमन्त हो उठी हैं। परियो को प्रश्रय भी लोक-साहित्य ने ही दिया है। पराक्रमी वीरो के शौर्य एव साहस की सस्तुति लोक साहित्य ने ही की है। राज्याश्रय का निवासी साहित्य-स्रष्टा जिस असामाजिक तत्त्व को उभरते देख मौन साध गया, उसी का लोक साहित्य ने प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बोध करा दिया। मानव के जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त लोक साहित्य फैला हुआ है। लोक साहित्य लोक को दुख की घडियो मे सान्त्वना देता एव ढाढस बँधाता है और सुख के क्षणो मे उसका आह्लादन करता है। प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इस अक्षय निधि पर गर्व है। जहाँ तक लोक का विस्तार है, वहाँ तक हम लोक साहित्य का क्षेत्र भी स्वीकार कर सकते हैं। लोक-साहित्य अतीत की स्मृतियो का वक्ता होते हुए भी वर्तमान का व्यवस्थापक एव भविष्य का पथ प्रदर्शक है। लोक साहित्य के क्षेत्र मे जो भी विधाएँ परिगणित की जाती है, उन पर विशद विवेचन राजस्थानी

लोक-साहित्य की विविध विधाओं पर विचार करते समय स्वतन्त्र अध्यायों मे करेंगे। लोक-साहित्य के क्षेत्र को स्पष्टतया समझने के लिए लोक-साहित्य एवं आभिजात्य साहित्य के विभेद को जान लेना श्रेयस्कर है।

लोक-साहित्य एवं आभिजात्य-साहित्य मे अन्तर

जैसा कि ऊपर निर्देशित कर दिया गया है कि समाज को दो वृहत् खडो मे विभक्त किया जाता है। इन दोनो (उच्च एवं निम्न या असभ्य वर्ग) वर्गों के आधार पर साहित्य को भी दो भागों मे स्पष्टतया समझा जा सकता है। वैसे तो सभ्यातिसभ्य व्यक्ति के जीवन मे भी लोक-साहित्य के दर्शन किये जा सकते हैं परन्तु विशेष रूप से तथाकथित निम्न-वर्ग की ही लोक-साहित्य थाती है। अत असभ्य समझे जाने वाले समाज से प्राप्त लोक-साहित्य अपेक्षतया अधिक प्रामाणिक एवं अपने मूल स्वरूप मे होता है।

यद्यपि दोनों प्रकार के साहित्य का उद्देश्य मानव-मनोरंजन, पथ भ्रष्ट का मार्ग-निर्देशन, सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध कराना ही होता है, पर वस्तुतः इन दोनो मे भेदक-रेखाएँ खीची जा सकती है। यदि आभिजात्य एवं लोक-साहित्य के मूलभूत विभेदक आधार को अन्वेषित किया जाये तो ज्ञात होता है कि आभिजात्य-साहित्य सुसंस्कृत मानव की अभिव्यक्तियो का प्रतिफलन है और लोक साहित्य असंस्कृत या आदिम कहे जाने वाले मानव-वर्ग की पैतृक-सम्पत्ति।

आभिजात्य-साहित्य प्रयत्न साध्य है तो लोक-साहित्य स्वत प्रसूत। आभिजात्य-साहित्य मानस-मन्थन से प्राप्त मणि और लोक-साहित्य सहजतया प्राप्य निज-मूलक रत्न। एक का प्रणेता शब्द-सौष्ठव, अलकार एवं वाग्वैदग्ध्य के लिए ('चरण धरत चिन्ता करत'—के अनुसार) चिन्तित रहता है जबकि दूसरे के प्रणेता की जिह्वा पर आसीन हो व्यक्त होने के लिए अलकार, सुष्ठु शब्द लालायित रहते हैं। एक का रचयिता काव्यशास्त्रीय ज्ञान से गर्वित हो प्रयोग-वैविध्य से प्रसिद्धि-प्राप्ति का अभीप्स प्रयत्न करता है पर दूसरे के साहित्यिक क्षेत्र मे प्रवेश पाने के लिए आज काव्यशास्त्र आतुर हो उठा है। (यहाँ भाव यह है कि लोक-साहित्य के कलेवर मे भी काव्यशास्त्रीय लक्षण आदि से सम्बन्धित विपुल सामग्री समाहित है, जिसकी ओर अब लोक-साहित्य के अध्येताओ का ध्यान गया है और लोक-गीतो मे प्राप्त छन्द-विधान की चर्चा चल रही है।)

आभिजात्य-साहित्य मे वर्णित गहनतम भावो की व्याख्या करना प्रत्येक व्यक्ति के सामर्थ्य की बात नही है, फलत उसका साहित्यिक सौन्दर्य केवल ज्ञानी सज्जनों के आह्लाद ही का आधार हो सकता है। इसके विपरीत लोक-

साहित्य सम्पूर्ण लोक का सगी है । आभिजात्य साहित्य का रस कूप-मृदु-जल के समान है, जिस प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना पडता है, पर लोक-साहित्य का रस निर्मल नीर वाली वन्य-सरिता का अम्बु है, जिसका पान सुगमता से, बिना किसी उपकरण की सहायता के किया जा सकता है । लोक-साहित्य राका-पति से स्रवित वह पीयूष है जिस पर सर्वसाधारण का वैसा ही अधिकार है जैसा कि अमल-इन्दु द्वारा विस्तीर्ण शुभ्र-ज्योत्स्ना और भगवान भास्कर द्वारा प्रसृत पावन-प्रकाश पर। आभिजात्य-साहित्य के उपासक अपेक्षतया अल्प हैं जबकि लोक साहित्य के श्रद्धालु एव परम स्नेही अपार हैं ।

यद्यपि साहित्यकार सत्य का सस्थापक स्वीकारा गया है फिर भी प्रत्येक उपनिवेश म कोई न कोई काल ऐसा अवश्य उपस्थित हुआ है जब साहित्यकार को स्वार्थ के वशीभूत होकर अपने आश्रयदाता के आदेशानुसार साहित्य की सर्जना करनी पडी । ऐसी अडचनें आभिजात्य साहित्य में अधिक उपस्थित हुई हैं । परिणामत अनेकानेक असत्य ऐतिहावृत्त उभर आये । यदि किसी साहित्यकार ने बिना किसी लौकिक प्रलोभन से प्रभावित हुए घटना का सत्य चित्रण कर दिया तो प्रकाश म आते ही उसकी पावन पोथियो को अग्नि-अक को अर्पित कर सदा-सर्वदा के लिए विनष्ट कर दिया गया । परन्तु लोक साहित्य मे ऐसा कदापि नही हुआ । यथार्थ का चित्रण ही लोक साहित्य का परम उद्देश्य है। लोक-साहित्य ने इतिहास की सम्पूर्ण वार्ताओ एव भलकियो को अपने कलेवर मे प्रश्रय देकर सजीवित रखा है। लोक साहित्य का अभिन्न अग बन जान पर कोई भी घटना किसी भी नृप द्वारा नष्ट नही की जा सकी। अर्थात कहा जा सकता है कि ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से भी लोक साहित्य समृद्ध है।

परिमाण की दृष्टि स भी आभिजात्य साहित्य लोक साहित्य से पीछे रह जाता है । आभिजात्य साहित्य मे जहाँ एक विषय को लेकर दो-चार कविताएँ, कहानियाँ या उपन्यास प्राप्त हो सकते हैं वहाँ लोक साहित्य म उसी विषय से सम्बन्धित सैकडो गीत, कथाएँ कहावतें आदि मिल सकती हैं । यहाँ भी हम देखत हैं कि लोक साहित्य आभिजात्य-साहित्य से बढकर ही है ।

इसके अतिरिक्त लोक साहित्य कई बातें आभिजात्य-साहित्य स ग्रहण करता है और आभिजात्य साहित्य अनेक बातें लोक साहित्य स ग्रहण करता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि दोनो प्रकार के साहित्यो म पर्याप्त विभेद होते हुए भी पारस्परिक सम्बन्ध भी होता है। लोक साहित्य के अतिरिक्त लोक के मानसिक और सगठनात्मक रूप का अध्ययन करने वाले विषयो मे प्रमुख नृ विज्ञान, समाज-शास्त्र और मनोविज्ञान हैं। कई विश्वविद्यालयो मे तो लोक साहित्य का स्वतन्त्र रूप से अध्ययन-अध्यापन करवाया जाता है और कई विश्वविद्यालयो म लोक-साहित्य का अध्ययन नृ-विज्ञान और समाजशास्त्र के साथ करवाया जाता है। इसस

यह स्पष्ट होता है कि लोक साहित्य का इन विषयो से निकट का सम्बन्ध है। इन समस्त विषयो के अध्ययन की आधार-शिला लोक और समाज ही है, पर इन सभी के अध्ययन के तौर-तरीके भिन्न हैं। जिस तत्त्व को एक विषय (उक्त विषयो मे से) साधारण दृष्टि मे परखता है तो दूसरा विशिष्ट म। अत यहाँ इन सभी विषयो का सक्षेप मे विवेचन प्रस्तुत करना समीचीन है।

लोक-साहित्य का नृ-विज्ञान, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान से सम्बन्ध

नृ विज्ञान के अध्ययन की आरम्भिक अवस्था मे मानव के शारीरिक गठन एव भौगोलिक भेद पर आधारित मनुष्य के रग, गुण आदि के भेद का ज्ञान ही महत्त्वपूर्ण माना जाता था। कालान्तर मे यूरोप के प्रसिद्ध नृ-विज्ञानवेत्ताओ ने नृ-विज्ञान की विषय-सामग्री को स्थूल रूप से दो खडो मे विभक्त किया। समस्त वर्ण्य-वस्तु को इन दो कोटियो—(१) शारीरिक नृ विज्ञान, और (२) सास्कृतिक नृ-विज्ञान—मे समाहित किया गया। शारीरिक नृ-विज्ञान मे मनुष्य के शारीरिक विकास की ऐतिहासिक कथा कही जाती है। इसमे मनुष्य के शारीरिक रचना में घटित निरन्तर विकास के तुलनात्मक कारणो पर गहन विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। यह विज्ञान विश्व के मानव-सगठनो एव वर्णों की सरचना की चर्चा के साथ-ही-साथ मनुष्य के रक्त-चर्म केश इत्यादि का भी वर्णन करता है। मानव की अतीतकालीन अवस्थाओ एव आधुनिक अवस्थाओं म क्या अन्तर आ गया है?—इसका उल्लेख भी हमे नृ-विज्ञान म ही मिलता है। विभिन्न भौगोलिक सीमाओ मे रहने के कारण प्राप्त मानव के विविध रूप-रगो का भी विवेचन नृ-विज्ञान में ही होता है। शारीरिक परिवर्तनो के आधार पर मनुष्य किस प्रकार सास्कृतिक जीवन को सुलभ कर सका—इसका लेखा-जोखा प्रस्तुत करना भी नृ विज्ञान का प्रमुख ध्येय है।

नृ विज्ञान की सास्कृतिक शाखा का सर्वप्रथम उल्लेख ए० क्रेबनर ने किया। प्रारम्भिक अवस्था म मानव किस प्रकार का जीवन व्यतीत करता था? उसके धार्मिक विश्वास क्या क्या थे? वश परम्परा के बारे मे उसके क्या विचार थे? प्राकृतिक शक्तियो का उसके मानस पर कितना प्रभाव था?—आदि आदि अनेक विषयो का वर्णन इसमें किया जाता है। असभ्य लोक द्वारा कला में प्रयुक्त प्रतीकों का क्या अर्थ है? उसके देवी देवता तथा भूत-प्रेतादि सम्बन्धी रहस्यो का उद्घाटन भी नृ-विज्ञान का विषय है। नृ-विज्ञान की सास्कृतिक शाखा के लिए लोक-साहित्य का बहुत ही महत्त्व है। नृ-विज्ञान म पुरा-मानव के साथ ही मानव-समाज के विविध स्तरो का भी दिग्दर्शन कराया जाता है। लोक-साहित्य में भी समाज मे समय-समय पर घटित होने वाले परिवर्तनो का प्रत्यक्ष या परोक्ष

रूप से उल्लेख रहता है, अत इस दृष्टि से भी नृ-विज्ञान के लिए लोक-साहित्य की महत्ता है।

समाजशास्त्र में प्रमुख रूप से समाज का विवेचन किया जाता है। सामाजिक सगठनो, सामाजिक सस्थाओ, सामाजिक व्यवस्थाओ, सामाजिक व्यवहारो आदि अनेक तथ्यो के विवेचन को समाजशास्त्र में प्रधानता प्रदान की जाती है। समाज के भिन्न भिन्न पहलुओ—पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, नैतिक, व्यावसायिक, ऐतिहासिक, साहित्यिक, सास्कृतिक, विधि-विधान सम्बन्धी, मानव के रहन सहन के तौर-तरीको एव सम्बन्धो—का अध्ययन भी समाजशास्त्र मे किया जाता है। समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धो का विज्ञान है, सामाजिक कार्यो का परिणाम है, सामाजिक व्यवस्थाओ का व्यवस्थापक है और सामाजिक परिवर्तनो का पथ-प्रदर्शक है। सामाजिक विचारो और धारणाओ का दर्पण है।

यद्यपि मानव और समाज दोनो ही नृ-विज्ञान और समाजशास्त्र के ही विषय हैं, तथापि दोनो के अध्ययन मे मूलत अन्तर भी है। नृ-विज्ञान का प्रमुख विषय आदिम-समाज का, जन-जातियो का अध्ययन करना है, जबकि समाजशास्त्र सभ्य समाज का वर्णन-विवेचन भी करता है। नृ-विज्ञान अतीत से उपलब्ध सामग्री को आधिकारिक स्वीकारता है, पर समाजशास्त्र अतीत के साथ वर्तमान को तो लेकर चलता ही है अनागत की ओर भी इगित करता है। नृ-विज्ञान यथार्थ चित्रण मात्र करके ही सन्तोष कर लेता है, परन्तु समाजशास्त्र यथातथ्य विवरण के अतिरिक्त समाज मे व्याप्त बुराइयो को विलग कर प्रशस्त पथ पर अग्रसर होने हेतु प्रेरित करता है। लोक-साहित्य म भी उक्त तथ्य काव्यात्मक भाव-प्रवण शैली मे व्यक्त होते हैं।

मानव-मन का विशद विवेचन विश्लेषण मनोविज्ञान में किया जाता है। मनोविज्ञान मानव की मानसिक मूल प्रवृत्तियो का अध्ययन करता है। मानव और समाज का अस्तित्व अन्योन्याश्रित है। अत मनोविज्ञान में मनुष्य के वैयक्तिक मानस के साथ ही-साथ सामूहिक मानस (Group Mind) का भी विवेचन विश्लेषण किया जाता है। इसकी एक शाखा सामाजिक मनोविज्ञान (Social Psychology) में मानसिक परिस्थितियो एव मानसिक पर्यावरण (Mental environment) का अध्ययन किया जाता है। उस सामाजिक परम्परा का विश्लेषण किया जाता है जिससे मानव मानस जन्म से ही आवेष्टित तथा प्रभावित रहता है। उसी प्रभाव के कारण ही मानव अपना हर तरह का सामाजिक व्यवहार करता है। मानव के वैयक्तिक मानस, असामान्य मानस तथा सामूहिक मानस के अध्ययन के लिए लोक-साहित्य से विपुल सामग्री प्राप्त की जा सकती है, क्योकि लोक साहित्य मे भी तो वैयक्तिक या सामूहिक मानस की अभिव्यक्ति होती है। फ्रायड, युग आदि प्रसिद्ध मनोविज्ञानवेत्ताओ ने अपने मनो-

वैज्ञानिक अध्ययन तथा सिद्धान्त संस्थापन हेतु लोक-साहित्य की सामग्री का आधार लिया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि लोक-साहित्य एवं लोक-वार्ता, नृ विज्ञान, समाजशास्त्र तथा मनोविज्ञान आदि समस्त विषयों के अध्ययन की आधिकारिक सामग्री तो व्यक्ति-समाज से ही प्राप्तव्य है, पर इन सभी विषयों के अध्ययन के सिद्धान्त अलग-अलग प्रकार के हैं। नृ-विज्ञान आदिम मानव की शारीरिक संरचना एवं उसकी उत्तरोत्तर सांस्कृतिक उपलब्धियों के अध्ययन को आधिकारिक मानता है, समाज विज्ञान प्राचीन के साथ ही अर्वाचीन समाज-गठन व व्यवस्था के अध्ययन की आवश्यकता को स्वीकार करता है, मनोविज्ञान मानव-मानस तथा सामूहिक मानस के विश्लेषण को प्रधानता देता है और लोक-साहित्य में समाज के लोक या निम्न अथवा असभ्य समझे जाने वाले वर्ग की काव्यात्मक सहजोद्रिक्त भावाभिव्यंजनाओं को आवश्यक माना गया है।

नृ-विज्ञान, समाजशास्त्र और मनोविज्ञान—ये तीनों विषय मनुष्य के जीवन के उन अंगों को छूते हैं जो अनेक प्रकार से लोक-वार्ता या लोक-साहित्य के विषयों एवं उसकी विधाओं को अधिक आलोकित करने में समर्थ हैं। उपर्युक्त सभी शास्त्र मानव-जीवन की विभिन्न स्थितियों का अध्ययन करते हुए उन स्थापनाओं की ओर हम ले जाते हैं जो सामाजिक रचना की आधारभूत शिलाएँ हैं। परन्तु हर शास्त्र के अपने विशिष्ट औज़ार हैं। नृ-विज्ञान मनुष्य की शारीरिक रचना एवं सांस्कृतिक संरचना के तत्वों पर उन आदिवासी समूहों का आधार लेता है जो जीवन की ऐतिहासिक गत्यात्मकता में आज प्रामाणिक अवशेष के रूप में मिलते हैं। इसी प्रकार समाजशास्त्र वर्तमान सामाजिक स्थितियों के तनावपूर्ण सम्बन्धों का अध्ययन करने की दृष्टि से विशिष्ट पद्धतियों का आधार लेता है। सामाजिक सर्वेक्षण, मानवीय सम्बन्धों के ऊहापोह, परिवार का संगठन, औद्योगिक एवं कृषिगत सामाजिक संगठनों के कारण उत्पन्न परिस्थितियाँ, ग्राम एवं नगरीय सभ्यताओं का विश्लेषण इत्यादि प्रमुख विषय समाजशास्त्र के प्रतिमानों को बदल देते हैं। मनोविज्ञान के प्रतिमान मानसिक उद्वेलन के अनुसार स्थिर होते रहते हैं। मनुष्य की इस दशा में स्वप्न, मूल प्रवृत्तियाँ, उसके व्यवहार, उसके चारित्रिक संगठन आदि प्रमुख विषय बन जाते हैं। मनुष्य की इन दशाओं में प्रवेश पाने के लिए मनोविज्ञान को एकदम पृथक् माध्यमों का सहारा लेना पड़ता है। यदि इसी बात को हम लोक वार्ता की दृष्टि से देखें तो ज्ञात होगा कि इस विषय के मापदण्ड उपर्युक्त तीनों विषयों के प्रतिमानों से सर्वथा भिन्न हैं। लोक-वार्ता के लिए यह आवश्यक है कि मानव एवं समाज का अध्ययन करने हेतु वह लोक-गीतों, लोक-कथाओं, लोक-गाथाओं, लोक-नाट्यों, लोक-संगीत, लोक-विश्वासों, लोकानुष्ठानों एवं अन्य विभिन्न प्रकार की लोक कलाओं में प्रवेश

पायें। इस प्रकार की सामग्री नृ-विज्ञान, समाजशास्त्र एव मनोविज्ञान के लिए कितनी ही महत्त्वपूर्ण क्या न हो, पर उस पर सम्पूर्ण अधिकार लोक-वार्ता का ही होता है। यह भी निर्विवाद रूप म कहा जा सकता है कि नृ-विज्ञान, समाजशास्त्र एव मनोविज्ञान का प्रमुख प्रयोजन ऐसे सग्रहो के माध्यम से सिद्ध नही हो सकता। अत यह स्पष्ट दिखायी देता है कि लोक वार्ता एव लोक-साहित्य को अपना एक स्वतन्त्र अनुशासन निर्मित करना पडेगा और उसे अपने विषय की सुनिश्चित सीमाओ का निर्धारण भी करना होगा। यह जो हम देखते हैं कि एक विषय दूसरे विषय मे प्रवेश पाकर जो नया रूप ग्रहण कर लेता है वह लोक-वार्ता तथा लोक-साहित्य के लिए भी ज्यो का त्यो सत्य बना रहेगा।

लोक साहित्य के सम्बन्ध म विशद विवेचन प्रस्तुत कर देने के पश्चात आगे के अध्यायो मे लोक-साहित्य की विविध विधाओ को क्रमश (लोक-गीत, लोक-कथा, लोक-गाथा, लोक नाट्य एव लोकोक्ति) लेकर राजस्थानी लोक-साहित्य का सैद्धान्तिक विवेचन किया जायेगा।

अध्याय : २

राजस्थानी लोक-गीत

सम्पूर्ण समृति मे परिव्याप्त तथाकथित लोक-मानस की सुख-दुखमयी अनुभूतियो की सामूहिक भाव-भीनी गेय अभिव्यक्ति ही लोक-गीत है। लोक-गीतो के अति विस्तृत क्षेत्र मे प्रकृति, पृथ्वी और निस्सीम व्योम तो क्या मानव-मन की अनन्त कल्पनाएँ भी समाविष्ट हैं। नर और नारी के सारे रूप (पुत्र, मित्र, भाई, पिता, पति; माता, पुत्री, बहिन, भुआ, सहेली, ननद, पत्नी, बहू, देवरानी, जेठानी आदि) इन गीतो मे निरूपित हैं। समाज के समग्र सगठन इनमे वर्णित हैं। कौटुम्बिक बागडोर इन गीतो के हाथ म है। उत्तरदायित्वो और मर्यादाओ का बोध इन्ही से कराया जाता है। मानव का शैशव लोरी के बहाने यही सोता है, यौवन इन्ही के माध्यम से प्रेमोन्माद मे प्रमत्त रहता है और वार्धक्य जीवन-यात्रा से श्रान्त हो इन्ही गीतो से मन बहलाया करता है। ये गीत लोक-लीक के खीचनहार और प्रेमी हृदयो को प्रेम-जल से सीचनहार हैं। धार्मिकता का प्रचार-प्रसार भी इन्ही से सम्भव है। कु-प्रथाओ, अन्धविश्वासो का उल्लेख भी ये गीत ही करते हैं और उनका विरोध भी ये गीत ही करते हैं। सामाजिक मान्यताओ एव मानदडों के ये गीत महान कोष हैं। ये लोक-गीत विदग्ध हृदय को सान्त्वना देते हैं, प्रताडित को सम्बल प्रदान करते हैं, पथ-भ्रष्ट का मार्ग-निर्देशन करते हैं, सासारिकता की ओर सहज भाव से आकर्षित भी करते हैं और मोह-जाल मे फँसे को सदुपदेश देते हैं, कार्यरत की थकावट हरते हैं। ये गीत मानव-जाति के जन्म जितने पुरातन एव सद्य-प्रसूत शिशु जितने नूतन हैं। इन गीतो मे मानव-सस्कृति का सांगोपाग चित्रण एव व्यापक भावों का उल्लेख मिलता है। इन गीतों में अभिव्यक्त भाव शाश्वत जीवन के शाश्वत सन्देश हैं। इन लोक-गीतो मे हृदय के सारल्य के साथ-साथ मनोमालिन्य की पराकाष्ठा पर वर्णित है। यहाँ आज्ञाकारिणी एव पारिवारिक सदस्यों को ही अपने अमूल्य आभूषण स्वीकारने वाली वधुएँ मिलेंगी तो दूसरी ओर सास के नाक मे दम करने वाली वधुएँ भी मिल जायेंगी। कपूत और सपूत के निर्णय की कसौटी भी लोक-गीत ही होते हैं। अपना सर्वस्व

न्योछावर करने वाली भावज से कलह करती ननद यहीं दृष्टिगोचर होगी तो भावज के मना करने पर भी नाई द्वारा (ननद को अपमानित करने की हेय भावना से प्रेरित हो) दी जाने वाली जली घूघरी' (गेहूँ व चने के उबले दाने) के बदले लाज-लाज को ध्यान कर 'सात रुपै' की घूघरी भावज को वापस करने वाली ननद भी यहीं मिलेगी। देश का सांस्कृतिक चित्रण इन्हीं गीतों में हुआ है, ऐतिह्यवृत्तों ने परोक्ष अथवा प्रत्यक्ष रूप में यही यथार्थ स्वरूप ग्रहण किया है। और नैतिक प्रतिमान तथा सामाजिक आदर्श भी इन्हीं गीतों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी प्रस्थापित एवं हस्तांतरित किए गए हैं। लाला लाजपतराय के शब्दों में—

> 'देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों में ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी।'[1]

किसी प्रस्तुत विपुल सामग्री में भाव, रूप, वर्ण्य-विषय आदि से सम्बन्धित पारस्परिक साम्य को आधारभूत मानते हुए उस सामग्री का विभिन्न खंडों-उपखंडों में विभक्त करना वर्गीकरण कहलाता है। वस्तुतः सैद्धान्तिक विवेचन का भी तात्पर्य है—सही वर्गीकरण। वर्गीकृत विभागों को क्रमशः ग्रहण करके ही हम किसी विषय को भली भाँति समझ सकते हैं। उपयुक्त एवं वैज्ञानिक वर्गीकरण वही होता है जिसकी वर्गीकृत सामग्री अपने वर्ग विशेष से ही पूर्णतः सम्बद्ध हो। उसका अन्य वर्गों में कथमपि प्रवेश न कराया जा सके। यदि अपवाद स्वरूप विभागों में अन्तर्सम्बन्ध स्थापित हो भी तो कम से कम सीमा में रहना चाहिए।

लोक गीतों के वर्गीकरण के अनेक मानदंड हो सकते हैं, पर राजस्थानी लोक गीतों का वर्गीकरण करते समय लोक गायकों को ध्यान में रखना अत्यन्त आवश्यक है।

लोक-गीतों में गायक का स्थान प्रमुख है

'लोक गीत' संज्ञा से अभिहित की जाने वाली सामूहिक संगीतात्मक अभिव्यक्तियाँ मौखिक परम्परा में सदा सर्वदा के लिए विद्यमान रहती हैं। यथावसर सर्वसाधारण इनके माध्यम से अपना आह्लादन किया करता है। लोक-गीतों का निर्माण भी समूह द्वारा होता है और समूह के उपयोग के लिए ही समूह द्वारा प्रयोग में लाया जाता है। समूह के लिए का अर्थ है—कोई स्व-मनोरजनार्थ गाता है तो कोई दूसरों के मनोरंजन हेतु गाता है। जैसे कई अवसरों पर स्त्रियाँ एवं पुरुष विविध प्रकार के गीत गाकर अपना मनोरंजन किया करते हैं तो कुछ

---

१ कविता-कौमुदी, भाग १ रामनरेश त्रिपाठी, पृ० ७७ (लाला लाजपतराय के पत्र से उद्धृत)

पेशेवर जातियों के लोग गीत गाकर विशाल जन-समुदाय को प्रमुदित करते हैं। इसके अतिरिक्त, गायक गाते समय गीतों को छोटा-बड़ा भी करते रहते हैं। अथच लोक गीतों के रचना विधान एवं गायन-विधान में प्रमुख स्थान गायकों का है। गायक की प्रमुखता को ध्यान में रखने पर विदित होगा कि लोक-गीतों के गायकों को स्पष्टतः दो कोटियों में रखा जा सकता है।

एक प्रकार के गायक वे हैं जो गायक होने के साथ साथ गीत के श्रोता भी हैं। ये गायक किसी दूसरे श्रोता के लिए नहीं गाते। इन्हें हम 'गायक ही श्रोता' नाम से अभिहित कर सकते हैं। यह सामाजिक दल अपने मनोमोद के लिए ही गाता है। अवसर-विशेष पर इस दल द्वारा लोक-गीतों का समायोजन किया जाता है।

दूसरे प्रकार के गायक वे हैं जो जीविकोपार्जन हेतु दूसरों का मनोरंजन करने के लिए गाते हैं। इस वर्ग को 'गायक-पृथक्—श्रोता-पृथक्' नाम देंगे। पेशेवर गायक इसी कोटि में परिगणित किये जायेंगे। इन्हें लोक-गीत पैतृक-सम्पत्ति के रूप में मिलते हैं। राजस्थान में अनेक व्यावसायिक जातियाँ (लंगा, ढोली, जोगी, मागणियार, मिरासी, कढाळी, कलावंत, नट, भील, ढाढ़ी आदि) लोक-गीत गाने का काम किया करती है। इन गायकों के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि इन सभी जातियों की गायन शैली अपनी है। कई लोक-गीत अलग-अलग जाति के गायकों द्वारा समान लय में गाये जाते हैं तो अनेक लोक गीत ऐसे भी हैं जिन्हें भिन्न-भिन्न जाति के गायक भिन्न भिन्न लय और धुन में गाते हैं। इन विभिन्न गायक-जातियों के अपने अपने लोक-वाद्य भी होते हैं। यथा—ढोली ढोल बजाकर गाता है, लंगे सारंगी का प्रयोग करते हैं तथा जोगी तम्बूरे या पूंगी के साथ गाते हैं। गीत के साथ संगीत का प्रयोग करना—इस वर्ग की उल्लेख्य विशेषता है। पेशेवर गायकों एवं गृह-सदियों (गायक ही श्रोता) की गायन-शैली में भी पर्याप्त अन्तर है। इस सम्बन्ध में श्री सीताराम लाळस के विचार द्रष्टव्य हैं—

'जाति या पेशेवर इन गायकों की गायन-शैली और परिवार की गायन-शैली में काफी अन्तर होता है।'[1]

इन पेशेवर गायकों के संगीत में राजस्थानी लोक-संगीत की उन्नत अवस्था के दर्शन होते हैं। इन गायकों को बचपन से ही गायन का अभ्यास करवाया जाता है। ये गायक गीत गाते समय विभिन्न राग-रागनियों (जैसे—सोरठ, मांड, भैरवी, कहरवा आदि) का नाम लेकर गीत गाते हैं। यहाँ यह भी स्मरणीय है कि यह आवश्यक नहीं है कि इन रागों का शास्त्रीय रागों से साम्य हो। केवल

---

१ राजस्थानी सबद-कोश, प्रथम भाग (भूमिका), सीताराम लाळस, पृ० २०१

दोनो में नामकरण की समानता है, परन्तु स्वरायोजन मे पर्याप्त अन्तर है। यह भी ज्ञातव्य है कि इस वर्ग के गायक भी अवसरानुकूल गीत गाया करते हैं।

उक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि दोनो (गायक और अवसर) के समन्वित आधार पर राजस्थानी लोक-गीतो का वर्गीकरण किया जाना चाहिए।

राजस्थानी लोक-गीतो का वर्गीकरण

(अ) गायक ही श्रोता

(१) सस्कारो के अवसर पर गाये जाने वाले लोक गीत,

(२) पर्वों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,

(३) श्रम-गीत,

(४) विविध अवसरों पर गाये जाने वाले बाल-गीत।

(आ) गायक-पृथक्—श्रोता-पृथक्

(१) सस्कारो के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत,

(२) सामाजिक समारोहो (महफिल) मे गाये जाने वाले लोक-गीत।

लोक गीतो की विपुल सामग्री उक्त शीर्षको मे पूर्णत समाहित हो जाती है। इन बडे शीर्षको के अन्तर्गत कुछ उपशीर्षक रखकर आगे की पक्तियो मे राजस्थानी लोक-गीतो का सैद्धान्तिक विवेचन प्रस्तुत किया जा रहा है।

(अ) गायक ही श्रोता

यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि विभिन्न सामाजिक अवसरो पर स्त्री-वर्ग एव पुरुष वर्ग विविध प्रकार के लोक गीत गाकर अपना मनोरजन करते है। जीवन की सम्पूर्ण यात्रा मे अधिक अवसर ऐसे आते है जब स्त्री-वर्ग द्वारा ही गीतो का आयोजन किया जाता है। अत हम कह सकते है कि इस वर्ग मे नारी समाज द्वारा गाये जाने वाले गीतो की विशिष्ट महत्ता है।

(१) सस्कारो के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत

जीवन मे विविध विधानो का आयोजन भारतीय सस्कृति की अनूठी विशेषता है। प्रत्यक हिन्दू का जीवन चार अवस्थाओ, चार आश्रमो एव सोलह सस्कारो मे बँटा है। परन्तु आज सस्कारो का पूर्व-प्रचलित सविधि बन्धन नही रहा है। कई व्यक्ति तो सोलह सस्कारो के नाम तक नही जानते।

हिन्दुओं की धार्मिक मान्यता के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जन्मना शूद्र होता है पर सस्कारो के द्वारा वह ब्राह्मणत्व प्राप्त कर सकता है। प्राचीन वर्ण व्यवस्था के परिवर्तन के साथ साथ समाज मे सस्कारो की सख्या भी घटकर मुख्य रूप से

केवल तीन (जन्म, विवाह एवं मृत्यु) तक सीमित हो गयी। कहीं कहीं आज भी मुंडन एवं यज्ञोपवीत संस्कार का आयोजन किया जाता है। इसके अतिरिक्त एक प्रचलित मान्यता यह है कि मानव-जीवन अनेक अमानुषिक प्रभावों से घिरा रहता है, अतः इन अशुभ प्रभावों के निराकरण हेतु भी संस्कारों का आयोजन अनिवार्य माना गया।

उक्त तीन संस्कारों एवं अन्य कुछ संस्कारों के विधान से सम्बन्धित राजस्थान प्रदेश में असंख्य लोक गीत प्रचलित हैं। इन संस्कारों को सम्पन्न करने में वेद-वर्णित विधान ब्राह्मणों का व्यापार रहा है तो लोक-प्रचलित मान्यताओं और अनुष्ठानों का उत्तरदायित्व गृहिणियों पर रहता है। नारी-समुदाय द्वारा सम्पन्न किया जाने वाला यह महत्कृत्य लोक-गीतों के मधुर स्वरायोजन से गुंजरित रहता है। आगे की पंक्तियों में सांस्कारिक लोक गीतों का विवेचन प्रस्तुत है।

(क) जन्म-संस्कार के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

मानव योनि चौरासी लाख योनियों में श्रेष्ठ मानी गयी है। आत्मा भी मानव-शरीर प्राप्ति हेतु लालायित रहती है। मानव-योनि में जन्म लेना स्वयं आत्मा और जन्म के पश्चात उससे सम्बन्ध रखने वाले अन्य सामाजिक सदस्यों के लिए अतीव आह्लाद का विषय है। अतः नवजात के स्वागतार्थ विविध गानों एवं नृत्यों का परिजनों द्वारा आयोजन किया जाता रहा है।

राजस्थान प्रदेश में भी शिशु के जन्म से पूर्व एवं शिशु-जन्म के पश्चात बहुत सारे लोक-गीत गाये जाते हैं। परन्तु इन सभी गीतों को राजस्थानी में 'जच्चा रा गीत' और 'जच्चावा मगळ' कहकर सम्बोधित किया जाता है। नामकरण के दिन प्रसूता स्त्री बालक को लेकर जच्चा गृह के बाहर आती है। शिशु को जन्म देने के बाद वह इस दिन ही स्नान करके दूसरे कपड़े पहनती है। इस अवसर पर किये जाने वाले विधि विधान को राजस्थानी में 'सूरज पूजणो' कहा जाता है। माता बालक को गोदी में लेकर घर के आँगन में बाजोट पर बैठती है। गाय के गोबर से लिपे आँगन में खड़िया, मिट्टी व गेरू से अनेक चित्र चित्रित किये जाते हैं। ब्राह्मण आकर अग्नि वेदी बनाता है। तब अग्नि देवता का आह्वान कर अग्नि प्रदीप्त करता है। फिर मन्त्रोच्चार करता है। इन मंत्रों के उच्चारण से ही जन्मना शूद्र समझा जाने वाला बालक ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है, ऐसी मान्यता है। बालक को भी इस दिन स्नान करवाकर नये कपड़े पहनाये जाते हैं। मन्त्रोच्चार के पश्चात माता शिशु को अपने दोनों हाथों में थामे अग्नि-देव की परिक्रमा करती है। परिक्रमा की संख्या पाँच और सात होती है। परिक्रमा के पश्चात वह सूर्य भगवान को जल चढ़ाती है। इस दिन से पूर्व प्रसूता घर के किसी भी पात्र को हाथ नहीं लगाया करती है। उसके खाने पीने के बर्तन सब बर्तनों से

विन्गरखे जाते हैं। सूरज पूजा का अनुष्ठान शिशु-जन्म के सातवें, नवें, पन्द्रहवें, इक्कीसवें या सत्ताईसवें दिन सम्पन्न किया जाता है। यहाँ यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि यदि शिशु का जन्म मूल नक्षत्र म होता है तब सूरज पूजा का दिन जन्म-दिन से सातवाँ न होकर उक्त दिनो मे स कोई दिन हुआ करता है। इसके अतिरिक्त, मूल नक्षत्र म शिशु का जन्म होने के कारण सूरज-पूजा के दिन अग्नि-देवता के मडप के समक्ष शिशु की माता के साथ शिशु का पिता भी बैठता है। ऐसा न करने पर शिशु के माता-पिता पर अशुभ घटना घटित होने की आशका रहती है। मूल नक्षत्र मे जन्म लने पर शिशु को इस दिन सत्ताईस कुआ का जल इकट्ठा कर स्नान करवाया जाता है। सूरज पूजा क दिन प्रज्वलित अग्नि स बनी राख को किसी कुएँ म डाला जाता है। इस दिन शिशु की माता रिक्त घट को लेकर कुएँ पर जाती है। वहाँ कुकुम, तादुल आदि स कुएँ की पूजा करती है व पुन लौटते समय गागर को भर लाती है। इस 'जलवा पूजण' कहते हैं। इस दिन शिशु को चम्मच आदि से एक चम्मच जल पिलाया जाता है। इस दिन से लेकर महीने-भर तक जच्चा को पौष्टिक पदार्थ युक्त आहार दिया जाता है जिससे कि माता को स्वास्थ्य लाभ हो और बालक के लिए पर्याप्त दूध प्राप्त हो सके। सूंठ, गोद, अजवाइन, बादाम नारियल आदि को कूटकर घी के साथ मिलाकर लड्डू बनाये जाते हैं जिस राजस्थानी मे 'सुवावड' कहा जाता है। यद्यपि मुख्य रूप से सूरज पूजा के दिन जच्चा के गीत गाये जात है पर जच्चा के गीत इस दिन से पहले भी गाये जाते हैं। अत यहाँ पर हम इन गीतो का गाये जान के क्रमानुसार विवेचन करेंगे।

जच्चा के गीतो का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव गर्भिणी को सातवाँ महीना लगने पर होता है। राजस्थान म युवती के प्रथम प्रसव के समय उस पीहर वाल अपने यहाँ बुला लेत हैं। यदि पीहर और ससुराल एक ही गाँव म हा तो पीहर या ससुराल वाले घरो की स्त्रियाँ थाल मे गुड, बताशे आदि भरकर, जहाँ प्रसविनी निवास करती है (पीहर या ससुराल मे), वहाँ गीत गाती हुई जाती हैं। इस अवसर को 'आगरणी' नाम से सम्बोधित किया जाता है। जच्चा के गीतो म पाया जाने वाला क्रम निम्न प्रकार से है—

(१) **सन्तान के प्रति मनोवाछाएँ**—नारी जीवन की सार्थकता मातृ शक्ति प्राप्त करन म है। बाँझ शब्द एक प्रकार से स्त्री के लिए गाली रूप मे माना गया है। निस्सन्तान औरत को देवरानी जेठानी क मर्मान्तक व्यग्य वाक्यो को सहन करना पडता है। सवेरे सवेरे पहल पहल उसका मुख देखने पर लोग अपशकुन मानते हैं। भरे पूरे परिवार म वह सूनापन महसूस करती है। अपनी कामना के फलीभूत होन हेतु वह नाना प्रकार के टोन टोटके करती है। अनेक देवी देवताओ की मनौतियाँ मानती है। निस्सन्तान होने पर एक ललना अपने मानव जीवन को भी निरर्थक

मानती है। सन्तान प्राप्ति हेतु राजस्थानी लोक-गीतो मे विविध विबुधो का आह्वान किया जाता है, जिनमे भाग्य विधात्री बैमाता देवी, सूर्य, भैरव, सूर्य-पत्नी राणकदे आदि प्रमुख है। उदाहरणार्थ राजस्थान का एक लोक-गीत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमे सूर्य-पत्नी राणकदे मे सन्तान-प्राप्ति के लिए प्रार्थना की जाती है—

'छोवां तो पडियो के माता चूरमो के
टणकै गिरावण मागण वालो नही के माता राणकदे
म्हानै माणस कयानै सिरज्या ?'

कितना नैराश्य है ! ऐसा लगता है मानो सारा जीवन जलकर भस्मीभूत हो गया है और फलस्वरूप एक गहरी-सी आह निकली है जो जीवन की निरर्थकता को प्रकट कर रही है। अपने इष्टदेव के प्रति खीझ है कि आपने हमे मनुष्य ही क्यो बनाया ? बालक के खाने हेतु सुस्वादिष्ट चूरमा बनाना हमारे वश की बात थी जो हमने बना दिया। पर कोई रोकर चूरमा मांगने वाला हो तब ना ! पर-वशता को स्वीकार लोक-मानस आराध्य देव का सम्बल ग्रहण करना चाहता है। परिणामत भक्त के दैन्य से अभिभूत हो सन्तति-दान से उसके मानव-जीवन को इष्टदेव कृतार्थ करते हैं।

सन्तानोत्पत्ति की आशा के निश्चय के उपरान्त पति-पत्नी मे गर्भस्थ शिशु के पुत्र पुत्री रूप पर चर्चा परिचर्चा होती है। इस प्रकार के गीतो मे भी विविध देवो से प्रार्थना की जाती है कि भ्रूणावस्थित शिशु पुत्र मे परिणत हो जावे। इस प्रकार की प्रार्थनाएँ वैदिककालीन समाज मे भी की जाती थी।

राजस्थानी लोक-गीतो मे वर्णन मिलता है कि प्राणेश्वर माना जाने वाला पति पुत्री-जन्म की आशका पर इस प्रकार पूर्व-चेतावनी देता है—

'(जी ओ) गोरी जे थारै जलमैला धीव
तो खाट पिछोकडै घलावसा जी
(जी ओ) लाडू खारै लूण रा जी
तो पडदी ताणा वाली कामली गे जी
कदेई नी मुखडै बोलसा जी
(तो) म्हे तो मिथावाला चाकरी जी।'

इसके विपरीत यदि पुत्र-जन्म हुआ तो पति प्राणेश्वरी की सेवाचाकरी मे ही तल्लीन रहेगा। कभी भी नौकरी करने परदेस नही जायेगा। गोद, अजवाइन आदि मे खूब घी डलवाकर लड्डू बनवायेगा।

अपने पति के ऐसे कटु वचन सुन गर्भिणी अपने इष्टदेव का स्मरण करती है। यदि पुत्र-जन्म न हुआ तो पति से प्रताडित होना पडेगा। सास का सताप उसके लिए जानलेवा सिद्ध होगा। पति सौत ले आयेगा। देवरानी-जेठानी व्यग्य-वचनो से उसके कोमल हृदय को छलनी छलनी कर देंगी। अपने बाँझपन को मिटाकर

पुत्र प्राप्ति की कामना व्यक्त करती हुई रमणी भैरव की आराधना करती है। गीत मे व्यक्त करुण भाव मौन रुदन करता हुआ पाठक या श्रोता के हृदय पर सीधा प्रभाव करता है—

सासू तो कैवे म्हारी बहुवड़ बाभडी
परणियो लावै ल्होडी सौक
अेकलिये रा मीरी चढती असवारी हगो सांभलौ
भैरु बाबा कदैयन भीजी दूधा बाचळी
पालूडा कदैयन बांधै टपकी नान
कासी रा वासी अमर वधाडो नी जग म पावणी
देराणी जेठाणी बोलै अवळा बोल
ज्यारै होड है पूनज पावणं
कासी रा वासी पुनर विन बाजू म्हे कुल म बाभडी।

(२) दोहद—आधान रहने के पश्चात गर्भिणी स्त्री द्वारा अनेक वस्तुएँ खाने की इच्छा व्यक्त की जाती है। इन वस्तुओ को प्राप्त करने के लिए वह श्वसुर जेठ देवर आदि से निवेदन करती है पर ये सभी किसी न किसी बहाने उसको टाल देते हैं। अन्तत वह अपने प्रियतम के समक्ष अपने मन की लालसा व्यक्त करती है और पति अपनी प्राणेश्वरी की प्रत्येक वाछा पूरी करता है। इस प्रकार की इच्छा को हिन्दी म दोहद कहा जाता है। गर्भिणी की इच्छापूर्ति यथासंभव आवश्यक मानी गयी है।

राजस्थानी लोक गीतो म भी गर्भिणी द्वारा बर कैर घवर फली मतीरा नीबू आदि खाने की इच्छा व्यक्त की गयी है। राजस्थानी म दोहद का समानार्थी शब्द हूस पूरणी है। इन सभी खाद्य पदार्थों के अलग अलग गीत हैं। एक राजस्थानी गीत म गर्भाधान के पश्चात प्रसूता द्वारा प्रत्येक मास म अलग अलग वस्तुएँ खाने की इच्छा प्रकट की गयी है—

सातमो मास उलरियो म्हारो वडबोरा मन रळियो
कमर म चीस सिर मथवाय नैणा नींद न आव
दखो अ मय्या म्हारै साईनै री कुबद कमाई
अबक जी जाऊ तो म्हार साईनै री सज कदई नी जाऊ।

हूस' क गीतो म कई गीत ऐस भी है जिनम सबके मना कर देने पर भी पति द्वारा पत्नी की इच्छापूर्ति हेतु लायी गयी वस्तुओ का वर्णन रहता है। ऐसा एक गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

बापजी सा आग करूली पुकार बवड नैं भावै काकडी
म्हे तो बवड धवर देवू छटाय बागा मे नही काकडी।

इसी प्रकार जेठ और देवर मना करते जाते हैं पर अन्तत पति की बारी आती है—

'साईना राजा आगे करली पुकार सायधण नैं भावँ कावडी
चढिया राजा दळतोडो रात जायनैं उतरिया कार्काडयां रै खेत मे
आळा पीळा री बांधी मोटी पोट, आय उतरिया रगमैल मे
भावैं जितरी जीमो घर नार, बचैं तो सहेल्यां में वंचजो जी म्हारा राज।'

(३) प्रसव-वेदना एव दाई—'हूस' के गीतो के पश्चात जच्चा के गीतो का वह वर्ग आता है जिसमे प्रसव पीडा का हृदयहारी चित्रण किया गया है। कई गीतो मे प्रमुख रूप से प्रसव पीडा के फलस्वरूप प्रसूता के शारीरिक प्रभावो का वर्णन किया गया है और अन्य कई गीतो मे प्रसूता द्वारा प्रसव-पीडा से मुक्ति दिलाने हेतु प्रार्थना की गयी है। प्रसव पीडा की असह्य वेदना से परनी व्यथित है। शर्मीली नार यह बात अपने पति से स्पष्टत कैसे कह दे कि अब शीघ्र ही प्रसव होने वाला है? आसन्न-प्रसवा अनेकानेक कार्य बताकर पति को अपने शयन-कक्ष से बाहर भेजना चाहती है, पर 'भोला भरतार' उसकी बात समझ ही नही रहा है। लोक गीत ने कैसी विकट परिस्थिति उत्पन्न कर दी है—

'नैनी सी नार नारेळी सो पेट
चालै है चीस उतावळी जी
ज्यू चालै ज्यू धण लुळ लुळ जाय
चालै है पीड उतावळी सा
करै है साईना सू बीणती जी
घडी दोय जो ढोला सायिया जाय
सायिया मे चोपड खेल जो सा।'

प्रसव पीडा की यथार्थ स्थिति का पाठक के सम्मुख एक चित्र सा खडा कर दिया गया है। शारीरिक कष्ट की अतिशयता लज्जाशीला युवती के होठो का मौन भग कर देती है। अन्ततोगत्वा कुलवधू को सब प्रयासो से हताश हो प्रिय को वास्तविक बात बतानी पडती है। वार्ता श्रवण से ही उसे पितृ-कर्त्तव्य का बोध हो जाता है और वह अपनी प्रिया को प्रसव पीडा से छुटकारा दिलाने हेतु 'दाई' को बुलाने चला जाता है। एक अन्य गीत मे भी प्रसूता की प्रसव वेदना, देवरानी, जेठानी का निश्चित होना तथा चिन्तित प्रियतम का उत्कठित हो 'दाई' को बुलाने जाना वर्णित है—

'कवळै तो ऊभा गजीडां री कुळ बहू, कोई कसमस दूखै है पेट
पीड्या तो धण री धमधमें जी
सासूजी म्हारा आळा भोळा, नणदल बाई राजकुंवार
म्हारी चिंता कुण करसी ओ राज

देराणी जेठाणी माडियो रूसणो, म्हारी माय वसै परदेस
म्हारी चिंत्या गाढा मारू करसी जी म्हारा राज ।'

प्रियतम को 'लाज सरम री वात' ज्यो ही ज्ञात होती है तो वह दाई को बुलाने जाता है। वह जाकर दाई स अनुनय विनय करता है कि उसकी अर्द्धांगिनी प्रसव पीडा स पीडित है। अत हे दाई माई ! शीघ्रातिशीघ्र मेरे घर चल। पर मौके-मौके की बात ! आज दाई भी झूठे बहाने बना रही है। चलने के लिए मना कर रही है। अपनी असमर्थता प्रकट कर रही है। पर जो पिता बनने वाला है, वह ऐसी बहानेबाजियो का सहज ही मे हल निकाल लेता है। उसे ज्ञात है कि प्रलोभन ही दाई मे सामर्थ्य का सचार कर सकता है। बात कुछ बनती भी है और कुछ बढती भी है। दाई न तो पैदल चलने म भी असामर्थ्य व्यक्त की। भला उत्साही जनक कब चूकने वाला था ! चट स अपना घोडा उसे सौंप दिया। स्व कर्म-गर्विता दाई का अहकार भी लोक गीतो म व्यक्त हुआ है—

'बैठी दाई तरवर बिछाय, बोलै दाई गरब भरी
कचमच माच्यो कीच, पाळा नही रै चला।'

उक्त सभी कठिनाइयो को सहर्ष झेलता हुआ पति नाना प्रकार के लोभ-लालच देकर दाई को बुला लाया। गृह प्रवेश के पूर्व ही उसे बडे ही अच्छे शकुन हुए। लोक-गीतो मे व्यक्त ये शकुन भी लोक मानस एव लोक-मान्यताओ के लिए महत्वपूर्ण हैं—

'गयाडै धडूक्यो है साड, माराजा नै सुगन भला जी।'

साड गर्जन के शकुन स यह व्यजित हो गया है कि पुत्र का जन्म होगा। दाई ने आकर अपना कर्तव्य निभाया। कार्य पूरा होने पर वह नेग' की अधिकारिणी है। पति को सूतिका-गृह से विलग रहने को कहा जाता है। पत्नी के कहने पर (कि सन्तानोत्पत्ति के तुरन्त बाद ही वह उसके पास समाचार भेज देगी) पति अपने साथियो के साथ जा बैठता है। पुत्र एव पुत्री के जन्म के समाचार मात्र से होने वाली मानसिक एव वैचारिक प्रतिक्रिया का निम्न लोक गीत मे बडा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है—

'जी थे सामली हथाया बैठो जी वाईसा रा वीरा
जी थारै झमकै बधाई मेलू ओ वाईसा रा वीरा
जी थारै पूत हुयो घर आव'ओ बाईसा रा वीरा।'

× × ×

'हे थारै मिसरी रो सीरो रधावू जी म्हारी सावळी सायधण
हे थानै कदंयन पीवर मेलू जी म्हारी सावळी सायधण
हे थानै नित नित लेवण आवू जी म्हारी सावळी सायधण
हे थारो मैला मान वधावू जी म्हारी सावळी मायधण।'

'जी म्हानै सापीड़ा मे लाजा मारिया जी म्हारी सावळी सायधण
हे म्हानै भाईड़ा मे नीचा गाळिया जी म्हारी सावळी सायधण
हे थारै टूटो डुसलियो दळावू जी म्हारी सांवळो सायधण।'

लोक-गीतों ने जहाँ भोली-भाली युवती का चित्रण किया है, जो प्रसव-पीड़ा मे अत्यन्त व्याकुल है, तो साथ ही ऐसी चतुर स्त्री का भी चित्र खींचा है जो पति द्वारा दाई को दिये गये वचनों के अनुकूल चलना चाहती ही नहीं। वह कहती है कि प्रसव-वेदना तो उसके आने से पूर्व ही प्रसव हो जाने के कारण मिट गयी थी। अत. ऐसी अवस्था मे दाई को किसी वस्तु की प्राप्ति का कोई अधिकार नहीं है।

युगानुकूल साधनोपलब्धियो के साथ-साथ लोक गीतो के वर्णनो मे भी कुछ-कुछ परिवर्तन आते रहते हैं। आधुनिक काल मे शहरों में दाइयो का प्रभाव अस्पतालो के कारण से मिटता जा रहा है। इसकी शिकायत एक लोक-गीत में बहुत ही सुन्दर ढग से हुई है—

'जच्चा ने ऐसा जुलम किया, अगरेजी जापा सरू किया
दाई को बुलाणा बद किया, नरसों को बुलाणा सरू किया।'

उक्त गीत मे युगानुरूप परिवर्तित होने वाली सामाजिक धारणाओ का वर्णन किया गया है, इसके अतिरिक्त पत्नीगामित पति पर भी परोक्ष रूप से करारा व्यंग्य है।

(४) प्रसव व लोक-विश्वास—लोक-मानस अन्धविश्वासों एव परम्परित मान्यताओ का आगार होता है। लोक-गीतो मे जच्चा के लिए प्रसव के पूर्व एव प्रसव के पश्चात कई दिनो तक सूतिका गृह मे बाहर आना निषिद्ध है। कहीं इधर-उधर आने से उसे नजर न लग जाये। सन्ध्या समय तो जच्चा का गृह से बाहर आना बहुत ही खतरनाक माना गया है। क्योंकि लोक-विश्वासानुसार अति मानवीय शक्तियाँ मध्याह्न या सन्ध्या समय ही अपना कु-प्रभाव डालती हैं। इन धारणाओं की इस लोक-गीत में विवेचना की गयी है। और तो और, लोक-मानस जल के समीप भूत-प्रेतादि का निवास स्वीकारता है। अत. वहाँ जाना जच्चा के लिए वर्जित है—

'बम बधावण म्हारो जच्चा, थू साफ न पर घर जाय
दोय सझ्या भुनायदा घर ही मिळ मिळ जाय
हिरणाक्षी म्हारी जच्चा ए, थू साफ न सरवर जाय
दोय मसक ढोळायदा तखत बैठ जच्चा न्हाय।'

पड़ोसियो की नजर तक से भी जच्चा को बचाने के प्रयत्न करने पड़ते हैं। लोक-विश्वासानुसार यदि किसी की किसी को नजर लग जाती है तो उससे नजर लगने वाले पर 'थुथकी न्हखवाई' जाय तो नजर का असर नष्ट हो जाता है। ऐसा ही जच्चा के साथ हुआ, अत: पड़ोसिन को बुलाना जरूरी हो गया

'ताव नही है मथवाय नही है, लारली पाडोसण निजर लगाई
लारली पाडोसण सायबं उरी रँ बुलाई, जच्चा नैं थुथवी म्हखवाई ।'

जिस प्रकार से विविध शकुन पुत्र या पुत्री के जन्म के सम्बन्ध मे पूर्व-सकेत देते हैं, उसी प्रकार पति या पत्नी के स्वप्न भी इसी प्रकार की भविष्यवाणी के आधार होते हैं । इस प्रसग की पुष्टि हेतु निम्नलिखित पक्तियाँ द्रष्टव्य है—

'सूती ओ जोडी रा ढोला सुखभर नीद
सूती नैं सपनो म्हानैं आवियो जी म्हारा राज
लाऱ्यो म्हानैं सपनैं मे नौसर हार
मोळैं मासा री लाधी सावळी जी म्हारा राज
हूसी अें मिरगानैणी थारैं लाडल पूत
अेंकज हूसी सुगणी धीवडी जी म्हारा राज ।'

(५) पुत्र जन्मोत्सव एव लोक-परम्पराएँ—इस प्रकार विचारो के आरोह-अवरोह मे निमग्न जच्चा ने कुलदीपक को जन्म दिया। सास, ननद, देवरानी, जेठानी सभी उससे खिन्न थी। प्रसव-वेदना के समय कोई पास तक नही आयी। पर सद्य -प्रसूत शिशु के बाल-रोदन का श्रवण कर व सभी भागी हुई जच्चा के शयन-कक्ष के समीप आ पहुँची। पिता की प्रसन्नता का कोई ठिकाना ही नही है। आज वह सर्वस्व लुटा देना चाहता है। इस दिन जितना दिया जाय उतना ही कम है। ऐसे अवसर पर खुले हाथ दान देने की तो यहाँ परम्परा ही रही है—

'रण चढण, ककण बधण, पुत्र-बधाई चाव
अे तीनू दिन त्याग रा, कहा रक कहा राव ।'

भला लोक साहित्य इस लाग-डॉट मे भी पीछे रहने वाला कब है—

'ह थारैं गीगो ए जलमियो आधी रात अे
हे थारैं गुळ बंच्यो परभात अे
उठो मानैतण खोलो कोथळो, बँचो बधाया दोनू हाथ सू अे ।'

पर पुत्र जन्म की प्रसन्नता असीमित जो ठहरी। उसके ननिहाल मे जन्म लेने पर उसके पितृपक्ष के लोग तो इस हर्ष समाचार से अनभिज्ञ ही हैं और यदि उसका जन्म पितृगृह मे हुआ है तो उसके नाना नानी, मामा-मामी इस शुभ समाचार के श्रवण हेतु उसके गाँव को जाने वाले पथ की ओर ही निर्निमेष दृष्टि से देख रहे हैं। अरे ! यह क्या ? कोई उस रास्ते पर आतुर पथिक इस ओर तेज कदम बढाते हुए आ रहा है। ठीक ही तो है। राजस्थान मे प्रचलित प्रथा के अनुसार नवजात पुत्र के पदचिह्न एक कागज पर अकित कर उस कागज को उसके ननिहाल या पितृगृह भेजा जाता है। शिशु की माता अपने प्रिय से कह रही है कि शिशु के 'पगलियैं' लिखकर मेरे पिता के यहाँ भेजो। पत्र ले जाने वाले को बहुत द्रव्य पारितोषिक रूप मे मिलेगा।

'अच्चा राणी आयी है पूत
पगल्या लिख मेलो मवरसा म्हारे बाप रे
म्हारा वाभीसा वही जै दातार
घूडला तो देसी नाईजी थानै हीसता ।'

जन्म के तीसरे दिन रात्रिकाल में नवजात शिशु के सिरहाने की ओर एक श्वेत कागज, स्याही की दवात एवं कलम रख दिये जाते हैं। इस सन्दर्भ में यह मान्यता है कि इस दिन भाग्य विधात्री देवी भाग्य लिखने हेतु आती है। तदनन्तर निश्चित दिवस पर सूर्य पूजा की जाती है। इस दिन उक्त सभी प्रकार के गीत गाये जाते हैं। यह समारोह बहुत ठाट बाट से मनाया जाता है।

गृह के मुख्य द्वार पर ढोल बज रहा है। शिशु की बुआ अपनी कुछ सहेलियों के 'फूलरे' को लिए आंगन में 'माडणे माड रही' है और साथ ही गीत गा रही है। बूढ़ा दादी थालियां भर-भरकर गुड़ बांट रही है। दाई अपने कार्य में मग्न है। आज उसे भी तो 'नेग' मिलने वाला है। ब्राह्मण सूर्य-पूजा के विधि-विधान में दत्तचित्त है। सभी कृत्य नाटकीय ढंग से सम्पन्न हो रहे हैं। सभी को अपना-अपना कर्त्तव्य-बोध कैसे हो गया ? कुछ भी नहीं कहा जा सकता। ऐसे लोक-गीतों का, जिनमें सामाजिक उत्तरदायित्वों एवं कर्म-विभाजन का वर्णन हुआ है, समाज-विज्ञान की दृष्टि से बहुत ही महत्त्व है। ऐसा ही एक गीत यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है—

'ये ई दाई माई भल आविया जी, म्हारै हालरियै री नाळौ मौळाय
हालरियै री नाळौ भल मोळियो जी, म्हारा सासूजी नै वेग बुलाव
ये ई ओ सासूजी भल आविया जी, म्हारी जेठाणी नै वेग बुलाव
ये ई ओ जेठाणी जी भल आविया जी, म्हारो साळा मे ढोलियो ढळाव
साळा मे ढोलियो भल ढाळियो जी, म्हारे नाईजी नै वेग बुलाव
ये ई नाईजी भल आविया जी, म्हारो गोत कडूबो बुलाय
गोत कडूबो भल आविया जी, म्हारै हालरियै रा कोड कराय
हालरियै हरख करावियाजी, म्हारै नणद बाई नै वेग बुलाव
ये ई ओ बाईसा भल आविया जी, म्हारी साळा मे साखिया कोराय
साळा मे साखिया भल कोरिया जी, ढालीजी नै वेग बुलाव
ये ई ओ ढोलीजी भल आविया जी, म्हारी हौदिया मे ढोल घुराय
पौळा मे ढोल घुरावियाजी, म्हारा सुसरोजी नै सनेसो दिराय
दादाजी बापजी सा भल आवजी जी, म्हारै सठवा मूठ मोलाय
सठवा सूठ मोलाविया जी, म्हारा जेठजी सा नै वेग बुलाव
ये ई जेठजी सा भल आवियो जी, म्हारे अजमो वेगो लाव

अजमो वेगो लाविया जो, म्हारै साईना नै वेगो बुलाव
बाजारा मे भल जावजो जी, म्हारै पालो रो पीळो लाव।'

पारिवारिक सम्बन्धो का ऐसा उल्लेख, परस्पर विभाजित उत्तरदायित्वो का ऐसा लेखा-जोखा शायद ही कही मिले। सामाजिक मर्यादा को ध्यान मे रखते हुए पति पत्नी के लिए अजवाइन, सूंठ आदि कैसे ला सकता है? जब आह्लादातिरेक से इतना सारा कुटुम्ब-कबीला एकत्र हुआ है तो क्या ऐसे अवसर पर भी गोबर से आंगन लीपा जायेगा! नही, कदापि नही, आज तो 'केसर गार घलावियो' और 'मोत्यां चौक पुराया' गया है। मोहल्ले-मोहल्ले से स्त्रियो के समूह गीत गाते हुए 'सूरज-पूजा' का 'उच्छव' देखने आ रहे हैं।

यद्यपि 'पीळा' राजस्थानी रमणी के लिए दाम्पत्य-प्रेम का प्रतीक है पर आज 'सूरज-पूजा' के दिन वह अकेली ही 'पीळा' ओढना नही चाहती। 'सूरज-पूजा' के दिन 'पीळे' ओढने को लेने के कौन-कौन अधिकारी हैं? पहला पीळा दाई को, दूसरा सास को, तीसरा जेठानी को, चौथा ननद को ओढ़ाकर पांचवां पीळा अपने लिए मांगती है।

'पीळा' ओढने के लिए राजस्थानी ललना अत्यन्त उत्कठित रहती है। अत. 'कदेई नी ओढ्यो पीळो पोमचो' कहकर वह सदैव प्रियतम से शिकायत करती रहती है। सामाजिक दृष्टिकोण से पुत्र-जन्म पर ही 'पीळा' ओढ़ना उचित माना जाता है। जैसा कि निम्न गीत मे वर्णित है—

'गाढा मारू म्हानै पीळो दो रगाय
जेठाण्या देराण्या पीळै रा बेम
धण रै ई पीळो लायज्यो जी म्हारा राज
देराण्या जेठाण्या जाया लाडल पूत
बाई ये धण जाई धीवडी जी म्हारा राज।'

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतो मे 'सुवावड साधनै' हेतु काम मे आने वाली विविध वस्तुओ का भी वर्णन पाया जाता है। अजवाइन, सूंठ, गोद आदि को लेकर अनेकानेक गीत मिलते हैं। सद्य-प्रसूता का पति अपनी नोकरी पर 'जोधाणै' को जा रहा है तो वह उसस प्रश्न कर बैठती है कि आप तो परदेस जा रहे हैं फिर मेरे लिए अजवाइन कौन खरीदेगा? पति घर के अन्य व्यक्तियो के नाम गिनाता है तो पत्नी प्रत्युत्तर मे स्पष्टत बता देती है कि उन सभी का उसे लेशमात्र भी विश्वास नही है। कम वस्तु लाकर उसका दस गुना दाम बताते रहते हैं। स्त्री मन के इस शक्की स्वभाव और साथ ही उसकी स्पष्टवादिता का मनोविज्ञान की दृष्टि से बहुत महत्त्व है।

यद्यपि 'सुवावड साधनै' का कार्य सास, देवरानी, जेठानी या ननद का होता है। इसके लिए उन्हे कुछ-न कुछ पारिश्रमिक रूप मे मिलता भी है। पर एक

लोक-गीत में जच्चा की कृपणता का बहुत ही रोचक चित्रण मिलता है। वह नहीं चाहती कि उक्त पारिवारिक सदस्यों से काम ले। क्योंकि ऐसा करने पर उनको भी लड्डू देने पड़ेंगे। अतः वह प्रियतम को ही यह काम सौंप देती है और साथ ही निर्देश भी देती है कि अजवाइन आदि कूटने में जोर की ध्वनि उत्पन्न न करना, अन्यथा उक्त सदस्यों को पता चल जायेगा। जच्चा की कृपणता एवं पति की बेबसी पर श्रोता या पाठक को हँसी आ जाती है—

'ओ धमको बड़ूो सुणैलो
मगळ गवाई री गुळियो कठा सू लावू सेलीवाळा
ओ धमको जामी सुणैला
नाम कढाई रो रुपियो कठा सू लावू सेलीवाळा
थे म्हारी दाई नै थे ई म्हारा नाई
थे ई म्हारा पाळा मिरजाको सेलीवाळा।'

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में से कुछ में जच्चा व नवजात को दी जाने वाली देसी दवाइयों, घासो (शरीर को निर्व्याध रखने हेतु दिया जाने वाला विशिष्ट प्रकार का पेय पदार्थ), पीपरामूळ आदि का वर्णन मिलता है। ये दवाइयाँ स्वाद में खारी होने के कारण जच्चा को अच्छी नहीं लगती। इनको लेने के लिए उसका जी नहीं करता। दवाइयाँ देने पर जच्चा द्वारा किये जाने वाले नाज-नखरो एवं नाक-भौंह सिकोड़ने का भी इन लोक-गीतों में बड़ा ही मनोवैज्ञानिक चित्रण किया गया है—

'दाभै दाभै म्हारी लाल बदन की जीभ पीपरामूळ लागै म्हानै चरचरी जी।'

जच्चा के गीतों में पारिवारिक उत्तरदायित्वों का उल्लेख भी मिलता है। परिवार के शान्त वातावरण का भी विवेचन हुआ है। ननद-भावज के प्रेम का चित्रण भी हुआ है और ईर्ष्यालु भावज व गृह-साज को सर्वोपरि समझने वाली ननद का भी वर्णन किया गया है।

जच्चा के गीतों में 'जच्चा री गाळियाँ' से पुकारे जाने वाले गीत भी मिलते हैं। इनमें पति पत्नी में व्यंग्य-वाक्य, पति की कृपणता, छोटी-छोटी वस्तु के लिए भी आवश्यकता से अधिक बातें बना देना आदि विचार मिलते रहते हैं। यहाँ एक 'गाळ' उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है जिसमें पति ने एक दमड़ी का तेल जच्चा के प्रसव के समय खरीदा था। उसका हिसाब माँगने का वर्णन है। जच्चा ने भी कैसा स्पष्ट हिसाब बताया कि देखते ही बनता है—

'पन्ना राजा रै हालर जलमियो दमड़ी रो तेल मोलावियो हो राज
फिरै नै गिरै ठाकुर लेखो मांगै, दमड़ी रो तेल कठै बाळियो'
हालर रंगमेरो करियो, जच्चा रै मैंल दिवळो बळियो
नवदिन मे नवरंग जगाई, नणदल नै मुकळाई ओ राज

लाल जी सा रो ब्याव रचावियो, × × ×
हळफळाया चाबीमा आया, तेल पन्नो भर ढोळणा।'

राजस्थानी जच्चा के लोक-गीतों में दाम्पत्य-प्रेम का हास-परिहास भी देखने को मिलता है। 'सूरज-पूजा' के पश्चात पति दासी के हाथ समाचार भेजता है कि अब यदि पत्नी की स्वीकृति हो तो वह पत्नी के शयन-कक्ष में आकर सोये। पर पत्नी तो सब प्रकार के प्रश्नों का उत्तर नकारात्मक ही देती है। पति पत्नी से कहता है कि वह उसके पैरों की ओर ही सो रहेगा। परन्तु पत्नी के उत्तर बहुत ही तर्कपूर्ण हैं। पैरों की ओर शिशु के 'पोतड़े' सूख रहे हैं। सिरहाने की ओर पत्नी का 'असी कळी' का घाघरा सूख रहा है। इन सबके अतिरिक्त प्रियतमा कोमलांगी है और प्रियतम की ऐड़ियाँ खुरदरी हैं। ऐसे व्यक्ति को अपने शयन-कक्ष में कैसे सोने दे? पति की बेबसी और असहायावस्था पर बरबस ही हँसी आ जाती है।

उक्त गीतों के अतिरिक्त जच्चा के गीतों में 'हालरिया' नामक गीत भी बहुतायत में मिलते हैं, जो 'सूरज-पूजा' के अवसर पर गाये जाते हैं। ये 'हालरिये' शिशु को पालने में सुलाकर झूला देते समय भी गाये जाते हैं। 'हालरियों' में प्रमुख रूप से बच्चे को मधुर स्वर लहरी से सुलाने का वर्णन रहता है। उसके सोने-चाँदी के बने पालने की प्रशंसा की जाती है। शिशु के लिए 'घाबूला', 'झाझरिया', 'कडोलिया', 'लूंग' आदि बनवाने की बात भी कही जाती है। बालक को दूध-बताशे पिलाने को भी कहा जाता है। नवजात के लिए विविध प्रकार के कपड़े (आडलिया, टोपलिया, झुगली) बनवाने का वर्णन रहता है। बालक के विविध सम्बन्धों (माता-पिता, दादा-दादी, नाना-नानी आदि) की चर्चा रहती है—

'थारे झुगली टोपलिया सीवाड़ू
गीगलिया रोवतडो ढब जाई
थारे हाथली कडोलिया घडावू
गीगलिया रोवतडो ढब जाई।'

जन्म-संस्कार सम्पादित करते समय गाये जाने वाले जच्चा के गीतों में प्रमुख रूप से पुत्र-प्राप्ति की इच्छा, इसके लिए विविध देवी-देवताओं की मनौतियाँ मानना, पुत्र-जन्म से होने वाले क्लेश, प्रसूता द्वारा विविध वस्तुओं को खाने की इच्छा व्यक्त करना, प्रसव-पीड़ा तथा इस वेदना से मुक्ति पाने हेतु प्रार्थना, दाई के नाज-नखरे, पुत्र होने पर भी पति को पुत्री होने का असत्य सन्देश भेजना, परिणामस्वरूप पत्नी को पीहर भेज देना, घर के सूनेपन से ऊबकर पत्नी को लाने जाना, सास के व्यंग्य वाक्य, पत्नी द्वारा सही तथ्य का उद्घाटन, पुत्री-जन्म के पश्चात पत्नी के साथ किया जाने वाला अभद्र व्यवहार, पुत्र-जन्म से उत्पन्न आनन्दातिरेक, 'पीळा' ओढने की इच्छा, सभी लोगों का सामर्थ्यानुसार 'नेग'

मुँड़ाना, 'घूघरी' बाँटना, 'सुवावड' में काम आने वाले पदार्थों से सम्बन्धित अनेकानेक बातों एवं परिस्थितियों का वर्णन देखने को मिलता है।

(ख) भड़ूला चढ़ाने के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

राजस्थान में जब शिशु एक या डेढ़ वर्ष की आयु का हो जाता है तो उसके 'बालकेशों' को किसी देवी-देवताओं को चढ़ाने की प्रथा है। अधिकांश जातियों में उस जाति-विशेष के देवताओं को 'भड़ूला' चढ़ाया जाता है। कुछ लोग कुल देवी या देवता को 'भड़ूला' चढ़ाते हैं। कुछ लोग पितरों, भोमियों और खेतपाळों (क्षेत्रपालों) को 'भड़ूला' चढ़ाते हैं। कभी-कभी किसी दम्पत्ति के सन्तान जीवित नहीं रहती है तो वह दम्पत्ति प्रसव के कुछ मास पूर्व देव-विशेष को भावी शिशु का 'भड़ूला' चढ़ाने की 'बोलवा' बोलते हैं। और जब शिशु जीवित रहकर कुछ उम्र (२-४ वर्ष) का हो जाता है तो उस देवता को 'भड़ूला' चढ़ाते हैं। कहीं-कहीं 'भड़ूले' की कुन्तल-राशि को कुएँ, बावड़ी या बेरी में डाल दिया जाता है या नदी में प्रवाहित कर दिया जाता है।

'भड़ूला' चढ़ाते समय भी अनेक प्रकार के लोक गीत गाये जाते हैं। यह मुंडन-संस्कार का ही लोक-प्रचलित रूप है। पर यहाँ यह स्मरणीय है कि इस अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत देवी या देवता-विशेष से ही सम्बन्धित होते हैं।

'सोनै नै रूपै रो माता मिंदरियो
जिणमें बिराजो माता करनला
धजा तो फरूकै माता मावणी
कोई नगारां री उड री है घोर, बिराजो माता करनला
माता जी रै मढ़ री तो छिब हद सोवणी
कोई लख आवै नै लख जाय, बिराजो माता करनला
लि लो भड़ूलो नारेलां री जोड री
कोई साजो-ताजो राख्या लाडल पूत, बिराजो माता करनला।'

(ग) जनेऊ ग्रहण करने के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

राजस्थान में बहुत ही कम जातियों में जनेऊ धारण करने की प्रथा है। इस संस्कार का पौराणिक नाम 'यज्ञोपवीत संस्कार' है। राजस्थान में १२-१६ वर्ष के बालक को जनेऊ धारण करने के योग्य समझा जाता है। इस दिन कुलगुरु मन्त्रोच्चार के साथ बालक को सूत के धागों की सात-लड़ी डोरी धारण करवाता है—जिसे जनेऊ कहा जाता है। इसके धारण करने वाले के लिए मांस-मदिरा आदि का सेवन निषिद्ध माना जाता है। इन गीतों में प्रमुख रूप से धार्मिक भावों का उल्लेख रहता है। जनेऊ बनाने में काम आने वाले सूत का भी वर्णन रहता है। जनेऊ धारण कर लेने पर धारणकर्ता ब्राह्मणत्व प्राप्त कर लेता है, ऐसी

मान्यता है। उसके लिए क्या ग्राह्य है और क्या त्याज्य है ?—आदि की चर्चा की जाती है। उसकी दैनिक जीवनचर्या कैसी होनी चाहिए ?—का भी निर्देश रहता है। यहाँ पर एक गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

'गळे जनेऊ लाडा पाटर्क री डोरी
भिक्षा पुरसै वहु सूरज जी री गोरी
गळे जनेऊ लाडा पाटर्क री डोरी
भिक्षा पुरसै वहु ब्रमा जी री गोरी
भिक्षा पुरसै वहु मादेव जी री गोरी।'

इस प्रकार विविध देवी-देवताओ के नाम ले-लेकर गीत को लम्बा किया जाता है।

(घ) वैवाहिक अवसर पर गाये जाने वाले गीत

विवाह गार्हस्थ्य-जीवन के भव्य भवन का प्रवेश द्वार है। ससार की बर्बर जातियो से लेकर सभ्यातिसभ्य जातियो मे वैवाहिक विधान सम्पन्न किये जाते हैं। विवाह दो हृदयो को प्रेम पाश मे बाँधने का महत्कृत्य है। सामाजिक, पारिवारिक, धार्मिक आदि प्रत्येक दृष्टि से विवाह का अक्षुण्ण महत्त्व है। विवाह अत्यधिक उल्लासपूर्ण सम्पन्न किया जाने वाला सामाजिक अनुष्ठान है। इस अवसर पर सर्वत्र खुशी का वातावरण छाया रहता है। वर और वधू—दोनो पक्षो के सदस्यो का मन मुदित रहता है। 'नैनी बाजु' और 'बीदराजा' के पुनीत मिलन से मिलने वाली अपार प्रसन्नता को अनेक गीतो के माध्यम से अभिव्यक्त किया जाता है। राजस्थानी लोक गीतो पर प्रकाश डालने से पूर्व राजस्थान प्रदेश मे वैवाहिक विधि का विधान कैसे किया जाता है ? इस पर सक्षेप मे टिप्पणी कर देना समीचीन होगा, जिससे इस सन्दर्भ मे लोक-गीतो को भली-भाँति समझा जा सकेगा।

सगाई विवाह की प्रथम सीढी है। इस समय वधू का पिता वर-पक्ष के लोगो से विवाह की बात पक्की कर लेता है। एक प्रकार यह वधू का वर को वाग्दान करना ही है। इस अवसर पर वधू का पिता एव अन्य सम्बन्धी अनेक मेवा-मिश्री के थाल लाते हैं। इन थालो की सख्या विषम (५-७-११-१५ या २१ और इससे भी अधिक) हुआ करती है। कुछ जातियो मे इस अवसर पर 'टीका' लने की प्रथा भी है। कन्या-पक्ष की ओर से वर के पिता को रोकड—धन-राशि देने को 'टीका' कहते हैं। प्रकारान्तर से यह लडके का मोल करना ही समझना चाहिए। गरीब जातियो मे भी सगाई की प्रथा का तो प्रचलन है, पर वे लोग इस प्रकार, उच्च-वर्ग के लोगो की भाँति, धन व्यय नही करते। सामान्य रूप से एक चाँदी के रुपये के साथ एक नारियल लडके के हाथ मे होने वाला श्वसुर देता है। ब्राह्मण तिलक किया करता है। रुपया व नारियल देना एक आवश्यक विधान सा

हो गया है। लडके की अनुपस्थिति में कुछ जातियों में तलवार के तिलक किया जाता है और थाली में श्वसुर-प्रदत्त नारियल को रखकर घर में बड़ी हिफाजत से रखा जाता है, क्योंकि यही नारियल विवाह के समय वर की कमर पर पीले कपड़े में लपेटकर बांधा जाता है। समाज के सभी सदस्य इकट्ठे होते हैं। अफीम की मनुहारें होती हैं। वर का और वधू का पिता एक-दूसरे को अफीम देते हैं। तदनन्तर सभी को अफीम दी जाती है। ऐसी सामाजिक धारणा है कि अफीम लेने के बाद कोई अपनी बात से मुकर नहीं सकता। बाद में मना करने पर समाज के अन्य सदस्य उस पर भाँति-भाँति के दबाव डालकर उसे अपनी बात पर स्थिर रहने के लिए मजबूर कर देते हैं। इसलिए इस अवसर को 'अमल गाळणों' भी कहा जाता है। गुड भी बाँटा जाता है। कुछ जातियों में इस अवसर पर 'लापसी' करके अपने गोत वालों को प्रीति-भोज दिया जाता है। सगाई होने के पश्चात कभी-कभी विवाह शीघ्र हो जाते हैं और कभी-कभी कुछ वर्ष बीत जाने पर हुआ करते हैं। विवाह के कुछ दिन पूर्व वधू-पक्ष से कोई भी व्यक्ति वर पक्ष वालों को विवाह की निश्चित तिथि बताने आता है। इस रस्म को 'सावो भेलणो' कहा जाता है। इस समय भी नारियल के साथ कुछ रुपये दिये जाते हैं। कई लोग सगाई के अवसर पर या इस अवसर पर वधू के लिए कपड़े, जेवर और सौन्दर्य-प्रसाधन की कुछ सामग्री भेजा करते हैं।

'सावा भेलणे' के दिन से ही वैवाहिक कृत्यों का प्रारम्भ हो जाता है। सर्व-प्रथम धान साफ करने का कार्य किया जाता है। पड़ोस की स्त्रियाँ विवाह वाले घर में एकत्रित हो जाती हैं और गीत गाती हुई धान का साफ करती हैं। इसे 'मूंग उछाळणा' कहते हैं। स्त्रियों को मूंग घर जाते समय गुड दिया जाता है। यह कार्य वर और वधू दोनों पक्षों में होता है। इसके पश्चात छोटे विनायक की स्थापना की जाती है। तदनन्तर वर को एक बाजोट पर बिठाकर घी पिलाया जाता है। इसे 'घी पावणो', 'पाटे बैठावणो' आदि संज्ञाओं से अभिहित किया जाता है। इस दिन के पश्चात दूल्हा अपने घर की चहारदीवारी से प्रायः बाहर नहीं निकलता। घर का काम करना उसके लिए वर्जित रहता है। इस दिन से उसके 'पीठी' की जाती है। हल्दी को पीस घी अथवा तेल में मिलाकर दूल्हे के शरीर पर मला जाता है जिसमें उसका स्वरूप निखर आता है। यही कृत्य वधू के लिए भी किया जाता है। उसके इस कृत्य को 'तेल चढणों' कहा जाता है। पर कई जातियों में वधू के लिए यह कर्म बारात के आ जाने के पश्चात ही किया जाता है, क्योंकि बारात के न आने का डर सदैव बना रहता है। राजस्थान में 'तिरिया तेल हमीर हठ, चढै न दूजी बार' की मान्यता है। घी पीने के दिन से ही निकट के सम्बन्धियों के यहाँ (दूल्हे को अपने गाँव में और दुल्हिन को अपने गाँव में और यदि गाँव एक हो तो भी उनके सम्बन्धियों के यहाँ) प्रीतिभोज दिये जाते हैं। इसे

राजस्थानी में 'बदोळी' कहा जाता है। बारात चढ़ने के दिन बड़े विनायक की स्थापना की जाती है। इसी दिन कुछ जातियों में विनायक की स्थापना के पश्चात उकूरडी (घूरे) की पूजा भी की जाती है। कई जातियों में स्त्रियाँ कुम्हार के घर आकर चाक की पूजा करती है। जिन जातियों में पर्दा-प्रथा है उनके घर कुम्हार की पत्नी ही गणेश की मृण्मयी मूर्ति लेकर आती है। उसके लिए भी 'विनायक बधावणो' कहा जाता है। इन जातियों में 'मूगदणो बधावणो' की प्रथा भी प्रचलित है। एक व्यक्ति लकड़ियों की गाड़ी भरकर लाता है, जिसमें एक हरी डाली भी हुआ करती है। स्त्रियाँ गीत गाती हुई आती हैं और गाड़ी वाले के तथा बैलों के कुकुम का टीका लगाती है। इसे 'मूगदणो बधावणो' कहा जाता है। इसके पश्चात घर की स्त्रियाँ 'माया' की स्थापना करती हैं। घर की किसी साळ या ओरे में एक दीवार पर माया का चित्र चित्रित किया जाता है। गुलाबी रग से यह चित्र बनाया जाता है। गणेश की मृण्मयी मूर्ति भी यहाँ पर ही स्थापित की जाती है। जिस घर मे यह चित्र चित्रित होता है उसी कक्ष मे दूल्हे को नाई द्वारा स्नान करवाया जाता है। यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि राजस्थान मे तीन स्नान ही प्रमुख माने गये है। प्रथम स्नान दाई द्वारा जन्म अवसर पर, दूसरा स्नान नाई द्वारा विवाह पर, एव तीसरा स्नान भाइयो द्वारा मृत्यु पर करवाया जाता है। जब नाई स्नान करा देता है तो दूल्हे को माया के समक्ष लाकर बिठाया जाता है। वहाँ उसे दूल्हा बनाया जाता है। उसे दूल्हे के कपड़े पहनाये जाते हैं। हाथ और पाँव म 'कांकण-डोरडे' बाँधे जाते हैं। दूल्हा जब सज धजकर तैयार हो जाता है तब वह अपने मित्रो के साथ पैदल ही अपने आराध्य देव के दर्शनार्थ मन्दिर जाता है। वहाँ से आने पर दूल्हे को घोडी पर बिठाकर गाँव की परिक्रमा की जाती है, जिसे 'बदोळी निकाळणी' कहा जाता है। इसके पश्चात बारात रवाना होती है। रवाना होते समय दूल्हा अपनी माता का स्तन पान करता है। तब घोडी-वन्दना स्त्रियो द्वारा की जाती है। फिर दूल्हा घोडी पर बैठता है और वाद्यो की मधुर ध्वनि के साथ बारात रवाना होती है।

बारात जब वधू के यहाँ पहुँचती है तो उसे निश्चित स्थान पर ठहराया जाता है। उस स्थान को 'जान री डेरो' कहा जाता है। सन्ध्या से कुछ पूर्व 'सम्मेळो' होता है, जिसे स्नेह-मिलन कहा जा सकता है। इसके पश्चात दूल्हा तोरण पर जाता है। यहाँ पर दूल्हा अपने छोटे सालो के साथ बैठकर खाना खाता है, जिसे कुछ जातियो मे 'कुँवर कलेवा' कहा जाता है। कुछ जातियो मे विवाह के दूसरे दिन सवेरे जब दूल्हा अल्पाहार करने जाता है तो उसे 'कुँवर-कलेवा' कहा जाता है। इसके पश्चात तोरण वदना होती है। दूल्हे के हाथ में पकडी तलवार से सात बार तोरण का स्पर्श किया जाता है। तब वधू की चाची दूल्हे की आरती करती है, जिसे 'चमक दीया री आरती' कहा जाता है। इसके बाद सास आरती करती

है, जिसे 'सासू आरती' कहा जाता है। आरती करते समय सास दूल्हे के ललाट पर दही लगाती है, जिसे 'दही देणो' कहते हैं। चाँदी के रुपये पर कुंकुम लगाकर तिलक करती है। इस अवसर पर सास द्वारा दूल्हे की नाक खींचने का भी रिवाज है। 'सासू आरती' सम्पूर्ण होते ही दूल्हे के पास खड़े युवकों में से कुछ उसे बाँहों में पकड़कर ऊपर उठा लेते हैं और एक युवक नाडे को अपने हाथ में थामे दूल्हे के सिर की तरफ से लेता हुआ पैरों के नीचे से निकाल देता है, इसे 'नाडो काढणो' कहते हैं। यह भी एक प्रकार का 'कामण' कहा जाता है। वैवाहिक गीतों में 'कामण' के गीतों का भी बड़ा महत्त्व होता है। इसके पश्चात् दूल्हे को 'माया' के कक्ष में ले जाया जाता है। वहाँ से वर-वधू विवाह-मंडप में आते हैं। इस स्थान को 'चँवरी' कहते हैं। ब्राह्मण मंत्रोच्चार से विवाह सम्पन्न करता है। फिर भाँवरें पड़ती हैं, जिसे राजस्थानी में 'फेरा' कहते हैं। राजस्थान में चार फेरों का ही प्रचलन है। तीन फेरों तक दुल्हिन आगे रहती है व दूल्हा पीछे पर चौथे फेरे में दूल्हा आगे हो जाता है, तदनन्तर गठजोड़ और कन्यादान की रस्म अदा की जाती है। विवाह मंडप से उठकर दूल्हा दुल्हिन जान के डेरे आते हैं। साथ ही औरतें गीत गाती हैं। जान के डेरे पर वधू के आँचल में बताशे व छुहारों के साथ रुपये डाले जाते हैं, जिसे 'खोळ भरावणी' कहा जाता है। दूसरे दिन सवेरे दूल्हा अल्पाहार हेतु जाता है। वहाँ उसे मिश्री डालकर दूध सबसे पहले पिलाया जाता है। ऐसा सुनने में आया है कि उस दूध में वधू के पैर का अँगूठा एक बार डुबोया जाता है। यह भी 'कामण' ही स्वीकारा गया है। इस समय अल्पाहार पर आने को कुछ जातियों में 'बासी जवारी' आना कहा जाता है और कुछ में 'कुँवर-कलेवा' कहा जाता है। दिन में अनेक देव स्थानों की वर-वधू द्वारा परिक्रमा की जाती है, जिसे 'जाता देणी' कहते हैं। रात्रि में 'रातीजोगे' का कार्यक्रम होता है। 'जाता देकर आने के पश्चात् 'माया' के समक्ष बैठकर 'जुआ-जुई' खेल खेला जाता है। कहीं-कहीं पर कई चुगने का कार्यक्रम भी किया जाता है। इस समय ही वर-वधू परस्पर 'कांकण डोरडे' भी खोलते हैं। अपराह्न जवाई को बुलाया जाता है। घर की स्त्रियाँ जवाई से भाँति भाँति के प्रश्न किया करती हैं। गीत गाया करती हैं। विविध प्रकार की बोलियाँ निकाला करती [illegible]। दिन में भोजन के समय एवं रात्रि के भोजन के समय भी गीत गाये जाते हैं। समधी को गाये जाने वाले गीतों को 'सगा री गाळियाँ' कहते हैं। इस रात सुहागरात मनायी जाती है। शयन कक्ष के बाहर ढाली रात-भर जागकर धार्मिक गीत गाता है। बारात की विदाई से पूर्व बाराती दुल्हिन के घर आते हैं, जहाँ दहेज की सामग्री दिखायी जाती है। दहेज को राजस्थानी में 'दायजा' कहते हैं। दहेज दिखाने को यहाँ 'समटावणी' कहते हैं। समटावणी के पश्चात् लड़की को 'आगणे री सीख' दी जाती है। वर वधू के घर पर बैठा रहता है, क्योंकि विदाई देते समय वधू को घर से

पहले विदाई दी जाती है और वर को बाद मे। वधू को विदा करते समय गाये जाने वाले गीतो को 'ओळू' कहते हैं, जो करुण रस मे ओतप्रोत हैं। इसके पश्चात वर को ऊँट पर बिठाकर सात बार श्वसुर के घर की तरफ ऊँट को लौटाया जाता है, इसे 'घुडला-घेरणा' कहते हैं। तत्पश्चात बारात को सीख दी जाती है। विदाई के समय वर-वधू पक्ष के सभी लोग परस्पर विदा-अभिवादन करते हैं। ढोल का सदैव की भाँति न बजाकर विशेष ढग से बजाया जाता है। इस विदाई के लिए राजस्थानी मे 'घोड छडी' शब्द व्यवहृत होता है। बारात घर के घर पहुँचती है। वहाँ बारात को 'बधाया' जाता है। गृह द्वार पर वर की बहिनें द्वार रोकती हैं। 'बार रोकाई' के बदले मे भाई बहिन को नेग देता है। इसके पश्चात वर वधू आँगन मे पहुँचते हैं, जहाँ 'थाळियाँ चुगणो' रस्म अदा की जाती है। इसके बाद वधू सास-ससुर, जेठ-जेठानी आदि के पैर छूती है एव उसे उक्त सम्बन्धियो से द्रव्य या आभूषण प्राप्त होते हैं। इस रात को यहाँ 'रातीजोगे' का कार्यक्रम रहता है। दूसरे दिन जातें दी जाती हैं। 'जातो' से निवृत्त होने के पश्चात जुआ जुई का कार्यक्रम होता है। काकण-डोरडे खोले जाते हैं। इस प्रकार से राजस्थान मे वैवाहिक कार्यक्रम सम्पन्न किया जाता है।

विवाह के समग्र कार्यक्रम मे 'माहेरा' भी अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखता है। जिस स्त्री के पुत्र व पुत्री का विवाह होता है वह अपने पति के साथ अपने पीहर वालो को निमन्त्रण देने जाती है। पीहर वालो को निमन्त्रण देने की प्रथा को 'बत्तीसी फेलावणी' कहा जाता है। जब उसके पीहर वाले उसके ससुराल पहुँचते हैं तो उनको बधाया जाता है, जिसे 'माहेरो बधावणो' कहा जाता है।

उसके पितृ-परिवार वाले जो भी आभूषण, कपडे और पैसा विवाह के अवसर पर उसे देने हेतु लाते हैं, वही 'माहेरा' कहा जाता है।

विवाह के समग्र विधि विधानो मे सरस गीतो का आयोजन किया जाता है। अत हम यहाँ प्रत्येक अवसर पर गाये जाने वाले गीतो की चर्चा करेंगे।

वैवाहिक गीतो का सर्वप्रथम प्रादुर्भाव 'सगाई' के अवसर पर ही हो जाता है परन्तु इन गीतो का क्रमानुसार प्राकट्य विवाह तिथि के निश्चितीकरण अर्थात 'सावा फेलणे' के दिन से होता है। सावा फेलने के दिन 'बाभोसा री हुक्मी बनो' सोत्साह श्वसुर द्वारा दिया जाने वाला नारियल ग्रहण कर विवाह की स्वीकृति दे देता है—

'हस हस झेल्या बाभोसा री हुकमी बीडला
मुळकत झेल्या है नारेळ (नाळेर)
रायजादो परणीजै म्हो बाभोसा रो लाडलो।'

भीली समाज मे सगाई और 'सावा झेलणा' एक ही बार मे सम्पन्न कर दिया जाता है। इस जाति मे 'रुपया ग्रहण' करना ही विवाह की स्वीकारोक्ति है। एक

गीत में वर्णित भी है कि हे बन्ना ! यदि तू हमारे घर आना चाहे तो हमारा यह रुपया (सगाई या सावे के रूप में) ग्रहण कर !

'बणतु रे आवहे तो रुपियो झेल रे।'

सावा झेलने के पश्चात वैवाहिक सत्कृत्यों का शुभारम्भ हो जाता है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक शुभ कार्य हेतु सर्वप्रथम गणेश वन्दना की जाती है। अतः राजस्थान में भी वैवाहिक कृत्यों के प्रारम्भ में गणेश-वन्दना की गयी है। कुम्हारी गजानन की मृण्मयी मूर्ति लाती है। उसे घर में स्थापित किया जाता है। राजस्थानी में गणेश सम्बन्धी गीतों को 'विनायक' कहा जाता है। विनायक को न्यौता दिया गया—

'अेक पान तीमरी सोपारी पांन डोड यो
जी आ दो'नो बिनायक जी नैं निवतो
जी ओ म्हारा कारज सुधारण वेग आवजो।'

विनायक के साथ ही साथ धर्म-प्रधान लोग सर्व विघ्न विमोचन हेतु समस्त देवी देवताओं को आमन्त्रित करते हैं। इसके अतिरिक्त सामाजिक प्रतिष्ठा की वृद्धि हेतु कुटुम्ब कबीलों के सभी सदस्यों को सस्नेह आमन्त्रित करते हैं। ये निमन्त्रण गीत भी विनायक बधावे के साथ ही गाये जाते हैं। जैसा कि एक गीत में वर्णित है—

'रंग चाळी बणद उछाव मे
रंग चोळी पधारो म्हारी बिड़द मे
थानै निवतू सादेव जो रा जोध
गजानंद जी पधारो म्हारी बिड़द में
थानै निवतू मेहा जी री धीव
करणी जी पधारो म्हारी बिड़द मे
थानै निवतू मुरारदान जी रा मींव
भेरूदान जी पधारो म्हारी बिड़द मे।'

इस प्रकार और कई परिजनों के नाम ले-लेकर गीत को बढ़ाया जाता है, क्योंकि इस प्रसंग में ही तो राजस्थानी की यह कहावत 'गीत री कांई बड़ो, गीत बड़ो सार्थक प्रतीत होता है।

विनायक-स्थापना के पश्चात वर को 'पाट-बिठाते' समय गीत गाये जाते हैं। उस समय दूल्हे को घी पिलाया जाता है। उसकी आरती की जाती है। आरती के अवसर पर गाये जाने वाले गीत को यहाँ उद्धृत किया जा रहा है—

'रतनीदान जो पूछे ओ म्हारी आमिया रांणो
इतरे अवेळे सायपण किंय गिया
भेरूदान जी रा रॅतनदान जी पाट विराजिया
आरती सजोवण सायबा धण गिया जी।'

जैसा कि पहले बता दिया गया है कि कुछ जातियो मे गणेश-स्थापना के बाद पूरे घूरे (उखूरडी) की पूजा की जाती है। प्राय यह प्रथा वधू-पक्ष द्वारा ही सम्पन्न की जाती है। कुँवारी बनडी से उखूरडी की पूजा करवायी जाती है और आशा की जाती है कि वह भी उखूरडी की भाँति सदैव परिवार का सम्वर्द्धन करने वाली हो।

उखूरडी बधाकर पुन लौटते समय गाये जाने वाले गीतो म प्रमुखतया रुष्ट परिजनो को मनाने का वर्णन पाया जाता है। अत्यधिक आनन्द के अवसर पर कोई रूठा रहे, इसे कौन सह सकता है? इसके पश्चात वर एव वधू के अपने-अपने घर पीठी की जाती है। यहाँ यह ध्यातव्य है कि वर जब तोरण पर पहुँचता है, तब भी पीठी की जाती है। इन अवसरो पर पीठी के गीत गाये जाते हैं। पीठी किन-किन चीजो से निर्मित होती है?—आदि बातो का वर्णन इन गीतो मे मिलता है। इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'म्हारी हळदी रो रग सुरग निपजै माळवै
मोतावै मागरबाई रा बाभोसा माताजी रै मन रळै (कोड घणौ)
बारा माताजी चतुर सुजाण, केसर केवटै
बनडा थे हो जी केसर जोग, हळदी रग (अग) चढै।'

पीठी करने के बाद वर-वधू को वेश-भूषा से विभूषित किया जाता है। वेश-विन्यास के समय भी गीत गाये जाते हैं। वधू के केश विन्यास के समय गाया जाने वाला एक गीत—

'बाटकडी म तेल चपेल मरवै री बापसी
रायजादी रा गज लाबा केस, कुण सुळझावसी
बनी रा माताजी चतुर सुजाण, वे सुळझावसी।'

दूल्हे को कपडे व आभूषण पहनाते समय मित्र एव उसकी छोटी बहिने एव ससुराल मे पीठी करते समय सालियाँ हास परिहास करती हैं। वे उसके असामर्थ्य की ओर इगित करती है पर दूल्हा अपने अनेक सहयोगियो को बताकर अपनी पूर्ण समर्थता को व्यक्त करता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले एक गीत का कुछ अश उद्धृत है—

'बनडा बनडी है इदक सरूप किम कर निरखसो
म्हारै गैणा री डाबी है हाथ भल भल निरखसा।'

× × ×

'बनडा तोरण तारा री छाय कौनर बादसो
म्हारा समरथ बीरोसा साथ भल भल बादसा।'

यहाँ 'गैणा री डाबी' म पत्नी को दिये जाने वाले आभूषणो की प्रथा की ओर इगित है। इसी प्रकार 'तोरण तारा री छाय' मे भी प्राचीन प्रथा की ओर

स्पष्ट संकेत है। राजस्थान में पहले वर-पक्ष को नीचा दिखाने एवं उनकी हँसी उड़ाने हेतु कन्या-पक्ष के लोगों द्वारा जान-बूझकर तोरण ऊँचाई पर बाँधा जाता था। कभी-कभी यह कार्य जातियों के परस्पर पुराने वैमनस्य के प्रतिकार हेतु भी किया जाता था। अधिकांशत ऐसा क्षत्रियों में हुआ करता था। पाबूजी की पड़ से हमारी यह धारणा और भी दृढ़ हो जाती है। पाबूजी द्वारा घुड़दौड़ में पराजित सोढों के स्वाभिमान को ठेस पहुँची। फलत उन्होंने तोरण बहुत ऊँचा बाँधा। पर पाबू राठौड़ ने केसर कालवी की सहायता से तोरण की वन्दना कर सोढों का सिर नीचा कर दिया। सम्भवत 'तोरण तागा री टाप' से ऐसी ही कई अन्य घटनाओं की ओर संकेत है। दूल्हे को दूसरा भगवान तक स्वीकारने वाले ससुराल के सदस्यों के प्रतिकार की भावना से उद्वेलित मानस का लोक गीत ने बहुत ही सुन्दर चित्रण किया है।

दूल्हे-दुल्हिन की साज सज्जा में सेवरे का भी अपना स्थान है। मालिन उमंगपूर्वक सेवरे गूँथकर लायी है। सेवरे के निम्न गीत को देखने से ऐसा लगता है कि सेवरा स्मरण का आधार है। जिस रायजादी को कूलियाँ खेलते समय देखा था, वही आज पुन चित्त चढ़ गयी। पूर्वराग के उद्दीपन का ऐसा अनूठा उदाहरण शायद ही कहीं मिले—

'पनवाड़ी रा लावा तीखा पान
गूथ लाई मालण सेवरा
सेवरिया तो पैर म्हारो बनड़ो हठ लीनो
परणीजू तो हरीसिंहजी री धीव
गीनर अखन कवारो रैव सू

× × ×

रायजादी कूलिया खेलती
भोजायां भेळा जीमनड़ा नै म्हे देखिया
गोरै से पुगथै चित चिपो जी।'

दूल्हा सज-धजकर तैयार हो गया। बाराती भी अपनी-अपनी तैयारी में तल्लीन हैं। इस समय गायी जाने वाली 'सिरड़ो' के माध्यम से दूल्हे के परिजनों को भी बारात में जाने के लिए तैयार होने हेतु कहा गया है। वर को घी पिलाने के बाद उसके सम्बन्धी प्रीति-भोज देते हैं। इन्हें 'बदोळे' कहा जाता है। 'बदोळे' पर भोजन करने जाते समय भी गीत गाये जाते हैं। जिनमें से एक गीत उद्धृत किया जा रहा है—

'बनड़ो म्हारो मारूणियें री सेह, लाडण बनी ओ आमेंरी बीजळी
मगमण माथो मारूणियें री सेह, चमचण लागो आमेंरी बीजळी
बनड़ो म्हारो डूगरियें रो मोर, बनड़ो हठवान केवड़ो

बोलण लागो बागा मायलो मोर, बोलण लागी ढेलडी
बनडो म्हारो रायचम्पा रो फूल, लाडलडी ओ केळू कामडी
महकण लागो रायचम्पा रो फूल, लळकण लागी केळू कामडी ।'

दूल्हा बारातियों सहित तैयार हो गया। बारात चढने से पूर्व बंदोळी जो निकालनी है। गांव की परिक्रमा दी जायेगी। स्वर्णाभूषणो से सज्जित घोडी पर विराजमान बनडा राजा से कयमपि कम नही है। तभी तो उसे बींदराजा कहते है। एक बार तो इसके सामने आने पर राजा को भी रास्ता छोडना नीतियुक्त लगता है। इस बदोळी की भी शोभा कम नही है।

गांव भर मे प्रशासित हो घूमधाम कर बदोळी रायवर के घर आ पहुँची। अब विवाह हेतु बारात प्रस्थान करेगी। माता दूल्हे को स्तन-पान कराती है। उधर गीतेरणें घोडी के गीत गाती हैं। इन्द्रलोक से आने वाली, दूधो से पूर्णत. तृप्त (दूधा धाई), नागर-बेल चरने वाली घोडी से धीरे धीरे चलने की विनती की जाती है। घोडी की गति कुछ तेज हो है। वर का मन भी उत्कठित है, क्योकि 'तेल चढी बनडी' खडी बाट जो निहार रही है। फिर भी दूल्हा पीछे मुड-मुड-कर देखना चाहता है कि बारात मे कौन कौन चल रहे है ? सामाजिक प्रतिष्ठा का प्रश्न जो ठहरा।

बारात दुलिहन के वहां पहुँची। सभी ओर से बधाइयाँ दी जा रही है। समधी परस्पर बांहे भर-भरकर गले मिल रहे है। बारात का नाई वधू के यहां बधाई देने जाता है। आगे स्त्रियां गीत गा रही हैं—

'मथाणियै मैर सू बिड़दा आई, आय उतरी चानण चौक मे
ऊठो बनी रा माताजी बिड़द बधावो, कोरे चुडलै कसूबल काचळी।'

यहां यह उल्लेखनीय है कि जिस दिन से वर-वधू को 'पाट' बिठाते हैं उसी दिन 'बनडा' नाम से अभिहित किये जाने वाले गीत गाये जाते हैं। परन्तु उन गीतो का उल्लेख हमने पहले न करके यहां करना उचित समझा, क्योकि वधू के घर बारात आते ही बनडे गाना प्रारम्भ कर दिये जाते हैं और उधर वर के घर पर भी रात्रि-काल मे स्त्रियां एकत्रित हो बनडे गाती हैं।

बनडे के गीतो मे जीवन मे घटित होने वाली नाना प्रकार की परिस्थितियो के चित्र खीचे गये हैं। कही वर-वधू के अभिन्न प्रेम का सरस वर्णन मिलता है तो कही वधू वर से प्रार्थना करती है कि मैं सास ननद से पूर्णत तग आ गयी हूँ अत: हमे इनमे अलग हो जाना चाहिए। वर भावी पत्नी को सन्देश प्रेषित कर रहा है कि समुद्र पार हम ठहरे हुए हैं अत तुम अपने पिता से कहो कि जहाज भेजे। पर नवल बनी भी प्रत्युत्पन्नमति एव प्रतिभा सम्पन्न है। शीघ्र ही प्रत्युत्तर भेजती है कि मेरे पिता निर्धन हैं अत आप ही कोई इन्तजाम कर लीजिये। कई गीतो मे यही 'नैनी नाजु' अपना सम्पूर्ण अस्तित्व अपने प्रियतम हेतु मिटा देना

ाहती है। दाम्पत्य प्रेम का इससे उत्कृष्ट उदाहरण कहाँ मिलेगा—

'रूमाल रेसम रो हुवती थारै दिन जेबड़ली मे रैती
मूदड़ी सोनै रो हुवती थारै दिन चिट्टू में रैती
मोचड़ी पगल्या री हुवती आवै दिन पगल्यां मे रैती।'

कैसी कोमल कल्पना है! पर अपने पति को निरस्तित्व करने वाली बनी अपने बने पर कुछ तो अधिकार रखना ही चाहती है। उसे बने का पार्थक्य कदापि सह्य नहीं है—

'बना मैंदी सरीखा रावणा, बना राखूं मुठड़ी माय
बना सुरमे सरीखा लागणा, थानै राखूं पलका रै माय।'

लोक-गीत का औपम्य-विधान अभिजात्य-साहित्य के उपमानों से कदापि कम नहीं है। यदि बना साँवले रंग का है तो बनी उसे कैसे पसन्द कर सकती है? पर पर-पिता के वजनदार तर्क से (अलबा री ब्हियो आयो" रज लागी के वर सावळो) उसका क्षणिक क्रोध शान्त हो जाता है। पर दूसरी ओर यदि सखियाँ वधू को साँवले पति के बारे में चिढ़ाती हैं तो वह अपने अकाट्य तर्क से सहेलियों को पराजित कर देती है—

'सख्यां ए सांवळियो है किसनमुरार
कैईं जे तीन भवन रो राजवी।'

वह तो सदैव पिता से यही प्रार्थना करती है कि 'बाबाजी देस देवता परदेस दीजौ, म्हारी जोडी रो वर हेरजो।' ऐसे 'जोडी रै जवान' 'हीरा नै रतना पना रै पारखू' को 'हरिये बाग' में डेरा दिलवाया जाता है और ऐसे 'हरियाळे बना' की समेळे मे, तोरण पर, माया मे, चँवरी मे, सर्वत्र प्रशसा होती है। ऐसे बने की बारात यदि देरी से आये तो बनी क्योंकर सहन कर सकती है—

'म्हें थानै पूछां म्हारा हरियाळा बना
कैसा रै बुलाया मोड़ा किण विध आया।'

पर बने का उत्तर भी पूर्णत. सत्य प्रतीत होता है—

'नाजू ऐ थोथी नै गळिया मे म्हारा सेत धुड़ला थाका।'

इसी बनड़ी के लिए ही तो बनड़े ने 'ऊजड़ हाडी घाली' थी। इतना कष्ट उठाने पर बना बनड़ी को प्राप्त करने का अधिकारी है। बाळदिया जाति मे गाये जाने वाले बनडों में से एक गीत का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमे बना बनी को प्राप्त करने की लालसा प्रकारान्तर से व्यक्त करता है—

'थारै अगिया अतर रा भोला
बासना लेवण दौ
थारै पड़ै है नगारा री घोर
म्हानै डाको देवण दौ।'

बना की प्रार्थना बनी द्वारा स्वीकृत हुई। यदि बना 'पडला' खरीद लेता है और आभूषण बनवा लेता है तो बनी उसी समय हाजिर हो जायेगी।

ऐसे 'रूपे रूडे' बने को नजर न लग जाय, अत बहिन चौकी बांधकर तोरण पर जाने को कहती है। लोक-गीतो मे अन्धविश्वासो, जादू-टोनो, मन्त्र तन्त्रो को भी स्थान मिला है—

'बीरा म्हें थानें मागरवाई ओ यू कंयो
बना मचकनें तोरणियें मत जाय
क्षातीडें री निजर लागणी
बीरा रें मादळियो मतराय नें चोडी बाध।'

राजस्थानी बनडो मे दूल्हे-दुल्हिन की देह यष्टि का सौन्दर्य-चित्रण भी किया है, उनके वेश विन्यास एवं अलंकारो का भी उल्लेख किया गया है। आभिजात्य-साहित्य मे अपेक्षतया पुरुष सौन्दर्य का चित्रण कम ही किया गया है। कामिनी के कमनीय अगो को विविध उपमानो स उपमित किया गया है। पर लोक-गीतो मे स्त्री सौन्दर्य के साथ ही पुरुष सौन्दय का भी सुन्दर चित्रण किया गया है। बनडो मे गाये जाने वाले एक गीत का कुछ अश यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

बना ओ भीम सरीखा भरतीवा थे
अरजन रै उणियार मोती मैल म
म्हारी सगी नणद रा बीरा आ मोती मैल म
बना ओ सूरज सरीखा सतेज थाने राखूला किरणा माय मोती मैल मे
बना आ चाद सरीखा निरमळा राखूला तारा बिच मोती मैल मे।'

पुरुष की देह यष्टि की कान्ति का कैसा सुन्दर चित्रण है जो देखते ही बनता है। इसी प्रकार बने के साफे, तुर्रो, कठी, बाग आदि का वर्णन कई गीतो मे किया गया है। इन गीतो म बन को ऋतु के अनुरूप चौमास रो चपो, आळै रो आबो, सियाळे रो सूरज आदि विशेषणो स विभूषित करना लोक की मौलिक कल्पना है। बनडे के गीतो मे दूल्हा दुल्हिन के कई सवादात्मक चित्र भी चित्रित है। पत्नी कुछ मांगती है पर पति लोक लाज एव परिजनो के भय स उसकी मांग को पूरा करने मे अपनी असामर्थ्य व्यक्त करता है—

'बना थारो कडिया रो कणदारो
रेजा थारो कडिया रो कणदारो
म्हानें बगसाय दो ओ बनसा
बनी थू तो देखें सोई मागै
नाजू थू तो देखें साई मागै
घर रा लडमी ओ बनडी।'

पर कही-कही बनी बहुत ही तेज तर्रार नारी के रूप मे वर्णित है। उस किसी

से लाज-शरम नहीं है। वह तो खरी खरी सुनाना जानती है। सास तक को बख्शती नहीं है—

'मोटो कियो तो काई ह्वियो बूजीसा मन बनमा
आप जीमिया सूठ अर गूद मन बनमा।'

न जाने लाख-गीतों न इस गीत के बहाने कितने वर्ष पहले आधुनिक नारी के रूप को चित्रित किया है। ऐसी बनी ता बन के 'बाभोसा रो अग आकरो' कभी भी सहन नहीं करने वाली। वह तो अलग ही रहना पसन्द करती है। कभी-कभी ऐसी मनचली बनी बने म असम्भाव्य वस्तुएँ माँगकर बने के लिए समस्या उत्पन्न कर देती है—

'बना सा अगूरा री हवेली चुणाय
छाजा लगाय दो दाडम दाख रा
बनी कुळ म होवै साई माग लै
छाजा नी लागै दाडम दाख रा
बना सा धरतो करो लँगो सीवाय
सूई लगाय दी चलती रेल री
बनी अै कुळ मे हावै सोई माग
सूई नीं लागै चलती रेल री
हा जी बना अबर रो घाघरो सीवाय
धरती री लावण दिराद्यो जी
हा जी बना तारा री चूदड रगाय
बीजळी रो गोट करा्द्यो जी।'

इसी प्रकार 'पवन का पोलका' बनवाकर 'सूरज-चाँद के बटन लगाने', 'आमँ केरी चूदडी' छपाकर 'चमकती बीजळी री गोटो' लगाने, बाग मे 'हींडा मंडा' कर वासुकि नाग की तणियाँ तनवाने, समुद्र म सज लगाकर मगरमच्छ के तकिये लगाने, बिच्छू की त्रिछुडियाँ बनवाकर 'कानसळा' (कनखजूरा) की डाडियाँ डलवाने हेतु कहा जाता है। स्वर्ग से पाताल तक के, एव प्रकृति के समस्त उपकरणो के योग से एक विराट स्वरूप की कल्पना की गयी है। लोक ने इस प्रकार की कल्पनाओं एव वर्णनों के माध्यम स ही तो अनेकत्व म एकत्व स्थापित करने की चेष्टा की है। हठीली, गर्वीली एव नैनी नाजु ने बना के लिए आफत कर दो। उसकी महत्वाकाक्षा के समक्ष बने के पास पराजित होने के अतिरिक्त कोई चारा शेष नहीं रहा। कभी यही बनी टिकिट लेकर बम्बई, दिल्ली और कलकत्ता जाने को कहती है। कभी कहती है कि गर्मियो मे अँधेरी 'आवरी' मे नही सोऊँगी। वह गर्मियों मे 'काठो माळूडो' न ओढकर 'वायल रो साळू' ओढने की जिद् करती है। पर आश्चर्य ! कि इस मुखरित बनी का कर्म क प्रति ललक रखने वाला रूप भी लोक-

गीतों मे ही चित्रित हुआ है—

'सोनैं केरा चरखला ओ बना सा रेसम री गजडोर
मैला बैठी कात मू रे केसरिया कातूला भीणो सूत ।'

बनी ने अपने माता-पिता, भाई बहिन और यहां तक कि सहेलियों को भी बने के लिए त्याग दिया। इतना करने पर यह अधिकार तो उसका भी हो जाता है कि वह बने से कुछ आभूषणो की मांग करे। आत्मीय रागात्मक सम्बन्धों की पूर्ति का भला ये भौतिक अलकार क्या कर सकेंगे, पर पीहर-प्यारी का मन इस बहाने ही प्रमुदित हो जायेगा कि चलो यहां भी उसकी सुनवाई करने वाला कोई है तो सही। कैसी स्वाभाविक अभिव्यक्ति है—

'सोनीगर रै जाजो रायजादी रै गैणला घडावजो
भूल नही जाणा भूल नही जाणा
बडो पिलग भर्‌यो दरियावसो
नींद नही आवै नींद नही आवै
म्हारा डब डब भरिया नैण उदासी छावै
बना म्ह तो छोड्या माय'र बाप
छोटो सो म्हारो भाई छोटो सो म्हारो भाई
म्ह छोड्यो सहेल्या रो साथ, आप सग आई।'

केवल बना का आगमन ही उस गम्भीर सागर मे उसे डूबने से बचा सकता है। पति को बुलाने का कैसा ठोस तर्क है। और यही बनडी जब गहनो को पहनकर चलती है तो उसके गहनो की झनकार बने को 'बेजा बात' प्रतीत होती है, क्योकि ये गहने उसकी माता और भाभी ने ता कभी भी नही पहने थे। यही बनी सावन आने पर अपने पीहर जाने के लिए जिद् भी करती है।

बने के गीतो में मरुभूमि म पानी की कमी की ओर भी सकेत किया गया है। बनी सात बजे पानी को गयी तो वापस आते आते उसे साढे सोलह बज गये। कैसी अजीब स्थिति है ! विवाह के दिन भी बनी को पानी लेने भेजा गया। यही तो लोक-गीतो का विस्तार है। यहां समाज के प्रत्येक पहलू एव जीवन की हर एक परिस्थिति मे पैठकर विचार किया जाता है। लोक-गीतो की रानी तो पानी भरने मे अपना गर्व समझती है। इसस आभिजात्य-साहित्य की राज महिषी की भांति उसके आत्माभिमान पर ठेस कदापि नही लगती। बनी को सब-कुछ सह्य है पर बना परदेश चला जाय तो वह कातर मोर की भांति 'कुरळाणै' लग जायेगी। नौकरी का नाम सुनकर ही नवल बनी की आंखो से आंसुओ की घटा उमड़ पड़ी। यौवनोन्मत्ता अकेली कैसे रह सकती है—

'अग नी मावै काचळी, वडिया रळकता केस
सूतो नी मावै सेज मे, ज्यारा साजन रेवै परदेस।'

वही समझदार बनडी नौकरी पर जाने की आवश्यकता को समझती हुई पति को परदेस जाने के लिए तो कहती है पर पूर्व देश की चाकरी जाने के लिए सदैव मना ही करती है—

'बना जावो सब काई दस पूरब मत जाइज्यो
पूरब है पातरिया रो देस नाजू रो जीव उरपणो।'

समाज ने बने को दोनो पत्नियो को प्रसन्न रखने की राह भी बतायी है। उसे सामाजिक शिक्षा दी जाती है कि यदि दोनो के साथ सद्व्यवहार रखोगे तो तुम्हारे गृहस्थ उपवन मे कभी भी पतझड न आ सकेगा। और बना भी समाज की नीति को मान गया—

'नेनकडी म्हारे बाळजिये री पोर, बडोडी सिर रो सेवरो
नेनकडी म्हारे सेजा रो सिणगार, बडोडी सोवे मेल मे।'

बना अपनी बनी के लिए हाथी-दांत का चुडला, पूर्व देश का पडला, दूर देशों के दुपट्टे, मँहगे मोती, स्वर्णाभूषण, सोसनिया साडी आदि अनेकानेक वस्तुएँ लेकर आया है। तो बनी भी अपने भाग्य को सराहती है—

'इण मोरया मूधी रो भाग भले री
हेमा रो हेडाऊ बर पायो जी बना सिरदार।'

बने के गीतो में कही कही हास्यास्पद चित्रो की अवतारणा भी की गयी है। प्राय बना एवं बनडी के रूप, रग, कद आदि को लेकर हँसी मजाक की जाती है—

'बनडे रे हाथ डोरी अे
बनडी बनडे सू गोरी अे
बनडे रे हाथ कूची अे
बनडी बनडे सू ऊची अे।'

पर एक वधू पक्ष मे बनडे किसी भी समय गाये जा सकते है जबकि उस अवसर-विशेष से सम्बन्धित गीत न हो। परन्तु कुछ 'बनडो' का सम्बन्ध अवसर-विशेष से होता है। यहाँ एक गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है जिसे सुहागरात के पश्चात ही गाया जाता है—

'पूछे भाभीजी हस-हस बात
राते कौ सेनाणी बने राजा री, देसडो जी म्हारा राज
मेता भाभीजी आवे म्हाने लाज
दुपटे रे मोलावे साडी से चढ़िया जी म्हारा राज।'

ज्यो ही गीतेरणें यह सोचने लगी कि विवाह के अन्य कार्यो को करने का समय सन्निकट है तो उन्होने 'बनडे' गाने छोड अन्य तत्सुल्य सम्बन्धी गीतो को 'उगेर' दिया। बारात तो आयी हुई थी ही। स्नेह-सम्मेलन का समय हो गया। बाराती एव कन्या-पक्ष के लोग एक स्थान पर एकत्र हो रहे हैं। दुल्हिन के लिए

लायी गयी 'पडलै' की सामग्री बारात के साथ आये नाई के हाथ दुल्हिन के यहाँ भेज दी गयी। आगे स्त्रियाँ वर-वधू की अभिन्न प्रीति के निर्वाह का गीत गा रही थीं—

'जी ओ बना जोमी जी रे जाय, म्हारै घरै आवज्यो
जी ओ बना जैंडी बाळापै री प्रीत बुढापै में राखजो।'

जब 'पडलै' की सामग्री नाई सुपुर्द कर देता है तो पडले के गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में प्रमुख रूप से पडले की सामग्री का उल्लेख रहता है। इस सामग्री में *हिंगळू, टीकी, चूड़ियाँ, मेहदी, मजीठ आदि वस्तुओं का होना तो आवश्यक है* पर साथ ही आभूषण, दुल्हिन के कपड़े पनोती आदि भी हुआ करती हैं।

'पडला' स्नेह-मिलन से पूर्व पहुँचा दिया जाता है। स्नेह-मिलन को 'सम्मेळा' कहा जाता है। यहाँ समधी परस्पर अफीम, सुपारी, इलायची आदि की मनुहारें करते हैं। इस समय गाये जाने वाले गीतों में बारात की शोभा का वर्णन रहता है। साथ ही बारातियों से मजाक करने के भाव भी भरे रहते हैं। एक गीत उद्धृत किया जा रहा है—

'सात सुपारी लाडा निमोळा रो गटको
काणा खोडा जानी लाया कांई लायो गटको।'

'सम्मेळै' के पश्चात दूल्हा तोरण पर आता है। कुछ जातियों में दूल्हे के साथी उसके साथ विवाह-मंडप तक आ सकते हैं पर कुछ पर्दानशीन जातियों में साथियों का गमन निषिद्ध है। तोरण कितना ऊँचा है? उसके निर्माण में कैसी लकड़ी प्रयोग में लायी गयी? आदि तथ्यों का उल्लेख तोरण के गीतों में रहता है।

तलवार से तोरण को सात बार स्पर्श किया जाता है। इस अवसर पर गाया जाने वाला एक बहुत ही महत्त्वपूर्ण 'हाडोराव' नामक गीत है जो कुछ जातियों में गाया जाता है। इस गीत की सांगीतिक धुन विशिष्ट प्रकार की ही है। इस हाडेराव को निरखने हेतु गीतकर्ते वर्षा में सोने की छतरियां, शीत काल में सिरख-पथरणां एवं ग्रीष्म काल में रेशम के तम्बू लेकर आते हैं। इसका अंश मात्र ही यहाँ उद्धृत है—

'आगी पाछी हो जा ओ निरखण दीजो हाडोराव
सीयाळै रा सी पडेला ओ हाडोराव
सरद पडेला ओ वेंडोराव
सिरख पथरणा साथै ले जो रे।'

इसके बाद दूल्हे को छोटे सालों के साथ बैठकर 'कुंवर-कलेवा' करना पड़ता है। दूल्हा कुँवर कलेवा नहीं करना जानता। उसके साले का नाम लेकर कहा जाता है कि आप बीदराजा को कलेवा करना सिखायें। स्त्रियाँ तो हास परिहास हेतु ऐसे अवसरों का ही चयन करती हैं—

'कवर कलेवो लाडो जीम नी जाणें
दोडो ओ मायूजी साळा जीमणो मिसावो।'

तोरण पर स्थित दूल्हे की कांकी-सास एवं सास द्वारा आरती उतारी जाती है। आरती करते समय भी गीत गाये जाते हैं जिनमें प्रमुख रूप से जवाई की सर्व-गुण-सम्पन्नता का उल्लेख रहता है। सास तू पहले अपने दामाद को निरख। बाद में भले ही उपालम्भ देना। वह हीरों का पारख् है, 'हमा रो हेडाऊ' है और 'जवाई चतुर' है। जब आरती सम्पूर्ण हो जाती है तो 'कामण' के गीत गाये जाते हैं। कामण वशीकरण मंत्र का ही लोक-प्रचलित नाम है। ऐसी मान्यता है कि कामण करने के पश्चात वर वधू के ही वशीभूत होकर रहता। अन्यथा वह परदारगामी हो सकता है। दूल्हे को नजर लगने से बचाने के लिए भी कामण किये जाते हैं। इस सम्बन्ध में 'राजस्थान के लोक गीत' के सम्पादक-द्वय के विचार विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं—

'प्रकृति स्वरूप स्त्री प्रेम की आदिदायिनी है। वह अपने प्रेम से पुरुष को वशीभूत कर लेती है। यही प्रेम का वशीकरण है—जादू है।' इसी को कामण कहते हैं, जिसके आतंक में पुरुष राईवर थर-थर कांपने लगता है। फिर यौवन की प्रथम आभा से स्त्री में एक शक्ति का प्रकाश होता है, जिसके आगे पुरुष का पुरुषत्व मोम होकर पिघल जाता है। प्रेम और वशीकरण जितना ही ज्यादा प्रभावशाली हो, कामण जितना ही ज्यादा घुले उतना ही अच्छा। पति को व्यसनों से विलग करने हेतु भी कामण किये जाते हैं। यहाँ तक कि एक गीत में तो पति की अत्यधिक निद्रा से व्याकुल पत्नी द्वारा कामण करने का उल्लेख मिलता है। इन गीतों में कामण करने से असम्भाव्य बातों का भी सम्भव होना वर्णित रहता है। कामण का एक गीत प्रस्तुत है—

'नवल बनी रा बाभीजी पधारिया
सो कामण वे जाणें
आधी रोटी आन जीमावें
मथरी नें पगा चलावें
अधरें नें अधर नचावें
काचें तातण कुओ जुतावें
सौ कामण रा परचा पावें।'

तोरण पर से दूल्हे को वधू के घर में माया के समक्ष बिठाया जाता है। यहीं पर वर एवं वधू का 'हथळेवा' जोड़ा जाता है। वहाँ से दोनों का आगमन मंडप में होता है। मंडप में दोनों विराजमान होते हैं। ब्राह्मण मन्त्रोच्चार करता है। फिर 'फेरे' होते हैं। कन्यादान, गऊदान का भी यही समय है। विवाह की विधि को सम्पन्न करने के पश्चात वहाँ से दूल्हा-दुल्हिन जनवासे में जाते हैं। यहाँ के

कुछ अंश उद्धृत हैं—

(१) चँवरी निर्माण का गीत—

'सोनें रूपें री चार थूंटिया घड़ावौ
केसर गार घलावौ ओ राज
पचरंग रेसम री तांणो तणावौ
अगर चन्नण री समधिया मगावौ
गावौ घिरत मगावौ बत्तीसों मिळावौ
पचरंग गुलाल मगावौ ओ राज।'

(२) हथळेवौ जोड़ते समय का गीत—

'हाथ ज देवी म्हारी राज महेनी लाज महेली
हाथा सू हथळेवौ जोडौ ओ राज।

(३) 'फेरे' के समय गाया जाने वाला गीत—

'पैले तो फेरे तो बनड़ी बाभोसा री धीव
दूजे तो फेरे बनड़ी काकोसा री भतीजी
तीजे तो फेरे बनड़ी वीरोसा री बैनड़
चौथे तो फेरे बनड़ी हुई रे पराई।'

(४) कन्यादान के समय का गीत—

'धरहर धरहर धरती धूजी
हुई है धरम री बेळा ओ राज
हस्तिया रा दान बाई रा बाभोसा देसी।'

(५) चँवरी से उतरते समय का गीत—

बनी रा बाभोसा थारा ओरय्या सभाळ
ओरय्या साजण रम गिया।

(६) चँवरी से प्रस्थान करते समय का गीत—

'मोरियो अे माय ! म्हारै वीरा री बैनड़ नै माडे लिया जाय
किण जी री सोवन मोरियो किण जी री ढळकत ढेल
बारठ राजा रो सोवन मोरियो रतनू राजा री ढळकत ढेल।'

स्त्रियों के कल कंठ से रात्रि का नीरव वातावरण मुखरित हो उठता है। राजस्थान का सुप्रसिद्ध लोक गीत जला इस समय ही गाया जाता है। 'जले' के अतिरिक्त और भी गीत गाये जाते हैं। इनमें भी प्रायः दूल्हे की दानशीलता का वर्णन रहता है। उसके डेरे को निरखने की उत्कट अभिलाषा व्यक्त की जाती है।

'जले' नाम से गाये जाने वाले इन गीतों में भी प्रिय को चाकरी पर जाने से मना किया जाता है। लोक गीतों में वीरोत्पन्न नायिका का उल्लेख मिलता है तो

साथ ही ऐसी नायिका भी मिल जायेगी जो प्रियतम से क्षण-भर को भी विलग रहना ही नहीं चाहती। वह तो ऐसे देश को बुरा बताती है जहाँ के वासी आरूढ यौवना को छोड़कर नौकरी पर चले जाते हैं—

'देख्यो जलाजी थारोडो देस
चढतो जवानी चढग्या चाकरी थे लोय।'

तो इन गीतों में प्राणेश्वरी के मान-प्रसंग के चित्र भी देखे जा सकते हैं—

'देख्यो मिरगानैणी थारोडो हेत
रग की वेळा में धण माड्यो रूसणो अे लोय।'

दोनों की उक्तियाँ पूर्णरूपेण स्पष्टोक्तियाँ हैं। एक-दूसरे को दोषी बताने में दोनों पूर्ण पटु हैं। यही तो दाम्पत्य का मूलाधार है। यह हास-परिहास ही तो उनके भावी जीवन को आनन्दमय बनाने में सहायक होगा। देखिये! वही मानिनी मान त्यागकर किस सहजता से प्रत्युत्तर देती है—

'काचा नै दूधा रो ढोला कैणो रे उफाण
जोडी रा भवर सू कैणो रे रूसणो अे लोय।'

बारात के डेरे पर वधू की 'खोळ' भराई जाती है। अर वही ठहर जाता है। वधू स्त्रियों के साथ अपने घर आती है। आते समय स्त्रियाँ बारातियों की हँसी करने वाले गीत गाती हैं, जिन्हें 'जानियाँ री गाळाँ' कहा जाता है। एक गाळ का कुछ अश उदाहरणीय है—

'आळे में पड़ियो मूस जी म्है घर चाल्या
जानिया नै लागी भूख जी म्है घर चाल्या।'

दूसरे दिन सवेरे जवाई वासी 'जवारी' पर जाता है। वधू के सम्बन्धियों के घर जाकर दूल्हा 'मुजरो मालूम' करता है। प्रत्युत्तर में 'मौळियै रा वारणा नै आसीस' के साथ रुपये व नारियल दिये जाते हैं। यहाँ यह स्मरणीय है कि यदि दूल्हे के पिता का स्वर्गवास हो चुका होता है तो उसे 'मोळियै' के स्थान पर 'पाग रा वारणा लेयनै आसीस' दी जाती है। दिन में दूल्हा-दुल्हिन विविध देव-स्थानों की परिक्रमा देने जाते हैं। साथ की स्त्रियाँ गीत गाती रहती हैं। दूल्हे को धीरे-धीरे चलने के लिए कहा जाता है। उसके वस्त्राभूषणों की प्रशंसा की जाती है। एक गीतांश उद्धृत है—

'धीमा चालो ओ बिरज रा वासी
थारै सग चालै राधा राणी
सिरोसावजी नै तुर्रो सोवै
डोरां पर निजर हमारी
धीमा चालो ओ बिरज रा वासी।'

उक्त सन्दर्भ में यह ज्ञातव्य है कि 'जातो' के समय जिस देवी-देवता के

मन्दिर को जाया जाता है, उसका गीत गाया जाता है, पर इन गीतो का विवेचन रातीजोगे के गीतों मे किया जायेगा। क्योकि अवसर की उपयुक्तता तभी सिद्ध होगी।

बारात के लिए भोजन तैयार है। दूल्हा दुल्हिन भी 'जातों' से निवृत हो आये है। बारात को जीमने बुलाया जाता है। बारात के जीमते समय बहुत सारे गीत गाये जाते हैं। इन गीतो मे 'सगां री गाळियां' का प्राधान्य है। इन गीतो में समधी की हँसी उड़ायी जाती है। उसकी विद्रूपता की अभिव्यक्ति की जाती है। उसके माता-पिता की अलग-अलग जातियाँ बताकर उस पर करारा व्यग्य किया जाता है। इन 'गाळियों' को दो वर्गों म रखा जा सकता है—(१) विवाहित सगो की गाळियाँ, और (२) अविवाहित सगो की गाळियां। विवाहित सगो की गाळियो मे प्रमुख रूप से सगे की पत्नी का किसी दूसरे के साथ भाग जाने का, गुप्त प्रेम का उल्लेख रहता है। दूसरे प्रकार की गाळियो म अविवाहित का कुतिया, बिल्ली आदि के साथ विवाह सम्पन्न किया जाता है। फिर उसके गृहस्थ जीवन की कठिनाइयो का दिग्दर्शन कराया जाता है। इन गीतो का प्रमुख उद्देश्य समधी का परिहास करना ही होता है। इसके लिए नानाविध कल्पनाएँ की जाती हैं ताकि श्रोता मार हँसी के लोट-पोट होने लगें। एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

(१) विवाहित सगो को गाई जाने वाली गाळ—

'नवा नगर सू गाडी आई
व्है नगारा री ठोर ठोर
माय ब्याईजी वाळी बैठी आई
ताळा दीधी ठोर ठोर
मरजो टोपी वाळो रे
हाथ पकड घर म लेगो
ताळी दीधी ठार ठोर
अे छै र मीना धर म राखी
अे नवैं मीनैं पेट पेट
मरजो टोपी वाळो रे।'

(२) अविवाहित सगो को गाई जाने वाली गाळ—

'सगा जी नैं काळी कुत्ती परणावो जी नारायण जी परमेसर जी
हथळेवो कीकर जाडैं जी नारायण जी परमेसर जी
सगो जी रो हाथ कुत्ती जी रो पजो इऊ हथळेवो जोडैं जी
अैं फेरा किण विध खासी जी नारायण जी परमेसर जी
आगै सगा जी नैं लारैं कुत्ती जी लप लप फेरा खासी जी।'

इस गाळ का और वैवाहिक विधानो का नाम ले-लेकर और बढाया जाता

है। इस प्रकार की गाळों में 'म्हारो रडवो नाम मेट दो' गाळ बहुत प्रसिद्ध है।

बारात भोजन से निवृत हो गयी। घरवाले भी इसके बाद में अपना सारा कार्य निपटाने में लगे सो सारा काम कर लिया। गृहकार्यों से निवृत हो स्त्रियों ने दूल्हे को बुलाया। उसके आने पर अनेक प्रकार के गीत गाये। उससे बातचीत की। इस समय गाये जाने वाले गीतों को 'जवाई रा गीतड़ला' और 'कूकडला' कहा जाता है। यह भी ध्यान रहे कि जब-जब भी जवाई ससुराल आता है, तब भी ये ही गीत गाये जाते हैं। पर इन गीतों का प्रथमतः प्राकट्य इस समय (जवाई को तेड़ने के समय) ही होता है, अतः अपने वर्गीकरण के अनुसार हम इसका यही विवेचन कर रहे हैं। इस समय के अतिरिक्त रात्रि-काल में भोजनोपरान्त भी दूल्हे को बुलाकर ये गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में जवाई को गाई जाने वाली गाळियों का भी अपना महत्त्व है। इन गीतों में कहीं जवाई को ससुराल आने के लिए निमन्त्रण दिया जाता है, तो कहीं ससुराल में की जाने वाली आवभगत का उल्लेख मिलता है। संयोग और वियोग का चित्रण भी इन गीतों में पाया जाता है। नौकरी पर न जाने की विनती की गयी है और सन्देश प्रेषण भी किया गया है। चौपड़ आदि में खेल का दृश्य भी दिखाया गया है और पति के व्यसनों का विवरण भी प्रस्तुत किया गया है। पति पत्नी की वेश सज्जा एवं अलंकारप्रियता को भी बताया गया है। सास-बहू को झगड़ते दिखाया गया है तो भोली-भाली वधू का भी चित्र खींचा गया है। अपने पति को दारू पिलाने वाली कलाळी को बाजूबन्द देने वाली पत्नी के दर्शन भी यहीं होंगे और कलाळी से मनुहारिया दारू रखने वाली पत्नी भी यहीं दिखायी देती है। प्रियतम की निद्रा में बाधा डालने वाले मुर्गे को भी इन गीतों के माध्यम से 'लूण हरामी' सिद्ध किया गया है और कपटी साधुओं, दिखावे के भाई बनकर रहने वाले बनजारों, मणिहारों के कुकृत्यों का भंडाफोड़ भी इन गीतों के माध्यम से हुआ है। हरे-भरे नींबू, नींब, वट, बबूल की प्रतीकात्मकता से भरे-पूरे परिवार का चित्रण भी इन गीतों में ही हुआ है। पीहर-प्यारी की 'ओळू' का उल्लेख भी यहीं मिलेगा और क्षणिक भावावेश में आकर नट के पीछे चली जाने वाली की व्यथा भी यहीं व्यंजित हुई है। स्त्री की आभूषणप्रियता की अभिव्यंजना के साथ-ही साथ मनुहारिया दारू की व्यंजना भी इन गीतों में ही देखने को मिलती है। इन गीतों ने ही सामाजिक कुरीतियों का विरोध किया है, अनमेल विवाह की हँसी उड़ायी है और दूसरी तरफ जवाई से प्रसन्न होकर उसे छकाने के लिए पहेलियाँ पूछी हैं।

मिसरी से भी मीठे बाईजी के सायबे के लिए माले माळिये सजा रहे हैं। उनके लिए बाग लगाये जा रहे हैं, शायद वह निरखने के बहाने ही आ जाये। बेळ लगायी जा रही है कि स्यात् वह दातुन करने ही उधर आ निकले। इतनी उमंग के साथ जिस जवाई को आमन्त्रित किया जाता है उसे किस प्रकार रखा

जायेगा, उसका उत्तर निम्न गीत मे सहज ही मिल जाता है—

'राज थानै सियाळै री सूरज करनै राखा
राज थानै ऊनाळै री आंबो करनै राखा
राज थानै चौमासे री चणो करनै राखा
राज थानै बरसाळै री बादल करनै राखा
राजा थानै हिरदै मायलो जिवड़ो करनै राखा ।'

'सायबा री सताई' गोरी 'आभै री बीजळड़ी' बनना चाहती है तो मारू का 'इन्दरियो' बनना एव गोरी के 'कोयलडी' बनने पर मारू का 'सूवटिया' बन जाना स्वाभाविक ही है। जब प्रियतम प्रिया का विरह होना सहन नही कर सकते तो प्रियतमा कब चूकने वाली है। उसने भी अपने अस्तित्व को मिटा देने की घोषणा निम्न पक्तियो मे कर दी—

'जी धण फूला जैडी फूठरी
राज रा पेचां माय रास
जी धण गुरमै जैडी सांवळी
राज रा नैणा मांय रास
जी धण पाना जैडी पातळी
राज रा मुखड़ै माय रास ।'

ऐसे अभिन्न जोड़े के साहचर्य को यदि शयन समय राईका कर्त्तव्य-बोध की बात बताकर तोडना चाहे तो ललना का यह शाप समुचित ही प्रतीत होता है—

'मरजो राईका थारोडी घर नार
रग री रळी मे हेलो मारियो ।'

जिस नीबूड़े, बावळियै, नीब, बड़लै आदि का दूध स सींचा था, जिसकी रक्षा हेतु मक्खन की 'पाळ' बनायी थी—उसी की ठडी छाया मे सुख भर नीद लेते समय उठकर जब पति कर्त्तव्य को उत्कृष्ट बताकर नौकरी पर जाने की बात कहता है तो उस समय होने वाले दुख को कोई भुक्तभोगी ही जान सकता है। पत्नी पति से उसके पिता, बडे-छोटे भाई, बहिन के पति एव सेन पर काम करने वाले हाळी को भेजने की विनती करती है, पर पति अपने अकाट्य तर्कों से उसे निरुत्तर कर देता है। कुसुमादपि मृदूनि यौवनारूढा ने अपने हृदय का वज्रादपि कठोर कर लिया, पर पति से कुछ चीजो पर रोक लगाने हेतु कहा। परोक्ष रूप से विरहो-द्दीपक उपादानो का कैसा सजीव चित्रण किया गया है—

'जे थे पन्नामारू आळग जाय वारी धण वारी ओ हजा
बरज चढौ ना आभा बीजळी जी राज
बीजळडी घण बरजी ना जाय वारी धण वारी ओ हजा
सावण भादवै अे चमकै बीजळी जी राज

जे ये पन्नामारू ओळग जाय वारी घण वारी ओ हजा
बरज चढो ना पाडोसण री दिलवी जी राज
पाडोसण री दिवली अे गोरी घण बरज्यो ना जाय वारी घण वारी
ओ हजा

वारा परण्या अे गोरी घर बस जी राज।'

जवाई के गीतो मे गाये जाने वाले बनूवो, पीळो, चूदडी, बीणीटियो, एक-थभियो महल, नीबूडो, नीमडली, बडलो, बादळियो आदि गीतों में प्राय भाव-साम्य है। प्रेयसी स्नेह-स्निग्ध आक्षेपोक्तियो द्वारा प्रवास-गमनोन्मुख पति को रोकना चाहती है। इस सम्बन्ध मे 'राजस्थान के लोक-गीत' के सम्पादक-त्रय के विचार उल्लेख्य हैं—

'प्रेम और कर्तव्य मे सदा लडाई ही बनी रहती है। प्रेम जीते तो बेचारा पुरुष कायर कहलाता है और कर्तव्य जीते तो हृदयहीन।'[1]

केवल एक प्रियतम के बिना उसका जीवन इस प्रकार से सूना हो गया है जिस प्रकार से नीर के बिना सरोवर सूना हो जाता है, चाँद बिना रात सूनी होती है, मोर बिना वन सूना लगता है, बिना नाग के बाम्बी सूनी लगती है और घटा बिजली के बिना सूनी लगती है। इस सूनेपन को मिटाने वाले के आगमन का पूछने वह जोशी के पास जाती है। पर ज्यो ही जोशी पीपल के जितने पान हैं उतने दिनो में प्रियतम के आने की बात कहता है तो वह उन्मत्त-यौवना पीपल के पेड मे ही आग लगा देने को कह देती है। उसका तो जीवन रूपी छप्पर दिनोंदिन पुराना पडता जा रहा है, दिनो की गणना करते-करते अगुलियो की रेखाएँ तक घिस गयी हैं, फिर वह इतने सारे दिनो तक कैसे प्रतीक्षा कर सकती है? वह विरहिणी तो देह-दग्धकारी पापी चन्द्र को भी बदलो मे छिप जाने को कहती है। जिस प्रकार मे पीपल फून के लिए, फागस फल के लिए मूक रुदन करते हैं उसी प्रकार प्रियतमा अपने श्याम के लिए 'झुरती' है। 'सुरंगे सावण' और 'सुहेली तीज' के दिन तो 'किम किध धाम्ू धीज' और 'बादीला ओळू आवै जी' कहना उसके मर्म का परिचायक है। इस अवसर पर गाये जाने वाले 'सपने' के गीतों म विरहिणी के व्यथित हृदय की अभिव्यक्ति हुई है। पर कही कही इस विरहिणी द्वारा किये जाने वाले अजीब सन्तोष का उल्लेख भी हुआ है। उसे यदि प्रवासी प्रियतम याद करता रहेगा तो भी वह अपने जीवन को धन्य समझ लेगी। अत जवाई के गीतो मे याद करने की बात सर्वत्र दुहरायी जाती है। कैसी अपूर्व आराधना है। विरह के मर्मान्तक व्याघात को कमनीय कलेवर पर झेलकर भी ऐसी इच्छा करना स्त्री के सामर्थ्य की ही बात है—

---

१ राजस्थान के लोक-गीत, भाग १, स० ठाकुर पारीक एव स्वामी, पृ० २७९

'जंवाई मा म्हानैं आछा लागौ सा
थाळ अरोगना-चितारजो जी ढोला
मर्वे मर्वे मर लीजो याद
मारुजी म्हानैं वाल्हा लागौ सा।'

विरह के साथ जवाई के गीतो मे सयोग शृंगार का भी बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है। हिंगळू के ढोलिये पर दळ बादळ की सेज बिछाकर मदभरी गागर के रूप मे गोरी को कई गीतो मे चित्रित किया है। मदभरे प्याले को लिए सायधण सदैव सेवा मे तत्पर रहती है। सुदूर से आये प्रियतम द्वारा धण को कठ लगाने के अनेक चित्र इन गीतो मे मिलते है। कई गीतो मे लक्षणा के माध्यम से केलि-क्रीडा की ओर इगित किया गया है—

'केसर कयारी लूटो कमधजिया
सेजा साडी लूटो लसकरिया।'

जवाई के गीतो मे गाये जाने वाले 'ओळ' नामक गीतो का भी विशिष्ट स्थान है। ऐसे ही एक गीत मे ओळू की व्यापकता एव विशदता का विवेचन किया गया है—

'थारी तो जवाई राजा ओळू म्हा कर म्हारी करै न कोय
× × ×
हिवड़ै ओळू रा हळ बूआ, नैणा मे बूठा मेह।
बीमा रा बिगताऊ जुगताऊ जुगवाल्हा थारी ओळू आवै जी राज।'

ऐसे प्रिय जवाई के आने पर उसके लिए 'तन री तासळी' मे 'मन की मनुहार' की जाती है। जवाई के गीतो मे सुखी परिवार के भी अनेक चित्र खीचे हुए हैं। 'सपनौ' नामक ऐसा ही प्रतीकात्मक गीत है—

'हस सरोवर गोरी पीर तुम्हारो जी राज
मान सरोवर थारो सासरो जी राज
आगणियै री चौक कवर थारो जी राज
कूभ कळस थारी कुळ बहू जी राज
महला मायलो दिवलो कत थारो जी राज
दिवलै री जोत सायवणी जी राज।'

इन गीतो मे पति-पत्नी के हास-परिहास का वर्णन भी देखने को मिलता है। प्रियतमा प्रिय को जोधाणे जाने से मना करती है क्योकि कही वहाँ की पातरियाँ उसे विमोहित न कर दें, तो प्रिय पत्नी को पीहर जाने से रोकता है क्योकि वहाँ सहेलियाँ उसे विमोहित कर देंगी। जवाई के गीतो मे पुरुष-सौंदर्य का अद्वितीय चित्रण हुआ है। इनमे सास-बहू के झगड़ने का भी उल्लेख हुआ है।

उक्त 'जवाई' के गीतो के अतिरिक्त जवाई को भी कुछ गालियाँ गाई जाती

हैं। जिनमे जवाई को माता का दूसरो के पीछे भाग जाने का वर्णन होता है। जवाई को अनेक पिताओ का पुत्र बताया जाता है। कही जवाई को बालक के रूप मे बताकर उसे बालको जैसे आभूषण पहिनाने की बात कही जाती है। कही वधू को बडी व वर को छोटा तथा कही वर को बडा व वधू को बहुत छोटी बताया जाता है। कही जवाई के कपडो और आभूषणो को मांगी हुई चीजें बताया जाता है। कही जवाई के परिजनो को भांड और नटो की भांति नृत्य करते दिखाया जाता है। एक गाळ उदाहरण हेतु प्रस्तुत की जा रही है—

'हां ओ जवाई सा माय्या ताय्या मली तुर्रा काई लाया सा
ओ तो बजाजी कहीजे थारो बाप चिरताळी रा
आडो डोडो निवरा सू काढ जोरो सा।'

विवाह की दूसरी रात वर को श्वसुर के गृह मे ही वधू के कक्ष मे सुनाने हेतु बुलाया जाता है। इस रात को सुहागरात कहा जाता है। वर को बुलाने के लिए जब उसका साला जनवासे की ओर जाता है तो इधर घर म औरतें गीत गाती हैं। सुहागरात के लिए बुलाने हेतु गाया जाने वाला एक गीत प्रस्तुत किया जा रहा है—

'सायीडा थे परणिया छो नै क्वारा
म्हारा गढपतिया नै भेजो वधू नी राज
बाळक वनी रै मैना मे हीरा परखण मेलो वधू नी राज
नवल वनी रै मैना मे दारू री मनवारा
प्यारा पीवण मेलो वधू नी राज।'

कक्ष मे आने पर वर वधू एक साथ खाना खाते हैं। कुछ मदिरा सेवन करने वाली जातियो मे मद्य पान की भी प्रथा है, इसका उल्लेख भी एक गीत म मिलता है—

'बोतल तो निवरा करे, प्यालो करे पुकार
सायधण ऊभी अरज करे, थे पीवो राजकवार, रगडे री रातडली।'

इस समय गाये जाने वाले गीतो म मुँह देखन की प्रथा का भी उल्लेख मिलता है। वधू का घूंघट हटाने के लिए वर बहुत प्रार्थनाएँ करता है। उसे नकद रुपये व गहने देता है तब कही जाकर वधू घूंघट हटाती है—

'वनो थारै लाग रह्यो जवाजोत
मोनीडा रा लूब गोरी सो मुखडो निरखस्या
सुणो सा साजनिया री धीव
घूघट पट खोल दो वनडी हो जी राज।'

उसके पश्चात वधू को पितृ गृह मे 'सीख' देते समय एक अलग प्रकार के गीता को गाया जाता है। इन गीतो को 'आळ' के नाम से भी पुकारा जाता

है। करुण रस की धारा इन गीतो मे सर्वत्र प्रवहमान रहती है। वधू के परिजनों का करुणा विगलित हृदय इन गीतो के माध्यम से आठ-आठ आंसू रोया है। अपने आम्र-वन मे कल कूजन करने वाली कोयलडी को आज सगो का सूवटिया ले जा रहा है। किसका हृदय ऐसे मे धैर्य को धारण कर सकता है। इस समय गाये जाने वाले गीतो मे कोयलडी, मोरियो ओ माँ, ओकर तो पन्नामारू घुडला पाछा घेर, कोई ओळूडी तो आवे माताजी रै हेज री, सूरज ओ सूरज राजा मोडो सो उग जाय, चढती बाई रै होसी माम्हो तावडो आदि गीत अत्यधिक करुणाजनक हैं। कोयलडी नामक गीत का कुछ अश यहाँ उदधृत किया जा रहा है—

'आवा पाका ओ आवली
मखूडा लैरा साथ कोयलडी सिध चाली
म्हू थानै पूछा म्हारा रसान बाई
ओ इतरो वाभासा रो लाड छोड'र बाई सिध चाल्या
हे आयो सगा जी रो सूवटो
ओ लेग्यो टोळी मा सू टाळ
छोड र बाई सिध चाल्या।'

कोरी कोरी मटकियो मे जमाये दही को पिलाकर अच्छे शकुनो के साथ बारात को विदा किया जाता है। पीहर से विदा होते समय लडकी को खाना खिलाकर भेजते हैं। क्योकि इस प्रदेश मे ऐसी मान्यता है कि सरोवर पर जाकर भी तृषित रहने वाले एव पीहर म ही भूखी जाने वाली स्त्री की अन्यत्र कही भी इच्छापूर्ति नही होती। वधू वर के वहाँ पहुँचती है तो उसे गीतो के साथ बधाया जाता है—

'बाज्या रे बरगू ढोल
मथाण्यै नगर बधावणा
करो नी प्यारा माई कोड
पूत परण घर आविया।'

इस समय गाये जाने वाले बधावो मे वर के समस्त परिजनो का नाम लें-लेकर उनकी महत्ता प्रदर्शित की जाती है। ज्यो ही वर-वधू गृह के मुख्य द्वार पर पहुँचते हैं तो बहिन द्वार रोककर खडी हो जाती है। वह द्वार-रोकाई के समय क्या क्या लेकर रास्ता देगी, इसका उल्लेख निम्न गीत मे हुआ है—

'हू तो तिलक करन्ती वीरा टोडो जी मागू
चावळ चाढत मेडतो
हू तो कापड नै गुजरात मागू
काठा गवा री गूगरी।'

बहिन का नेग चकाकर वह गृह मे प्रविष्ट होता है। वहाँ वधू वर द्वारा

अव्यवस्थित किये जाने पर थालियो को पुन एकत्र करती है। इसे 'थालियाँ चुगणी' कहते हैं। इस प्रकार सातवी बार वधू थालियो को पकड़कर बैठ जाती है, उस समय सास कुछ आभूषण थाली मे डालती है तब वधू थालियाँ छोड देती है। इस समय गाये जाने वाले गीत मे वधू वर के सम्बन्धियों के साथ अपना सम्बन्ध भी स्थापित करने की याचना करती है। उदाहरण स्वरूप कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत है—

'म्हारी बड़बड ओ नवरग ओ
थू तो ओ घर ओ वर माग ओ
थू तो सुसरो सगतीदान जी माग ओ
थू तो सासू आसियां राणी माग ओ।'

तदनन्तर सभी सम्बन्धियों के क्रमानुसार नाम लिये जाते हैं। इसके पश्चात रात्रि के समय रातीजोगे के गीत गाये जाते हैं और दूसरे दिन जानें देते समय जानों के गीत गाये जाते हैं, जिनका उल्लेख पहले यथावसर कर दिया गया है।

विवाह के गीतों मे माहेरे के गीतो का भी विशेष महत्त्व है। बहिन अपने पुत्र व पुत्री के विवाह पर भाई को निमन्त्रित करने हेतु बत्तीसी लेकर पीहर जाती है। इस निमन्त्रण को स्वीकार कर उसके पीहर वाले विवाह के अवसर पर यथाशक्ति धन माल ले जाते हैं। इन गीतों में कहीं निर्धन भाई की आर्थिक कठिनाइयो का उल्लेख रहता है तो कहीं भाई की प्रतीक्षा मे पीहर के रास्ते को विस्फारित नेत्रा से निहारती व्याकुल बहिन को दर्शाया गया है। कहीं भावज की कृपणता चित्रित है तो कहीं भतीजे को लेकर आता उमगित भाई दिखायी देता है।

कहीं-कहीं लोक लाज को ध्यान मे रखते हुए बहिन कहती है कि हे भाई यद्यपि तू आर्थिक दृष्टि से विपन्न है, पर जैसा भी बन सके, कुछ-न-कुछ लेकर अवश्य उपस्थित होना।

इस अवसर पर गाया जाने वाला 'बीरा रीमा झीमा हुय आवजो, उमराव भतीजा साथै लावजो' तो अत्यन्त प्रसिद्ध है।

माहेरे के गीतों में प्रमुख रूप से भाई एवं बहिन के निश्छल एव शुद्ध प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। जिस बहिन ने अपने पिता की सारी सम्पत्ति अपने भाई के नाम करते समय कतई हिचक नही दिखायी तो उसी भाई से आज के दिन कुछ प्राप्त करने की अधिकारिणी वह अवश्य बनना चाहती है। माहेरे के गीतो मे एक गीत ऐसा भी मिलता है जिसमें विविध प्रतीकों के माध्यम से बहिन और भाई के अनन्य प्रेम का उल्लेख किया गया है। यथा—

'बीरा रे अेक बडलो नैं दूजी पींपळो
ज्यारां पान सवाया होय
मा री जाई म्हं बाई रूसणो
अेक बीरो दूजी बैनडी

ज्योरा हेत मवाया होय
जामण रे जाई मू काई रूमणी ।'

राजस्थान में विवाह के अवसर पर पद्मा बाई एवं समान बाई प्रणीत कई 'सोले' भी गाये जाते हैं। इन गीतों में विशेष रूप से राम-कृष्ण के विवाह का वर्णन मिलता है। ये 'सोले' लोक-गीतों में बहुत ही घुल मिल गये हैं। पर अन्त में इन कवयित्रियों के नाम से ज्ञात होता है कि वस्तुतः ये लोक-गीत तो नहीं हैं। इसके अतिरिक्त भाषा की दृष्टि से भी इन 'सोले' नाम से अभिहित गीतों में अवधी और ब्रज के शब्दों की बहुलता देखने को मिलती है।

(ड) 'मुकलावे' के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

राजस्थान प्रदेश में पिछड़ी समझी जाने वाली जातियों में विवाह तो बाल्यावस्था में ही हो जाया करते हैं, परन्तु पति पत्नी जब यौवन की दहलीज पर पाँव रखते हैं तब पति पत्नी को लेने ससुराल जाता है। विवाह के पश्चात इस समय तक पत्नी पीहर में ही रहती है। इस प्रकार के बाल विवाह को राजस्थानी लोक-गीतों ने 'पीळे पोतडो' या (थानें परणाया पीळा पोतडा) विवाह कहा है। मुकलावे की प्रथा विशेष रूप से माली, नाई, जाट, भाम्बी, भंगी, जोगी तथा पिछड़ी जातियों, पर्यटक जातियों और वन-वासी जातियों में प्रचलित है। मुकलावे के समय जब पति पत्नी को लेने आता है तो ससुराल वाले उसका खूब 'लाड-कोड' करते हैं। इस अवसर पर भी अनेक गीतों को गाया जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों का वैवाहिक गीतों से पर्याप्त भाव-साम्य है। जिसका 'बाळपणे' में परिणय हो गया था अब वह जोध-जवान हो गयी है। पत्र द्वारा अपनी यौवनावस्था की सूचना अपने श्वसुर के पास भेजती है। आखिर पराया धन समझी जाने वाली पुत्री पितृ-गृह में कितने दिन तक रह सकती है। यद्यपि लोक लाज और संयम का इसे पूरा-पूरा ध्यान है पर अपने जीवन के अधिकार की माँग हेतु इसका मुखरित होना पूर्णतः उचित ही है। वह तो पीहर में बैठी माग उडाती रहे और श्वसुर उसके प्राण-प्रिय को बाळद में भेज दे, यह कहाँ का न्याय है?—

'कागज लिख मेलू ओ सूरजमल सुसरा जी
कागदियै नै लीजो बचाय म्हारो मन मुकलावै
थू दिन दस ढबजा ओ म्हारी लाल बहवड
म्हारो जायो परदेस म्हारो बेटो बाळद मे
बाळू माळू ओ सुसरा जी थारी बाळदडी
म्हारो जोवन उलटियो जाय, म्हारो मन मुकलावै।'

मुकलावे के गीतों में मानव-मानस की दुर्बलताओं का भी बहुत ही सूक्ष्म रूप से विवेचन किया गया है। गम्भीर विचार करने पर इन लोक-गीतों में मनोविज्ञान

की विपुल सामग्री प्राप्त होगी। इस अवसर पर गाये जाने वाले एक गीत में सीता-त्याग का कैसा ठोस तर्क प्रस्तुत किया गया है, जो लोक मानस की तर्क शक्ति का परिचायक है। राम भगवान हो सकते हैं पर मानवीय दुर्बलताओं से बचना उनके लिए भी दुष्कर है। उनकी पत्नी उनके ही शत्रु का चित्र चित्रित करे, यह तो राम के लिए भी सह्य नहीं। परिणामत सीता को त्याग दिया गया। कैसा वजनदार कारण बताया गया है। पत्नी के सारे नाज-नखरे पति उठा सकता है पर अपने शत्रु का नाम तक उसकी जिह्वा पर न आने देगा। फिर सीता ने तो गृह के मुख्य द्वार पर रावण का चित्र बनाया।

'बारे बरसां सू मावरी घरे आयी
आगण माडणा माडिया ओ राम
आरा बारा देहर मोरिया, अध बिच रावण मांडियो ओ राम
× × ×
पाणीडो पीता सावरे नें दीठियो, कवळं वैरी कुण माडियो ओ राम
बाईजी महाया जो ई माडियो, जिण रो दोस मत लागजो ओ राम
× × ×
काळा नें जुतावो रांणी रै वैलिया, काळी ई रथडो जुतावो ओ राम
सुण सुण रे लिछमण छोटा भाई, राणी नें देस निकालो ओ राम।'

परोक्ष रूप स छल रपट रखने वाली ननद का भी बहुत ही सफलता से चित्रण किया गया है। मुकलावे के गीतों में ऐसी नायिकाएँ भी चित्रित हैं जो क्षणिक भावावेश में आकर कोई काम कर लेती हैं और फिर सारी जिन्दगी उसका दुष्परिणाम भोगती हैं। इन गीतों में बाल-विवाह एवं वृद्ध-विवाह की भी पर्याप्त हँसी उडायी गयी है।

मुकलावे के गीतों म जवाई को भी गालियाँ गायी जाती हैं। इन गीतों में भी समाज में अनैतिक तत्त्वों की वृद्धि करने वाले मणिहारों, बनजारों, साधुओं, नाथों के असामाजिक कृत्यों का भडाफोड किया गया है। संयुक्त परिवार के चित्र भी मिलेंगे और परिवार के विघटन हेतु की जाने वाली प्रार्थनाएँ भी सुनायी पड़ेंगी। इसके अतिरिक्त इन गीतों में कृषि-कार्य, पशु-पालन आदि कर्मों का वर्णन मिलेगा जो कि वैवाहिक गीतों में नहीं मिलता। यौवनावस्था का प्रमाद, विरह कातरता, सन्देश-प्रेषण, प्रियतम की बेवफाई एवं पीहर में रहते-रहते ऊब जाने वाली नारी के नाना रूप इन गीतों म मिलते हैं।

(ख) मृत्यु-संस्कार पर गाये जाने वाले गीत

प्रत्येक प्राणधारी के लिए मृत्यु अवश्यभावी है। मरण चिर शान्ति का दूसरा नाम है। राजस्थान में वृद्ध की मृत्यु पर तो कुछ गीत गाये जाते हैं पर युवक तथा बालक की मृत्यु को यहाँ 'काची मौत' माना गया है, अत. इस अवसर पर

गाना वर्ज्य है। फिर भी कुछ जातियों में छोटे बालकों के मरण पर कुछ गीत गाये जाते हैं, जिन्हें 'छेड़े' कहा जाता है। ये गीत शान्त रस से ओत-प्रोत होते हैं। मृतक के गुणों का स्मरण कर-कर करुण क्रन्दन किया जाता है। इस अवसर पर किया जाने वाला रुदन-क्रन्दन भी लयात्मक होता है। राजस्थान के कुछ जिलों में मृत्यु के अवसर पर 'डुस्की' नामक गीत गाये जाते हैं। ये गीत डुस्कियाँ लेते हुए गाये जाते हैं। गीत और रुदन साथ-साथ चलता है। इसी अवसर पर 'हर के हिंडोळे' भी गाये जाते हैं। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'हर हर करता वडेरा के उठ हालिया, कोई तुळछा री माळा थारै हाथ।
बेटा जी देवै थारै परकमा, कोई पोता जी करै रे डडोत
जी ओ बडभागी थारै हर रो हिंडोळो सदा सग रे हालै।'

आर्थिक दृष्टि से विपन्न होने पर भी प्रत्येक व्यक्ति अपने रिश्ते के मृतक की अस्थियाँ पावन देवसरिता गंगा में प्रवाहित करना धार्मिक कृत्य मानता है। कुछ वर्गों में किसी की मृत्यु के दूसरे दिन सवेरे घर के निकट किसी वृक्ष (प्राय खेजड़ी) के नीचे गेहूँ के दाने बो दिये जाते हैं तथा घर की बड़ी बहू व बहिन-बेटियाँ सदैव (बारह दिन तक) उनमें पानी दिया करती हैं, इसे 'पतवारी' कहा जाता है और इस समय स्त्रियाँ केवल 'पतवारी' के गीत गाया करती हैं। एक उदाहरण देखिये—

'कैनी सूवा घर री जी बात
काई तो करै भोजाइया
सात सोनै रा कळसिया पतवारी सींचतो
म्हे देखिया सिरीराम।'

इसके अलावा गृह-वधुएँ रात्रि-काल में गंगा स्नान माहात्म्य के गीत गाया करती हैं। अस्थियाँ विसर्जित करने गया व्यक्ति जब पुन लौटता है तो 'डाँगड़ी रात' जगायी जाती है। गंगा-तीर पर दिये गये दानों का भी इन गीतों में विवेचन मिलता है।

लोक-मानस के विचार से मृतक किसी-न किसी रूप में समाज के मध्य अवस्थित रहता है। 'पितर हो गया है' और पथ में आया हुआ है' आदि धारणाएँ इस मत की पुष्टि करती हैं। यदि 'पितर' अथवा 'पथ में आये हुए' व्यक्ति की आत्मा को घर में होने वाले किसी विशिष्ट अनुष्ठान पर निमन्त्रित न किया जाय तो घर में अनिष्ट एवं उपद्रव होने लगते हैं। मृत्यु से बारह दिन तक विभिन्न प्रकार के गीतों, हरजसों और भजनों का रात्रि समय में आयोजन किया जाता है।

(२) पर्वो के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

राजस्थान के निवासियों ने हिन्दू-संस्कृति में वर्णित अनेक पौराणिक पर्वों के

ग्रहण के साथ ही कुछ प्रादेशिक पर्वों को भी प्रचलित किया। इन पर्वों के परिपार्श्व में भी धार्मिकता की भावना एवं समाज के हितार्थ प्राण न्यौछावर करने वाले नर-पुंगवों और नारी-रत्नों का चरित्र रहा है। राजस्थान प्रदेश में स्थान स्थान पर लगने वाले मेलों को भी पर्व के रूप में ही मनाया जाता है। रात्रि में आयोजित विविध रातीजोगे, जम्मे एवं जागरण भी एक प्रकार के लोक-पर्व ही हैं। रसिकों एवं श्रद्धालु भक्तों द्वारा सम्पन्न होने वाले इन लोक-पर्वों को निम्न दो श्रेणियों में रख सकते हैं—

(क) निश्चित तिथियों के पर्व,

(ख) अनिश्चित तिथियों के पर्व।

(क) निश्चित तिथियों के पर्व

राजस्थान प्रदेश के अधिकांश लोकप्रिय पर्व (गणगोर, आखा तीज, सावण री तीज, राखड़ी पूनम, दशहरा, गोगा नवमी, दीपावली, सकरायत, होली आदि) निश्चित तिथियों पर ही पड़ते हैं। इसी भाँति नौरते, रामनवमी, कृष्णाष्टमी, ऊब छठ, बछ-बारस, अणत चवदस आदि निश्चित तिथियों के व्रत हैं। गणगोर का मेला, सावण की तीज का मेला, नवरात्रि का मेला, केसरिया कंवरजी का मेला, रामदेवजी का मेला, शीतला माता का मेला, जावर माता का मेला आदि निश्चित तिथियों के मेले हैं। इन सभी अवसरों पर लोक-गीतों की मधुरिम स्वर-लहरी सर्वत्र सुनायी देती है। प्रस्तुत है इनका ब्यौरेवार विवेचन—

(१) गणगोर—भारत के प्रत्येक प्रदेश में माँ पार्वती (गौरी) की पूजा किसी-न-किसी रूप में होती ही है। पार्वती की उपासना करके कुमारी कन्याएँ मनोभिलषित वर एवं घर प्राप्त करती हैं और विवाहित स्त्रियाँ अपने अक्षत सुहाग की कामना करती हैं। इस पूजा का पौराणिक दृष्टि से भी महत्त्व है। राजस्थान में गणगोर 'गौरी' पूजा का ही पर्व है। राजस्थान की आदिवासी जातियों में भी यह पर्व बड़े उत्साह से मनाया जाता है। इस अवसर पर सम्पूर्ण प्रदेश में अलग अलग स्थानों पर मेले भी लगते हैं। नूतन वस्त्राभूषणों से सुसज्जित रमणियों के समूह द्वारा किए जाने वाले प्रसिद्ध राजस्थानी नृत्य 'घूमर' को देखने पर स्वर्गिक आनन्द की प्राप्ति होती है। ईसर और गणगोर की सवारी निकाली जाती है। कहीं-कहीं इस शुभ अवसर पर घुड़दौड़ और निशानेबाजी का आयोजन भी किया जाता है। यों तो चैत्र कृष्णा प्रतिपदा से लेकर चैत्र शुक्ला चतुर्थी-पर्यन्त गणगोर की अपूर्व छटा प्रत्येक गाँव में देखी जा सकती है परन्तु चैत्र शुक्ला तृतीया और चतुर्थी को गणगोर का मेला लगता है, जिसका विशेष महत्त्व है। यही कार्यक्रम इस पर्व का एक प्रकार से समापन समारोह माना जाता है। इस अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीतों में गौरी के अद्वितीय रूप, बहुमूल्य आभूषणों, पार्वती एवं शिव के जीवन का हास-परिहास वर्णित है। 'भवर म्हाने

खेलण दो गिणगोर' यह गीत सम्पूर्ण राजस्थान मे बहुत रुचि से गाया जाता है। इसमें स्त्री-सुलभ आभूषण-प्रियता का निरूपण किया गया है। भला वह गणगोर पूजने निरलकृत कैसे जा सकती है—

'खेलण दो गिणगोर भवर म्हानै पूजण दो गिणगोर
हो जी म्हारी सय्या जोवै बाट
भवर म्हानै खेलण दो गिणगोर।
माथै नै मैंमद लाव, भवर म्हारै हिवडै हास घडाय
थो जी म्हारी रखडी रतन जडाव
भवर म्हानै खेलण दो गिणगोर।'

स्त्रियो की दृष्टि मे गणगोर पर्व की इतनी महत्ता है कि प्रवासगमनोत्सुक प्रियतम भी प्रिया को इस अवसर पर पुनः लौटने की प्रतीति कराने पर ही जाने की अनुमति प्राप्त कर सकता है—

'थे म्हारै आजो ढोला पावणा जी
सै गिणगोर्या री रात।'

इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतो मे शिव का शिवत्व तो निरूपित है ही पर साथ-साथ शिव के दुर्व्यसनो (भाँग, अफीम, तिजारा, गाजा) से व्यथित पार्वती की वेदना भी अभिव्यजित है। आदिवासी जातियो द्वारा गाये जाने वाले गीतो मे प्रकृति की लुभावनी सुषमा के चित्र सर्वत्र चित्रित है। इन लोगो ने प्रकृति को बहुत निकट से देखा है। 'जिसने पृथ्वी जैसा विस्तृत बिछौना बनाया, अम्बर जैसा विशाल छाता निर्मित किया, तारक जडित प्रकाशमय गल-माला बनायी, उस परम शक्ति को सश्रद्ध शतश प्रणाम है'—इस भाव का एक गीत गरासिया जाति मे गाया जाता है। गणगोर के गीतो मे लोक ने पार्वती द्वारा शिव को कर्मशील बनने (हल चलाने की) की उचित सलाह दिलायी है। जब लोक स्वय आलसी नही बनना चाहता तो उनका देव आलसी क्योंकर हो सकता है—

'हळ हाको महादेव, हळ हाको ईसर
दुनिया नै धन्धै लगाय दीजो जी।'

(२) नवरात्रि— चैत्र मास म ही शुक्ल पक्ष की प्रथमा से लेकर नवमी तक नवरात्रि का पर्व मनाया जाता है। शाक्त-मतावलबियो का यह धार्मिक पर्व है। इस पर्व को आश्विन मास मे भी सोत्साह मनाया जाता है। दुर्गा, चामुण्डा और पार्वती के साथ अनेक लोक-देवियो की पूजा करते हुए लोग व्रत-उपवास रखते हैं। अष्टमी के दिन हवन किया जाता है। इसी दिन देवियो के मढ (मन्दिर) पर मेला भी लगता है। राजस्थान मे इस 'नौरता' नाम दिया गया है। चारण जाति मे समय-समय पर अनेक देवियाँ (हिंगुळाज, आवड, करणी, सोनल, राजल) अवतरित हुई, जिनके द्वारा दिये गये परचो का विविध लोक प्रचलित

चिरजाओ मे वर्णन मिलता है। इन गीतो मे देवी माँ की साज-सज्जा, सवारी आदि के वर्णन के साथ अनेक एतिह्यवृत्तों को भी उजागर किया गया है। राजल बाई से सम्बन्धित चिरजा म नौरोजा छुडाने की घटना का वर्णन है। इन दिनों मे बिलाडा क्षेत्र मे आई माता, बीकानेर-जोधपुर मे करणी माता, भीलों समाज मे बावर माता, गरासिया जाति मे अम्बा माता, पुष्करणो एव श्रीमाळियों मे लटियाळ माता की विशेष रूप से पूजा की जाती है। नवरात्रि के दिनो मे पूजा स्थान के निकट गेहूँ के कुछ दाने बोये जाते हैं जिन्ह 'जवारा' कहते हैं। एक उदाहरण—

'ऊचँ मगरै ए जी म्हारा हरिया जवारा
लुळिया जवारा, नीचै मिरगला चरै
मिरगा घेरो नी विरमाजी रा ईसरजी
घेरो नी वन रा मिरगला।'

जावर माता के मेले मे आते समय भीलो द्वारा गाये जाने वाले गीतो मे सामाजिक विडम्वनाओ, आर्थिक सन्त्रास, सामन्ती दुर्व्यवहारो, युद्ध की विभीषिकाओ के दृश्य भी देखने को मिलते हैं। 'हासु देसा ने परदेसा ये, हासु जरमर लडाई थाए ये' पक्ति से ज्ञात होता है कि सभ्यता से सुदूर रहने पर भी लोक-मानस मानजिक चेतना एव राजनैतिक घटनाओ से अनभिज्ञ नही था। भीली समाज भी जर्मन द्वारा की जा रही लडाई का मानव-समाज के लिए हानिकारक बताता है।

(३) शीतलाष्टमी—यह पर्व चैत्र मास मे कृष्ण पक्ष की अष्टमी को मनाया जाता है। बच्चो की चेचक से रक्षा के लिए शीतला माता की आराधना की जाती है। इस दिन चूल्हा जलाकर भोजन नही बनाया जाता। पहले दिन का बना बासी खाना ही खाया जाता है। इसे 'बासोडा' या 'ठाडा ठरिया' कहा जाता है। शीतला माता सेडल माता के नाम से भी जानी जाती है। जोधपुर में कागा नामक स्थान पर शीतला माता का मेला भरता है। शेखावटी मे बाघोर की शीतला प्रसिद्ध है। गधा इस देवी का वाहन है। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों मे मुख्य रूप से चेचक से बालकों की रक्षा करने तथा गृह-शान्ति बनाये रखने के लिए प्रार्थनाएँ की जाती हैं। एक गीतांश दृष्टव्य है—

'दरवाजे ओ ऊभी माता सीतळा
सूरजजी थो बारै आव, था पर मैर करै जी माता सीतळा
थानै अनधन देसी अर लिछमी चौगणी, थानै देसी भडूलियै लाडल पूत
दरवाजे ओ ऊभी माता सीतळा।'

(४) आखा तीज—वैशाख मास की शुक्लपक्षीय अक्षय तृतीया को राजस्थान मे 'आखा तीज' के रूप मे मनाया जाता है। यह कृषको का पर्व है। इस दिन विशिष्ट प्रकार का भोजन बनाया जाता है जिसमे खीच, गळवाणी और

विपडो की प्रधानता होती है। इस अवसर पर नन्ही-मुन्ही बच्चियो द्वारा गीत गाये जाते हैं जिनका अन्यत्र विवेचन करेंगे।

(५) रक्षा-बन्धन—श्रावण मास की पूर्णिमा का भारत भर मे रक्षा बन्धन के रूप मे जाना जाता है। राजस्थान मे इस 'राखडी पूनम' और 'भाई पून' के नाम से पुकारा जाता है। भाई बहिन के पावन प्रेम का प्रतीक है—यह पर्व। राजस्थान के लोक-पर्वो के साथ विशिष्ट प्रकार के भोजन जुडे हुए हैं। इस पर्व पर आटे की सेवें बनायी जाती हैं। उदयपुर क्षेत्र मे इस अवसर पर एक गीत गाया जाता है, जिसमे श्रवण की मातृ-पितृ भक्ति का वर्णन मिलता है। लोक ने इस गीत को उत्कृष्टतम प्रेम, सर्वस्व त्याग एव सेवा-भावना का प्रतीक माना है। गीतांश प्रस्तुत है—

'तू तो छोड चल्यो परलोक, थारा बिन म्हा सू रयो न जाय
थारो होसी अम्मर नाम
राखी दिन घर घर पूजसी पूरो जग ससार
जब लग रेवे या धरतरी, तब लग रेसी थारो नाम।'

(६) तीज—श्रावण मास की तृतीया को 'तीज' नाम से जाना जाता है। श्रावण शुक्ला तृतीया को 'छोटी तीज' और भाद्रपद की कृष्णा तृतीया को 'बडी तीज' कहा जाता है। राजस्थान की मरुभूमि पावस काल मे हरिताम्बर को धारण कर मनमोहन दृश्य उपस्थित करती है। इस अवसर पर 'सत्तू' बनाये जाते हैं। विवाहित स्त्रियाँ तीज का व्रत रखती हैं। प्राय इस अवसर पर लडकी का पीहर बुलाया जाता है। नव विवाहिता को प्रथम तीज पर बुलाने की तो प्रथा-सी ही है। इस अवसर पर गाय जान वाले गीतो मे भाई-बहिन के निश्छल प्रेम, युवती की पीहर जाने की उत्कट अभिलाषा, ससुराल की यातना, पीहर की तृप्ति धरती को तृप्त करन हेतु मघमाला से प्रार्थना, पति-वियुक्ता की विदग्धता, सयुक्ता की सुखानुभूति, सहेलियो स मिलनेच्छा, पावस भर का यथातथ्य निरूपण आदि बातें प्रमुख रूप स मिलती हैं। इन गीतो क कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

माँ का ममत्व—

'आगणियं म्हारी लाडेसर अ फरती नी जाय
पूना सू पियारी ह धीया थू म्हानें लागती।'

भाई-बहिन का निश्छल प्रेम—

'अे ऊभो तो रेया वीरा बाग म
करसा मनडा री मोठी बात मेनण्ला अे भट मांडियो।'

माँ और सास के स्वभाव की तुलना—

'मोठी मीठी अे माँ अे म्हारी मतीरां री बेल
मीठो मायड रो बालणो

खारा खारा ओ माँ ओ म्हारी तूवा मायला बीज
खारो सासूजी रो बोलणो ।'

सुसराल की यातना का चित्र—

'दोरी दोरी ओ माँ ओ म्हारी पूता नै पोसाळ, दारो धीया नै सासरो
दोरी दोरी ओ माँ ओ म्हारी सासूनणदरो साल, दारो कमोटो देखणो
दोरी दोरी ओ मा ओ म्हारी जवारी साण, दोरी मक्की रो पीसणो।'

(७) रामदेवजी का मेला—भाद्रपद की शुक्ला एकादशी को रामदेवरा
मक स्थान पर रामदेव का मेला लगता है। राजस्थान, मध्य प्रदेश और
गुजरात से लाखों की सख्या में लोग इस मेले में आते हैं। इस मेले में जाते समय
रामदेवजी के जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक गीत गाये जाते हैं। इन गीतों को
'जम्मे' में भी गाया जाता है। यहाँ एक गीत उद्धृत किया जा रहा है—

'राम रूणेचै रै मारगा
बलखड रा मोरिया
ऊभो कटाळा रो खेत
पापी रै पग भागसी
धरमी दौड्योडो जाय
बलखड रा मोरिया।'

इस अवसर पर और जम्मे में रामदेवजी की अनन्य उपासिका डाली बाई के
गीत गाये जाते हैं—

'आडा तो फिरै डाळी बाई बाभोसा बूझै
राखो म्हारै घोळा री लाज ओ
डाळी बाई भरी नै जवानी में मती लो समाध
घोळा री लाज बाभोसा सावरो राखै, म्हे तो अमरपुर रा वासी।'

इस दिन को पिछडी जातियाँ पर्व के रूप में मनाती हैं। रात्रि-भर जागकर
रामदेवजी के गीत, हरजस और भजन गाये जाते हैं। रात्रि-जागरण को 'जम्मो'
या 'बाबै रो जम्मो' कहा जाता है।

(८) होली—'हिन्दुओं के दो बड़े पर्वों में एक उत्सव होली के नाम से
जाना जाता है। आधुनिक वातावरण के परिप्रेक्ष्य में विचार करने पर विदित
होता है कि दीपावली का पर्व सभ्य लोगों का पर्व प्रतीत होता है और होली
अशिक्षित, ग्रामीण और तथाकथित 'लोक' का पर्व ज्ञात होता है। लोक जिस
उत्साह और उमग से होलिकोत्सव में अपनी भूमिका निभाता है उतना आनन्द
दीपावली पर नहीं दिखायी देता। होली के पर्व पर पुरुषों द्वारा गाये जाने वाले
गीतों को 'फाग' और स्त्रियों के गीतों को 'लूर' के नाम से जाना जाता है। बाल-
गीतों का अन्यत्र उल्लेख किया जायेगा। होली के अवसर पर गाये जाने वाले

गीतो मे पारिवारिक सुख-समृद्धि, वैयक्तिक कर्त्तव्य-बोध के प्रति सजग रहना, सामाजिक उत्तरदायित्वो के प्रति जागरूकता, राष्ट्रीय चेतना, युग-पुरुष का अनुकरणीय चरित्र-चित्रण आदि मिलता है तो साथ ही पारिवारिक यातनाओ से व्यथिता की व्यथा, सामाजिक बन्धनो से आबद्ध हृदय की व्याकुलता, नृप-शोषित अन्तस्तल का विद्रोह, समाज-विरोधी तत्त्वो को प्रताडित करने का भाव, देश के नाम पर कलक लगाने वाले लोगो पर व्यग्य-बाण, कुटिल नरेशो की अवसरवादिता, राजनैतिक चेतना, अग्रेजो की दमनकारी प्रवृत्ति, लोक-विश्वास, स्त्री-सुलभ आभूषण-प्रियता आदि अनेक बातें देखने को मिलती हैं। सामाजिक प्रथाओं के उल्लेख भी इनमे मिलते हैं। सयोगावस्था एव विरहिणी की विरह-व्यथा के चित्र यहाँ मिलते हैं। इनमे वर्णित अकाल की दारुण दशा भी दृष्टव्य है। भाई और बहिन के निश्छल प्रेम ने भी यहाँ अभिव्यक्ति पायी है। अनमेल विवाह की हँसी उडायी गयी है। स्वातन्त्र्योत्तर भारत में होने वाले सामाजिक परिवर्तन का उल्लेख भी हुआ है। यथा—

'ऊचा पौढ्या ठाकरसा
अर नीचै सूती ठकराणिया
ठाकरसा खँखारो करियो, जागी ठकराणिया
पीसो बाजारी, हा हा पीसो बाजरी
जाटणिया जोरावर हुयगी रे
पीसो बाजरो।'

कुछ गीताश यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'भाया री सिकार माथै थारा हाकम चढिया ओ
गोळी रा लागोडा भाई भाखर भिळिया ओ
के मुजरो लेलै नी
टोळी रै टीकायत माथै गोरा लेने आया ओ
काट री बुरजा रै ऊपर भाटी भिडिया ओ
के मुजरो ललै नी।'

(अग्रेजी सेना की सहायता मे जोधपुर नरेश ने आउवा पर अपनी सेना भेजकर जो अशोभनीय कार्य किया था, उसी के प्रति उक्त फाग मे व्यग्य है।)

स्त्रियो द्वारा गायी जाने वाली दो लूरो के उदाहरण प्रस्तुत हैं—

ठाकुरो की खून चूसने की प्रवृत्ति—

'जोधाणै रा धणिया थे तो
करडा लाटा लाटो रे।'

वृद्ध-विवाह पर व्यग्य—

खेजडी रै खोखा रे
भवरजी परणीजण जावै, साव बोखा रे
बूढो परणायो हा हा बूढो परणायो
बावलियो दमडा रो लोभी रे
बूडो परणायो ।'

यहाँ यह ज्ञातव्य है कि 'लूर' गाते समय औरतें दो पक्तियो मे आमने सामने खडी रहती है और गाते-गाते दोनो पक्तियो की स्त्रियाँ अपना-अपना स्थान छोडकर एक-दूसरे का स्थान ग्रहण कर लेती हैं। इस प्रकार गीत के साथ-साथ शारीरिक क्रिया करने को 'लूर लेणा' कहते हैं। पर लूरें पिछडी जातियो की औरतें ही लेती हैं।

(९) ढूंढ के अवसर के गीत—राजस्थानी लोक मे 'ढूंढ' करने का प्रचलन है। 'ढूंढ' निश्चित रूप से होली पर ही की जाती है। इस अवसर पर बालक के सम्बन्धी और विशेष रूप स ननिहाल वाले कोई न-कोई आभूषण लेकर आते है। भीली समाज मे 'ढूंढ' के अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

'हदकडी हियारी घूळिया लुवा रे
रई न केवा थोने
जाजरिया गडी आळो
होळी की अमेळी
होळी नेरी आई
फागणियो फडूके
पेलकी ढूण्ड पेलकी
घूळियू जाजरिया गडे
गडे न गडावे
घणा रूपाळा जाजरिया
जजीर वाळा जाजरिया।'

(१०) विविध व्रतों पर गाये जाने वाले गीत—उक्त पर्वों मे से कुछ पर्वो पर तो राजस्थान मे व्रत रखे जाते ही हैं पर इनके अतिरिक्त अन्य कई तिथियो पर भी स्त्रियो द्वारा व्रत रखे जाते हैं। जब व्रत रखने वाली स्त्री भविष्य मे उस व्रत को जारी न रखने का विचार कर लेती है तब उस अन्तिम बार किये जाने वाले व्रत पर व्रत का समापन समारोह मनाया जाता है। इसे राजस्थानी मे 'उजमणा' कहते हैं। इन उजमणो को भी राजस्थान मे पर्व के रूप मे ही मनाया जाता है। इन उजमणो मे ऊभ छठ, बछ-बारस, सूरज-रोटी, अणत-चउदस, तीज, गवर आदि के उजमणे प्रसिद्ध हैं। वैसाख और कातिक मास मे तो अनेक

स्त्रियाँ पूरे माह तक व्रत रखती हैं। अत इन्हे 'बैसाख न्हावणी' और 'काती न्हावणी' कहा जाता है। सवेरे जल्दी उठकर स्नान किया जाता है तथा बाद मे पीपल आदि वृक्षो का सिंचन भी करती हैं, जिसे 'पीपळ सीचणो' और 'पीपल पूजणो' कहा जाता है। इन सभी व्रत-प्रधान पर्वों पर भी अनेक प्रकार के गीत गाये जाते हैं। इन गीतो मे प्रमुख रूप मे धार्मिक भावना ही देखने को मिलती है। इन व्रतो के करने से धार्मिक लाभ होगा, ऐसी मान्यता भी प्रचलित है। इन व्रतो से सम्बन्धित अनेक कथाएँ भी कही जाती है, जिनका विवेचन लोक-कथाओ के अध्याय मे किया जायेगा। इन व्रतो पर जिन कन्याओ एव स्त्रियों को भोजन करने हेतु आमन्त्रित किया जाता है, उन्हे 'सवासणियाँ' और कभी-कभी 'तीजणियाँ' भी कहा जाता है। इस समय जिस देवर को या जेठ के लडके को भोजन पर विशेष अतिथि के रूप मे बुलाया जाता है उसे 'साखियो' कहा जाता है। अणत-चउदस के साखिये को 'अणतियो' कहा जाता है। भोजनोपरान्त इन सवासणियो एवं साखियो को जो द्रव्य या सामग्री प्रदान की जाती है उसे कही-कही 'गौरणी' की सज्ञा से अभिहित किया जाता है। जब व्रत करने वाली स्त्रियाँ पीपल-अभिसिंचन हेतु जाती हैं तो वह अनेक गीत गाती है, जिनमे से एक गीत का कुछ अश यहाँ प्रस्तुत है—

'बैठो सूवटो सरवरियै री पाळ
पाळ थारी डिग जासी
लै नी रे सूवटा रामजी रो नाव
नाव लिया तिर जासी
नदी रै किनारै रूखडो औ राम
जद कद होवै रे विणास।'

देव-झूलणी एकादशी को भी गीत गाये जाते हैं, उदाहरण रूप में गीतांश प्रस्तुत है—

'काढी राणोजी बीजळ तरवार ओ राणाजी
कोई अेक रे मीरा री सैस मीरा होयगी हरी राम
बूझै साथीडा नै राणो मनडै री बात
किसडी मारा नै किसडी राखस्या हरी राम।

इन व्रतो पर अन्य प्रदेशो मे भी इस प्रकार के धार्मिक भावना-प्रधान गीत प्राप्त हो सकते हैं। परन्तु राजस्थान मे कुछ पर्वों पर (ऊभ-छठ, सूरज रोटी पूजणो) तब तक उन आमन्त्रित सवासणियो को भोजन नही करने दिया जाता जब तक वे पद्यात्मक पंक्तियों का उच्चारण करते हुए अपने पति का नाम नही लेती है। वैसे तो राजस्थान मे क्या भारत भ भी पति का नाम पत्नी द्वारा लोक-जीवन मे लेना एक प्रकार से वर्जित सा ही है पर इन अवसरो पर उन्हे पति का

नाम लेने पर मजबूर किया जाता है। विभिन्न व्रतों पर गाये जाने वाले ऐसे गीत राजस्थान की अपनी अमूल्य सम्पदा हैं। कहीं कहीं पूरा-का पूरा गीत अकेली स्त्री ही गाती है और कहीं-कहीं समूह की सारी स्त्रियां गीत को गाती हैं, पर जहां पति के नाम-उच्चारण की गुंजाइश होती है वहां अन्य स्त्रियां मौन साध लेती हैं तथा स्त्री-विशेष अपने पति का नाम लेती है। इस प्रकार से एक-एक करके सभी की बारी आ जाती है। कभी कभी एक पूरे गीत में एक ही स्त्री की बारी आ पाती है और कभी-कभी एक ही गीत में सारी स्त्रियां बारी-बारी से अपने पतियों के नाम ले लेती हैं। यह तो गीत की तुकों पर आधारित रहता है। इस सम्बन्ध में एक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'गाती ढाबी रग भरी ऊपर घेर घुमेर
हरीसिंगजी सायबा री म्हारै माथै मेर।
पांव म्हारै जेठजी बीरा म्हारै सौह
रामकरणजी सायबा म्हासूं रालै मोह।
बाग बगेच्या मूं उडतो आयो पान
सुभकरणजी सायबा मैला म राखै म्हारो मांन।
मैला चोरी कारडो झिरोखै राळया बीज
हिंगलालजी बँगा पधारो भेळा रमां तीज।
घासियो तो हुद भरायो, भळे चढाई ओळी
म्हें अर जैकरणजी बना भेळा रमां होळी।
हिंगळू पाणा ढोलियो, निवार केरो लग
मदछकिया देवीदानजी सेजा माणै रग।
चांदी केरा थाळ में केसर बरणो भात
सिवदानजी जोडे बैठा थांरी गोरी जीमै साथ।
झीणी पैरै धोती अर तीखा बांधै फेंटा
हीरदानजी म्हारी सासू सुगणी रा बेटा।'

(ख) अनिश्चित तिथियों के पर्व

अत्यधिक आनन्द और उत्साह से मनाये जाने वाले प्रत्येक दिन को राजस्थान में लोक द्वारा पर्व रूप में ही स्वीकारा जाता है। उक्त निश्चित पर्वों एवं व्रतों के अतिरिक्त राजस्थान में अनेक बार अपने हर्ष को सामाजिक प्रतिष्ठा देने हेतु कई आयोजन आयोजित किये जाते हैं। कई बार विविध देवी-देवताओं की मनौतियों को पूरा करने के लिए भी ऐसे आयोजन सम्पन्न किये जाते हैं। अनेक बार ऐसा धार्मिक लाभ के लिए भी किया जाता है। कई बार ऐसे अवसरों का सम्बन्ध संस्कारों में भी जोड दिया जाता है। पर यहां प्रमुख रूप से ध्यान देने योग्य बात यही है कि इन आयोजनों के लिए कोई पूर्व निश्चित तिथि नहीं होती। ये

आयोजन प्रथमा, तृतीया, पचमी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, एकादशी, त्रयोदशी, चतुर्दशी या पूनम मे से किसी भी दिन हो सकते हैं। यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेख्य है कि देवी से सम्बन्ध रखने वाले आयोजन अष्टमी और चतुर्दशी को आयोजित होते हैं, गोगा सम्बन्धी नवमी को, रामदेवजी, राम और कृष्ण सम्बन्धी आयोजन एकादशी और पूर्णिमा को प्राय सम्पन्न किये जाते हैं। भोमियो का दिन त्रयोदशी स्वीकारा गया है। राजस्थान मे देवी भैरव, भोमिया के सम्बन्ध मे किये जाने वाले जागरण को 'रातीजोगा', रामदेव के जागरण को 'जम्मा' और अन्य सभी को 'जागरण' या 'जागण' के नाम से ही पुकारा जाता है। विभिन्न सतियो एव पितरो के लिए किये जाने वाले भी 'रातीजोगे' ही कहलाते हैं। विवाह-सस्कार के पश्चात भी रातीजोगो का आयोजन किया जाता है। गगा स्नान व तीर्थाटन से लौटने पर किये जाने वाले जागरण को 'डागडी रात जगावणी' कहा जाता है। 'डागडी रात' मृत्यु सस्कार के पश्चात भस्मी को गगा मे प्रवाहित करके आने के बाद भी 'जगाई' जाती है। इन अनिश्चित तिथियो के पर्वों मे जागरण, डागडी रात, जम्मे और रातीजागे ही माने जाते हैं। जागरणो मे प्राय कबीर, तुलसी, सूर, मीरा व नाथो के पद एव भजन गाये जाते हैं, जिन्हे हम लोक-गीत कदापि नही कह सकते। जम्मे मे गाये जाने वाले गीतो और रामदेवजी के मेले मे गाये जाने वाले गीतो मे किसी भी प्रकार का विभेद नही है। डागडी रात जगाने मे गाये जाने वाले गीतो का उल्लेख मृत्यु-सस्कार के प्रसग मे कर दिया गया है। रातीजोगे के गीतो का यहाँ विवेचन किया जा रहा है। रातीजोगे के गीत प्रमुख रूप स शिव, शक्ति, विविध देवियो, भोमियो, सतियो, खेतपाळो, जूझारो, पितरो के चरित्रो पर आधारित है। इन गीतो मे पति परायणा पत्नियो के सतीत्व के अनुकरणीय उदाहरण भी मिलेंगे और भोग-लिप्सु नरेशो की निकृष्टता भी देखने को मिलेगी। ठाकुर तो अन्यत्र ही रगरलियाँ मनाता रहेगा, ठकुराइन का सुरमा सारना सर्वथा व्यर्थ है। 'कजळो' नामक गीत का कुछ अश उद्धृत है—

'थू मत सुरमो सारजे
घर ठाकरसा री नार
काजळ कुण निरख सी
दिन रातों करें ठकुराई सा
रात मोवा सग जाय।'

इस अवसर पर गाये जाने वाले जैतलदे, गूजरी, गाघीडो, कलाळी आदि के गीत पति-परायणा नारियो के सच्चरित्रो के उद्घाटक हैं। जैतलदे के गीत मे विलासिता के पक म डूबे राजाओ तथा पुश्चली एव स्त्री धर्म के प्रथम गुण लज्जा को खूँटी पर टाँगकर रखने वाली बाँदियो के प्रणय पर करारा व्यग्य

किया गया है। जैंतलदे जैसी नारी को जन्म देकर उसकी माता भी धन्य हो गयी।

इसी प्रकार कलाळी ने भी अपने प्रियतम के रूप की प्रशंसा करके मदान्ध कुँवर को पथ-भ्रष्ट होने से बचा लिया। देवगढ की गूजरी, जीणमाता, जसमा ओडणी, ऊमादे भटियाणी ऐसे ही उज्ज्वल चरित्र वाली नारियां हैं जो आज भी अन्य रमणियो का पथ प्रदर्शन करने में पूर्ण समर्थ हैं। इस अवसर पर गाया जाने वाला 'वालूडा' नामक गीत मनचली एवं देवर को बहकाकर अपने भाई को मार उसका धन हथिया लेने वाली बहिन का गीत है। मरने के बाद भी चाकरी पर गया भाई माता को सपने में सारी कथा बता देता है। माता अपने सत से उसे पुन जीवित करती है। इसमें माता के सतीत्व एवं बहिन के कपट की कथा कही गयी है। रातीजोगे में गाये जाने वाले अनेक गीत कथात्मक पद्यबद्ध गीत हैं। मुसलमानों से अपने गौ-धन की रक्षा करते-करते शहीद होने वाले भोमियों, धूरों, जूभारो एवं खेतपाळो की शौर्य-कथा भी इन गीतों के माध्यम से कही गयी है। रातीजोगे के कुछ गीत यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'धरती फाट भवानी परगटिया
गळै फूला री माळा जी
पोढ्या जागो सोमजी सेवग
आपरे घरे माताजी आया

× × ×

डावें कवळे चक्कर चलाया
जीमणे भाला रोप्या जी
सेवगा नें सवाया राखो
थे ई म्हारी आद भवानी जी।'

'मिटठासा भोजन बहू बहवड जिमावै
आयो पितरा री लगवर जीमज्यो
ठाडो सो पाणीडो बहू लाडेसर पावै
आयो पितरां री लगवर पीयज्यो।'

अन्त में हम रातीजोगे की एक प्रभाती का कुछ अंश प्रस्तुत करना चाहते हैं जो प्रात काल सूर्योदय से कुछ पूर्व गायी जाती है। प्रभाती गाने के पश्चात प्राय' कुछ भी नही गाया जाता—

'अम्बर जाग्या देवी-देवता
धरती जाग्यो वासग नाग
भालर तो बाजी राजा राम री

मढ मे काळी माता जागिया
पुरी मे जगनाथ बाबो जागिया ।'

इसके अतिरिक्त रातीजोगे मे पाबूजी, गोगाजी आदि के भी गीत गाये जाते हैं। प्रातःकाल प्रभाती के कुछ पूर्व 'धुवजी' करके भक्त ध्रुव से सम्बन्धित गीत भी गाया जाता है, जिसमे ध्रुव की ध्रुव-तपस्या का वर्णन किया गया है। इन सभी गीतो से लोक-मानस मे धार्मिक भावना को जाग्रत रखने की चेष्टा की गयी है।

(३) श्रम-गीत

भारत-भूमि मे कर्म की महत्ता असंदिग्ध रूप से स्वीकार की गयी है। हमारे यहाँ के महापुरुषो ने 'कर्मण्येवाधिकारस्तु मा फलेषु कदाचन' जैसा अमर सन्देश दिया है और यहाँ की जनता-जनार्दन ने भी 'उद्यमेन हि सिध्यति कार्याणि न मनोरथै' के रूप मे इसे स्वीकार किया है। राजस्थान मे प्रचलित 'काम प्यारो चाम प्यारो कोनी' कहावत भी उक्त प्रसंग की ही व्याख्या करती है। मानव स्वभावतः संगीत-प्रिय है। कार्य-भार को हल्का करने हेतु मानव कुछ-न-कुछ गाना चाहता है। कर्म करते समय जो भी गीत गाये जाते है उन्हे क्रिया गीत या श्रम-गीत नाम से सम्बोधित किया जाता है। कर्म के साथ इन गीतो को गाने से समय की सुदीर्घता भी नही खलती। पूरा दिन ऐसे बीत जाता है जैसे एक-दो घंटे ही व्यतीत हुए हैं। इसके अतिरिक्त कुछ कार्य ऐसे होते है जो समूह द्वारा सम्पादित किये जाते हैं और कुछ अकेले व्यक्ति द्वारा ही। यथा—पाणत (क्यारियो मे पानी देना) अकेला व्यक्ति ही करता है, चक्की अकेली स्त्री भी चलाती है। ऐसे अवसर पर वातावरण की उबा देने वाली एकान्तता को समाप्त करने के लिए भी गीत गाये जाते है। इस प्रकार से श्रम परिहरण की दृष्टि से, लम्बे समय को सहजतया व्यतीत करने के लिए, वातावरण के सूनेपन को नष्ट करने के लिए श्रम-गीतो का निश्चित रूप से महत्त्व है। राजस्थान मे खेतो पर काम करते समय समूह द्वारा गाये जाने वाले श्रम गीतों को 'भणत' और कहीं-कहीं 'राम-भणत' भी कहा जाता है। यदि राजस्थान मे उपलब्ध श्रम-गीतो पर विचार किया जाये तो विदित होता है कि इन्हे दो खडो मे विभक्त किया जा सकता है—

(क) कार्य से सम्बन्धित श्रम-गीत, और
(ख) कार्य से असम्बन्धित श्रम-गीत।

प्रकृति के पश्चात इस सृष्टि मे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण वस्तु मानव की अपनी मेहनत है। आदिम मानव की सामूहिक आवश्यकता तथा उसकी सामूहिक प्रतिभा को व्यक्त करने के लिए कविता ही एकमात्र माध्यम थी। श्रम की तालो के

बोध कविता ने अपना जन्म ग्रहण किया और तदन्तर श्रम को सहज, सुन्दर और मधुर बनाया था। श्रम—कविता का वर्ण्य-विषय था और कविता—श्रम का रूप। अब हम इन श्रम-गीतों का विवेचन करेंगे।

(क) कार्य से सम्बन्धित श्रम-गीत

जैसा कि विदित ही है कि क्रिया करते समय अनेक गीत गाये जाते हैं। क्रिया से सम्बन्धित गीतों के सन्दर्भ में यही उल्लेख्य है कि इन गीतों की वर्ण्य-वस्तु पूर्णरूपेण क्रिया से सम्बन्धित सामग्री ही होती है। यदि मानव या मानव-समूह द्वारा खेत पर फसल की कटाई की जा रही है और उस समय गाये जाने वाले गीत में भी फसल की कटाई का ही वर्णन किया जा रहा है तो ऐसे गीत को हम क्रिया से सम्बन्धित श्रम गीत की श्रेणी में परिगणित करेंगे। इसके अतिरिक्त यदि इन गीतों में, उस क्रिया में जिन-जिन वस्तुओं का उपयोग किया जाता है, उन वस्तुओं का विवेचन किया गया है तो भी उन गीतों को क्रिया से सम्बन्धित श्रम-गीतों में माना जायेगा। राजस्थान में हमें खेतों पर काम करते समय गाये जाने वाले गीत, चक्की चलाते समय गाये जाने वाले गीत और भवन निर्माणादि के अवसर पर कार्य करने वाले मजदूरों-मजदूरिनों द्वारा गाये जाने वाले अनेक गीत मिलते हैं, जिनमें या तो उनके कार्यों का ही वर्णन मिलता है और या उन कार्यों में प्रयुक्त वस्तुओं एवं उपकरणों का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार के गीतों में अनेक उदाहरण ऐसे भी मिलते हैं जिनमें कार्य के प्रति अत्यधिक उत्साह भी दिखाया गया है और कभी अरुचि भी प्रकट की गयी है। इन लोक-गीतों में ही लोक की वास्तविक स्थिति प्रकट हो पायी है। 'घरटी फेरते' समय गाये जाने वाले एक गीत में ऐसी ही यथातथ्य स्थिति का चित्रण हुआ है जिसमें गीत की नायिका तो नींद लेना चाहती है पर सास के भय से उसे सवेरे जल्दी उठकर चक्की चलाना पड़ रहा है—

'रामजी सणण मणण बोलै रात
घरटी री वेळा होयगी जी राम
रामजी पीसू पीसू लीलोणी जवार
पाहोमण पीसै बाजरो जी राम
रामजी उन्हाळै री ठाडी ठाडी लैर
घरटी पै आवै नींदडी जी राम
रामजी सासूजी बाळण जोग सभाव
मण भरियो सूंपै पीसणो जी राम।'

राजस्थानी श्रम-गीतों के सम्बन्ध में यह भी विवेच्य है कि कई गीतों का कुछ अंश एक सदस्य द्वारा गाया जाता है और कुछ अंश समूह द्वारा। कभी कभी एक पूरी पंक्ति प्रथम गायक द्वारा गायी जाती है और उसी पंक्ति को सारा समूह

गाता है और कभी-कभी उस पंक्ति के अतिरिक्त दूसरी पंक्ति ही समूह द्वारा गायी जाती है। इसके अतिरिक्त कभी एक पंक्ति का कुछ अंश प्रथम गायक द्वारा गाया जाता है और शेष अंश को समूह गाकर पूरा करता है। भणतो मे ऐसी ही गायन शैली दिखायी देती है। पहले हम यहाँ एक ऐसा गीत प्रस्तुत कर रहे है जो पावस-काल मे खेत पर कार्य करते समय स्त्रियो द्वारा सामूहिक-गान के रूप मे गाया जाता है। 'हरियाळौ' नामक गीत की एक पंक्ति एक स्त्री-नेता द्वारा गायी जाती है और शेष स्त्रियाँ दूसरी पंक्ति (टेर पंक्ति) को गाती हैं। इस गीत मे फसल बोने से लेकर फसल काटने तक का वर्णन मिलता है—

'सख्या म्हारी अे हरियाळौ वूठीजै क्यू
यू म्हारा साजन यू जी यू
सख्या म्हारी अे हरियाळौ वाईजै क्यू
यू म्हारा साजन यू जी यू
सख्या म्हारी अे हरियाळौ निनाणीजै क्यू
यू म्हारा साजन यू जी यू
सख्या म्हारी अे हरियाळौ रखालिजै क्यू
यू म्हारा साजन यू जी यू।'

इसी प्रकार क्रमश चूटीजै, गाहीजै, फटकीजै, पीसीजै, पोईजै, पुरसीजै, जीमाईजै आदि कृषि कर्म सम्बन्धी एवं भोजन निर्माण सम्बन्धी क्रियासूचक शब्दो का प्रयोग करके इस गीत को सम्वर्द्धित किया जाता है। खेत पर कार्य करते समय पुरुष-समूह द्वारा जो गीत गाये जाते है, उन्हे 'भणत' कहा जाता है। प्राय इन गीतो मे असम्बद्ध भाव एवं चित्र देखने को मिलते हैं। पर कई ऐसे भी गीत हैं जिनमे कर्म सम्बन्धी भाव का भी विवेचन पाया जाता है। भणतो की भी गायन शैली अपना अलग अस्तित्व रखती है। एक पंक्ति एक नेता द्वारा तो दूसरी समूह-गान के रूप मे, केवल एक पंक्ति का कुछ अंश निरंतर समूह द्वारा उच्चरित किया जाना, एक पंक्ति का कुछ अंश गायक नेता द्वारा और कुछ नियत शब्दो (यथा—भजले राम, भज म्हारी जोडी रामनाम रे भाई) का समूह द्वारा उच्चारण, पूर्ण गीत का सहोच्चारण आदि अनेक रूपो मे भणत की गायन-शैली के दर्शन होते है। उदाहरण रूप मे यहाँ एक भणत के कुछ अंश को प्रस्तुत किया जा रहा है—

'धोरा धोर मे जवार
कडवी काटौ रे मोटियार
धोरा लीलोडी जवार
कडबी काटौ रे मोटियार

बडयो रावळो रे मोटियार
आगैं हालो रे मोटियार।'

(ख) कार्य से असम्बन्धित श्रम-गीत

श्रम-परिहरण हेतु मानव स्वभावत: कुछ गाता ही रहता है। उक्त विवेचन में हमने क्रिया से सम्बन्ध रखने वाले गीतों का दिग्दर्शन कराया। वस्तुतः मानव अपने जीवन की परिस्थितियों से भूलकर भी दूर नहीं जा सकता। उसकी प्रत्येक अभिव्यक्ति में प्रत्यक्षत या परोक्षत जीवन सम्बन्धी चर्चा देखने को मिल ही जायेगी। अत श्रम-गीतों में मानव-जीवन के बहुतेरे चित्र चित्रित हैं। उसकी व्यथाओं, विडम्बनाओं, निराशा आदि के साथ ही उसके जीवन के सरस और उल्लास ने भी इन गीतों में स्वर पाया है। इन गीतों में गार्हस्थिक जीवन की सुखात्मक अनुभूतियों के साथ विविध दुख भी वर्णित हैं। संयोग के साथ वियोग भी विवेचित है। लोकप्रिय वस्तुओं का उल्लेख हुआ है। सारांश में कह सकते हैं कि लोक-मानव की चिन्तन-शक्ति इन श्रम-गीतों में अनेक रूपों में प्रकट हुई है। क्रिया से असम्बन्धित श्रम-गीतों में से कई गीतों में तो श्रम में सहयोग देने वाली वस्तुओं का विवेचन हुआ है और कई में केवल मानव-जीवन की परिस्थितियों का ही। इन गीतों का लक्षण भी कर्मशील है—

'खांधै कवाड़ी हाथा बासलो, देवर लिछमणजी
कोई दौड़िया बागा जाय, हर री हिंडोळो।'

जब लोक का प्रत्येक आराध्य देव ही कर्म-रत है तो लोक का कर्म प्रिय होना स्वाभाविक ही जान पड़ता है। एक गीत में कृष्ण खेत की रखवाली करता दिखाया गया है। यशोदा खेत पर खाना ले जाने वाली 'भतवारी' के रूप में चित्रित है।

किसान की पत्नी की पिटाई तो प्राय हो ही जाती है। 'गुमाना हाळीजी' नामक गीत में इस बात का भी उल्लेख हुआ है। अत यदि लोक-गीतों को लोक-जीवन का दर्पण कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी—

'मूळा री तो लीनी है कांकड़ी हा रे हाळीजी
फड़फड़ फूरड़िया है मोर गुमाना हाळीजी।'

इन गीतों में नारी की आभूषण-प्रियता का भाव भी प्रकट हुआ है। उसने जी-तोड़ मेहनत की है तभी तो वह पति से आभूषण प्राप्त करने की स्वयं को अधिकारिणी मानती है। पर उसकी इच्छा की पूर्ति होती ही नहीं। उसके मन की मन में ही रह जाती है—

'म्हारै हथेळिया रै माय छाला पड़ग्या म्हारा मारुजी
म्हैं पालो कींकर वाढ़ू जी
डेरां रो कांटियो म्हे खेता रो वाढ़ियो

ओ तो वाडा रो म्हासू न काट्यो जावै म्हारा मारूजी
म्है पालो कीकर बाढू जी
रखडी तो म्हारा पिवरिया घडाई
था तो साकळी री म्हारै मन मे रंगी म्हारा मारूजी
म्है पालो कीकर काटू जी।'

श्रम-गीतो मे हमे अनेक मणतें ऐसी भी मिलेंगी जिनमे क्रिया से सम्बन्धित भावो की अभिव्यजना नही हुई है। इनमे कही तो पूर्णत पूर्वापर सम्बन्ध रहित चित्र चित्रित है और कही सामाजिक जीवन की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ मणतों मे कृषि कार्य मे उपयोगी उपादानो की विवेचना हुई है। यहाँ एक ऐसी मणत उद्धृत की जा रही है जिसमे 'दातलो' का वर्णन मिलता है—

'अबकै तो घडावू म्हारी भावज खेती रो दातळो
आरणिया धुकावू म्हारी भावज माणक-चौक मे
धाकणियो धुपावू म्हारी भावज चानण-चौक में
लवारियो बुलावू म्हारी भावज पूरवियै देस रो
डांडो तो दिरावू म्हारी भावज बिजळसार रो
वीणी तो बधावू म्हारी भावज बासग नाग री
घूघरिया दिरावू म्हारी भावज डावलियै हाथ सू
घूघरिया रै रणकै झणकै आवणदै मावज दातळो
दूधा रा पीयोडा देवर बावै नी दातळो।'

इसके अतिरिक्त हम एक ऐसी मणत भी प्रस्तुत करना चाहते हैं जिसमे प्रत्येक पक्ति का कुछ अश एक व्यक्ति द्वारा एव टेर (जिस हम उसी पक्ति का अश या अर्द्ध-टेर कह सकते है) वाला अश समूह द्वारा गाया जाता है—

एक व्यक्ति द्वारा	समूह द्वारा
थारै पाली वाळो पीळो रे चन्दवा	*मण म्हारी जोडी रामन्नै*
थारै देवण नै सोजत री मेहदी	मण म्हारी जोडी रामन्नै
थारै नैणा मे सुरमै रो काजळ	मण म्हारी जोडी रामन्नै
थारै देवण नै हिंगळू री टीकी	मण म्हारी जोडी रामन्नै
थारै देवण नै गोठण रो गोटो	मण म्हारी जोडी रामन्नै

मणतो म कही-कही डिंगल के अति प्रसिद्ध अलकार वयण-सगाई के बहुत ही सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। यथा—

पीतळियाँ पीलाण	रे भाई
कं घोळा रो मोल	रे भाई
हाळी रा हजार	रे भाई
सीगोटी रा साठ	रे भाई

नैणा रा नवलाख रे माई
काना रा किरोड़ रे माई
पूठा रा पचास रे माई

इन श्रम गीतों में प्रकृति के भी बहुत ही सुन्दर और रम्य चित्र चित्रित किये गये हैं। ऐसे गीत प्रकृति की रमणीय क्रोड़ में निवास करने वाली जातियों की कोमल कल्पना-शक्ति एवं प्रकृति-प्रेम के परिचायक हैं। इन गीतों में इन जातियों के अपूर्व साहस का भी विवेचन मिलता है।

श्रम गीतों में अनेक गीत ऐसे हैं जो कृष्ण एवं गोपिकाओं या राधिका की मधुर छेड़खानियों तथा उपालम्भों को अपने में संजोए हुए हैं। इन गीतों में कृष्ण और राम, राधा और सीता को एक ही मान लिया गया है, ऐसा प्रतीत होता है। कृष्ण का स्थान राम द्वारा सहज ही में ले लिया जाता है। चक्की चलाते समय या चरखा चलाते समय औरतें इसी भाव के भी गीत गाया करती हैं, उनमें से एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'चादड़लै री निरमळ रात
आधी रा सरवर साचरी ओ राम
रामजी सामी धरिया नदजी रा लाल
म्हानें गाय दुवाड़ी छालरो ओ राम
रामजी लावी लावी दूघड़लै री धार
म्हारी चूदड़ होयगी चीगटी ओ राम
रामजी जायोड़ै नै बरज नै राख
म्हनें (गूजरिया) अणी अणी देवै ओळवा
बहू अे गूजरिया री जात कुजात
साची री झूठी भेळ दें ओ राम।'

इन श्रम-गीतों में नारी के मान-प्रसंग के चित्र भी मिल जायेंगे, मणतों में अनमेल विवाह के प्रति किया गया व्यंग्य मिल जायेगा, असार संसार की क्षण-भंगुरता का उल्लेख मिलेगा, पुनर्जन्म में मानव-देह प्राप्त करने हेतु प्रार्थना और अब पुण्य करने के लिए किये गये वायदे भी इन गीतों में मिल जायेंगे। सूर-जैसी सख्य भाव की भक्ति के भी यहीं दर्शन होंगे और तुलसी की-सी विनयशीलता भी इन गीतों में मिलती है। कुछ गीतांश यहाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

सख्य भाव (खेत जाते समय गाते हैं)—समता का भाव—

'मत कर सांवरिया हेरो, थारै बराबर डेरो
अे राधा रुकमण थारै, दाय जलम जाटणी म्हारै

अै मैल माळिया थारै, तौ टूटोडी झूपडिया म्हारै
अै गादी तकिया थारै, तौ फाटोडा गूदडा म्हारै।'

वृद्ध-विवाह पर व्यग्य (भणत)—

'बागा रा फुलडा बीरा राम वरणौ
बूढळियौ तो बनडौ बीरा राम वरणौ
बागा री है कोयलडी बीरा राम वरणौ।'

श्रम-गीतो का विशद् विवेचन करने के पश्चात हम ऐसे बाल-गीतो पर पाठको का ध्यान केन्द्रित करना चाहते हैं जो बालक-बालिकाओ द्वारा उनकी बाल्यावस्था मे विभिन्न अवसरो पर गाये जाते हैं।

(४) विभिन्न अवसरो पर गाये जाने वाले बाल-गीत

यद्यपि बाल गीतो का विवेचन पूर्व-विवेचित प्रसगो मे किया जा सकता था परन्तु हमने कुछ कारणो से इन गीतो का अलग से विवेचन करना आवश्यक समझा। इस सन्दर्भ मे सबसे प्रमुख बात तो यह है कि भाव की दृष्टि से बालको के गीतो मे एव पुरुषो तथा स्त्रियो के गीतो मे पर्याप्त विभेद मिलता है। अत बाल गीतो की भाव-सम्पदा का अन्य गीतो की भावाभिव्यक्ति के साथ ताल-मेल प्रस्थापित करना हमे असमीचीन प्रतीत हुआ। इसके अतिरिक्त प्राय बाल-गीतो मे एक ही गीत मे अनेक पूर्वापर सम्बन्धरहित भाव-चित्र देखने को मिलते हैं, जो अन्य गीतो मे (भणत के अतिरिक्त) नही मिलते। बाल गीत स्पष्टता से आपूर्ण हैं। ये गीत निरावरण सूर्य की भाँति प्रकाशित है परन्तु अन्य गीत सीपीबद्ध मोती की भाँति हैं। बालेतर गीतो मे समाज-मर्यादा का आवरण सदैव मिलता है। यथा—बालिकाओ के गीतो मे भी ससुराल की व्यथाओ का सविस्तार उल्लेख हुआ है, और अन्य गीतो मे भी ऐसा हुआ है, पर बाल-गीतो मे सदैव सास-ननद आदि को सारे समाज के सामने ही प्रताडित करने की भावना देखने को मिलती है, जबकि अन्य गीतो मे नही। बाल गीतो की बालिका अपनी सौत की मृत्यु पर बहुत बडा उत्सव मनाती है और विवाहिता समाज-भय से प्रकट रूप मे तो रोती है पर उसके हृदय मे आनन्द की लहरें अवश्य उमडती हैं। बाल-गीतो मे सर्वत्र हास-उल्लास और आनन्द ही है जबकि अन्य गीतो मे आनन्द के साथ व्यथाओ का कारुणिक चित्रण भी हुआ है।

बालक अनेक प्रकार के खेल खेलते समय भी गीत गाया करते हैं जबकि ऐसे गीत दूसरे वर्ग मे नही मिलते। हाँ, वयस्को के गीतो में अनेक खेलो का उल्लेख अवश्य हुआ है, पर इन खेलो के अवसर पर ये गीत नही गाये जाते। यथा—कई गीतो मे 'चौपड' खेल का उल्लेख मिलता है, पर वे गीत चौपड खेलते समय गाये नही जाते।

बाल-मनोविज्ञान को दृष्टिगत रखते हुए भी अन्य गीतों से विलग बाल गीतों का विवेचन करना श्रेयस्कर प्रतीत होता है। बालक के मानस-पटल पर उसके अपने ही जगत के चित्र रहते आते हैं। बालक उसमें से ही विषयों का चयन करता है, उपमानों का अन्वेषण करता है और लोक गीतों की भड़ियाँ निर्मित करता है। अतः उक्त कारणों से ही हमने बाल-गीतों का अलग से विवेचन करने का निश्चय किया है।

(क) गणगौर

अविवाहिता कन्या मनोनुकूल वर-प्राप्ति हेतु गौरी की पूजा करती है। गणगौर की पूजा के निश्चित दिन (चैत शुक्ला तृतीया-चतुर्थी) से पन्द्रह दिन पूर्व ही बालिकाएँ 'लोटे' लेकर कुएँ पर जाती हैं। वहाँ उस लोटे को मांजकर उसमें कुएँका स्वच्छ जल भरती हैं। दूर्वा के कुछ तृण एवं आम के फूल भी उसमें डालती हैं। वहाँ से वे 'गौरी' के मन्दिर पर आती हैं और गौरी की पूजा करती हैं। गौरी-पूजन के दिन एक पीतल के बर्तन में दूर्वा तथा अन्य शस्य घास से 'गवर' बनायी जाती है और उसे गहने भी पहिनाये जाते हैं। इस एक बालिका अपने सिर पर रखती है और अन्य बालिकाएँ उसके पीछे-पीछे चलती हैं। वे सभी घर-घर 'गवर' को घुमाती हैं जहाँ गवर की पूजा गृहिणियों द्वारा की जाती है, और 'गौरी' को प्रसाद चढ़ाया जाता है जिसे बाद में बालिकाएँ बाँटकर खा जाती हैं। इस अवसर पर गाये जाने वाले गीतों में गौरी सौन्दर्य का चित्रण एवं गौरी से अनेक प्रकार से की जाने वाली याचनाओं का वर्णन रहता है। एक ऐसा गीत उद्धृत है—

'गवर गिणगोर माता खोल किंवाड़ी अ
बारै ऊभी तीजणिया थे काई-काई मागा अे
राज करन्ता बाभीसा मागा, मई घमाड़ती माता अे
कान्ह कवरियो वीरो मागा, राई सी भोजाई अे
काळै घोडै काकी मागा, काजळ वाळी काकी अे
मोटै घूमाळै मामो मागा, मादळवाळी मामी अे
सावळियो बैनोई मागा, राते चुडलै बैन अे
धाड़ा खेलावण फूफो मागा, गादी सूदन्ता भूवा अे।'

इसी अवसर पर राजस्थान भर में 'घुडलो' नामक प्रसिद्ध लोक गीत गाया जाता है। गौरी पूजनार्थ निकले बालिकाओं के समूह को 'घुड़ले खां' अपने शहर को ले भागा। इधर घटना का पता चलने पर जोधपुर नरेश सातळजी ने घुडले खाँ का पीछा किया और उसे मार बालिकाओं को छुड़ाया। उसके सिर को तीरों एवं भालों से बींध दिया था। अतः आज बालिकाएँ छिद्रयुक्त घट को अपने सिर पर रखकर (इस प्रतीक से उस घटना का बोध कराने हेतु) 'घुडलो' नामक गीत गाया करती हैं। इस मृत्तिका-कलश में दीपक भी जलाकर रखा जाता है—

'घुडलो घूमैला जी घूमैला
घुडलै रै बाधो सूत घुडलो घूमैला जी घूमैला
सवागण बारै आव घुडलो घूमैला जी घूमैला
मोरया रा आखा लाव घुडलो घूमैला जी घूमैला
तेल बळै घी लाव घुडलो घूमैला जी घूमैला ।'

इसी प्रकार एक अन्य घुडले के गीत में 'राठोडी रजपूत'; 'पाली रा परधान'; 'सोजत रा सिरदार', 'जैतारण रा जाट', 'कुडकी रा कुम्हार' और स्थान-विशेष की जाति-विशेष द्वारा घुडले की निर्मिति का प्रशसित होना वर्णित है ।

(ख) आखा तीज

अक्षय तृतीया के कुछ दिन पूर्व से ही बालिकाएं किसी मन्दिर मे एकत्र होकर खेल (अदळ घोटो—आंख-मिचौनी) खेला करती हैं । अपनी दुपहरी भी वही करती हैं । अक्षय तृतीया के दिन एक छोटी बालिका को दूल्हे का वेश धारण करवाया जाता है और एक बालिका दुल्हिन बनती है । वर-वधू बालिकाओ के समूह के साथ घर-घर जाते हैं, वहां उन्हे कुछ-न-कुछ धान या पैसा मिलता है । इस अवसर पर गाये जाने वाले गीत का अश प्रस्तुत है—

'आखातीज रो आखो खीच, गळवाणी सू मीठो खीच
धान भणेरो देवो बीर, रिपिया रो म्हे करसा सीर
बीद बीदणी मागै आज, कम देता थानै क्यू नी आवै लाज
बीदणी नै गाबा दिराय, बीद रै थे साफो बाधाय ।'

(ग) सावण री तीज

भाई-बहिन के प्रेम का मूर्तिमन्त रूप राजस्थान मे रक्षा-बधन से भी विशिष्ट रूप मे श्रावण-तृतीया के पर्व के दिन हमारे समक्ष आता है । बालिकाएँ इस अवसर पर अनेकानेक गीत गाया करती हैं । बालिकाओ के गीतो मे भ्रातृत्व प्रेम से ओत-प्रोत गीतो का बाहुल्य है । वह तो ससार मे प्रवेश ही भाई के लिए करती है । सबसे पहले वह 'काचर' लाकर उससे बनाये साग को भाई को ही खिलाना चाहती है । सासारिकता मे प्रवेश हेतु उसका यही प्रथम कदम है । उसके लिए कितना महत्त्व का वह क्षण होता है जब वह स्वय द्वारा लाये गये 'काचरो' को 'छोलकर छमकाती' है और उस साग को प्रेमपूर्वक 'वीरे' को खिलाती है । इन गीतो मे भ्रातृ-प्रेम के साथ-ही-साथ अननुभूत ससुराल की विडम्बनाओ का चित्रण श्रवणाधार पर चित्रित रहता है । कुछ गीतो मे ससुराल के दुखो एव पीहर के सुखो का तुलनात्मक वर्णन देखने को मिलता है । इन गीतो को देखने पर पता चलता है कि बिना देखे ही ससुराल मे दी जाने वाली व्यथाओ को समझ जाना और ससुराल के ऐसे जटिल, कुटिल सम्बन्धो तथा सम्बन्धियो की हँसी उडाना,

उन्हें कोसना तथा उनकी अपेक्षा पीहर को कई गुना अधिक महत्त्व देना आदि बातें तो उस सरलहृदया के स्वभाव के अविभाज्य अंग बन गये हैं। वह सोचती है कि यदि ससुराल में वह रात्रि काल में खेलकर देर से पहुँचेगी तो उसकी हृदय-हीना सास उसके बाप और भाई से सम्बन्धित गाली देगी। पर इतना तो उसके लिए असह्य है। वह तो पीहर पत्र भेज ही देती है। पीहर वालों के पूछने पर सास कहती है कि न तो बहू असुन्दर है और न ही आपने दहेज में किसी प्रकार की कमी रखी पर उसका रात में देर से खेलकर आना मुझे बहुत खलता है। उसके बाद दूसरी यह भी बात है कि वह सूर्योदय के बाद तक सोती रहती है। लेकिन वह स्वतन्त्र बालिका तो किसी प्रकार का बन्धन ही नहीं स्वीकारती। वह तो अपना अडिग निश्चय सुना देती है। निश्चय किसी को बुरा लगे तो लगे, उस कोई परवाह नहीं। कितनी स्वधर्मंहठिता है और साथ ही खेल के प्रति भी कितनी ललक है। 'केसर' नामक गीत इसका सही प्रतिनिधित्व करता है। यहाँ केवल दो पंक्तियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

'नी छूटे बाभोसा बाळपणें री रीत
रमणो तो लागो केसर रै जीव सू।'

पीहर प्यारी बालिका सुरंगे-सावण में सहेलियों के झूलरे के साथ हिल-मिल-कर तीज खेलने व झूला झूलन की इच्छा नहीं रखेगी तो क्या चतुर्थावस्था के लगभग पहुँची वृद्धा सास रखेगी ! कैसी विचित्रता है ? जिसे खेलने के सिवाय कुछ सूझता ही नहीं, उसे तो परिस्थितिवशात् अपने उमगित हृदय की सवेग भावनाओं पर अर्गला लगानी पड़ती है और दूसरी ओर वह सास है जिसे बहू को नाना प्रकारेण प्रताड़ित करने के अतिरिक्त समय-यापन दूभर आन पड़ रहा है। इन बाल गीतों में बालिकाओं ने सास द्वारा किये जाने वाले जानलेवा अत्याचारों का उल्लेख करने के साथ ही सास द्वारा बहू को मार देने के माध्यमों का भी चित्र खड़ा कर दिया है। धतूरे की सब्जी सास ने बहू को मारने के उद्देश्य से ही खिलायी थी। परन्तु कितनी मीठी मार से बहू को मारा गया है, यही द्रष्टव्य है। जो सास सदैव सोगरे (बाजरे की मोटी रोटी) देती थी उसी सास ने आज पतले-पतले फुलके पोये !—

'तरकारी भरोसे सासू धतूरो मोलायो

× × ×

सदा तो पोवती सासू बाजरी रा सोगरा
आज पोया सासू गेंदळा सा फलका
खाता खाता सासू म्हनें नीद घणेंरी आवे।'

ऐसी सास के प्रति यदि बालिका का हृदय विद्रोह कर बैठे तो स्वाभाविक ही है। इस प्रकार के और भी अनेक उदाहरण मिलेंगे जिनमें ससुराल के जीवन

के प्रति बालिका का विद्रोह प्रकट हुआ है। जब सास बहू को मारने वाली है तो बालिका की दृष्टि से उस सास का ऐसा हाल कर देना चाहिए—

'बाळू भाळू सासू थारी जीभड़ली
ऊपर राळू संधो लूण रे नीबूड़ा।'

बालिकाओं के मन में सब की सहेलियों के साथ अठखेलियां करने की सदा उमग रहती है। अत 'सावण री तीज' पर गाये जाने वाले गीतों में भी यह भाव पाया जाता है। ससुराल जाने पर सभी सहेलियाँ बिछड़ जायेंगी—

'भाभीजी काकीजी सू आण मिळाला
साथणिया सू मेळो दूहेलो म्हारी सायण।'

इस समय के गीतों में कई स्थानों पर बालिका ने ससुराल की यातनाओं को ध्यान में रखते हुए माँ से प्रार्थना की है कि माँ ने मुझे बड़ा ही क्यों किया—

'मा म्हारी ओ कोगी ऊपर लोटी
म्हनै क्यू करी जो मोटी
कूमटियो काटाळी काटो भाखणो
मा म्हारी आगणै पड़ी भराई
म्हनै क्यू कीनी जो पराई।'

(घ) दीपावली

दीपावली की रात को गाँवों में छोटे छोटे बालक-बालिकाओं की टोलियाँ अपने सिर पर छिद्रयुक्त खोखला मतीरा रख घर-घर जाती हैं। उस मतीरे में दीपक रखा होता है। वे घर के सामने खड़े होकर जोर से सामूहिक रूप से निम्न गेय पंक्तियों का गायन शैली में उच्चारण करती हैं—

'घालो तेल वधै थारी बेल
नी घालो तो ठेलमठेल
नी घालै तो आगै हालो
छोडो इया री गैल।'

(ङ) होली

होली के अवसर पर भी लड़कों द्वारा फाग और लड़कियों द्वारा गीत तथा लूरें गायी जाती हैं। लड़कों के फागों में प्राय धार्मिक भावना एवं देवी-देवता के चरित्र ही देखने को मिलते हैं। यथा—

'राम नै लिछमण री जोडी
वनरावन में दीठी ओ
राम नै लिछमण री जोडी
वनरावन में दीठी ओ।'

'देसाणै री करणी माता
मैर राखे मोकळी
भगड़े री वेला अवै माता
फोजा रोस नी ।'

बालिकाओ के गीतो मे भ्रातृत्व प्रेम, पीहर के जीवन के प्रति लालसा और समुराल के प्रति खीज आदि अनेक बातें देखने का मिलती हैं। भ्रातृ-प्रेम का कैसा अनूठा उल्लास इन पक्तियो मे व्यक्त हुआ है—

'होली आई रे फूला री भोली भिरमटियो ले
ओ कुण खेले रे केसरियें बागा भिरमटियो ल
ओ तो खेलै रे जेंवरणजो वीरो भिरमटियो ले
हाथ मे मोनै री चुटियो भिरमटियो नै।'

इस सम्बन्ध मे स्वर्गीय पारीक तथा उनके दो साथियों के विचार द्रष्टव्य है—
'कैसे भोले भाव हैं, कैसा सुन्दर चित्र है। कैसा मनमोहक और पवित्र है यह बाल्य-भावनाओ का स्वर्गोपम जगत !'[1]

एक लूर भी उदाहरणार्थ प्रस्तुत है जिसे बालिकाएँ गाती हैं—

'चाद आडी जळेरी
सूरज आडो कूडो रे
म्हारै बीरै रे गेडी आवै, किण रो मूडो रे
हाजर ऊभी रे हाँ हाँ हाजर ऊभी र
ढाल नै तरवार लेय नै
हाजर ऊभी रे।'

(घ) विविध खेल खेलते समय गाये जाने वाले बाल-गीत

दिन मे भोजनोपरान्त और रात्रि मे भी भोजनोपरान्त छोटे-छोटे लड़के-लड़कियाँ भुंड बना-बनाकर अनेक खेल खेलत हैं। इसके अतिरिक्त ८-१० वर्ष की लड़कियाँ प्राय सायकाल के पश्चात एकत्र होकर घरो के आगे ही बैठकर गीत गाया करती हैं। इन गीतों में बाल जीवन की मधुरिमा सर्वत्र अभिव्यक्त हुई है। खेलने का चौगान तथा रात्रि उनके पिता और भाइयो की अक्षय सम्पत्ति है फिर उन्हे कौन खेलने से रोक सकता है ? खेलने की अबाध लालसा किस पुष्ट तर्क से अभिव्यक्त हुई है—वस्तुत यही प्रशस्य है—

'किण जी मोलायो चौवटो
किण जी मोलाई रात
बाबोसा मोलायो चौवटो

---

1 राजस्थान के लोक-गीत, स० पारीक, ठाकुर एव स्वामी, पृ० ४६७

बीरोसा मोलाई रात
रमण जोगी चौवटो
खेलण जोगी रात।'

इसी प्रकार खेलते-गाते एव घर से बाहर रहते रात पड जाती है। पर इसकी उसे चिन्ता भी नही है। क्योकि यदि घरवाले गालियाँ देंगे तो वह शीघ्र ही बड़े भैया से कहलायेगी कि वह तो तुम्हारे यहाँ अतिथि मात्र है, न जाने कब चली जाय—

'चाद चढयो गिरनार किरत्या ढळ रई है जी ढळ रई
बाईजी घरे पधार माऊजी मारेला जी मारेला
कोई बाभोसा देगी गाळ, वडो वीरो वरजैला जी वरजैला
मत दो बाई नै गाळ, बाई म्हारी चिडकली ओ चिडकली
कोई रमवा रा दिन च्यार, जवाइडो ले जासी जी ले जासी।'

उक्त गीत लडकियाँ कभी भी गा लिया करती हैं पर कुछ गीत कुछ खेलो से बंधे हैं। यथा—

फूदी लेते समय—

'फूदी रो फडाको बीरा बाई रो काको
काको लायो काकडी काकी मांगिया बीज
काकै दीनी लात री, काकी गाया गीत।'

दूलियों का खेल खेलते समय—

'दूली मरगी दूलो रोवै
मे आवै तो माथो धोवै।'

वर्षा आने पर बालक-बालिकाओ द्वारा गाया जाने वाला गीत—

'ढकणी म ढोकळी, मे बाबो मोकळो
आयो बाबो परदेसी, झोली डडा भर देसी
हमैं जमानो कर देसी, बाजरिया सैरा लेसी
मे बाबा आयजा, दूध रोटी खायजा
दूध री बणावो खीर, मे म सैगा रो सीर।'

उक्त गीत के सन्दर्भ मे राजस्थानी लोक साहित्य के मर्मज्ञ चिन्तक श्री देथा का यह विचार उल्लेख्य है—

'प्रकृति के उपकरण (इन्द्र) को मनुष्य रूप मे दीक्षित कर लिया गया है। प्रकृति को अपनी चेतना ही का अश मानने के कारण आदिम मानव का यह विश्वास है कि वह उससे अपनी चाहना के अनुरूप कार्य सम्पन्न करवा लेगा।'[1]

---

१ साहित्य और समाज, विजयदान देथा पृ० ४३

अब यहाँ कुछ पद्य ऐसे प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिन्हे प्राय बालक या बालिकाएँ गड्डे खेलते समय, डाई डाई का खेल खेलते समय, पकडा-पकडी का खेल खेलते समय या अन्य किसी खेल के समय गाते हैं—

'डाई डाई डचियो
कुभारी रो वचियो
कुभारी गी पाणो नै
वचियो रोवै ढाणी मे
कुभारी बोवो दै नी
वचियो रोवतो रै नी।'

'म्हारी म्हारी छालिया नै दूधो दइयो पावू
नारियो आवै तो सोटा सू धमकावू।'

उक्त समस्त बाल-गीतो के अतिरिक्त १०-११ वर्ष के लडके-लडकियाँ अपने छोटे-छोटे भाई-बहिनो को सुलाते समय अनेक लोरियाँ गाते हैं। इनमे से एक उदाहरण यहाँ प्रस्तुत है—

'हालर हूलर बागा में
दई जमायदो माटा मे
हालर हूलर जाई रे भूवा (दासी)
आडनिया टोपलिया लावै वीरे री भूवा (मासी)
भूवा (मासी) रै भरोसै वीरो सीया ई मरै
हालर हूलर अेक घडी
वीरै नै रमावै जिणनै बिलाडो नै बडी
बिलाडो नै बडी अर सोजतडी
सोजतडी रा गऊडा राता है
बीरै रा दातामा माता है
माता है मनवाळा है
घोडो चढण नै ताता है
घोडलिया चढ ठकराया करै
पोळया बैठा पचायतियां करै।'

'गायक ही श्रोता' शीर्षक पर विशद् विवेचन करने के पश्चात अब हम पेशेवर गायको की दृष्टि मे राजस्थानी लोक-गीतो का विवेचन करना उपयुक्त समझते हैं।

(आ) गायक-पृथक्—श्रोता-पृथक् (पेशेवर गायक)

जैसा कि पहले ही सूचित कर दिया गया है कि राजस्थान मे अनेकानेक जातियाँ गीत गाकर ही अपनी पेट-भराई का बन्दोबस्त करती हैं। यहाँ हम एक और सूचना देना आवश्यक समझते हैं कि ये गायक-जातियाँ अपनी विशिष्ट यजमान-जातियो से सम्बन्धित हैं। प्राय ये जातियाँ इन यजमान-जातियो से ही याचना करती है। उदाहरणार्थ—रावळ जाति अपना नाट्य-प्रदर्शन एव गायन-आयोजन केवल चारण जाति के लोगो की उपस्थिति मे ही करती है। इसी प्रकार पाबूजी के भोपे थोरियो के वहाँ और धाँधळ राजपूतो के वहाँ ही जाते है। बगडावतो के भावे भी गूजरों के घरो से माँगने के अधिकारी है। आज की बदलती परिस्थितियो के अनुरूप यद्यपि गायक-जातियो द्वारा अपनी पैतृक परम्पराओं का पूर्णत पालन नही किया जाता है, तथापि आज भी यह जातियाँ अपने यजमानो का पूर्ववत ही आदर करती है। य गायक अवसरानुकूल गीत गाया करते हैं। इन लोगों के गीतो के साथ सगीत का भी प्रयोग होता है। गीत और सगीत का मणिकाचन योग इन पेशेवर गायकों की अपनी विशेषता है। विभिन्न गायक-जातियो के गीतो मे लयात्मक अन्तर पाया जाता है।

इन पेशेवर गायको मे स कुछ जातियो के गायको की गायन-शैली के सम्बन्ध मे यह विशेष रूप से उल्लेख्य है कि ये लोग कभी-कभी गीत गाने से पूर्व राग का नाम बताने के साथ ही उस राग की प्रभावात्मक शक्ति के सम्बन्ध मे कोई दोहा या सोरठा उसी राग मे गाते हैं और तब गीत को प्रारम्भ करते हैं। परन्तु यह पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि शास्त्रीय राग एव इन गायको द्वारा बताये रागो मे नाम साम्य के अतिरिक्त कोई साम्य नही होता है। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि यदि इन गायको का राग की प्रभावात्मिका शक्ति से सम्बन्धित कोई दोहा याद नही हो तो ये गायक गीत के प्रारम्भ म बहुधा गीत के वर्ण्य *विषय से सम्बन्ध रखने वाले किसी दोहे या सोरठे को गाया करते हैं।* यदि कोई प्रेम तत्त्व प्रधान गीत गा रहे है तो उसम पूर्व प्रेम विषयक दोहा ही गायेंगे। उक्त दोनों बातो की सोदाहरण पुष्टि आवश्यक है।

प्राय गायक माड, सूब, आसा, सामेरी माड, सोरठ, तोडी, काफी, माळग, सिन्धी-भैरवी, मारू, खमायची जगला, मूहमल्हार, धानी, श्याम किल्याण आदि रागों का नाम लेकर गीत गाया करते हैं। इन सभी रागो की बन्दिशो को गाने के पूर्व राग से सम्बन्धित अथवा गीत के विषय से विषय-साम्य रखने वाले दोहे गाये जाते हैं। यथा—

(१) आसा—(माड राग) के प्रभाव सम्बन्धी—

'आसा म्हारी लाडली, झीलण गई तळाव
मेला तो सब धो लिया, विरह न धोयो जाय।

'आसा किणीयक लागणी, आमा किणरी न भज
रीतो न आवै पारधी, मिरगई बाण न लाग ।'

(२) तोडी—प्रभाव सम्बन्धी—

'तोडी मीठी रागणी, मजलस मीठी तान
सेजा मीठी कामणी, रण मीठी तलवार ।'

(३) सोरठ—गीत के विषय से सम्बन्धी—

'सर सूखै नव दिन हुआ, पाणी गयो पताळ
ओ गुणगारी हसलो, अजहूँ न छोडी पाळ ।
पाळ पुराणी जळ नूवो, हसलो बैठो आय
प्रीत पुराणी कारणै, चुग-चुग कांकर खाय ।'

गीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ—

'दळ बादळी रो पाणी सय्या कुण जी भरै
म्हे तो भरा नै म्हारी गोरादे भरै ।'

(४) साळग—गीत के विषय से सम्बन्धी—

'गह घूमी लूबी घटा, बादळ कियो बणाव
घर मडण घर आवियो, घर मडण घर आव ।
फौज घटा सग दामणी, बूद बरच्छी देह
आज पिया बिन अकेली, मारण आयो मेह ।'

गीत की प्रारम्भिक पंक्तियाँ—

'सावणियै री हीडो रे बाधण जाय,
हीडो रे बाधण घण गई रे सात सहेल्या रे साथ ।'

(५) सोरठ—राग के प्रभाव सम्बन्धी—

'सोरठ राग सुहावणी, जे कोई सुण नै जाय
चतर हुवै तो उठ सुणै, मूरख सोवण जाय ।
सोरठ राग सुहावणी, तीज्यो आधी रात
मूरख सोवण उठ चलै, चतर सुणण नै आत ।'

उपर्युक्त दोहों में यही राग के प्रभाव का उल्लेख किया गया है और कुछ दोहो एव दोहों के पश्चात गाये जाने वाले गीतो में विषय-साम्य है। तीन और चार की सख्या पर लिखे गये दोहों में पावस-काल के वर्णन के साथ ही अटूट उच्च कोटि के प्रेम का निरूपण किया गया है और उनके बाद में गाये जाने वाले गीतों में भी प्रेम-तत्त्व की प्रधानता है। इन दोहो को किसी भी प्रेम-प्रधान गीत पूर्व गाया जा सकता है।

पेशेवर गायकों के सम्बन्ध में ज्ञातव्य विशिष्ट बातो के विवेचन के पश्चात

हम इन गायकों की दृष्टि से वर्गीकृत लोक गीतों का सोदाहरण विवेचन समीचीन समझते हैं।

(१) संस्कारों के अवसर पर गाये जाने वाले लोक-गीत

विभिन्न संस्कारों के अवसर पर ये पेशेवर गायक अपने यजमानों के घर जाकर अनेक प्रकार के गीत गाया करते हैं। इन्हीं अवसरों पर तो इन लोगों को 'नेग' रूप में खाद्य सामग्री, वस्त्राभूषण एवं रोकड़ रुपये प्राप्त होते हैं। भाँति-भाँति के गीत गाकर ये अपने यजमानों एवं उनके अतिथियों का मनोरंजन किया करते हैं। इन संस्कारों में प्रमुख संस्कार जन्म और विवाह ही हैं। मृत्यु-संस्कार पर पेशेवर गायकों द्वारा गाये जाने वाले गीतों का कोई उदाहरण नहीं मिला है। मृत्यु के अवसर पर बारह दिन तक रात्रि में गाँव के धार्मिक वृत्ति वाले लोग आत्मा-परमात्मा और गंगा आदि से सम्बन्धित भजन या हरजस गाया करते हैं, पर वे लोग जाति-विशेष के न होकर किसी भी जाति के हो सकते हैं। और ऐसे *भजन अधिकतर किसी व्यक्ति विशेष द्वारा प्रणीत होते हैं।* जो थोड़े-बहुत लोक-गीतों के रूप में होते हैं उनका विवेचन 'गायक ही ख्याता' शीर्षक में प्रस्तुत कर दिया गया है। इसका मूल कारण यह भी है कि ये गायक पेशेवर भी तो नहीं होते। वे तो स्वानुरंजन एवं धार्मिक-लाभ के भाव से प्रेरित होकर गीत गाया करते हैं। अतः ऐसे गीतों का विवरण यहीं दिया जाना प्रासंगिक था।

यहाँ यह भी स्मरणीय है कि कुछ पेशेवर जातियाँ तो निश्चित जातियों से ही याचना करती हैं अतः उस जाति के लोग उचित अवसर पर बिना बुलाये ही अपने यजमानों के घर पहुँच जाते हैं और कुछ अन्य जातियों के गायक किसी अवसर-विशेष की सूचना मिलते ही स्वेच्छा से वहाँ पहुँच जाते हैं—तथा कुछ विशिष्ट गायकों का गृह स्वामी स्वयं बुलाया करता है। इन पेशेवर गायक-जातियों में से कुछ जातियों की स्त्रियाँ भी ऐसे अवसर पर गीत गाया करती हैं। यथा—जोगणियाँ और नटणियाँ ऐसे अवसरों पर कहीं न कहीं से घूमती फिरती प्रायः गान हेतु पहुँच ही जाया करती हैं। ये स्त्रियाँ बहुधा भिक्षार्थ घर-घर घूमते समय भी कुछ-न कुछ गाया करती हैं।

(क) जन्म संस्कार

पुत्र-जन्म के पश्चात 'सूरज पूजा' के दिन पेशेवर गायक अपने यजमानों के घर जाकर गीत गाया करते हैं। इस समय गाये जाने वाले गीतों में देवताओं की स्तुतियाँ पुत्रोत्पत्ति से प्राप्त आनन्दातिरेक का उल्लेख, दान नेग चुकाने की क्रिया का वर्णन, परिवार की सुख समृद्धि की कामना, बालक के उत्तरोत्तर विकास का चित्रण, शिशु के सम्बन्धियों का आह्लाद आदि अनेक बातों का उल्लेख पाया जाता है।

आज तो जितना दिया जाये उतना ही कम है, क्योंकि आज तो पुत्र के पिता के लिए सोने का सूर्य उदित हुआ है। उसके घर सोने की थालियाँ बज रही हैं। उस पर जगज्जननी अम्बिका माँ की पूर्ण कृपा है। जोगणियों द्वारा इस अवसर पर गाया जाने वाला एक गीत उद्धृत किया जा रहा है—

'थे तो देवो नी रुपीडा रो दान
सूरज भल ऊगियो
थें तो बाज्या है सावन थाळ
सूरज भल ऊगियो
थारे जलमियो है लाडल पूत
सूरज भल ऊगियो
थारे हुई रे माताजी री मेंर
सूरज भल ऊगियो।'

इसी समय गाये जाने वाले एक लोक-गीत में बालक के घरवालों की महत्त्वाकांक्षा का बहुत ही मनोवैज्ञानिक चित्रण हुआ है। प्रत्येक परिवार यह चाहता है कि उनका शिशु शीघ्र ही बड़ा हो जाये और द्रव्योपार्जन करने लगे। उसका विवाह हो। उसके पत्नी आये। इस गीत में विवाह और विवाहोपरान्त के जीवन का भी चित्रण है। अतः इस गीत को विवाह के अवसर पर भी गा लिया जाता है। मानव-जीवन के क्रमिक विकास का भी इसमें मनोरम विवरण मिलता है। अवस्थानुकूल क्रिया-व्यापारों का भी विवेचन हुआ है। राजस्थानी में दूल्हे के अतिरिक्त उच्च वर्ग के छोटे शिशु को भी 'बना' कहा जाता है—

'बना थे तो पाच बरस रा हुयग्या
थे दूध पतासा पियग्या।
बना थे तो दस रे बरस रा हुयग्या
थे तो साथीडा संग रमग्या।
हँमें थे तो पनरे बरस रा हुयग्या
थे पोसाळा में भणग्या।
बना थे तो बीस बरस रा हुयग्या
थे तो राज री नौकरडी रेग्या।
हँमें नोनरढी रो कांई डर सैं
ओ तो बडोडै राज रो घर सैं।
पैली छुट्टी घरें आवूला
थारें हार गळै रो लावूला।

× × ×

ओ तो ऊचो रूख विणी रो
थारे सिर पर हाथ धणी रो।'

(ख) विवाह-संस्कार

इन गायकों के गीतों बिना विवाह कुछ फीका फीका ही लगता है। घर के वातावरण को तो गीतरणें अपने कल-कंठ से निनादित कर देती हैं पर जनवासे पर गायन-कार्यक्रम की जिम्मेदारी इन गायकों की ही होती है। वर एवं बारातियों का मनोरंजन ये गायक ही करते हैं। जब भी वर कहीं बाहर जाता है तो साथ ही ढोली भी गीत गाता हुआ चलता है। भला बींदराजा की सवारी निकले और आगे-आगे बाई दूत यशोगान करता न चले तो कितना बुरा लगता! राजस्थान में प्रसिद्ध लोक गीत गायक लंगा व घुओं को तो विवाह पर हजारों रुपये पारिश्रमिक देकर गायन हेतु बुलाया जाता है। विशेषकर मदिरा-सेवन करने वाली जातियों में विवाह के समय दी जाने वाली दावतों का रंग तब तक जमता ही नहीं जब तक कोई गायन-कार्यक्रम न चलता हो। इस समय समधी परस्पर एवं दूसरे पर रुपये अवार-अवारकर इन गायकों को देते हैं। आपस में की जाने वाली प्रथम मनुहार के समय साथ रुपया रखकर मनुहार करने की प्रथा भी प्रचलित है। बाद में वह रुपया इन याचकों का द दिया जाता है। इस विवरण के आधार पर विदित होता है कि विवाह के समय इन गीत गायकों का अद्वितीय महत्त्व है। विवाह के समय ये गायक प्रायः वैवाहिक विधानों से सम्बन्धित अनेक गीत गाया करते हैं। विवाह की विशिष्ट वस्तुओं के बारे में भी ये गायक गीत गाते हैं। अब इस समय के गीतों का क्रमिक वर्णन किया जा रहा है।

पेशेवर गायक भी बनड़े गाया करते हैं। इन बनड़ों में वर को वधू के यहाँ आने के लिए आमंत्रित किया जाता है। वर अनेक प्रकार के बहाने बनाता है। परन्तु बनी अत्यन्त पावन तर्कपुष्ट प्रत्युत्तरों में अपनी प्रत्युत्पन्नमति का परिचय देती है। ऐसा एक गीत उद्धृत किया जा रहा है—

'थे भल आइजो रे
आ तो ऊनाळै री रूखडी भलरी
भवर थे भल आइजो रे।
किमकर आऊ ओ सुंदर
ऊनाळै रा तावडियो तपै
ओ मरवण किमकर आवा ओ ?
थे भल आइजो रे
भवर रेसम री तणिया रा तवू
साम्हा मेलू ओ
भवर आपां भेळा रैस्या ओ।'

इसी प्रकार वर को वर्षा एव शीत ऋतु मे आने के लिए निमन्त्रित किया जाता है। वर द्वारा इन समयो पर आने म असामर्थ्य प्रकट करने पर वधू 'पाणी पथा घोडा' (वर्षा मे) और 'सिरख पथरणा' (शीत मे) भेजने को कहती है।

बारात आ गयी है और वधू के घर मे क्रमश वैवाहिक कृत्यो के लिए तैयारियाँ की जा रही हैं। बनडे के एक गीत मे वर द्वारा 'साभेळै' म, तोरण पर, वधू के आँगन मे जाने का क्रमश विवरण देखने को मिलता है। ऐसे 'हरियाळै बने' को पाकर वधू अपने-आपको धन्य मानती है। वधू प्रसन्न क्यो न हो, बना रूपनगर से जो आया है—

'आयो ओ हेली म्हारी लाडलडो अमराणै
रूपनगर सू राज।
आज हरियाळौ बनो साभेळै पधारै
साभेळै मे तुरीडा खेलाया ओ
खेलाया ओ हेली म्हारो लाडलडो अमराणै
रूपनगर सू राज।'

सौभाग्यकांक्षिणी वधू ने पडला, साळूडा, चूडला एव गहना मँगा ही लिया तो वर क्योकर विस्मृत कर सकता था? उक्त वस्तुओ के साथ ही सामाजिक-प्रतिष्ठा प्राप्ति हेतु वर बहुत बडी बारात घोडो-हाथियो पर सजाकर लाया है। जब इतनी साज सज्जा से दूल्हा आया है तो उसके लिए कोई साधारण लकडी से निर्मित तोरण थोडा ही लाया जायेगा। ऐसे गौरवशाली बने के लिए चन्दन का तोरण मँगवाने के लिए खाती को कहा जाता है। उस तोरण को तृण निर्मित झुटिया पर न बाँधकर अति भव्य गढ की दीवार पर बाँधा जायेगा, जहाँ पर सास द्वारा बने की आरती उतारी जायगी। तोरण पर अवस्थित बन के स्वर्णिम सेवरे की अपूर्व आभा सभी का मन मोहित कर देगी। ऐसा 'हरियाळा' बना सभी से सर्वत्र प्रशसित होगा। 'तोरणिया' नामक प्रसिद्ध गीत इसी अवसर पर गाया जाता है—

'खातीडै रा ओ बेटा थू तो
ओ चतुर सुजाण
ओ घणियल घोळी जाऊ रे
तोरणियो घड लाजै
हा जी जी ओ चदण केरै रे रूख रो
रूख रो, रूख रो रे म्हारा राज।
तोरणियो बधाडू इण
ओ गढडे री ओ भीत
ओ घणियल घोळी जाऊ रे

वाहडली रे पसारै
हा जी सैणा री रे तोरण बांधियौ—३ ।'

इन गायकों द्वारा 'घोडी' के गीत गाये जाते हैं। 'कोनल-पुडला' नामक गीत घोडी के गीतों में सर्वाधिक प्रसिद्ध गीत है। कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं। यहाँ भी दूल्हे को वधू के वहां आमन्त्रित करने का भाव व्यक्त हुआ है—

'आगै आगै कोनल पुडला
लारै बनीमा रो रथडो राज
म्हारोडै आगणियें दोय पग मेलो बींदराजा
पुडला थारा बोरीसा सिणगारै
अब घर आवो कमधजिया राज
म्हारोडै सागणियें आप पधारो बींदराजा ।'

'तारा जडी चून्दडी' नामक गीत वैवाहिक अवसरों पर गाया जाता है। इसमें भी चूडा, वस्त्र, आभूषण, माळूडा आदि लाने की वनी द्वारा मांग की गयी है। कुछ पंक्तियां उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैं—

'म्हनै ला'दो नी जोडी रा ढोला, तारा जडी चून्दडी
तारां जडी चून्दडी नै आभा करणो आगणो
म्हनै ला'दो नी आलीजा ढोला, तारा जडी चून्दडी ।'

विवाह-मंडप से उठने के बाद जब दूल्हा-दुल्हिन जनवासे पर जाते हैं उस समय स्त्रियों का समूह और पेशेवर गायक 'जला' नामक गीत अवश्य गाते हैं। इस गीत का कुछ अंश उद्धृत किया जा रहा है—

'जला रे म्ह तो राज रा डेरा निरखण आई रे जला
म्हारी जाडी रा जलाल मिरगानैणी रा जलाल
म्हे तो राज रा डेरा निरखण आई रे जला
जला र रातै धण री आखडली दुख पायो रे जला
जला रे राता मायली रातडली सिवराति रे जला
जला र जाता मायली जात बडी भटियाणी रे जला
जला रे राजा मायली राज भलो राठोडी रे जला
मीठी बोली रा जलाल, पातळ-पेटी रा जलाल
म्ह तो थारा डेरा निरख आई रे जला ।'

बारात के भोजन करते अथवा किसी अन्य समय (जनवासे में—वधू-पक्ष के किसी व्यक्ति के कहने पर) समधी को गीत गाये जाते हैं। इन गीतों को 'सगा री गाळियां' कहा जाता है। अविवाहित एवं विवाहित सगों को गाळियां गायी जाती है। यहां यह विशेष रूप से ज्ञेय है कि पेशेवर गायक वर पक्ष के लोगों को ही गाळियां गाते हैं। वर-पक्ष वाले कितने भी रुपये देने पर उतारू हो जाय,

तो भी उनके कहने से वे वधू पक्ष के लोगो को गालियाँ नहीं गायेंगे, क्योंकि अपने यजमान को गालियाँ कभी भी नही गायी जाती। इन गालियों के गाने पर यजमान एव (जिस समधी को गाळ गायी गयी है) उस व्यक्ति से, दोनो से ही रुपये लिये जाते हैं। पर यह आवश्यक नही है कि वह व्यक्ति रुपया दे ही। परन्तु यजमान जब चलाकर 'गाळ' गाने को कहता है तो निश्चितत गाळ की समाप्ति पर 'वाह सा वाह' के उच्चारण के साथ ही रुपया भी देना है। अविवाहित सगो के साथ कुत्ती, बिल्ली आदि का विवाह रचाया जाता है और विवाहितों की पत्नियो का दूसरो के साथ भाग जाना, पर-पुरुष-प्रेम आदि का उल्लेख रहता है। यहाँ ऐसी गाळियो के एक-दो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'परवतजी वाळी रो तीखो है लीलाड जी
भीणो काढो घूघटो वेंरा साहा दीखै गाल जी
तीखोडै लीलाड माही सोळै लिखिया यार जी
आठै वेंरा रसिया नै सोळै वेंरा यार जी
काई लावै रसियो नै काई लावै यार जी
लाडू लावै रसियो जळेबी लावै यार जी
कुण वेंरो रसियो नै कुण वेंरो यार जी
गधो वेंरो रसियो नै कुत्तो वेंरो यार जी।'

लोडो—'सुखसिंह जी री नार नै रामसिंह जी री लोडो रे लोडो वारम्मर।'

'ओजी ममद सगी री गागरो
फिरगीडो लिया जाय।'

लडकी की विदाई के समय उसके पिता द्वारा दी गयी वस्तुओ से जीवन-यापन करने वाला गायक भला शान्त कैसे रह सकता है! उसका करुणार्द्र हृदय भी इस समय गीतों में व्याज स अभिव्यक्त होता है। वह भी भाई और बहिन के पावन-प्रेम की इस समय दुआ देता है। एक ही उपवन को अपने सौरभ से सुगन्धित करने वाले दो प्रसून आज बिछुड रहे हैं। सात भाइयो की बहिन आज अकेली ही ससुराल जा रही है। विदाई के समय इन गायको द्वारा गाया जाने वाला 'जैसलमेर री कुरजा' नामक गीत बहुत ही करुणाजनक है—

'जायोडी जैसलमेर माभी कुरजा
पिगियो लोढयो (जूनो) घाट मे।
घणियल घोळी जाऊ माभो
पिगियो लोढयो (जूनो) घाट मे

चढती री चमक्यौ चूडलौ ओ माभी कुरजा
उतरतो री चमक्यौ हारडो, घणियल ··
लावो नी जोसीडा टीपणो ओ माभी कुरजा
माभा कठियै लिखिया लेखडा, घणियल···
बाळू रे जोसी थारो टीपणो ओ माभी कुरजा
माभा अळगा लिखिया लखडा, घणियल···
दमडा रो लोभी बाप माभी कुरजा
माया री लोभण मावडी, घणियल··
ओकरियँ बीरोसा नँ तेडो मेल माभी कुरजा
बाईसा जोवँ बाटडी, घणियल ··
राईके मिळाई वाछण सोड ओ माभी कुरजा
बीरेसा मिळाई घीवडी, घणियल···।'

विदाई के अवसर पर इन गायकों द्वारा भी 'कोयलडी सिध चाली' गीत गाया जाता है।

विवाह के रातीजोगा और अन्य रातीजागो मे भी पेशेवर गायक गीत गाया करते हैं। इन रातीजोगों मे धार्मिकता की भावना से भरे गीत गाये जाते हैं। सतियो के आदर्श-चरित्र के गीत गाये जाते हैं। देवी देवताओं की आराधना के अनेक उदाहरण मिलते हैं। इनमे कुछ गीत कथात्मक भी हुआ करते है और कुछ गीत केवल मात्र एक घटना को ही अपने कलेवर में सँजोये रखते है। कथात्मक गीतो के सन्दर्भ मे एक बात ध्यान देने की है कि इन गीतो मे यथावसर वर्णनात्मकता का आधिक्य पाया जाता है।

इन सास्कारिक लोक गीतो के अतिरिक्त भी अनेक गीत पशेवर गायको द्वारा गाये जाते है, जिनका अब विवेचन किया जायेगा। ये गीत प्राय विशिष्ट सामाजिक समारोहो पर गाये जाते है। राजस्थान मे किसी घर मे दामाद के आने पर भी एक प्रकार से सामाजिक समारोह का-सा दृश्य उपस्थित हो जाता है। गायकों को गीत गान के लिए बुलाया जाता है। सजातीय व्यक्तियो एव मित्रो को भोजन पर आमन्त्रित किया जाता है। इसके अतिरिक्त कभी कभी समवयस्क लोग मिलकर सहभोज की व्यवस्था कर देते हैं। मास-मदिरा या मिष्ठान्न की दावत होती है। गायक भी उपस्थित रहता है। इन सभी समारोहो पर गाये जाने वाले गीतों का यहाँ विवेचन किया जा रहा है।

(२) सामाजिक समारोह के अवसर पर गाये जाने वाले गीत

राजस्थानी समाज मे जातीय व्यवस्था के अनुकूल ही कार्य-विभाजन किया गया है। अत जातियो का कर्म की दृष्टि से पाया जाने वाला अन्तर्सम्बन्ध समाज-

शास्त्र के लिए बहुत महत्त्व की बात है। सामाजिक समारोहों के अवसर पर गायक अपने दाता को गीतों द्वारा प्रमुदित करता है और फलस्वरूप अपनी जीविका के लिए अन्न-धन पाता है। परन्तु इन समारोहों पर गाये जाने वाले गीतों में विषय-वैविध्य पाया जाता है। फिर भी गायक गीत के विषय एवं समारोह की परिस्थिति तथा अवसर का परस्पर सम्बन्ध देखकर ही गाया करता है। इन गायकों द्वारा गाये जाने वाले गीतों पर भी अवसर का बन्धन अवश्य रहता है। जैसे—यदि समायोजन का समय रात्रि में है तो कदापि 'पणिहारी' नामक गीत नहीं गाया जायेगा। यह गीत तो मध्याह्न के पूर्व-पूर्व ही तथा गाँव के बाहर ही होने वाली किसी महफिल में गाया जाता है। इसी प्रकार रात्रि के समय उच्च कुल के घरों में होने वाली महफिलों में ओमपुरी, लालूसा आदि डाकुओं के गीत भी नहीं गाये जाते। प्रायः ये गीत दिन में भिक्षार्थ फिरने वाली जोगणियों या नटणियों आदि द्वारा गाये जाते हैं। इसके अतिरिक्त ये गीत वयस्कों या छैल-छबीलों द्वारा आयोजित महफिलों में गाये जाते हैं। ऐसी महफिलों का आयोजन प्रायः गाँव के बाहर कहीं कुओं या खेतों पर हुआ करता है।

घरों में होने वाले आयोजनों में अधिकतर ऐतिहासिक प्रेम-प्रधान गीत ही गाये जाते हैं। यथा—रतनराणा, मूमल, सोरठ आदि। इसके अतिरिक्त आळू, चरखो, बादळी आदि अन्य गीत भी गाये जाते हैं। यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि जोगणियें भी प्रेम-प्रधान गीत गाया करती हैं। इन द्वारा गाये जाने वाले प्रेम-गीतों की कथाएँ बहुधा इनकी जाति के प्रेमी-युगल की ही कथा होती है। इस सम्बन्ध में यह भी उल्लेख्य है कि यदि किसी दूसरी जाति का व्यक्ति इस जाति की ललना से प्रेम-विवाह कर इस जाति को स्वीकार कर लेता है तो उन दोनों के सम्बन्ध में इस जाति के लोग गीत का प्रणयन कर देते हैं और वह गीत लोक-गीत के रूप में प्रचलित हो जाता है। इस प्रकार के गीतों में लवारजी, बरदा आदि प्रसिद्ध हैं। यह भी आवश्यक है कि यदि प्रेमी इस जाति को स्वीकार है तभी वह अपनी प्रेमिका से विवाह कर सकता है अन्यथा नहीं।

जैसा कि पहले स्पष्ट कर दिया गया है कि इन आयोजनों पर नाना प्रकार के गीत गाये जाते हैं। अब इन गीतों का सोदाहरण विवेचन किया जा रहा है।

(क) प्रेमपरक गीत

प्रेम मानव की सर्वोपरि भावना है। इसी तत्त्व की सर्वोत्कृष्टता को दृष्टि में रखकर ही प्रेमाभक्ति को प्रथम कोटि की भक्ति सिद्ध किया गया है और शृंगार रस को रसराज के अलंकार से अलंकृत किया गया है। इस तत्त्व का क्षेत्र भी अति विशद है। सौन्दर्य प्रेम का मूलाधार है। सौन्दर्य में अपूर्व आकर्षण होता है। इसी कारण सौन्दर्य सर्वत्र प्रशंसित होता है। युवती के प्रतिपल परिवर्तित रूप-सौन्दर्य को 'चतुर चितेरे' भी चित्रित नहीं कर सकते। शारीरिक अवयवों

को अनेक उपमानों से उपमित किया जाता है। रूप का चित्रण करने वाले एव रूप की आभा का बिम्ब प्रस्तुत करने वाले अनेक लोक-गीत इन गायकों द्वारा गाये जाते हैं। यहाँ एक गीत उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा रहा है, जिसमे परम्परित उपमानो के प्रयोग के साथ ही कमनीय कलेवर की कलित कांति का बिम्ब खींचने की सफल चेष्टा की गयी है---

'सूरज जिसो अे उजास, मिरगानैंणी जी राज
चांद जिसो अे वा धण ऊजळी जी म्हारा राज
दूधा जिसो अे उफाण, घणी अे प्यारी जी राज
दही अे सरीसो वा धण चटकळी जी म्हारा राज
मिसरी जिसो अे मिठास मिरगानैंणी जी राज
लूग सरीसो प्यारी चरचरी जी म्हारा राज
सोनै रै जिसो धण पीळी जी राज
मोतया नैं सरीसी धण निरमळी जी म्हारा राज
पाना जिसो धण राचणी जी राज
हीरा नैं सरीसी धण चिलकणी जी म्हारा राज
मीस वण्यो अे नारळ मिरगानैंणी जी राज
चोटी तो कहीजै वासग नाग की सी म्हारा राज
नैंण नीवू री जी फाड मिरगानैंणी जी राज
अधरा तो लाली छाय री जी म्हारा राज
नाक सूवें री जी चूच मिरगानैंणी जी राज
अधरा तो लाली छाय री जी म्हारा राज
दात दाडमियै रा जी बीज मिरगानैंणी जी राज
जीभडल्या इमरत वमैं जी म्हारा राज
वेलण वेली जी बाहडी मिरगानैंणी जी राज
मग पळी सी धण री आगळी जी म्हारा राज
मगर वण्या मखतूल मिरगानैंणी जी राज
पसवाडा तो पासै ढळिया जी म्हारा राज
पेट गवा री जी लोथ मिरगानैंणी जी राज
सूटी तो कहिय रतन कचोळिया जी म्हारा राज
जाघ केळे रा जी थाभ मिरगानैंणी जी राज
पीडी तो कहीजै रतनाळिया जी म्हारा राज
पग पीपळियै रा जी पान मिरगानैंणी जी राज
अेडी तो कहीजै सुरग मोपारिया जी म्हारा राज।'

स्थूल शारीरिक अवयवों के सौन्दर्य-चित्रण के साथ ही सौन्दर्य की सूक्ष्म

अवलोक्य की प्रभावात्मिका ध्वनि की अभिनव अभिव्यंजना भी की गयी है। परम्परित साहित्यिक उपमानों एवं लोकप्रदत्त उपमानों का सुन्दर सामंजस्य प्रस्थापित किया गया है। इन उपमानों में कल्पना की ऊँची और ऊहात्मक उड़ान नहीं है अपितु आत्मा में सौन्दर्याधारित प्रेम के पुनीत रस को पालने वाली सुरुचि की सुस्पष्ट व्यंजना है। ऐसी सुन्दरी दिन-रात प्रियतम का स्मरण कर रही है, प्रवासी प्रिय के वियोग में अपना यौवन उसे व्यर्थ प्रतीत होता है। यदि प्रियतम चाकरी पर न जाये तो वह सुखी सुनी अपनी गृहस्थी के जीविकोपार्जन हेतु कठोर परिश्रम करेगी। उसे यह भी भली-भाँति विदित है कि एक बार बीतने पर यौवन फिर से कदापि प्राप्त नहीं होगा। 'पीपळो' नामक गीत में वियोगिनी की विरहकातरता की अभिव्यंजना हुई है—

'थारा वामीसा नें चाहीजे धन घणो जी आ तो रूपश री लोभण थारी माय
थारी गोरडी उडावै काग जी ओ आ तो सेजा री लोभण उडीकै घर नार
अब घरै आवो जी म्हे तो पायो थारी चाकरी सू जी।
चरखो ले लू भवरजी रागलो जी, हा जी ढोला पीडी लाल गुलाल
तकवौ तो ले लू भवरजी बीजळसार का जी ओ पूणी तो लेवू बीकानेर री जी
मोहर री कातू भवरजी फोवडी जी ढाला रोक रुपय्यै रौ तार
म्हे कातू थे बिणज ज्योजी ढोला, ओ जी म्हारा लाल नणद रा वीर
अब घर आवो प्यारी नें पलक नी आवडै जी।'

'हिचकी' नाम से गाये जाने वाले गीतों में भी बार बार प्रिय का स्मरण करके उसके आने के लिए विनती की गयी है। राजस्थान में 'हिचकी' आने का अर्थ भी यही लगाया जाता है कि कोई प्रियतम याद कर रहा है और प्रत्येक सम्बन्धी का नाम ले-लेकर हिचकी को रुकजाने को कहा जाता है। जिसके नाम पर हिचकी रुक जाती है तो माना जाता है कि वही व्यक्ति स्मरण कर रहा था। हिचकी का एक गीत यहाँ भी प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमें प्रियतमा प्रियतम को शीघ्र आने को कहती है और साथ में आभूषण लाने के लिए भी विनय करती है। लोक-गीतों में स्त्री-सुलभ आभूषण-प्रियता की भावना का अच्छा उल्लेख मिलता है—

'आवै हिचकी रे वैरण आवै हिचकी
म्हारो आलीजो चितारै छोडी आवै हिचकी
हा जी नैना कण रो बाजरो रे चिडिया चुग चुग जाय
म्हे थनै ढाला ना दियो रे थू परदेसा मन जाय
म्हारो वादीलो चितारै छोडी आवै हिचकी
हा जी डूंगर माथै डूगरी रे सानो घडै सुनार
अरे निडिया लावो बाजणा रे म्हारै पायल रो भणकार
म्हारो साजनियो चितारै वैरण आवै हिचकी।'

प्रतिपल याद आने वाले प्रिय के लिए वह अनेक आयोजन करती है ताकि उन्ही बहानो मे वह आ जाये। वह कदली वृक्ष लगवाती है और सोचती है शायद दातुन करने के बहाने ही आ जाये। वह सब-कुछ करती है केवल प्रिय को बुलाने के लिए—

'आपरँ कारणियँ ढोला रे
हा जी रे केळूडो वबाडू
दातणियँ रँ मिस आय रे
विलाला थारी नीदडली लग रही
आपरँ कारणियँ ढोला रे
अरे हवद भराड़ा रे
भीलणियँ रँ मिस आय रे
बादोला थारी रे नीदडली लग रही।'

पति-वियुक्ता अपने प्राणेश्वर के विरह में अहर्निश विसूरती रहती है। हिन्दू संस्कृति मे पत्नी नारी वासना के लिए व्यथित नही रहती। वह तो अपने प्रियतम से प्राप्तव्य आदर की अधिकारिणी है। प्रियतम उसे सदा-सर्वदा याद करता रहे, यही उसकी आकाक्षा है। उसकी दृष्टि में शारीरिक सुखो से प्रेम-पूजा की अत्यधिक महत्ता है। प्रियतम के हृदय मे स्थान पाना ही उसके जीवन का चरम ध्येय है। उसकी प्रतिष्ठा को ठेस न लगाने के डर से ही तो वह प्रिय की अनुपस्थिति मे अपने शयन-कक्ष मे दीपक नही जलाती। अपनी सुख सेज पर पुष्प नही बिछाती। तभी तो उसका यह पावन सन्देश पूर्णत उचित ज्ञात होता है—

'घुडलँ चढता चितारजो जी ढोला रसतै मे म्हानँ करजो याद
भवर आपरी ओळू घणी आवै सा
कामी अरोगता चितार जो जी ढोला कवै कवै करलीजो याद
ओ भवर आपरी ओळू म्हानँ आवै सा
मैला चढता चितारजो जी साईंना पैड्या पैड्या करलीजो याद
ओ भवर आपरी ओळू घणी आवै सा
साझ पड्या दिन आथय्या आपरी तेलण लावै तेल
कांई अँ करा तेलण तल रो म्हारी जोडी रो बसै परदेस
जुग वाल्हा आपरी ओळू म्हानँ आवै सा।'

जिस प्रियतम की इतनी व्यग्रता से प्रतीक्षा की जाती है उसके आने पर तो न जाने कितनी प्रसन्नता होगी ! इसकी अनुभूति भुक्तभोगी ही जान सकता है। पावस-काल प्रिया की भावना को और उद्दीप्त कर देता है। वह कौअे को उडा-कर अपने प्रियतम के आने का अन्दाजा लगाती है। चिर प्रतीक्षित प्रियतम का वह मोतियो से स्वागत करेगी। जिस ऊँट पर सवार होकर प्रिय घर आयेगा,

उसके लिए तो वह ऊँट भी आदरणीय है। 'काछी करियो' और 'करियो' नामक प्रसिद्ध गीतों म ऊँट की प्रशंसा, प्रियतम क आन पर उसका अपूर्व स्वागत करने की भावाभिव्यक्ति हुई है। प्रिय को वह किस प्रकार अपना सर्वस्व सौंप देगी, यह निम्न पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'तन रो रे करा॰ रे महराजा रे
हा रे तामळो र (थे) महराजा रे
निवणो रे परसू बिलाले नै थाळ।'

प्रियतम की अनुपस्थिति म उसके चन्दन रूपी शरीर तथा प्रेम-रस भरे हृदय का कोई मूल्य नहीं है। जब कोई पारखी ही नहीं तो मूल्य कैसा ? कितनी तथ्यपूर्ण बात का रहस्योद्घाटन किया गया है। आज उसकी आँख 'फरुक' रही है शायद 'चांदी री बादळ' और 'हमा री हडाऊ' घर आय। लोक-शकुनों का भी लोक-गीतों में विवेचन हुआ है—

'हा जी र जलालो बिनालो
घर कद आवसी रे, धण री आख फरूकै रे
आवडली फरूकै, ढोलैमा री करियो करूकै, मोर गहूकै रे
म्हारो चादी री रे बादळ घर कद आवसी रे
म्हारो हमा री र हडाऊ घर कद आवसी, धण री आख फरूकै रे
हा जी रे चदण तो पडियो चौवट्ट
कोई लेवूहा रे फिर फिर जाय
हा जी रे मामी चदण रो रे पारखू रे
मूघे मोल ले जाय
हा जी रे म्हारो जलालो बिनालो घर कद आवसी।'

अभिव्यंजना क अनिश्चित लक्षणा और व्यंजना के भी लोक-गीतों में अनूठे प्रयोग देखने को मिलते हैं। उक्त गीत भी इस दृष्टि से प्रशस्य है। और कभी नहीं तो सावण की तीज पर तो वह उसकी प्रतीक्षा अवश्य करेगी। यदि इस पावस के पावन अवसर पर प्रिय नहीं आया तो दामिनी की दमक से भयभीत हो प्रिया प्राण दे देगी—

'ढोला जी वेगा आवजो रे
सावण पैली तीज
अरे डरप मरै मारवी ओ
देख खीवनी बीज—जादीला वेगा रे आइजो।'

इन गायकों द्वारा गाये जाने वाले प्रेम प्रधान गीतों में मृग-मृगी, सारस-सारसनी, चकवा चकवी (चक्रवाक युग्म) के अविभाज्य प्रेमी जोड़े के माध्यम से दाम्पत्य प्रेम की अटूटता भी प्रकट की गयी है।

लोक ने इन प्रेमी-युग्मों की प्रेम-कथाओं को बहुत ही आदर दिया है। यहाँ तक कि लोक ने तो इन कथाओं को अपने हृदय का हार माना है—

'मिरगी छोड गियो···
साथ तिरवाळो मिरगी ढै पडी
कोई यो दुख सह्यो न जाय मिरगै बिना मिरगी अेकलडी
मिरगो छोड गियो···।'

यहाँ महफिलों के अवसर पर 'कलाळी' नाम के अनेक गीत गाये जाते हैं। जिनमें कहीं 'कलाळी' के सौन्दर्य से प्रभावित पति को पटाया गया है, कहीं 'कलाळी' के व्यसन-जालों में रूपासक्त व्यक्ति को गलत की ओर प्रवृत्त होते दिखाया गया है। कहीं पत्नी से मिलने जाने वाले प्रिय को बीच मारग में ही विमोहित कर रखने वाली 'कलाळी' को पत्नी द्वारा सौत की दृष्टि से देखा गया है, कहीं पति-परायणा पत्नी अपने व्यसनी-पति को मदिरा दिलाने के लिए अपने बहुमूल्य आभूषण 'कलाळी' को अर्पित करती दिखायी देती है। एक गीत का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'भर दै कलाळण भर दै
म्हारा नेहडराजा रै मदवो भर दै
म्हारै हियडै री हामल
थू ही धर लै
भर दै कलाळण भर दै।'

जैसा पहले निर्दिष्ट किया जा चुका है कि जवाई के आने पर भी ऐसे सामूहिक आयोजन होते रहते हैं। इन गीतों में जवाई की प्रशंसा, उसे 'दिन दस' रोकने के लिए विनती करना, उसकी उदारशीलता, उसका सौन्दर्य-चित्रण आदि पाया जाता है। दामाद लडकी का कितना सम्मान करता है— उसका भी उल्लेख रहता है। ऐसे समय इस सम्बन्ध में गाये जाने वाले एक गीत का कुछ अंश इस प्रकार से है—

'अरे म्हारा कचन बाईसा रा श्याम
कटोरो लाया दूध रो
कटोरै में दामड-दाख
मिमरी है तोळा तीस री जी म्हारा राज।'

प्रेम-प्रधान गीतों में वर्षा-वर्णन का भी अपना महत्त्व है। राजस्थान की मरुभूमि में पावस का आदर और भी अधिक होता है। यहाँ तो किसी की व्यग्रता से प्रतीक्षा करने के लिए 'मेह नैं उडीको ज्यूं उडीको' कहावत का प्रचलन है। इसके अतिरिक्त इसी ऋतु के सुरंगे सावन में स्त्रियों का प्रसिद्ध पर्व तीज आता है। जिस ऋतु में प्रियतमा पृथ्वी और प्रिय गगन का पावन मिलन होता है, उस

मौसम में भला पत्नी प्रिय के बिना रहना कब पसन्द करेगी ? वह भी इस समय प्रियतम की बाँहों में बाँहें डाल झूला झूलने में स्वर्गिक आनन्द की अनुभूति करेगी। ऐसा करने पर ही उसका प्रेम पूर्ण पराकाष्ठा पर पहुँचेगा। 'हीडो' नामक गीत प्रेम के प्रतीक रूप में ही प्रणीत है—

'हीडो रे वडनै री माग सूं रे
रेसम री तणियाह
म्हं नै तौ वालम हीडसा जी
गळं दे रे बाहडियाह
सावणियें रो हीडो रे बाधण जाय।'

प्रियतम का सामीप्य ही प्रिया का सौभाग्य है। यदि वह प्रवास में है तो फिर सामाजिक बन्धन-वशात् उसका गात तो घर में अवस्थित है पर कोमल कल्पनाएँ उसे कोयल बनाकर उड़ा ले जाती हैं—

'आप तौ बादीला परदेसा विराजो
म्हं तौ कोयलडी बिण उड जाऊं
कायलडी बिण उड जाऊं रे वायरिया
सैणा रा वायरिया धीमो सुदगे वाज।'

पावस-कालीन सुखद वातावरण में उद्दीप्त भावों की अनुगामिनी बनकर वह रह-रहकर ऊपर चढ़कर प्रियतम के आने वाले पथ का निर्निमेष दृष्टि से अवलोकन करती है—

'डागळियै चढ़ू नै नीची ऊतरूँ ओ मांसी झेडर
जी ओ मे ममदा री झेडरडी
(म्हूँ तौ) जोऊ रे म्हारै बादीरै री बाट।'

समारोह के अवसर पर गाये जाने वाले इन प्रेम-तत्त्व प्रधान गीतों में संयोग-शृंगार एवं विप्रलम्भ शृंगार दोनों का मंजुल मेल मिलता है। दाम्पत्य-प्रेम रूपी सोना विरह की कसौटी पर कसने से ही खरा उतरता है। प्रियतम को चाकरी हेतु जाने के लिए सन्नद्ध देखकर ही प्रिया कातर मयूर की भाँति क्रन्दन करने लगती है। अनागत विरह की कल्पना मात्र से ही वह सहम उठती है। उसका प्राण आज नौकरी पर जा रहा है फिर वह भोजन कैसे कर सकती है ? खाने की तो उसके मन में भी नहीं आती। खान-पान, राग-रंग सभी प्रियतम के कारण अच्छे लगते थे। उनकी अनुपस्थिति में ये सभी बातें हृदयविदारक हो गयी हैं। संयोगावस्था के भुक्त सुखों का स्मरण भी वियोगावस्था में आग में घी डालने का काम करता है। विविध पक्षियों (कुरजा, पपीहा, मूवटिया, कागलिया, मोरिया आदि) के नाम से गाये जाने वाले गीतों में विरह-विदग्ध प्रेमिका की तड़प और सन्देश-प्रेषण की अभिव्यक्ति हुई है। सूखे सावण में लगने वाली वर्षा की झड़ी

और पपीहे के 'पिव-पिव' शब्द को अबला विरहिणी कैसे सहन कर सकती है ? वह तो पपीहे से अनुनय-विनय कर रही है कि तू वहीं पर जाकर बोल जहाँ प्रिय रहते हैं। हो सकता है कि तेरी उद्दीपन वाणी को सुन उन्हें प्रिया की याद हो आये—

'पपइया तू बोल रे जित म्हारै आलीजै भवर रो मुकाम
सावण आयो सायवा वन में भिणगारत मोर
काळिगडो कू कू करै म्हारै मरत कोयलडी सोर
पपइया तू बोल रे जित म्हारै आलीजै भवर रो मुकाम
सावण आयो सायवा वला भुर रही बाड
बालक भुर रह्यो मघ नै पिव नै भुर रही नार
पपइया तू बोल रे जित म्हारै आलीजै भवर रो मुकाम।'

प्रिय-वियुक्ता ने भी सौन्दर्य-प्रसाधन, स्वस्थ खान पान का त्याग कर दिया है। उसका रूप-प्रसाधन तो कहीं अन्यत्र रहे और वह यहाँ सुसज्जित होकर रहे, यह तो समाज भी सहन नहीं करेगा फिर वह कैसे सहन कर सकती है ? उसकी साज सज्जा तो वियोग को और सम्वर्द्धित करने वाली सिद्ध होगी। अत वह कहती है कि उसने जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त सब कुछ छोड दिया है। राजस्थानी रमणी जो ठहरी। अपने पतिव्रत धर्म का ज्ञान तो उसे भी है—

'अन्न बिन रह्यो ओ न जाय
दूध दहिया री थारी धण सण नियो जी म्हारा राज
बिंदली तो सरब सुहाग
काजळ टीकी री थारी धण सण लियो जी म्हारा राज।'

विरह की विदग्धकारी वह्नि में जलने वाली नारी को सामाजिक चेतना का पूरा पूरा आभास है। विरहिणी इतनी कृशकाय हो गयी है कि लोक गीत की यह पंक्ति 'आगलिया री मूदडी जी ढोला ढळ आवै म्हारी बाय' उस पर चरितार्थ होती है। जब तक जागृतावस्था में रहती है तब तक तो रोना विसूरना ही उसकी सम्पदा है, पर जब निद्रा देवी की सुखद गोद में आश्रय पाती है उस समय भी विरह उसका पीछा नहीं छोडता। प्रिय मिलन का स्वप्न देखकर वह एकदम झिझककर उठती है और अपनी सास के पास जाती है। सास के बताने पर कि उसका पति तो परदेस में है, वह क्रौंच पक्षी के साथ सन्देश प्रेषित करती है। सन्देश-प्रेषण की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से चली आ रही है। 'कुरजा' नामक गीत में विरह भावोद्दीपन के लिए स्वप्न दर्शन एक सुन्दर पृष्ठभूमि खडा कर देता है। इस गीत के गाये जाने के समय ऐसा प्रतीत होता है कि करुण रस मूर्तिमन्त हो उठा है। श्रोता श्रवण के समय चित्रलिखित सा रह जाता है। कुछ

पङ्क्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'पाळहल्या पे सिमू धण रा ओळगा
चावड्ली पे सात सिनाम
सुरजा ओ म्हारो भवर मिलादो नी सा।
सुरजा कागद दियो ओ बचाय
गारादें नें नीदड्ली नी आय
सुरजा ओ म्हारो भवर' ')
ह्न ह्न बाच्या धण रा ओळगा
मुळकत बाच्या सात सिनाम
भवर थे तो घरॆ रे पधारो नी सा।
आ ला आ राजाजी थारी चाकरी
आ ला रे साथीडा थारा साथ
म्हॆं तो म्हारॆ गोरादॆ रॆ जागा जी सा।'

'सूवटियॆ' नामक एक गीत मे इसमे भी वरुण वर्णन देखने को मिलता है। प्रियतम साथियो से घिरा बैठा है। शुक सन्देश-प्रेषण हेतु तरु-वृन्त से ऐसे गिरता है जैसे कोई विहग मरणापरान्त पृथ्वी पर गिर पडा हो। शुक ने किस चातुर्य से वस्तुस्थिति का बोध कराया, यही विशेष रूप से द्रष्टव्य है—

'चवर सायनॆ सूवटियो
अरे पड्यो धरा पे आय
साथीडा तो पाछा हट्या
ओ तो राजन लियो रे उठाय।'

तदनन्तर शुक-कठ मे बँधी पत्नी प्रेषित पत्रिका को खोल प्रियतम पढता है और प्रिया से मिलन जाता है। पक्षी किस नाटकीय ढग से गिरता है, यही प्रशस्य है और यही गीत का सार तथा सन्देश है। इन पक्षियो के माध्यम से सन्देश भेजकर प्रिय को विभिन्न आभूषण लाने के लिए भी कहा जाता है। ये ही पक्षी किसी समय सयोगावस्था मे निद्रित प्रिय को जगाने पर (महाराजा नॆ काची नीद जगायो रे) बहुत बुरे लगते थे, वे ही आज प्रियागमन के शकुन सकेतित कर दें तो वह उनके पखो और चोच का सोने से मॅंढवा देगी—

'जे थू उडनॆ सुगन बतावॆ
सोनॆ सू चाच मडाऊ कागा
जे म्हारा पिउजी घर आवॆ।'

वह प्रियतम की वाछा इसीलिए करती है क्योकि उसकी स्थिति ऐसी जो हो गयी है—

'हा रे माळीडा ऊभी नी माऊ रगमेल मे रे बादळ मैन मे
सूतोडी नी मावँ घण साट।'

विरह के गीतो मे 'पणिहारी' के गीतो का भी अद्वितीय महत्त्व है। दूसरी औरतें अनेक प्रकार के वस्त्राभूषणो से प्रसाधित हैं पर पनिहारी तो 'विरगे वेस' मे ही है। ओठी के पूछने पर वह कितने स्वाभाविक ढग से प्रत्युत्तर देती है—

'औरा रा पिवजी घर वसँ अ लजा ओठीडा अे लो
म्हारोडा वसँ रे परदेस बाना लो।'

पति पत्नी को पहचान गया है। वह उसके प्रेम की परीक्षा लेना चाहता है, और कहता है—

'घडो नी पटकँ थारो ताल मे अे पिणियारी अे लो
कोई हुयजा ओठीडँ रँ लार सैणा अे लो।'

प्रिय ने यद्यपि विरह का दुसह्य दुख दिया था पर वह पति-परायणा पर-पुरुष की पर्यंक-शायिनी बनने से तो मरना अच्छा समझती है। उसका खून खौल उठता है। उसके द्वारा 'ओठी' को दी गयी फटकार उसके चारित्र्य की परिचायक है—

'बाळू तो भाळू ओठी थारी जीभडली अे लजा ओठीडा अे लो
डसजो थनै काळाडो नाग काला अे लो।'

ऐसे प्रेम-प्रधान गीत ही लोक साहित्य के शृगार हैं। काव्य के हृदयहारी तत्त्वो का इनमे सम्मिश्रण हुआ है। मधुर भावो की हृदयस्पर्शिनी व्यजना और कमनीय रेखाचित्रो की अवतारणा इन गीतो की अनूठी विशेषताएँ हैं। सयोगावस्था के स्वस्थ चित्र, दाम्पत्य-जीवन का हास-परिहास, प्रोषितपतिका का विरह-जनित दैन्य, स्नेह-पूर्ण उपालम्भ, अपना सर्वस्व त्याग की प्रशस्य कामना इन गीतो को और भी सुन्दर बना देती है।

प्रेम सदा अमर रहता है। लोक ने भी अपने समाज मे अपना सर्वस्व प्रेम के लिए लुटा देने वाले प्रेमी-हृदयो की अद्यावधि सस्तुति की है और भविष्य मे भी उनके अविच्छेद्य प्रेम की दुहाई देता रहेगा। इन प्रेमियो के प्रेम को लेकर लोक मे अनेक कथाएँ, गीत, कहावतें, दोहे आदि प्रचलित है। राजस्थान मे प्रेमी युगल की कथाओ के अनेक गीत भी प्रचलित हैं, जो सामाजिक समारोह के अवसरो पर इन पेशेवर गायको द्वारा गाये जाते हैं। इन गीतो मे विशेष रूप से प्रेमियो के मिलन-विरह के प्रसग पाये जाते हैं। प्रेमिका को पाने के लिए प्रेमी द्वारा किये गये असम्भाव्य कृत्यो का उल्लेख मिलता है। उनके प्रेम को अनेक उपमानो से उपमित किया गया है। मान-प्रसग की चर्चाएँ की गयी हैं। प्रेमियो के पावन एव प्रशस्त पथ मे विघ्न स्वरूप उपस्थित होने वाली गार्हस्थिक तथा सामाजिक बाधाओ की विवेचना की गयी है। कही नायक उच्च कुलोत्पन्न है और अपने 'रीझ' को

प्रेमिका, जो निम्न समझी जाने वाली जाति की है, को प्राप्त करने के लिए आतुर दिखायी देता है तो कहीं निम्न श्रेणी का प्रतिनिधित्व करने वाला प्रेमी अपनी कुलीन-वंशीय हृदयेश्वरी को पाने के लिए व्याकुल जान पड़ता है। राजा 'सुरता' भीलणी के रूप-सौन्दर्य-पान में बेघर अहर्निश दीर्घ निश्वास छोड़ता रहता है। उसे हथियाने के लिए कुटिल एवं निकृष्ट योजनाएँ बनाता है। तो दूसरी ओर 'चनणा' राजकन्या अपने बालपन के प्रेमी 'रामूड़े' सुनार की पूजा में प्रमत्त है। उसका विवाहित पति उसे अपने घर ले जा रहा है। पति का उसके प्रेम का पूर्ण परिचय मिल चुका होता है। अन्यमनस्क भाव में ससुराल जाने वाली चनणा का पथ में ही प्राणान्त हो जाता है। आखिर प्रेमी बिछुड़ भी तो नहीं सकते। चनणा की मृत्यु का सन्देश पाते ही रामूड़ा भी प्राण-मुक्त हो जाता है। कितना पावन प्रेम था चनणा और रामूड़े का! आत्माओं ने दिव्य-प्रेम को जातीय बन्धन में पड़ने पर भी कलुषित न होने दिया। भला ऐसे आदर्श प्रेमियों को लोक कभी विस्मृत कर सकता है! इन गायकों के मुखारविन्द से निःसृत संगीतबद्ध स्वर-लहरियों से आज भी उनके प्रेम का प्रचार और प्रसार होता है। आज के युग में होने वाले प्रेम विवाहों का प्रतिनिधित्व शताब्दियों पूर्व ऐसे प्रेमी-युगल कर गये हैं। राजस्थान के प्रेम कथात्मक गीतों में नागजी, रतनराणो, निहालदे, मूमल, जलो, काछबो, पनलो परदेसी, रायधण आदि प्रसिद्ध गीत हैं। यद्यपि और भी प्रेम-कथात्मक गीत मिलते हैं पर उक्त गीतों के नायक-नायिकाओं का चरित्र इतिहास-वर्णित भी है। अतः इनके गीतों को हम ऐतिहासिकवृत्त प्रधान प्रेम-कथात्मक गीत कह सकते हैं। इन गीतों में प्रेम और ऐतिहासिक घटनाओं का मंजुल मेल पाया जाता है।

नागजी और नागमती के प्रेम का वर्णन 'नागजी' नामक गीत में किया गया है। इस गीत में अनवरत तर्कों द्वारा यही पुष्ट किया गया है कि प्रीत को पालने में ही प्रेम का सही अर्थों में फलीभूत होना माना जा सकता है। यह गीत एक प्रकार से पुरुष के मान प्रसंग का उल्लेख करता है और नारी के विरह-व्यथित अन्तराल की अभिव्यक्तियों का आगर है। प्रेमिका भाँति-भाँति से प्रिय की मनुहारें करती है। । उसे अनेक प्रकार से समझाने का यत्न करती है। प्रेमी प्रेम-पथ का पथिक न रहा। विरहकातरा अपने अविभाज्य पावन प्रेम की दुआ देती हुई प्रेमी को उपालम्भ देती है—

'नागजी पड़ो दाय घुड़ला थाम रे, बैरी घूंघट री छीया करू रे नागजी
नागजी तावड़ियो पापी पड़े हा र बैरी घायल कर दीनी तावड़ें रे नागजी
नागजी तड़क तड़क मत तोड़ रे बैरी कतवारी रै तार ज्यू रे नागजी
नागजी ज्यू टूटै त्यू जोड़ रे बैरी प्रीत पुराणी ना पड़ै रे नागजी
नागजी नागर बेलड़ी बैरी पसरै पण फूलै नहीं रे नागजी

नागजी रे बाळपणें री प्रीत रे वैरी बिछडे पण भूलै नही रे नागजी
नागजी भनी निभाई प्रीत रे वैरी रंग बिछोवो थें कियो रे नागजी
नागजी रमता अवज रग रे वैरी सव रग फीका थें कर्या रे नागजी
नागजी माखणडो मो थें लियो रे वैरी रह गयी खाटी छाछ रे नागजी।'

इसी गीत मे पुरुष-मान-प्रसग का भी उल्लेख मिलता है, जिसका वर्णन साहित्य मे अत्यल्प मात्रा मे पाया जाता है—

'नागजी ओ सुता सूटो ताण, वतळायां बोलो नही रे नागजी
नागजी रे वदैयक पडसी काम, वैरी आडा फिर वतळावसो रे नागजी।'

'मूमल' नामक गीत म लोद्रवं (जैसलमेर) की राजकुमारी मूमल की देह-यष्टि के सौन्दर्य का नख शिख वर्णन किया गया है। इसका प्रेमी अमरकोट का राजकुमार मेहन्दरा था। यह प्रेमी सदैव रजनी की घडियों मे अपने सत्वर गतिवान ऊँट पर सवार होकर मूमल के पास आया करता था। एक दिवस मूमल अपनी बहिन को मर्दाना वेश धारण करवाकर उसके साथ सोई थी और प्रेमी आ पहुँचा। उसने मूमल को पर-पुरुष के साथ सोया देख सदा के लिए आना बन्द कर दिया। काछवे का असली नाम अहीर था पर बुआ ने बाल्यकाल स ही उसे काछवे नाम से पुकारना शुरू कर दिया। काछवे राणे की वाग्दत्ता पत्नी को उसकी भाभी ने एक बार नदी पर पानी भरत समय कछुआ दिखाकर उसके भावी पति की हँसी उडायी। काछवे राणे के प्रति उसके मन मे घृणा उत्पन्न हो गयी एव उसने माता-पिता को उससे विवाह करने से मना कर दिया। काछबा राणा दूसरी जगह से शादी कर लौट रहा था तो उस अभिमता पत्नी ने उसके अपूर्व सौन्दर्य को देख बहुत पछतावा किया। उससे विवाह करने के विचार से उसके पास प्रस्ताव भेजा पर उसके मना करने पर वह जीवित जल गयी। 'निहालदे' नामक गीत मे निहालदे और सुलतान दो प्रेमियो का वर्णन है। यह भी विरह-प्रधान गीत है। इसका कुछ अश उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

'छपर पुराणा रे पिया पड गया रे
तिडकण लागा बादा बास
अव घर आवो गोरी रा बालमा हो जी।
बादळ मे चमकै पिया बीजळी रे
मैला मे चमकै घर री नार
अव घर आवो कवर थे तो न्यालदै हो जी।
गोरी तो भीजै पिया गोखडा रे
पिवजी भीजै फौजा माय
अव घर आवो कवर थे तो न्यालदै हो जी।
आठ रे टका री पिया नौकरी रे

सात टका री घर नार
अब घर आवो म्हनै आसा थारी लग रही हा जी ।
बाळक व्है तो पिया राखलू
जोबन राख्यो नी जाय
अब घर आवो म्हनै आसा थारी लग रही हा जी ।
कागद व्है तो पिया बाचलू रे
करम बाच्यो नी जाय
अब घर आवो गोरी रा रे बालमा हो जी ।
छोलरियो व्है तो पिया थागलू रे
समदरियो थागियो नी जाय
अब घर आवो म्हनै आसा थारी लग रही हो जी।
प्रीत व्है तो पिया तोडदू रे
प्रीतम छाड्यो नी जाय
अब घर आवो कवर थे तो त्यालदे हो जी ।'

'रतनराणा' नामक गीत मे अमरकोट के राणा रतनसिंह और 'भटयाणी राणी' के प्रेम की अभिव्यक्ति हुई है। राणा अपने यवन शत्रु का मारकर स्वय भी मारा गया पर इसका ज्ञान प्रेमसी को नही था। वह तो इसी आशा मे थी कि उसका प्रेमी पुनश्च लौटकर अवश्य आयेगा। तभी तो वह कहती है—

'अमराणै मे घोर अधार
हा रे म्हारा सायर सोढा, अमराणै मे घोर अधार
बिलखा नै नागै मैल माळिया
हो म्हारा रतन राणा, अेकर तो अमराणै पाछो आव।'

इसी प्रकार 'रायधण' नामक ऐतिहासिक प्रेम-कथात्मक गीत मे एक राजकुमारी का तालाब पर पानी लाने जाने का वर्णन है और वहाँ पर पडाव किये 'रायधण सूमरे' को देखत ही उसके प्रेम पाश म आबद्ध हो जाने का उल्लेख है। प्रथम दृष्टि प्रेम ही तो सर्वोत्कृष्ट है। इस गीत म दहेज प्रथा की ओर भी इंगित किया गया है।

उक्त ऐतिह्यवृत्त प्रधान प्रेम-कथात्मक गीतो के नायको व नायिकाओ का न्यूनाधिक सम्बन्ध राजघरानो से रहा है अत इनके चरित्र तथा इनके प्रेम का उल्लेख लोक-गीतो के अतिरिक्त इतिहास के ग्रथो मे भी हुआ है। पर बेचारी निम्न जातियो के प्रेम युग्मो का उल्लेख कौन करता ? उनकी प्रेम-कथाओ को तो लोक-गीतो न ही सजीवनी शक्ति प्रदान की है। इतिहासकारो ने तो इनके प्रेम को विस्मृत करने की असफल चेष्टा की पर लोक के प्रश्रय मे पले इस अनश्वर प्रेम को कौन भुला सकता है। इन गीतो म प्रमुख बात भाग्यवाद की प्रदर्शित हुई

है। यह सर्वशक्तिशाली भाग्य ही है जो विजातीय-विवाहो का विधायक है। इसका उल्लेख 'लवारजी' नामक गीत मे भी हुआ है—

'नही देवर रौ नही जेठ रौ
नही नणदी रौ बीर
अरे हू (तौ) जात री आगणी रे
म्हारो किस विध पडियो सीर।'

इस प्रकार के लोक-गीतो मे लवारजी, वरदा चारण, अस्मान खां, रामलाल मूंछिडा रे, पारखी गरासणी आदि गीत अत्यधिक प्रसिद्ध हैं। इन गीतो मे प्रेमियो की प्रेम-कथाओ का ही वर्णन पाया जाता है। ये गीत-कथाएँ प्राय अस्पृश्य समझी जाने वाली *गायक-जातियो द्वारा ही निर्मित होती हैं और उन्ही के द्वारा* गायी जाकर प्रसिद्धि को प्राप्त होती है। नीची जाति की स्त्रियाँ कितनी छोटी-छोटी चीजो पर मोहित होकर ही प्रेम करने लग जाती थी, इन बातो का गीतो मे मनोवैज्ञानिक ढग से चित्रण हुआ है। लोक-मानस का अध्ययन करने के लिए ऐसे गीतो मे ही विपुल मात्रा मे सामग्री उपलब्ध हो सकती है। अस्मान खाँ की प्रेमिका कितने सहज भाव से अपने मोहित होने की बात बताती है—

'म्हारा राज रा नोकरिया
धोळी रे धोती नै मटिया साफो
साफै पर मनडो मोयो म्हारा अगरेजी उडदी रा।'

इन गीतो की नायिकायें अत्यन्त साधारण-सी बातो (यथा—सफेद धोती और मटिया साफा) के आधार पर ही किसी व्यक्ति पर मुग्ध हो जाती हैं, पर मन मे वे भी जानती है कि इस व्यक्ति का प्रेम चिरस्थायी नही है, तभी तो मणियारे के चगुल मे फँसी गरासणी (गरासिया जाति की स्त्री) मणियारे के अस्थिर प्रेम को सम्बोधित करते हुए कहती है—

'कैंडी मणियारा थारी दोस्ती
कोई आ तौ असाढ वाळी मेह
होळैं होळैं हाल रे मणियारा
कैंडी मणियारा थारी प्रीत
जैडी डोगी वैडी पातळी।'

(ख) वीरतापरक गीत

वीरत्व मानव-जीवन का वरेण्य गुण है। अपने शौर्य एव हिम्मत के आधार पर ही मानव सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी सिद्ध हो सका है। कहा भी तो गया है—

'हीमत कीमत होय, बिन हीमत कीमत नही,
करैं न आदर कोय, रद कागद ज्यू राजिया।'

'Might is Right' एवं 'जिसकी लाठी उसकी भैंस', 'सेठा रौ सकरायत'

आदि कहावतें भी इसी वर्चस्व गुण की प्रशसा मे निर्मित हुई हैं। युद्ध-भूमि मे वीरत्व प्रदर्शित करने वाला और समाज म दान देने वाला दोनों ही वीर कहलाने के अधिकारी हैं। लोक गीतों म इन दोना प्रकार के वीरो का वर्णन मिलता है। पुरुष एव स्त्री दोनो के शौर्य का प्रदर्शन हुआ है। पितृ-आज्ञा को शिरोधार्य मान 'सजना' नामक युवती जैमल राजा की चाकरी पर मर्दाना वेश धारण करके जाती है। अपूर्व साहस के साथ वह अपने कर्त्तव्य एव पितृ-कुल की मर्यादा को निभाती है। राजा को पुरुष वेश म रहने वाले युवक के सम्बन्ध मे स्त्रीत्व का सन्देह होता है पर 'सजना' बडी कुशलता से पुरुष होने का परिचय दे देती है। जौहर की धधकती ज्वाला मे अपनी कमनीय काया को स्त्री-धर्म की रक्षा हेतु विनष्ट कर देने वाली वीरांगनाओ से 'सजना' का वीरत्व भी किसी भाँति कम नही है। इस गीत मे नर-नारी विभेदक कृत्यो एव स्वभावो का सुन्दर चित्रण हुआ है—

'नारी होय तो पडचा पडचा फळ खाय
मरद हुवै तो तोडै फूल गुलाब रो
नारी होय तो सीरा-सीरा न्हाय
मरद मूछाळो ओ न्हावै समद भिकोळ के
नारी होय तो धीरै धीरै खाय
मरद मूछाळो तो भटकै जीम चळू करै।'

राजनैतिक दबावो स दुखी होकर अनेक व्यक्ति डाकू बन जाते थे। उनका प्रमुख ध्येय धनवानो को लूटकर प्राप्त की गयी राशि को गरीबो मे बाँटने का रहा करता था। वे लोग अपनी आवश्यकतानुसार कुछ द्रव्य अपने लिए रख लेते और बाकी सारा धन दीन दुखियो मे बाँट देते थे। कई डाकुओ का लक्ष्य मात्र शासक-वर्ग की नाक मे दम कर देना ही रहा करता था। लोक ने अपने प्रिय रक्षको को विस्मृति के गर्त म गिरने स पूर्व बचा लिया। इन लोगो के लिए तो लोक-गीत ही यश-गीतो के रूप मे सिद्ध हुए हैं। 'डूगजी-जवारजी' एक ऐसा ही गीत है जिसके चरित्र नायक सदैव अग्रेजो की छाती पर मूँग दलते रहते थ। नार्यूसिह देवडा ने भी 'सिराज' का विरोध किया और अग्रेजो से युद्ध करता हुआ वीरोचित मरण का वरण किया। इस गीत का कुछ अश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'सिरणो मरू तो म्हारी जरणो परी लाजै रे नार्यूसिघ देवडा
पाचा नै पचीस थे तो गोरा परा मार्‌या रे
म्हारा नार्यूसिघ देवडा, रे भटाणै रा देवडा
थारै नाम सू मैमडी थरकै रे भटाणै रा देवडा।'

इन राजनैतिक विप्लवकारियो के अतिरिक्त इस प्रकार के लोक-गीतो मे धनिक वर्ग के दानवी शोषण से व्यथित होकर डाकू बनने वाले चरित्रो का भी चित्रण पाया जाता है। ऐसे डाकुओ का विशेष ध्यान धनाढ्य के धन पर रहता

था। कुछ लोग जाति-विशेष से प्रतिकार लेने हेतु एवं कुछ अपने पूर्वजों के शत्रु से प्रतिशोध लेने के लिए भी डाकू बने हैं। इनके सम्बन्ध में भी अनेक लोक गीत चले प्रचलित हैं। इन गीतों में प्रमुख रूप से इन लुटेरों की लूट-खसोट के चित्र, धनिकों की बहू-बेटियों या बाल-बच्चों को भगा ले जाने के वर्णन, जाति-विशेष के व्यक्तियों के कत्लेआम के दृश्य (बळवन्त राजा सिंघिड़ा नें मत मार रे), इन डाकुओं की विलासिता के उल्लेख, इनके यहाँ नृत्य करने वाली नर्तकियों के नाज-नखरे आदि अनेक बातें देखने को मिलती हैं। इन गीतों में मलिया, ओमपुरी, लालूसा, बळवंत सिंघ आदि गीत अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। इस प्रकार के गीतों का एक चित्र यहाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'मोर बोलै ओ मल्लजी आवू रैं पाडा में
ढोल बाजै ओ मल्लजी आवू रैं पाडा में
बीकर नाचू ओ मल्लजी टूटोडै आगणियैं
ओ मल्लजी बीकर नाचू आ
काच बिडायद् ओ गजबण टूटोडै आगणियैं
ओ गजबण काच बिडायद्।'

(ग) भाई-बहिन-प्रेम के गीत

पेशेवर गायकों द्वारा भाई-बहिन के प्रेम के गीत भी गाये जाते हैं। ऐसे गीतों में 'चिरमी' गीत सर्वश्रेष्ठ है। चिरमी बालिका की प्रतीक है। इसमें बालिका की पीहर के प्रति ललकपूर्ण भावना अभिव्यक्त हुई है। इस गीत में सौहार्द्रपूर्ण भाव अभिव्यक्त हुआ है। गीत का कुछ अंश यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'चिरमी म्हारी चिरमली
म्हारी चिरमी रा डाळा च्यार
भोळी म्हारी चिरमी ओ।
अगला अगला बाभौजी
लारै रे बडोडो बीर
भोळी म्हारी चिरमी ओ।
बाभोसा रैं चढवानैं घोडलो
बीरोसा रै चढवा नैं तोड
भोळी म्हारी चिरमी ओ।'

(घ) विविध गीत

उक्त प्रकार के गीतों के अतिरिक्त पेशेवर गायकों द्वारा अनेक प्रकार के गीत गाये जाते हैं। इन गीतों में लोक से सम्बन्धित नाना वस्तुओं का रुचिपूर्ण वर्णन मिलता है। लोक की रुचियों और लोक द्वारा किये जाने वाले विभिन्न व्यवसायों का भी चित्रण हुआ है। लोक के दैनन्दिन प्रयोग में आने वाली वस्तुओं का भी

उल्लेख मिलता है। खजरी, ईंडाणी, गोरबन्ध आदि वस्तुओं के बारे में कई गीत मिलते हैं। इनके निर्माण में लोक ने अपूर्व उत्साह प्रदर्शित किया है। गोरबन्ध नामक गीत उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'हाजी अे गाया चरावती
म्हे गोरबध गूंथियो
म्हे तो मेंसडली चरावती
कवडा पोया अे पोयाजी ओ र
जाळी पाडी पाडी जी ओ रे
म्हारो गोरबध नखराळो।'

इन गीतों में लोक-जीवन की विडम्बनाओं एवं व्यथाओं का भी निरूपण हुआ है। 'चरखो' नामक गीत में स्त्री-जीवन की कर्मशीलता का ओरदार चित्रण हुआ है। गृह-स्वामी की निष्क्रियता का भी अच्छा उदाहरण मिलता है। कर्मशीला नारी का और अकर्मण्य नर का ऐसा तुलनात्मक वर्णन कहीं मिलेगा—

'अरे चरखे री कमाई
म्हारी नणदल नैं परणाई
नणदल नै परणाई थव
म्हारै हिवडै हास घडाई
मू केली चरखा भू।
ओ पनरे बरस सू साविद आयो
काई काई चीजा लायो
हाथ में होवलियो लायो
चिणा चावतो आयो
भला मू केली चरखा भू।'

पेशेवर गायक अवसरौचित्य को दृष्टिगत रखते हुए गीत गाया करते हैं। इनके द्वारा गाये जाने वाले 'घडिया भवरजी मूग री सिकार' नामक गीत में मध्ययुगीन लोगों के शिकार शौक का अच्छा विवेचन हुआ है। इन गायकों द्वारा लोक-मानस की धार्मिक भावना को जाग्रत करने के लिए गोपीचन्द और भर्तृहरि के भी भजन गाये जाते हैं।

पेशेवर गायकों के गीतों के सम्बन्ध में एक बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि ये लोग कई गीतों के साथ तद्विषयक लोक-प्रचलित दोहों को जोड़-जोड़कर गीतों का परिवर्द्धन करते रहते हैं। इन गायकों के गीतों में कुछ गीत ऐसे भी मिल जायेंगे जिनमें राजस्थान में पड़े अकालों का उल्लेख पाया जाता है।

लोक-गीतों के वैज्ञानिक वर्गीकरण के आधार पर राजस्थानी लोक-गीतों का विशद् विवेचन किया गया है। राजस्थानी लोक-गीतों का भाषा-वैज्ञानिक, सामा-

जिक, सास्कृतिक एव ऐतिहासिक महत्त्व भी है पर हम इसे विषयान्तर मानकर छोड रहे है। यहाँ हम इन गीतो के सम्बन्ध मे कुछ विशेष बातें बताना अपना धर्म समझते हैं।

लोक-गीतो के सग्रह-सकलन के समय गीतेरणा से बात करने पर ज्ञात हुआ कि कुछ गीत ऐसे भी हैं जिन्हे अवसर विशेष के साथ बांधा नही जाता। इन गीतो को राजस्थान प्रदेश म *'आडा गीत'* नाम से पुकारा जाता है। ऐसे गीत प्राय रात्रि के समय मोहल्ले की स्त्रियाँ एकत्र होकर गाया करती हैं। इन गीतो मे सामाजिक चेतना, नैतिक-शिक्षा, धार्मिक प्रचार, स्त्री धर्म की पावनता का सन्देश आदि अनेक बातें देखने को मिलती हैं। एक ऐसा ही गीत यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'हालौ हालौ अे बाई म्हारी पाणी री पिणियार
देखौ देखौ अे बाई इण जोगी रौ रूप
थारै रे बीरै सू जोगी फूठरौ आ राम।
बाळू झाळू ओ भावज इण जोगी रौ रूप
म्हारा नै बीरोजी गढ रा राजवी ओ राम।
औ लो ओ बाईजी गळै रौ नवसर हार
थारै रे बीरै नै मत कैवजो जी राम।
ऊठो ऊठो रे बीरा भावज नै सभाल
थारै नै परणियोडी घाटौ लाधियो ओ राम।'

एक अन्य लोक-भजन भी भाव की दृष्टि स उल्लेख्य है। इस भजन के भाव मे एव एक आग्ल कविता 'द लाइफ' मे बहुत साम्य है। यह भजन गरसिया जाति मे विशेष रूप से प्रचलित है—

'पाधा री रैणी पाचा आगै कैणी
भजन पिछाणै गौ नाथजी
खेती करू तो जलम ना सुखी
बणज करू तो घर री पूजी डूबै
परणी लावू तो कियो नी मानै
परीत करू तो दुस्मण व्है जावै
घुडले चढू तो सतगरु म्हारो लाजै
ऊजड हालू तो म्हारै काटो भागै
बस्ती बसू तो दुनिया भरमावै
जगल बसू तो (दाता) डर घणौ आवै।'

राजस्थानी लोक-गीतों का रचनात्मक स्वरूप

राजस्थानी लोक-गीतों के विवेचन में गीतों के रचनात्मक स्वरूप के बारे में भी कुछ कहना समीचीन है। इन गीतों में (अरे, हाँ, अहा, हा, होजी, हाँजी, रे, हाँजी रे, ओ, ओजो, ए) आदि उद्गारवाचक स्तोभाक्षरों का प्रयोग हुआ है। इसके अतिरिक्त लोक-गीतों का सांगीतिक महत्त्व भी है। इन लोक-गीतों का घटनात्मक स्वरूप लय और धुन के आधार पर गठित रहता है। पेशेवर गायकों द्वारा गीतों के साथ बजाए जाने वाले विविध वाद्यों से उत्पन्न विभिन्न लय भी इन गीतों के गठित रूप का नियमन करती हैं। राजस्थानी लोक गीतों में टेर-पंक्तियों के आदि, मध्य और अन्त—त्रिविध प्रयोग मिलते हैं। ये टेर-पंक्तियाँ कहीं पद के प्रारम्भ में आती हैं कहीं मध्य में और कहीं पदान्त में। यद्यपि इस सम्बन्ध में निष्कर्षतः एवं निश्चित रूप से तो कुछ नहीं कहा जा सकता पर इन गीतों के गठन को देखने पर ऐसा लगता है कि इन गीतों में भी छन्द-विधान की-सी व्यवस्था है। इनमें भले ही शास्त्रीय छन्दोव्यवस्था एवं नियमानुकूल छन्द का प्रयोग नहीं हुआ हो पर इनकी व्यवस्था गीत की धुन और लय पर आधारित है। पूरा गीत प्रथम पंक्ति की धुन और लय में ही आगे चलता है, अथवा एक पद की धुन के आधार पर विकसित होता है। इस धुन एवं लय के बन्धन के अनुरूप ही अन्य पंक्तियाँ या पद हुआ करते हैं। उदाहरणार्थ—

'कांकरिया रा कोटड़ला चुणाय
जी ओ मारू रे
ईंटा रा चुणायदो मिंदर
माळिया हो जी।
आमा सामा गोखड़ला झुकाय
जी ओ मारू रे
थारू रे कूटा सू आसी ठंडी
बायरी हो जी।
खातीड़े रा बेटा चतुर सुजांण
जी ओ मारू रे
हिंगळू पायां री घड़ना
ढोलियो हो जी।'

उक्त गीतांश को देखने पर हमें लयबद्ध छन्द रूप का स्पष्टतः आभास हो जाता है। पूरे गीत में 'जी ओ मारू रे' के स्थान पर 'जी ओ मारू रे' या इसी वाक्यांश की लय में फिट होने वाले (हाँ जी बालम, जी ओ बालम, जी आ राईका, जी ओ गोरादे, जी ओ राजन आदि) वाक्यांशों का प्रयोग हुआ है। चतुर्थ पंक्ति में भी स्थान-स्थान पर लय प्रधान वाक्यांशों (माळिया हो जी, बायरी हो जी,

ढोलियो हो जी, मोतियो हो जी, मारियो हो जी, वाचलू हो जी, चाकरी हो जी, गोरडी हो जी, सोवणा हो जी, नीपजै हो जी, काढसा हो राज, झेलसी ओ राज, आवडै ओ जी, डीकरा ओ जी, ऊगियो ओ राज) का प्रयोग मिलता है। फिर भी इस सम्बन्ध मे अभी शोध की आवश्यकता है। हो सकता है कि लोक-गीतो मे लय-बन्धन की ही भाँति मात्रिक या वर्णिक-बन्धन भी मिल जाय। एक लेखक ने तो स्वीकारा है कि राजस्थानी लोक-गीतो मे दोहा-छन्द प्रमुख रूप से मिलता है।

> 'The characteristic form of the folksong is the doha or couplet, which may or may not be rhymed Stress is indicated by long and short vowels, but the metre is simple and often irregular. Sometimes the couplets are grouped together into a sort of stanza'[1]

इस सम्बन्ध मे राजस्थानी लोक-साहित्य के अमर साधक श्री कोमल कोठारी के विचार भी द्रष्टव्य हैं—

> 'लोक-गीतो की सरचना मे कुछ 'फार्मूले' अथवा कुछ नियम अन्तश्चेतना मे चल रहे हैं और उन्ही नियमो के पुनरावर्तन से गीत के अवयव सर्जित हो रहे हैं।'[2]

राजस्थानी लोक-गीतो मे विशेषण

पुरुष और स्त्री (प्रमुख रूप मे पति-पत्नी भाव को लेकर) के लिए प्रयुक्त विशेषणो की जानकारी भी जरूरी है। इन विशेषणो का उल्लेख करके हम इस विवेचन को समाप्त कर रहे है। पुरुष (पति) के लिए इन गीतो मे ढोला, राजनामी, साईना, सैणा रा लोभी, बका राजा, जुग बाला, सायबा, मधरजी, गामेती, पीवर प्यारी रा सिरदार, मदछकियो, बिलाला, लाडेसर, कमधजियो, गढपतिया, अनवी राजा, रायबना, नणदल रो बीरो, लाडलडो, पन्ना-मारू, सियाळै रो सूरज, ऊनाळै रो आबो, बरसाळै रो बादळ, चौमासै रो चपो, रेसम रा रेजा, केसरिया सिरदार, रगभीणो, रायजादो, भरजोडो भरतार, गाढा-मारू, छतर धारी, जला मेहाणी, पच हजारी, गैर-गुमानी, मीठा मारू, रूपा-रूडो, असाढा रो इन्दर, घण-रीझाळू, लसकरियो, जल्ला-मारू, बान्टोलो आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। स्त्री (पत्नी) के लिए पिवर प्यारी, सायधण, मिरगानैणी, प्राणप्यारी, मानेतण, जुगवाली, चुडलाळी, भाया प्यारी, भिजाजण, मारू, गोरी,

---

1. Women's folksongs of Rajputana, Winifred Bryce, p 18
२. लोक सस्कृति, जुलाई ७१, पृ० ३२

गवरल, गोरादे, कळैगारी, छन्दा गारी, घण, गोरडी, हसाहाली, बनी, रग-भीणी, घरनार, भाया री बैनड, लाडलडी, बौह परवारी, मूमल, सोना सोही, आगण सोही, मैला मूघी आदि शब्दो का प्रयोग हुआ है। विशेषतासूचक उक्त शब्दो मे कई शब्द व्यक्तिवाचक शब्द भी हैं, पर इन गीतो मे प्रवेश पाते ही उन पर समष्टि की छाप लग गयी है। कई शब्द आगिक सौन्दर्य का बोध कराने वाले हैं। कुछ शब्द राज-शाही (गढपतियो, बका राजा, अनवो राजा, कमधजियो) के सूचक हैं जो यहाँ आकर समृद्धि के द्योतक बन गये हैं। इन विशेषणो के निर्माण मे भी लोक की कोमल कल्पना का प्रमुख रूप से हाथ रहा है। पारिवारिक सम्बन्धो के आधार पर भी कुछ विशेषण गढ लिए गये हैं। इन विशेषणो के अन्वपण के लिए प्रकृति को एव उसके उपादानो को भी नही छोडा गया है।

अध्याय : ३

राजस्थानी लोक-कथा

आबाल-वृद्ध मनोरंजनकारिणी लोक-कथा अपनी जीवन्त शक्ति के परिणामस्वरूप मानव की आदिमावस्था से अद्यावधि तथाकथित वैज्ञानिकता एवं तर्क-शक्ति प्रधान युग में भी सर्व-साधारण के कंठ का हार बनी हुई है। इसके सारल्य ने सदैव सभी के मन को मोहित किया है। रुचिरता तथा जिज्ञासा ने लोक-कथा के लिए संजीवनी शक्ति का काम दिया है। आदिम मानस का आह्लादन करने वाली लोक-कथा आधुनिक काल में भी मानव के मनोमोदन का प्रमुख साधन हैं, इससे ही इसकी कालजयी शक्ति का परिचय मिल जाता है। जन-जीवन संपृक्त अकृत्रिम-अभिव्यंजना, समाज-सापेक्ष सत्य का सन्देश, कर्त्तव्य निष्ठा का ज्ञान, कल्पना की कमनीय-रुचिर और निर्बन्ध उडान, नैतिक मूल्यों का स्थापन, मर्यादाओं के मापदंड आदि की दृष्टि से लोक-कथा की उपादेयता और भी बढ जाती है। लोक-कथा की विषय व्यापकता अन्य साहित्यिक विधाओं से अपेक्षतया अधिक ही है। इन कथाओं ने अनेक प्रकार के सच्चरित्रों और दुश्चरित्रों को उभारकर भावी पीढी के समक्ष प्रस्तुत किया है। उनके आधार पर श्रोता एवं अध्येता अपने जीवन-पथ को निर्धारित कर सकते हैं। इनमें व्यक्ति के व्यक्तित्व को नहीं वरन् चरित्रों को महत्ता दी गयी है। क्योंकि चरित्र ही सामाजिक धरोहर हैं। ये बने बनाये चरित्र ही व्यक्ति के साथ जोडे जाते हैं। व्यक्तित्व एक के लिए अनुकरणीय और दूसरे के लिए त्याज्य भी सिद्ध हो सकता है पर सामाजिक-चरित्र निर्विवाद रूप से स्वीकार्य होता है। लोक-कथा की व्यापक सत्ता के सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र के विचार दृष्टव्य हैं—

> 'कहानी लोक-मानस की मूल भावना के रूप को स्थूल प्रतीक से अभिव्यक्त करती है। यह प्रयत्न जीवन के सभी क्षेत्रों में होता मिलता है, अतः कहानी की सत्ता की व्यापकता सिद्ध होती है।'[1]

---

१ लोक-साहित्य विज्ञान, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० १९६

आदिम-मानव ने अपनी समस्त भावनाएँ, सारे विचार, रीति-रिवाज, धारणायें आदि की अभिव्यक्ति लोक-कथा के माध्यम से की, फलतः मनोविज्ञान, नृतत्वशास्त्र और समाजशास्त्र के अध्येताओं के लिए भी लोक-कथा का बहुत महत्व है। नृतत्व-विज्ञान के अनुसार लोक-कथाओं में मानव के आदिम नीतिशास्त्र, धर्मशास्त्र एवं न्यायशास्त्र की झलक पायी जाती है। मानव के आदिम विश्वास, मनोविज्ञान, कल्पना और परम्परा को पूर्णतया समझने के लिए लोक-कथाओं में वर्णित विभिन्न देवी-देवता, राक्षस, दानव आदि का अस्तित्व मानव-इतिहास के एक महत्वपूर्ण अध्याय में कदापि कम नहीं है। लोक-जीवन और लोक-कथा की अन्योन्याश्रितता को डॉ० अग्रवाल ने इन शब्दों में व्यक्त किया है—

> 'मानव के सुख-दुख, प्रीति शृंगार, वीर-भाव और वैर—इन सबने खाद बनाकर लोक कथाओं को पुष्ट किया है। रहन सहन, रीति-रिवाज, धार्मिक *विश्वास, पूजा-उपासना आदि—इन सबसे कहानी का ठाठ बनता है और* बदलता रहता है। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रान्ति का साधन है। मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव-समाज का प्राचीन रसायन है।"[1]

लोक-कथाओं का वर्गीकरण

लोक-कथाओं के वर्गीकरण की समस्या बहुत जटिल है। परन्तु उचित वर्ग-विभाजन के उपरान्त ही लोक-मानस-निःसृत इन कथा-मणियों का सही मूल्यांकन किया जाना सम्भव है। प्राचीन आचार्यों ने कथा-साहित्य को दो भागों में (१) कथा जिसमें कल्पना की प्रधानता स्वीकारी गयी है, और (२) आख्यायिका जिसकी आधार-शिला ऐतिहासिक घटना मानी गयी है, विभक्त किया है। आनन्दवर्धनाचार्य ने कथाओं के तीन भेद (१) परिकथा, (२) सकल-कथा, (३) खंड-कथा, और हरिभद्राचार्य ने अर्थ-कथा, काम-कथा, धर्म-कथा, संकीर्ण-कथा, आदि चार भेद बताये हैं। उक्त आचार्यों के अतिरिक्त कई आधुनिक विद्वानों ने प्रादेशिक, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर प्राप्त होने वाली लोक-कथाओं को दृष्टिगत रखते हुए अपने अपने ढंग से वर्गीकरण किये हैं।

यद्यपि लोक-जीवन की सीमाओं ने, उसकी आधारभूत परिस्थितियों और आवश्यकताओं ने सर्वत्र एक-सी कथाओं की रचना कर सही अर्थों में लोक-मानस का प्रतिनिधित्व किया है, पर एक राष्ट्र तो क्या एक प्रदेश की लोक-कथाओं को

---

१ आजकल (लोक कथा अंक, मई १९५४), पृ० ६, डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल, (लोक-कथाएँ और उनका संग्रह कार्य लेख से)।

उचित रूप मे विभाजित करने वाला वर्गीकरण दूसरे प्रदेश मे पायी जाने वाली कथाओ के वर्गीकरण का भी मूल आधार बन सके, कोई आवश्यक नहीं है, और तो और, एक ही कथानक पर आधारित कथा दो अलग प्रदेशो मे अलग अलग वर्गों मे परिगणित की गयी है। अत एक प्रदेश की लोक कथाओ को समक्ष रख-कर किये गये वर्गीकरण पर दूसरे प्रदेश की कथाओ का वर्गीकृत करना निरी भूल है। यहाँ तक कि एक ही विद्वान ने दो दो वर्गीकरण भी प्रस्तुत किय हैं, न जाने उनमे से कौन सा वर्गीकरण श्रेष्ठ है। हमारे वर्गीकरण का प्रमुख आधार राजस्थान प्रदेश मे पायी जाने वाली लोक कथाएँ ही हैं।

वस्तुत लोक कथाओ के अति विस्तृत क्षेत्र का मद्देनजर रखते हुए उनका वर्गीकरण कोई सहज एव सुगम कार्य प्रतीत नही होता है। लोक का जीवन लोक कथाओ म अभिव्यक्त हुआ है। अत जीवन की सारी चर्चाएँ लोक-कथाओ मे चर्चित हैं, समस्त घटनाएँ इनमे उल्लिखित हैं, जीवन सम्बन्धी समग्र मोहक कल्पनाओ की अभिव्यक्ति भी इनम ही हुई है। जीवन का एक सुस्पष्ट और सरल चित्र य लोक कथाएँ ही प्रस्तुत करती हैं।

राजस्थान प्रदेश म दिन-भर के कठिन परिश्रम मे श्रान्त, जीवन की विषमताओ स क्लान्त व्यक्ति रात्रि-काल मे चौपाल आदि पर एकत्र होकर कथाएँ कहकर अपना मन बहलाव किया करते हैं। भावना और कल्पना के ताने-बाने से निर्मित य कथाएँ कभी-कभी कई रात्रियो तक चलती रहती है। इन कथाओ के कहन का एक ढग विशेष होता है जो श्रोता को प्रतिपल सजग और जिज्ञासु बनाये रखता है। इन कथाओ का प्रारम्भ और पर्यवसान भी एक अजीब रीति से सम्पन्न किया जाता है। अवसर विशेष पर कुछ परम्परित उपमानो तथा बने बनाये वाक्यो एव अवतरणो को काम मे लिया जाता है। यथा—किसी सुन्दरी के सौन्दय चित्रण, युद्ध-भूमि के वर्णन या अद्भुत लोक के विवेचन के समय। इसी प्रकार इस प्रदेश म धर्म लाभ स प्रेरित होकर कही सुनी जान वाली कथाओ की भी अपनी शैली है। बालको को कही जाने वाली कथाएँ भी अपना एक निश्चित रूप लिये होती हैं। कथा कहन वाला अत्यल्प परिवर्तन के अतिरिक्त परम्परित कथन शैली का ही प्रयोग करता है। यहां यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि ऐसी कथाओ के लिए राजस्थान म 'बात माडणी' वाक्यांश का प्रचलन है। य कथाएँ (कुछ धार्मिक कथाओ को छोडकर) रात्रि काल मे ही कही जाती हैं। कुछ व्रतो की कथाएँ तो दिन मे ही कह दी जाती हैं और कुछ रात्रि के समय चन्द्र-दर्शन के पश्चात कही जाती हैं। इस सम्बन्ध मे एक और जानने योग्य बात यह है कि यदि बालक दिन म कथा श्रवण के लिए मचल पडे तो उससे 'बेटा थारो मामो मारग भूल जावैला' ऐसा कहकर उसे अपनी जिद छोडने पर मजबूर कर दिया जाता है। इसके अतिरिक्त कुछ ऐसी कथाएँ भी हैं

जो प्राय किसी कथन या प्रसग की पुष्टि करने के लिए उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जाती हैं। ये कथाएँ किसी भी समय एवं कैसे भी अवसर पर प्रस्तुत की जा सकती हैं। कभी कभी उपस्थित श्रोताओ को पूर्णरूपेण समझाने के लिए पूरी-की-पूरी कथा कही जाती है और कभी-कभी कथा के उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करने वाली एक पंक्ति मात्र प्रस्तुत कर दी जाती है, क्योंकि प्राय ऐसी कथाएँ जन-साधारण के ध्यान मे सदैव रहती हैं। यह एक पंक्ति या वाक्यांश श्राता के मानस-पटल पर वही चित्र चित्रित कर देता है जिसे कहने वाला चित्रित करना चाहता है।

निष्कर्षत हम यही कहते हैं कि राजस्थानी लोक कथाओं को स्थूल रूप से निम्न दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है—

(१) माडकर कही जाने वाली लोक-कथाएँ,

(२) उद्धरणात्मक लोक-कथाएँ।

राजस्थानी लोक कथाओं के प्रारम्भ व पर्यवसान का विशिष्ट ढग—उक्त दो विभागों के अन्तर्गत अनेक उप विभाग करते हुए राजस्थानी लोक कथाओं को वर्गीकृत किया जायेगा। उससे पूर्व राजस्थानी लोक-कथाओं के प्रारम्भ के सम्बन्ध म कुछ कह देना परमावश्यक है। इन कथाओं के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम तो 'हुकारी' की महत्ता के सम्बन्ध मे कुछ कहा जाता है। कहने वाला अविरल गति से कथा कहता जाता है और श्रोताओं मे से एक व्यक्ति बीच-बीच मे यथावसर 'हुकारा' (हाँ हाँ, हूँ हूँ, हांसा हांसा, मा सा आदि कहकर) देता रहता है। कभी-कभी हुकारा देने वाला व्यक्ति भी कथा कहने वाले द्वारा अध कहे वाक्यों को पूरा कर दिया करता है। कभी हुकारा देने वाला बीच-बीच मे कुछ प्रसगोपयुक्त तथा स्थिति की प्रभावात्मिका शक्ति को द्विगुणित करने हेतु कुछ वाक्यांशो का प्रयोग किया करता है। यथा—पछै बाता छोडो, वाह वाह सा वाह वाह, उभा री, भलै भाजो अठी, जीवता रो आदि आदि। इससे यही सिद्ध होता है कि हुकारा देने वाला भी निपुण हुआ करता है। प्राचीन काल मे राज दरबारों मे कुशल कथा वाचकों के साथ 'हुसियार हुकारिये' भी हुआ करते थे। राजस्थानी मे हुकारा देने वाले को 'हुकारियो' कहा जाता है। 'बात म हुकारो, फौज मे नगारो' वाक्य से हुकारे की महत्ता प्रतिपादित होती है तो दूसरी ओर निम्न वाक्य[1] के आधार पर 'हुकारिये' की लोकप्रियता का ज्ञान भी होता है।

हुकारे की महत्ता का प्रतिपादित कर देने के पश्चात कथा कहने वाला आगे बढ़ता है। कथा कहने से पूर्व वक्ता कतिपय पद्यात्मक उक्तियों का लयपूर्ण उच्चारण करता है। इन पद्यों को राजस्थानी मे 'छोग' कहा जाता है। इन छोगो

---

१ कथळ पांनरी उडती जाय, हुकारियो कुट मातो जाय।

मे कही श्रोता की जिज्ञासा-वृत्ति को जाग्रत करने हेतु प्रयत्न किया गया है तो कही सामाजिक विषमता आदि का उल्लेख है, कही अलौकिक और काल्पनिक चित्र चित्रित किये गये हैं, कही असम्भाव्य घटनाओ का वर्णन किया गया है, कही नीति-कथनो की अवतारणा हुई है, कही भले बुरे का भेद निरूपित किया गया है, कही महाव्रतो को इन छोगो के कलेवर मे स्थान मिला है और कही कही जाने वाली कथा की वर्ण्य-वस्तु से सम्बन्धित बातें कही गयी हैं। यहाँ हम कुछ छोगे उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं।

(क) कम सम्बद्ध छोगे—(अद्भुत घटना निरूपक)

'बात भली दिन पाधरा पेंडे पाकी बोर
घर भीडळ घाडा जिणैं, लाडू मारैं चोर
केई नर सूता केई नर जागैं, जागतोडा री पागडिया ढोलिया रै पागैं
सूतोडा री पागडिया जागतडा लेय भागैं, फोरा पतळा रौ डाव नी लागैं
अेक तिम को ई काणो, नित उठ कन्य कढावैं घाणो
पाडोसण मागे राळ री डळी, कठैं री तेलण कठैं रो पळी
अेक गऊ को ई फोदो, नित उठ कन्य करावैं सौदो
देखली सौदैं री मोय, लेणा अेक न देणा दोय
लाई उधारी करभी गटको, माग्या बतायौ ताळी रौ टटको
×   ×, तद भागो ववार
पीजण घाली खाक म झूपडी करी जवार
सासू आगनी भऊ आई, गऊ देयनै चिणो लाई
थोथी चिणो बाजै घणी, बात करैं जणो जणो
खेजडी रौ काटो साढी सोळै हाथ
भागैं तो बचैं नी, नीतर राजा रामचन्दरजी रैं हाथ
जिणरा हुया तीन पाट, दो सुळियोडा अेक चढै ई नी
ज्या मे बसिया तीन गाव, दो ऊजड अेक बसै ई नी
ज्या म बसिया तीन कुमार, दो ठोटी अेक घड जाणे ई नी
ज्या घडी तीन हाडिया, दो फूटोडी नैं अेक चढै ई नी
ज्या म राधिया तीन चावल दो कटकटा नैं अेक सीजैं ई नी
ज्या मे निवतिया तीन वामण, दो इगियारसिया अेक जीमैं ई नी
ज्यानैं दीनी तीन गाया, दो बामडी अेक ब्यावैं ई नी
ज्यारैं हुया तीन बिछिया, दो माठा नैं अेक हालैं ई नी
ज्यारा बटिया तीन रिपिया, दो खोटा नैं अेक बाजैं ई नी
ज्यानैं परखिया तीन सोनार, रात रा रातिंदो दिन रा दीसैं ई नी
ज्यारैं मेली तीन थाप, दो दळगी नैं अेक लागी ई नी

सार बावा सार, पल मे लिगार, थाकोडा सा टारडा नै दूबळा असवार
फौज मे नगारो कान मे हुंकारो, हुंकारै बात प्यारी लागै, बात सुणिया भाग जागै
जीवै बात रो कहणवाळ अर जीवै हुंकारै रो देणवाळ।'

इतनी सारी नितान्त असम्भव घटनाओं का उल्लेख करके भी 'बात कंवू साची' के द्वारा कथा की सत्यता पर जोर दिया जाता है। इस कथन पर अविश्वास कर श्रोता कथा की सारी घटनाओं को सत्य मान लेता है। कथा के वक्ता का कथन असत्य भी तो नहीं है, क्योंकि इसमें सास की परवरिश न करने वाली बहू की पोल खोलकर (सासु मरगी मांचै), ठाकुरों की तानाशाही पर व्यंग्य करके, श्रम-जीवी भाई की कमाई खाने वाले निठल्ले भाई का उल्लेख करके सामाजिक सत्य को ही उभारा गया है।

(आ) सामाजिक दृष्टि से अच्छाई-बुराई निरूपित करने वाले छोगे

'बात साची भली पोथी बाची भली
देह साजी भली बहू लाजी भली
सूवा बाजी भली नौबत गाजी भली
गाय दूजी भली गवर पूजी भली
जोवन जोडी भली बच्छा घोडी भली
मौत मोडी भली ममा थोडी भली
अब बेगी भली माळा फेरी भली
काटळ काठी भली धीणो छाळी भली
घाव पाटी भली भाग्य फाटी भली
बिरखा वूठी भली नाणे मूठी भली
आई तूठी भली विपदा छूटी भली
मैंथी फारी भली साग पाकी भली
पथ गाडी भली मेम पाडी भली
प्रीत गाढी भली भीन जाडी भली
बात साची भली पोथी बाची भली।'

'भोजाई रो बोल खोटो, रिपिया रो कौर खोटो
वाणिये रो आसो खोटो, जेठ रो तो वागो खोटो
अेकलिये रो लाटो खोटो, बामण रो तो आटो खोटो
अेवड बिचै छाळो खोटो, खेत बिचै बाळो खोटो
बावोजी रै चेलो खोटो, घरवाळी तो बोळो खोटो
निरिया बिना गेह मूडो, सियाळै रो मेह भूडो

परनारी सू नेह मूडो, उगूणी तो खेत मूडो
भगतण सू हेत मूडो, उधारी बोपार मूडो
विधवा रो बणाव मूडो, साधू वाळो हेत मूडो
मोसर री तो रीत मूडी, दासी सू प्रीत मूडी
पाडोसी सू राड मूडी, काटां री तो वाड मूडी
देवाळिया रो ग्रास मूडो, आवडै रो राग मूडो
डूगर री चढाई मूडी, सासी री लडाई मूडी
खीचडै मे खोदो मूडो, घरै हिलियो खोडो मूडो
दाढी विना ठोडी मूडी, घर मे रांड मोडी मूडी
काळी-पीळी रात मूडी, कूडी सांई बात मूडी ।'

उक्त छोगो मे नीतिप्रद कथनो की भरमार मिलेगी, प्राचीन परम्पराओ का उल्लेख मिलेगा, कुरीतियो का विरोध मिलेगा, सामाजिक मान्यताओ एवं विश्वासो का विवेचन मिलेगा । अत इन छोगो का भी महत्त्व कम नही है ।

(इ) अनुभूत सत्य निरूपक छोगे

इस प्रकार के छोगो मे हमे विविध परिस्थितियो से गुजरने वाले व्यक्ति द्वारा अनुभूत ज्ञान की सार-पूर्ण विवेचना देखने को मिलती है । यद्यपि ये सत्य तर्क-सिद्ध नही होते हैं तथापि सामाजिक जीवन के पथ-निर्देशन को नैतिक-ज्ञान प्रदान करने की इनमे पूर्णत क्षमता है ।

'बाप जैडा बेटा, रूख जैडा टेटा
घडै जैडी ठीकरी, मायड जैडी डीकरी
झाड जैडा मूळ, धरती जैडी धूळ
रूई जैडो सूत, माईत जैडा पूत
आसर जैडा भाटा, बिरखा जैडा लाटा
रूखा जैडा छोडा, मडी जैडा मोडा ।'

'जैडी दीख वैडी सीख
जैडो खाण वैडो बाण
जैडो वास वैडो अभ्यास
जैडो खीजै वैडो लीजै
जैडी रात वैडा परभात
जैडी करणी वैडी भरणी ।'

(ई) प्रसिद्धियाँ प्रतिपादक छोगे

'प्रथम पिंड पाणी रो, देवळ तो आबू रा
हवेलिया तो जेसाणे री, गढ तो चित्तौड रो

तेल तो भापाल रो, मिन्दर तो मुथरा रा
नीर तो गगाजी रो, घीणो तो मैंस रो
मैंस तो नाळी रो, बळद तो नागोरी
गाय तो साचोरी, ऊट नाचणं रं टोळे रा
उजास तो सूरज रो, आदर तो माया रो
काकण तो केदार रो, गदा तो भीव रो
बाण तो अरजण रो, तिलक तो केसर रो
चूडो तो हस्ती दात रो, रूपो तो जावर रो
मत्तो तो पचा रो, ममता तो मा री ।'

(ङ) कहावत-प्रधान छोगे

इस प्रकार के छोगो मे भी नीति-कथना, सामाजिक उत्तरदायित्वो, व्यवहार-ज्ञान आदि का ही विवेचन मिलता है पर इनमें एक कहावती वाक्य की सर्वव प्रधानता रही है । उदाहरण स्वरूप दो छोगे प्रस्तुत किये जा रहे हैं, जिनसे बात पूर्णत स्पष्ट हो जायेगी—

'अेक राली अर जणा पचास, ओढण री करै सारा ई आस
आधी रात रा लागी खाचाताणी, खाता खाण नीं पीता पाणी
अेक लरडी अर साता री खीर, नित उठ पीव रधावै खीर
छछवारिया नै छाछ घलावै, आडो फिर फिर माडै लावै
मितरिया नै बगसै लाणी, खाता खाण नीं पीता पाणी
अेक घोडो साता री मीर, ऊभी चरै समदर री तीर
बाघण नै नी है जायगा, डोढ घोडो डोढवाणे पायगा
आधी बाटकी नवमी बाटकी, ज्या मे पुरसी अढाई सावळी
उकरडै चढ नै नियत्यी गाव, अेक अेक माडे तीन तीन ठाव
पुरसण आळी साळै जणी, हातो थोडो नै सळवण घणी ।'

'नवा म लियो नारियो, दसा मे चारो चारियो
बीसा री बची बाळी, तो ई पाळी रो पाळी
भाई रं मन भाई भायो, विना बुलाया माडै आयो
गैली राड बळवै काई, घो ढुलियो तो ई मूगा माई
पगा उरवाणो चालै, ठोकर वावै भाटा नै
फाटी पागडी मर्वरिया पाडं, रोवै रोत रा खाटा मे (रावतै नै)
कोरै ऊपळ बाजै घाई, फिर फिर निवता देवै नाई
खोच परूसै नै ठाकर छोजै, नो खोजै नै तेरै बोजै
देमली सीधं री खोय, सेणा अेक न देणा बोय ।'

उक्त छोगो मे मोटे अक्षर वाले वाक्य कहावती वाक्य हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि कहावत-प्रधान छोगो की भी इस प्रदेश मे बहुतायत है।

कथा कहने वाला कभी-कभी इन छोगो का कथा के प्रारम्भ मे प्रयोग न करके गौरवशाली राजस्थानी प्रदेश की भौगोलिक स्थिति, राजस्थान के विशिष्ट नगरो की प्रसिद्ध वस्तुओ एव रगीले राजस्थान की सास्कृतिक महत्ता को प्रतिपादित करने वाले कुछ दोहो का पाठ भी किया करता है। ऐसे लोक-दोहो मे से कुछ दोहे उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत हैं—

'साळ बखाणू सिंध री, मूग मडोवर देस।
झीणो कपडो माळवै, मारू मरुधर देस॥
बोर मतीरा बाजरी, खेलर काचर खाण।
धान र धीणा धोपटा, वरसाळै बीकाण॥
मौज सुरगा माळिया, फूल बाग चहु फेर।
घोल अनोखी चोवटै, अै खाता आबेर॥
केहर लकी गोरिया, सोढौ मवर सुजाण।
धड झुकिया लाखे सरा, आई घर अमराण॥
ऊचो तो आडावळी, नीचा खेत निवाण।
कोयलिया गहरा करै, अइयौ धर गोढाण॥
अडै थान इकलक रा, पावस घटा पहाड।
सरब चीज पाकै सदा, मोटी धर मेवाड॥
घोडा कीजै काठ रा, पिड कीजै पाखाण।
लोह तणा हूं लूगडा, जद जोईजै जेसाण॥
सरब रसाळा सात सुख, चावल गेहू चोज।
बका भड झीणा वसण, माळागिर री मौज॥
छव रुत रै हद छावणी, खेलण भाला खेल।
चीर हीर नारी चतुर, दिखणी देस दलेल॥
आबा चम्पा केवडा, दाडम नीबू दाख।
महुवा राहण मोगरा, सो गूजर धर साख॥
अग कवद्दा आवघा, हुन्नर राग हमेस।
मळा बहोतर गुण किता, दिल्ली मडळ देस॥'

कथा के प्रारम्भ के समय इस प्रकार के छोगो एव प्रदेश-महत्ता-निरूपक दोहो के प्रस्तुतीकरण के अतिरिक्त कुछ 'बिडदाव' (विरुद-गान) भी प्रस्तुत किये जाते हैं। कथा का वक्ता इन पद्यात्मक 'बिडदावो' का भी सस्वर लययुक्त उच्चारण करता है। प्राय: इस प्रकार के विरुद-गान मे कथा के महत्त्व को प्रतिपादित किया जाता है। उदाहरण स्वरूप एक 'बिडदाव' प्रस्तुत है—

'वाता हदा मामला, नदिया हदा फेर।
बहता ज वहै उतावळा, घरमर घालै घेर॥
बात बात सब अेक है, बात बात मे फेर।
उणी इज लोह री कुस घडी, उणी इज लोह समसेर॥
ज्यू केळे रै पात मे, पात पात मे पात।
त्यू चातर री बात मे, बात बात मे बात॥
बात बात सब अेक है, बात बात मे वैण।
वौ इज काजळ ठीकरी, वौ इज काजळ नैण॥
बातडल्या घर ऊजडै, चूल्है दाळद होय।
जे कोई जाणं बातडी, बातडल्या घर होय॥
बात रैवै पुळ बीत जा, समय पलट जा काळ।
साजन सिळो न खाइये, जो सोनै री थाळ॥
सोरठियो दूहो भलो, भल मरवण री बात।
जोबन छाई धण भली, तारा छाई रात॥
बात सुणो अर मामळो, या सू लेवो सीख।
सदा ज आडी आवसी, या री जुग बाली रीत॥
बात कह्या सुख ऊपजै, मन निरमळ हुय जाय।
ग्यानी हिरदै राखलै, मूरख सै पिछताय॥
प्रीत रीत अर नीत मे, बातडल्या परमाण।
सुण रे सुगणा सायबा, बाता रा परमाण॥'

उक्त बिडदाव म कथा की महत्ता प्रतिपादित की गयी है। कथा के माध्यम से ही प्रीति, नीति और सामाजिक रीति का पाठ पढ़ाया जाता है। इसके साथ ही वक्ता की कुशलता पर भी पूरा पूरा जोर दिया गया है। हर कोई व्यक्ति बात नहीं 'मांड' सकता। कथा कहन मे भी एक विशेष लहजा होता है। अवसरानुकूल भाषा का प्रयोग, पात्रानुरूप अंग-सचालन, उपयुक्त स्थान पर पद्योच्चारण, मर्मस्पर्शी दृष्टान्त योजना, भावानुकूल स्वरारोह तथा मुखाकृति करना आदि वक्ता के विशिष्ट गुण माने गये हैं। यही कारण है कि प्राचीन समय मे पेशेवर 'बातपोश' (कथा कहने वाले) हुआ करते थे। इन्हे राज दरबार मे उचित स्थान एव आदर मिलता था। कथा कहने वाला मूल कथा के प्रारम्भ से पूर्व 'तौ रामजी भला दिन दै' यह वाक्य कहा करता है और तब कथा का प्रारम्भ करता है।

कभी कभी वक्ता कथा के उद्देश्य को भी कथा कहने से पूर्व ही व्यक्त कर दिया करता है। ऐसा करने से श्रोता को कथा के मूल ध्येय का, वर्ण्य-विषय का पूर्वाभास हो जाता है। फलत कई बार प्रेम प्रधान बात कहते समय उद्देश्य मात्र का श्रवण कर बालकों को वहाँ से उठा दिया जाता है। इस सम्बन्ध मे दो-एक

उदाहरण द्रष्टव्य है—

'चतुर गुलावा अत सरस, पीव भवर सुजान ।
इनकी प्रीत सुवरनहु, गुरु को चित घर घ्यान ॥'[1]

× × ×

'परतापसिंघ सुर्माण नें, हुक्म कियो कर ठाय ।
हस कवी सू ऐसो कह्यौ, कथु यक वात सुणाय ॥
सयकु लगें सुहामणी, रचे सु जोम सिणगार ।
मूरखहु को मन हरें, सब नु लगें सु सार ॥'[2]

राजस्थानी लोक-कथाओ के प्रारम्भ-वैशिष्ट्य की भाँति ही इन कथाओ की समाप्ति पर भी कुछ बातें कही जाती हैं। बालकों को कही जाने वाली बातों मे तो प्राय कुछ हास्यास्पद वाक्यांश ही कहे जाते हैं। जैसे—

(१) इतरी बात नैं नी सुणैं जकण रैं डावैं ढुगैं लात ।
(२) इतरी बात नैं इतरी काणी, नी सुणैं जिणरी सासू काणी ।
(३) इतरी बात इतरी चीत, पाछलै घर री पछीत ।

कथा पूरी होने पर घर जाने के समय कहा जाता है—

(४) आपो आपरै घरै जावो, कादा रोटी खावो
बावडी री पाणी पीवो, गधा माथै चढो ।

इसके अतिरिक्त माडकर कही जाने वाली दीर्घ कथाओ की समाप्ति पर सत्य के आधार पर व्यतीत किये जाने वाले जीवन का अमर सन्देश श्रोताओ तक प्रेषित किया जाता है। कुटिल-चरित्रों की भर्त्सना और आदर्श-चरित्रो की प्रशसा की जाती है। जीवन को कल्याणकारी बनाने हतु नीति ज्ञान दिया जाता है। शाश्वत मूल्यों के कीर्तिमान प्रस्थापित किये जाते है। इस अमर एव शाश्वत सन्देश-श्रवण से श्रोता एक आनन्ददायी सन्तोष की अनुभूति करता है। उदाहरण स्वरूप कुछ पद्यांश प्रस्तुत हैं—

चालणहारा चलि गया, चौळाऊ चळियाह ।
सदा सनेही लाकडा, साथै परजळियाह ॥
सूरा दाता पिंडता, तीनू अेक सुभाव ।
जनमैं सो मरसी खरा, अमर वात रह जाय ॥
आया सग न चललही, मर मग गये जवान ।
मेरी मेरी कर मुवे, हिन्दू मूसळमान ॥
सुर नर नाग न थट्टिया, वेळे केहरियाह ।
जळपुरिया परवाण ज्यू, गल्ला ऊवरियाह ॥'

---

१ गुलावा भवर री बात (अप्रकाशित प्र० जैं० ग्र०, बीकानेर)
२ चदकवर री बात—शोध पत्रिका, अक २।३

जिन लोगों ने ऐहिक सुखों को निस्सार जान पर-जन-हिताय अपना सर्वस्व लुटा दिया, उन्हें कविगण, बुधजन और जन-साधारण सदा-सर्वदा के लिए याद रखेंगे। लोक-कथा-नायक भी वीर-धीर और परोपकारी होते हैं।

कथा के प्रारम्भ करने व समाप्त करने के विशिष्ट ढंग की चर्चा करने के पश्चात राजस्थानी लोक-कथाओं का वर्गीकरणपरक विवेचन यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है।

(१) 'माडकर' कही जाने वाली लोक-कथाएँ

राजस्थान प्रदेश में लोक-प्रचलित कथाओं में माडकर कही जाने वाली कथाओं का बाहुल्य है। पूर्व-निर्मित, परम्परित सजी-सजाई शैली में कथा कहना प्रत्येक के वश की बात नहीं है। भाषा में चित्रोपमता, स्थान-स्थान पर पद्यात्मकता, कथा-वक्ता की आंगिक चेष्टाएँ, लोकोक्तियों, कहावतों, मुहावरों और दृष्टांतों के प्रचुर प्रयोग के परिणामस्वरूप इस प्रकार की कथाओं में एक विशेष प्रकार का आकर्षण उत्पन्न हो जाता है। कथानक की गत्यात्मकता को दृष्टि में रखते हुए कथा कहने वाला यथावसर यात्रा का वर्णन, सौन्दर्य-निरूपण, प्रकृति-चित्रण, युद्ध, दरबार, शहर आदि का रोचक वर्णन प्रस्तुत किया करता है। ये वर्णन एवं बँधी-बँधाई परिपाटी में होते हैं। वक्ता को इन वर्णनों के अवतरण मौखिक याद रहा करते हैं। कभी-कभी कथा कहने वाला किसी प्रसिद्ध कवि-कृत वर्णन यथोचित अवसर पर प्रस्तुत कर देता है। स्वर का उतार-चढ़ाव, वाक्यों में तुकान्त भाषा का प्रयोग, हास्य और वाग्विदग्धता का पुट देकर ऐसा रसपूर्ण वातावरण निर्मित किया जाता है कि श्रोतागण उसके प्रवाह में बहे बिना नहीं रह सकते। कथा में तर्क का अभाव होने पर भी भावातिशयता एवं रोचकता के कारण श्रोताओं की औत्सुक्य-वृत्ति सदैव जाग्रत रहती है। माडकर कही जाने वाली लोक-कथाओं के लिए श्रोता-समूह का उपस्थित होना आवश्यक है। केवल एक या दो श्रोताओं के उपस्थित होने पर इन कथाओं का वह रंग नहीं जम पाता जो श्रोताओं के समूह की उपस्थिति पर जमता है। कथा-वक्ता अपनी रोचक एवं अद्वितीय कथन शैली से श्रोता-समूह को मन्त्र-मुग्ध कर देता है। सभी श्रोता चित्र-लिखित से वक्ता की ओर ही दृष्टि किये रहते हैं। कथानक की मनमोहकता ही श्रोतागण के अपूर्व अनुशासन के लिए उत्तरदायी है।

इस वर्ग में रखी जाने वाली कथाओं को अन्य कई उप-विभागों में वर्गीकृत किया जा सकता है। पर सर्वत्र ध्यान देने योग्य बात यह है कि कुछ विशिष्ट वर्णनों के अवतरण यथावश्यक स्थान पर प्रसंग-विशेष के साथ जोड़ दिये जाते हैं। इनमें से कुछ वर्णन हम उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं।

राजस्थान प्रदेश में अफीम का बहुत प्रचलन रहा है। परस्पर अमल से-

देकर सम्पन्न किये गये कार्य से मुकर जाने का दुस्साहस कोई भी नहीं करता। ऐसा करना समाज-विरोधी कृत्य स्वीकारा गया है। अनेक अवसरों पर ऐसे अनिश्चित मति वाले व्यक्तियों का जातीय बहिष्कार भी कर दिया जाता है। आपसी मतभेद अमल देकर ही मिटाये जाते हैं, सगाई-विवाह अमल देने पर ही निश्चित होते हैं, तीज-त्योहार पर भी अमल उत्सव की शोभा बढ़ाता है, पंचो की बात इसी आधार पर स्थायित्व प्राप्त करती है, राजा महाराजाओं की सभाओं में भी इसे उचित आदर मिलता है, और तो और, चोर, डाकू और धाड़ायती भी इसके महत्व को स्वीकारते हैं। राजस्थानी लोक-कथाओं में इस प्रथा को भी उचित स्थान मिला है। राजस्थानी लोक-कथाओं में अफीम का वर्णन आने पर अफीम की महत्ता को प्रतिपादित करने वाली अनेक पद्यात्मक पंक्तियाँ वक्ता द्वारा उच्चरित की जाती हैं। इसे 'रग-देवणो' कहा जाता है। अफीम-गालने को 'कसूंबो गाळणो' कहा जाता है। परस्पर मनुहार करते समय भी अमल की महत्ता सूचक पंक्तियाँ सुनायी जाती है, अनेक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं, और इस प्रकार व्यक्ति को अमल लेने के लिए मजबूर कर ही दिया जाता है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

'गढ ढाहण गोळा गिळण, हाथियां देण हमल्ल।
बैरियां हाथ बतावणा, आइयौ मित अमल्ल ॥
अमल अटका लीजिये, काठे बसियें वास।
काटा बिन आटा किसा, सबका धड़कै सास ।।
अमल अरोडी फूल मद, वाकर मास बटक्क।
मिळिया लीजे माधवा, गळिया तणा गटक्क ।।
तूटै घर साधी लगै, सूनै महल विराग।
रूठा राजन रिळमिळै, आइयौ मित अेराक ।।
अमला थे उदमादिया, सैणा हंदा सैण।
थो बिन घडी न आवडै, पीवां लागै नैण ।।
रग रामा रग लिछमणा, रग दसरथ रा जाया।
लका लूटी सोवनी, मिळ दोनू भाया ।।
रग रामा रग लिछमणा, रग दसरथ रा लाला।
लका लूटी सोवनी, भळकता भाला ।।
रग रामा रग लिछमणा, रग दसरथ रा बेटा।
लका लूटी सोवनी, कर कर आखेटा ।।
रग रगीला ठाकरा, रग दसरथ रा कवरा।
मूज रावण रा भागिया, आलीजा भवरा ।।'

'रग है केसर री क्यारी नैं, रग गगा री भारी नैं
रग अणियाळा भाला नैं, रग आबू रैं झाला नैं
रग पदमणी राणी नैं, रग कोयल री वाणी नैं
रग नागौरी नारा नैं, रग परभाती तारा नैं
रग जमना रैं कूला नैं, रग सुरगा फूला नैं
रग दिखणी रैं चाव नैं, रग अमला तणै भाव नैं
रग मबळ री धारा नैं, अर रग सैं सिरदारा नैं।'

'जे कोई दातारी करो तो जगदेव कीनी जैडी करजो
कोई घोडा दौडाओ तो बगडावता दौडाया जैडा दौडाजो
जे कोई दारू पीओ तो बापै कोटडियै पियो जैडो पीजो
जे कोई लुगाई धणी सू रूठै तो उमादे भटियांणी रूठी ज्यू रूठजो
जे कोई लुगाई आप परख बीद परणीजै तो पातसा री साजादी परणीजी ज्यू परणीजजो
जे कोई लुगाई परणियै सू मन फाडी करै तो पन्ना विरमदे करी ज्यू करजो।'

नायिका सौन्दर्य चित्रण की भी ऐसी ही बँधी-बँधाई शैली है। इस वर्णन को किसी भी रूपवती रमणी के रूप वर्णन में प्रयुक्त किया जा सकता है। ऐसे वर्णनो पर कभी भी कथा विशेष की छाप नही होती।

'केसर री क्यारी, प्रेम-रस प्यारी। चन्द्रवदनी, मृगलोचनी। लगन री लडी, जीव री जडी। हियै रो हार, चित री उदार। हसत-मुखी, सदा-सुखी। छबीली। चकीली। लकीली। रगीली। रसवीली। अमकीली। जोबन रै जोरै, सुगन्ध रै घोरै। प्रेम-रस लेणी, कळा-रस देणी। चतुर सुजाण, मन री पिछाण। हाथा री चतुर, काम री आतुर। इधक रग सरूप, सिणगार रो चूप। चढती नूर, जोबन रै पूर। असमान सू उतरी। इन्दर री अपछरा। सरोवर री हस। सरद रो कमळ। बसन्त री मजर। भादवै रो बादळ। बादळ री बीज। मेह री ममोल्यो। बावनो चनण। सोळमो सोनो। रायवेळ रो ग्रभ। राजहस रो बच्चो। लिखमी रो अवतार। परभात रो सूरज। पूनम रो चाँद। सुरग री भाम। सनेह री लहर। गुण रो प्रवाह। रूप रो निधान। गुण चतुराई रो आदर। जोबन रो पेखणो। काम रो लाडू। मुगला रो मोमची। किरत्या रो झूबको। सुख री सिळाव। काम री वेळ। रतना री रास। अधारै रो आदीत। रूप री रूख। प्रेम रो प्यालो। आर्भ री बीज आदि।'

प्रकृति और लोक-जीवन का निकट का सम्बन्ध है। लोक ने प्रतिपल विस्फारित नयनो से प्रकृति की विविध दृश्यावलियो को देखा। लोक-कथाओ

में भी प्रकृति के अनेक चित्र चित्रित किये गये है। एक ऐसा ही विप्लवकारिणी भीषण आँधी का दृश्य उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है जिसे प्रसगानुकूल समझ किसी भी कथा के साथ जोडा जा सकता है।

'धरत्या टिक्यिोडी रेत असमान मे चढगी। खँखाड माथै खँखाड बाजण लागा। × × × थोथी करडावण राखण वाळा जगी रूख करड-करड उपलीजण लागा। सुळताई राखण वाळा कवळा बाटका अठी-उठी लळाक-लळाक लुळै पण धारी की नी बिगडे। पगा चौयोजण वाळा घास नैं तो झेल ई नी पूगै। सुख-साता पूछती, लाड करती, पपोळती आंधी मायावर निकळ जावै। × × × कुदरत री इण नाकुछ उबासी आगै नी मिनख रैं ग्यान री जिनात, नी उणरै आपा री की ठरको, नी उणरै गुमेज रो की गाढ अर नी उणरी खटपट री की बिसात।''[1]

प्रकृति-चित्रण का एक और मनमोहक चित्र द्रष्टव्य है—

'सावण रै लगती ई भादरवो आयो। डेडरिया री डरडाट माची। बिरखा मड री छै। बीजळिया सळावा भरे छै। सैहरा-सैहरा बीज चमक री छै, जाणे कुलटा नायका घर सू नीसर अग देखाय दूजै घर परवेस करै छै। मोरूडा 'मे आओ मे आओ' बोल रिया छै। अलधा री खडियोडी मोटा ऊफडती राती पीळी आधी रै विचाळै मलार गावता ई हाथी र कान जितरी अेक बादळी निकळी। बिजळिया खिवण लागी—पळा" क झब, पळा क झब, जैडै तो छाटा आई'ज—तडतड तडतड तडातड थडडडडड। पैपरळा पैपरळा पाणी पडण लागो। इण भात मूसळधार मे बावौ मडियो स मडियो। भाखरा रा नाळा बोल रिया छै। नाडी-नाडिया पाणी सू छिल रिया छै। बनसपति सू बेलडिया लिपट रही छै। गाज-बाज रैं साथै घटा आई सु जाणै परदेसी इन्दर राजा घणे हरख आपरी घण जमी सू मिळण आयो छै।'

इसी प्रकार से ऋतु वर्णन, नायिका वर्णन, भोज वर्णन, मृगया-वर्णन, मनुष्य के दैनदिन प्रयोग मे आने वाले पशुओ (गाय, भैस, ऊँट, घोडा) के वर्णन, शान-शास्त्र में पारगत शुकसारिकाओ के वर्णन आदि भी एक बँधे बँधाए रूप को लिये होते हैं। युद्ध का प्रसग उपस्थित होने पर धडदड, भडभड, हडाहड, लडत्थड, थडऊथड, गडहड, धडहड, खडखड, झडझड, खडहड आदि ध्वन्यानुकरणवाची शब्दो का प्रयोग किया जाता है। ऐसे शब्द राजस्थानी भाषा की विशिष्ट थाती हैं। मूमल महेन्द्रा की कथा मे वर्णित चीखल नामक ऊँट नामान्तर से ढोला-मरवणी की कथा और अन्य कथाओ मे भी उसी रूप एव गुण वैशिष्ट्य के साथ वर्णित है। कतिपय पक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'किरमरिया काना रो, झावरी पूछ री, आरसी ईड रो, घोटवी नळी रो।

---

१ दुविध्या—वाताँ री फुलवाडी, भाग १०, विजयदान देथा, पृ० १८२

ना ना करतो नागोर जावै, जै जै करतो जैपर जावै, घडी अेक मोरी ढीली छोडी जावै तो दिल्ली री खबर पलक मे लेतो आवै ।'

घोडो के वर्णन की एक झलक—

'कूकडा कध रा, लोह् मे बध रा, तीछडो पूछ रा, चौवडी घूब रा, चामरी पूछ रा, निलमो नळी रा, वाटकै नक्ख रा, धावणी झोड रा, म्रिघ ज्यू कूदता, नटा ज्यू नाचता, आपरी छाआ सू डरपता, बाज पखी ज्यू उडाण भापता, तारै री तूट, आतस रो भभको, चकरी री चाल, चपला रो चमको, होडै री लूव''' आदि।'

कभी-कभी कथा कहने वाला उचित अवसर पाकर ऊँट और घोडो की अनेक जातियो और तज्जातीय गुण वैशिष्ट्य का भी बखान किया करता है।

(ग्र) माडकर कही जाने वाली (पुरुप वर्ग मे) लोक-कथाएँ

दिन-भर की थकावट दूर करने के लिए, मनोरजन हेतु, ज्ञान-वर्द्धनार्थ, जातीय इतिहास की जानकारी हतु ग्रामो मे रात्रि काल मे अनेक प्रकार की कथाएँ कही जाती हैं। प्राय गाँव-भर के वयस्क एव वयोवृद्ध एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। सर्दी की ठिठुरती रातो म बीच मे (जहाँ आग जलाई जाती है उस स्थान को 'कऊ' कहा जाता है) अग्नि प्रज्वलित कर ली जाती है। तमसा का तम मन्द-मन्द जलने वाली आग से विदीर्ण होता है और मनुष्यो के मन का अज्ञानान्धकार 'वातों' की ज्ञान-राशि के प्रकाश से मिटता है। कभी कभी ये वातें रात-रात भर चलती रहती हैं। कथा की रुचिरता एव वक्ता की नाटकीय गतिविधि तथा श्रोताओ की अतर्क्य भाव से ग्रहण करने की शक्ति और क्षमता के कारण एक अनूठा वातावरण उपस्थित हो जाता है। इस वर्ग की कथाओ मे जातीय-गौरव की भनक मिलती है, राजपूताने की अद्भुत वीरता का सन्देश निहित है, ऐतिह्य-उल्लेखो से इतिहास की अद्वितीय घटनाओ की पुष्टि की गयी है, परियो की बात कहकर श्रोता की कल्पना और जिज्ञासा को जाग्रत करने का प्रयास किया गया है, सामाजिक विषमताओ तथा कुरीतियो की ओर स्पष्ट इगित कर भावी पीढी को उनसे बचाने का प्रयत्न किया गया है। अत इन सब कथाओ को भली भाँति समझने के लिए इनका विशद विवेचन किया जा रहा है।

(१) ऐतिहासिक वीर-चरित्रो की कथाएँ

राजस्थान प्रदेश में 'वात' और 'ख्यात' की समृद्ध परम्परा रही है। जन और धन की रक्षार्थ प्राणोत्सर्ग कर देने वाले वीरो, सतीत्व-रक्षक नारियो आदि के चरित्रो के आधार पर अनेक बातें लिखी गयी। यहाँ के नर-रत्नो ने 'मान' के मूल्य को सदैव समझा है। ऐसी 'वातो' से लोगो को नीति की बातें बतायी जाती थी। इनसे भावी पीढी का पथ प्रदर्शन होता था। इस वर्ग मे रखी जाने योग्य

कथाएँ प्राय प्रदेश-विशेष तक सीमित हुआ करती हैं। यह कथाएँ घटित तथ्यो पर आधारित होती हैं। इन कथाओ के माध्यम से स्थानीय प्रतिभाओं एव स्थानीय धरातल की विशेषताओ को उभारा जाता है। स्थान-विशेष के रीति-रिवाजो का ज्ञान भी इन कथाओ से होता है। कभी-कभी इन कथाओ के साथ परम्परा-प्राप्त सामग्री भी जोड दी जाती है। इस प्रकार के चरित्रों पर आधृत ऐतिहासिक कथाओ के निर्माण के सम्बन्ध मे राजस्थान के प्रसिद्ध इतिहासकार ठा० किशोर-सिह जी बार्हस्पत्य के विचार उल्लेखनीय हैं—

'प्राचीन समय मे जब राजकुमारों को चारण कवियो के सरक्षण मे रखकर शिक्षा दिये जाने का नियम प्रचलित था, तब उक्त कवि किसी प्राचीन वीर-धीर ऐतिहासिक चरित्र को रोचक बनाकर उसको कथानको के रूप मे लिखा करते थे और वही अपने शिष्यो को पढाते थे। साथ ही उनमें लिखी हुई बातो को कार्यरूप मे परिणत करने के लिए अपने शिष्यो को बराबर प्रोत्साहित करते रहते थे।'' ये कथाएँ जिस प्रकार पुरुषों के पढने की चीज हैं, वही उसी प्रकार स्त्रियो के हाथो में भी बिना किसी हिचकिचाहट के दिये जा सकते हैं। अश्लीलता तो इनमें नाममात्र भी नही। जिस प्रकार पुरुषो के उपरोक्त गुणयुक्त चरित्रो का उल्लेख इनमे किया गया है, उसी प्रकार स्त्रियो के पातिव्रत्य, शौर्य, सतीत्व-रक्षा आदि-आदि गुणो का भी इनमें उल्लेख मिलता है।'[1]

ऐतिह्यवृत्त प्रधान इन 'बातो' मे ही राजस्थान का इतिहास भरा पड़ा है। इन कथाओ से तत्कालीन सामाजिक एव सास्कृतिक स्थितियो का बोध होता है। 'जगदेव पवार री बात' त्याग के क्षेत्र मे एक अद्भुत कीर्तिमान स्थापित करती है। 'अथ बात सागै पवार री लिख्यते' मे वर्णित नारी-पात्र विशेष रूप से प्रशस्य हैं। आचन्दन की पुत्री 'सजना' का विवाह सागाराय से हुआ था। दहेज मे दी गयी 'कूर' नामक घोडी की सजना द्वारा पति के समक्ष बढा-चढाकर प्रशसा की जाती है। प्रशसा-श्रवण से क्रोधाभिभूत होकर उसका पति कहता है कि ऐसी घाडियाँ मेरे पास अनक हैं और तुझे भी अपने रूप पर अत्यधिक गर्व है पर तेरे जैसी रूप-गर्विताएँ तो मेरे यहाँ दासियो का काम करती हैं तथा यहाँ पहुँचते ही तेरी भी गणना परिचारिकाओ मे ही होगी। आत्म सम्मान पर ठेस लगने से क्षुब्ध सजना अवसर पाकर सागाराय के शत्रु भोजराज के पास चली जाती है। पति से प्रताडित सजना का यह कदम हमे सहज ही म ध्रुवस्वामिनी के चरित्र की याद दिला देता है। भोजराज के साथ भी चौपड खेलते समय विवाद हो

---

१ राजस्थान त्रैमासिक (कलकत्ता) वर्ष १ अक २। सवत् १९९२ म प्रकाशित 'डिंगल भाषा के प्राचीन एतिह्य' शीर्षक लेख से।

जाने पर वह गुप्त रूप से सागाराय को युद्ध हेतु बुला लेती है। युद्ध में भोजराज की मृत्यु हो जाने पर 'सजना' अपनी एक भुजा काटकर सागाराय के पास भेज देती है और स्वयं भोजराज के साथ सती हो जाती है, क्योंकि उसका और सागाराय का सम्बन्ध तो हथळेवा जोडने तक ही सीमित था। कटी भुजा का दृश्य सागाराय के क्रोध में घी का काम करता है। परिणीता पत्नी शत्रु के साथ रही, यह उसे असह्य हो गया तो उसने सजना के पिता पर चढाई कर दी। रणांगण में अपने को असमर्थ समझ सजना के पिता ने अपनी छोटी पुत्री का विवाह सागाराय के साथ कर दिया। सागाराय ने सजना की बहिन को भी सुहागरात को ही अपमानित कर दिया। मानिनी पुत्री और पिता ने षड्यन्त्र कर दूसरे दिन ही खाना खाते समय सागाराय व उसके साथियों को मार डाला। तदनन्तर वह स्वयं सागाराय के साथ सती हो गयी। आत्माभिमानिनी नारी के कितने मनोवैज्ञानिक चित्र चित्रित किये गये हैं।

इन कथाओं में राजपूती शौर्य की, नातोकौशल की, छल प्रपंचमयी राजनीति की अनेकानेक घटनाएँ भरी पडी हैं। 'वात नान्हे बाघेलै री' का पात्र बाघेला राजा की सेना को मारकर रानियों को बहिन स्वरूप समझना है। 'नान्हे बाघेलै' ने एक आदर्श उपस्थित किया। इन कथाओं में बात बात पर कटारी एवं तलवार निकलती दिखायी देती है। शाह अमीपाल के देश की हँसी उडायी गयी तो उसने मालदेव और तरखरत खाँ को टाँग के नीचे से निकलने को कहा। तरखरत खाँ के न निकलने पर युद्ध ठन गया, जिसमें तरखरत खाँ और शाह अमीपाल दोनों ही खेत रहे। उस काल में किसी भी क्षण युद्ध का वातावरण उपस्थित हो सकता था, यह इन कथाओं से पूर्णतः स्पष्ट होता है। राज्य-प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार के छल-छद्म और षड्यन्त्र प्रपंच किये जाते थे। तत्कालीन महत्त्वाकांक्षियों का हृदय कूटनीति एवं कुचक्रों से बुरी तरह आक्रान्त था। पारस्परिक सम्बन्धों को तृणवत् तोड दिया जाता था। 'माता समान नाता नहीं' जैसे श्रेष्ठ एवं श्रद्धेय वाक्य भी उनके लिए कुछ भी महत्त्व नहीं रखते थे, जैसा कि निम्न उद्धरण से ज्ञात होता है—

'ताहरा मूळराज नैं बुलाय अर राज पूछीयो। ताहरा मूळराज कह्यौ— 'हूं मामा नैं मारीस।' ताहरा राज बोहत राजी हुवो—'जो मारे छै तो सपूत।' ताहरां वाता मसलत करण लागा। ताहरा मूळराज री मा दीठी—'जो आज ऐ बाप-बेटा आलाच करे सु सही ज काई म्हारा पीहरळा री वात करे छै।' ताहरा मूळराज री मां पग री जेहड ऊंची कर ओले आण ऊभी रही। तद इहा री वाता करता सुणीया। राज कह्यो—'जो बेटा, मारे ही मारे तो इसो तरै मारे, जु पेर चावोडा रो कोई रहे नहीं। निकटकों राज हाथ आये, ईयें।' मूळराज री मा आ वात सुणी सु मत ढीली पड गयो, तेसु जेहड ऊंची चाढी थो, सु उतर गई।

सु उतरती वाजी। ताहरा राज लखीयो—'रे कुण छै ?' तद मूळराज कह्यो—'मा छै।' ताहरां राज कह्यौ—'देखें का मु ? थारी मा ने मार, का पीहरे भाया ने कहेस।' ताहरा मूळराज मा रे सिर माह तरवार री दीवी, सु सिर वाढ़ नाखीयो। पड़तो सिर पगथीया सु गुड़कीयो। ताहरां राज कह्यो—'जो जीवरा ही परसाणियां थारी मां रो सिर उतारीयो छै तवरी ही पीढीया हूण आपा गे राज रहसी।'[1]

इन कथाओ मे मुगल-बादशाहो द्वारा राजपूतो को दिये जाने वाले लोभ-लालच का भी उल्लेख मिलता है। राजपूती शासन की परस्पर वैमनस्य भावना और लालच-वृत्ति का भी इन कथाओं ने भण्डाफोड़ किया है। बेगड़ा महमूद ने पताई रावळ के साले सदया कावळिया को प्रलोभन दिया कि यदि वह अपने बहनोई पताई रावळ और उनके साथियों को मरवा देगा तो उसे गढमें ऊपर रखा जायेगा। लालचवश उसने ऐसा ही किया। सभी के मारे जाने के बाद सइया काकळिला के सिर का भी काट दिया गया और सभी के सिर के ऊपर उसके सिर को रखा गया।

वीरांगनाओं के चरित्रों का उल्लेख भी इन कथाओं मे हुआ है। 'बात कूगरे बळोच री' में कूगरे बळोच की पुत्री पुरुष-वेश धारण कर अपने पिता का वैर, जैसलमेर के भाटियो के घोडो को भगाकर, निकालती है। नारी वीरत्व व्यंजक कथाओ में इस कथा का अपना स्थान है।

मुख्य रूप से ऐसी कथाओं का निर्माण स्थानीय प्रतिभाओं को प्रोद्भासित करने हेतु, आदर्श स्थापन हेतु, आश्रयदाता शासक के कहने पर किया जाता था। आज ऐसी हजारों कथाएँ हस्तलिखित प्रतियों में पुरातत्त्व मन्दिरों में बन्द पड़ी हैं। इतिहासकारों का कर्त्तव्य है कि इन कथाओ को ध्यान में रखते हुए इतिहास का पुनर्निर्माण करें। इन कथाओं में बात अमरसिंघ-गजसिंघोत री, बात अजीतसिंघजी री, बात आसनाथजी री, बात काघळजी री, बात तीडेराव छाडावत री, बात पाबूजी री, बात राव चूंडै री, बात राणा अमरा रै विखै री, बात ऊदै-उगमणावत री, बात अणतराय साखले री, मगेव नीबावत री, बात अलावदीन-पातसा अर हमीर हठीले री, बात जखड़ा मुखड़ा री, बात सूरजमल हाडै री, आल्हणसी भाटी री, करमसी आसियै री, चारण मदनै-मनोहर री, चारण वेहसूर री, जोगराज चारण री, पीठवै चारण री, रेबारी देवासी री, सूरै खीवै काघळोत री बात, जगमाल मालावत री बात, जगदेव पवार री बात, वीरमदेव सोनगरा री बात, जैतसी उदावत री बात, बलूजी चापावत री बात, सजना री बात, विणजारे भोमसिंघ री बात, वीरमदे सुलतान री बात, अमीपाळ साह री बात आदि प्रमुख हैं।

---

१ राज बीज री बात (हस्त प्रतिलिपि, अ० जै० ग्र०, बीकानेर)

ऐतिहासिक वीर-चरित्रों की कथाओं में से एक कथा का कुछ अंश उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है, जिसमे गगेव नीवावत का उज्ज्वल चरित्र एव शारीरिक कान्ति को बहुत ही खूबी से चित्रित किया गया है—

'ऊगतो सूरज । पावासर रौ हस । कुवरा पत कुवर । जळहर जवाध, भोगी भवर । कसतूरियो म्रिग । लाधियो सिंघ । सीळ गगेव । दुरजोधन अहमेव । जुजठळ ज्यू साच । दुरवासा वाच । ग्यान रो गारख । सहदेव ज्यू सारी वात समरथ । अरजन ज्यू बाण । करण ज्यू दानपाण । बतीस आखडी रो निवाहण-हार । वैरिया भिडावणहार । परओम पचायण । धण दियण जस लियण । कळाय रौ मोर । मूछे भीनै गात । केसरिया पौसाख किया आण घाडे असवार हुवै छै ।'

हजारो की सख्या मे मिलने वाली इन कथाओ की सूची प्रस्तुत करना हमे अभिप्रेत नही हैं, क्योकि ये समस्त वातें एतिहावृत्त के रूप म ही लिखी गयी थी। इनमें से बहुत ही कम कथाएँ लोकप्रिय हो सकी। अधिकाशत प्राचीन हस्त-लिखित ग्रन्थो मे ही बँधकर रह गयी। जो भी लोकप्रिय बनी उनका रूप वह न रहकर एक नया रूप निर्मित हुआ। इस नवीन रूप का निर्माण अलौकिक तत्त्वो के योग से होता था। अलौकिक तत्त्व के जुड जाने पर ही ये कथाएँ लोक-साहित्य की सम्पत्ति स्वीकारी जा सकती हैं। अन्यथा इन कथाओ को इतिहास की धरोहर मानना अधिक तर्कसगत है। कल्पना तत्त्व के सयुक्त हो जाने पर ही इनका लोक-साहित्यिक रूप निखरता है। यही कारण है कि प० सूर्यकरण पारीक ने इन कथाओ को दो भागो (ख्यात की वातें और मनोरजक वातें) मे स्वीकार किया है।

"... वातों के रूप मे राजस्थान का प्राचीन इतिहास लिखा गया है, अतएव इन वातो म ऐतिहासिक सामग्री बहुतायत मे मिलती है। ख्यात की वातो मे और मनोरजनार्थ रचित वातो मे एक स्पष्ट अन्तर यह होता है कि इनमे कल्पना की मात्रा अधिक रहती है। ख्यात की वातो मे जहाँ तक हो सका है, ख्यात लेखक ने वशावलियो के क्रम से प्रत्येक व्यक्ति और देश के जीवन-काल की मुख्य वातो का यथार्थ वर्णन किया है। कहानी की वातो मे किसी एक ऐतिहासिक कार्य का लेकर और उसमे कल्पना का पुट देकर मनोरजक सामग्री प्रस्तुत की गयी है।"[१]

(२) प्रेम-प्रधान कथाएँ

इस प्रकार की कथाओं के माध्यम से इस प्रदेश के प्रेमी-युगलो की याद को सदैव ताजा रखा गया है। प्रत्येक प्रदेश में अपने प्रेमियो की प्रेम-कथाओं का

१ राजस्थानी वातां—भूमिका-भाग, सूर्यकरण पारीक, पृ० ८

प्रचलन हुआ करता है। ये कथाएँ लोक के कंठ का हार मानी जाती हैं। प्रेमी इन कथा-चरितों के उदाहरण प्रस्तुत कर अपने प्रेम की उत्कृष्टता को सिद्ध करना चाहते हैं। बंगाल में चारो और देवदास की कथा का, पंजाब में हीर-रांझा तथा महीवाल-सोहिनी की कथा का अत्यधिक प्रचलन है। राजस्थान में ऐसे प्रेमियों की कथाओं की संख्या बहुत ज्यादा है। इन प्रेम-कथाओं में बात सैणी-बीझाणन्द री, बींझे-सोरठ री, ममोराम प्राहिन नै हीरां री, रावळ-ललगैन री, आभल-खीयजी री, ऊमादे-भटियाणी री, गुलाल मबर री, कपीन-रूपोलणी री, चन्द मलयागिरी री, जलाल-बूबना री, अगमा-आंडण री, ढोला-मरवण री, नागजी-नागमती री, पन्ना-वीरमदे री, मयाराम दरजी री, मगनी-मयवेग री, मूमल-महिन्द्र री, मोजदीन-महताब री, रतना-हमीर री, राजा चव री, रिसाळू कवर री, बिजड़-बिजोगण री, वार्य भारमली री, सईदसगारविगा री, सुपियारदे री, बीझै अहीर री, ससी-पन्ना री आदि प्रमुख हैं।

राजस्थान की प्रेम कथाओं में संयोग और वियोग दोनों अवस्थाओं का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है। इन कथाओं में सर्वत्र प्रथम-दृष्टि प्रेम की महत्ता को प्रकट किया गया है। बीझा अहीर अपनी बहिन के घर मिलने जाता है। सास के नियन्त्रण में रहने वाली उसकी बहिन रात्रि-भोजन के पश्चात ही अपने भाई से मिलने का समय निश्चित करती है। इससे पूर्व उसे कार्य भी तो बहुत सारे करने हैं। सध्या के पश्चात बीझा अपनी बहिन के घर के पार्श्व भाग (बाड़े) में एक खाट पर सुस्ताने के लिए सो जाता है। दिन में जब बीझा अपनी बहिन के घर आया था उस समय उसकी बहिन की ननद बीझै के रूप सौन्दर्य से प्रभावित हो उस पर मोहित हो गयी थी। सध्या समय उसे सोया समझ वह रूपासक्त नायिका उससे मिलने जाती है। जब वह उसे जगाती है तो बीझा अज्ञानवश बहिन (क्योंकि उसे तो यही ध्यान था कि इस समय बहिन कुशल पूछने आयेगी) कहकर बतलाता है। वस्तुस्थिति का ज्ञान होने पर संयोगावस्था में भी प्रेमी-हृदयों में वियोग की विकराल वह्नि जल उठती है। परिस्थितियों और 'बहिन' संज्ञा की मर्यादा ने दोनों प्रेमियों के जीवन को विडम्बनामय बना दिया। उक्त प्रेम-कथा में कुछ विरह-भावाभिव्यंजक दोहे उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'जासी फूल फिरेह, पिउ पिरथी रा ऊपरा।
सु-भवद तणो सनेह, वास न जासी बीझरा॥
सज्जण सदेसैह, अम्हीणो आयो नही।
नीळी नीरासैह, वन ही दाझा बीझरा॥'[1]

1. मिलाइये—पिउ सौं कहेऊ सदेसड़ा हे भौंरा हे काग।
सो धनि विरहै जरि मुई, तेहिक धुआ हम लाग॥—पद्मावत, जायसी

दुहो दुपट्टो दाम (वाम) ओड्या सो ही जाणसी ।
व्याव'र तणो विराम, बाझ न जाणे वीभरा ॥
आता कहे न आव, वळता बोळावो नही ।
तिण सज्जण घर पांव, वळै न दीजे वीभरा ॥'[1]

इन प्रेम-कथाओं मे कही कही प्रेमी से निश्चित धन राशि निश्चित अवधि तक लाने के लिए भी कहा गया है। ऐसा न करने पर प्रेमिका मृत्यु का वरण कर लेती है और उसके वियोग मे प्रेमी या तो मर जाता है या पागल हो जाता है। 'सयणी और बीझानन्द' की कथा इस सन्दर्भ में उल्लेख्य है। बीझानन्द के समय पर न पहुँचने पर सयणी हिमालय गलने के लिए चली जाती है। अर्द्ध-गात के गल जाने पर बीझानन्द वहां पहुँचता है पर उसे सयणी के कारुणिक सन्देश के अतिरिक्त और कुछ भी नही मिलता—

'आधो गळियो गात, आधे मे आधो रह्यो ।
हुमे ममळना हाथ, बीभा नर पाछा वळो ॥'

अद्वितीय रूपवती जसमा ओड-पत्नी थी। धारा-नरेश भोज उस पर मुग्ध हो गया। उसे अनेक प्रलोभन दिखाये गये परन्तु उसने पति-प्रेम त्याग को सदैव अश्रेयस्कर और हेय समझा। जसमा की प्रेमाग्नि मे जलने वाले राजा की निम्न उक्ति कितनी मार्मिक है—

'सुणि जसमल ! राजा कहे, मैं तो लागि दीठ ।
जीवा ता बिरचा नही, जाणि कपडे मजीठ ॥'[2]

पर जसमा का नीति-कथन तो और भी उपयुक्त प्रतीत होता है—

'राजा ! रीत न छाडिये, समवड करी सनेह ।
समवड सू सुख पायजे, नीचा केहो नेह ॥'[3]

राजस्थानी-मानस ने मुस्लिम प्रेमियो को भी आदर की दृष्टि से देखा है। 'जलाल-बूबना' की कथा इस बात का ज्वलत उदाहरण है। इन प्रेम-कथाओ मे वियोग-वर्णनो की भांति सयोगावस्था का भी सुन्दर चित्रण हुआ है। चन्द्रिकास्नात रजनी की रुचिर वेला मे प्रेमिका अपने प्रेमी मे मिलने के लिए जा रही है। इस प्रकार के वर्णन हमे आभिजात्य साहित्य में चित्रित शुक्लाभिसारिका के चित्रो की सहज ही मे याद दिला देते हैं।

'चतुरगी रायजादी निरतिया री झूंबिको, मोतिया री लडी हुवे तिणि भात री ऊजळी गोरगिआ ऊजळै गात, ऊजळै वावनै चदन री खोळि किया, ऊजळा

---

१ मिलाइये—आव नहीं आदर नहीं, नहीं नैणां में नेह ।
तिण घर कबुह न जाइये, चाहे कंचन बरसे मेह ॥—सुनमो

२ राजस्थानी बातां, भाग १, नरोत्तम स्वामी, पृ० २९

३. वही

मोतिया रा ग्रहणा पैहेरिया, ऊजळा वागा रा बणाव किया, ऊजळा फूलां रा चौसर घातिया, हाथे ऊजळा फूला रा गेंद उछाळनी थकी ऊजळी सखिआ रै साथै सहेलिया री टोळी सो रास-मडळ रमण रै ओछाह चादणी राति री चली जाइ छै। ऊजळा बणाव किया उजळी चांदणी मिल गई छै सु आगली सखिआ नैं जावती लखे नही छै। निणि सोधं रै डोरं लगी जाइ छै। ऊजळी ठकुराणी ऊजळा ठाकुर सू जाइ-जाइ मिलै छै। इण भात सरद चादणी रग विलास माणीजै छै।'

इन प्रेमियो ने न जातीय-बन्धन को स्वीकारा है और न ही सामाजिक रीतियों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व दिया है। 'जेठवा और ऊजळी' की नायिका ऊजळी वर्षा की शीत से ठिठुरे जेठवे को अपने शरीर के ताप द्वारा एक प्रकार से नया जीवन-दान देती है। उसे क्या पता कि जेठवा कौन है ? कहाँ से आया है ? कर्तव्य के प्रति ऐसी जागरूकता इन प्रेम-कथाओ का प्राण है। और फिर जेठवे ने उसे कितना धोखा दिया, अपमानित किया, पर इसमे ऊजळी के प्रेम पर क्या बुरा असर पडा ? वह तो प्रेमियो के ससार मे अपना नाम अमर कर ही गयी और साथ ही जेठवे को भी अमर कर दिया। यही तो प्रेम का उत्सर्ग है। आभल से मिलने के लिए खिवजी को स्त्री वेश धारण करना पड़ा। भला प्रेमी प्रेमी से अलग क्योंकर रह सकता है ? प्रेम का सम्बन्ध सर्वोपरि है। इसके समक्ष रक्त-सम्बन्ध नगण्य-सा प्रतीत होता है। तभी ता भाणजे बीमे और मामी सोरठ का प्रेम निभ सका।[1] इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी प्रेम-कथाओं ने विविध प्रसगो को उभारकर जगत के समक्ष प्रस्तुत किया है। उक्त प्रेम-कथाओं के अतिरिक्त इस प्रदेश मे अनेक प्रेम-कथाएँ जातीय स्तर पर प्रचलित हैं। इनमे अधिकाश कथाएँ जोगी (कालबेलिया) जाति मे प्रचलित हैं। जैसा कि लोक-गीतो के अध्याय मे बता दिया गया है कि इस जाति की स्त्री से यदि कोई अन्य जाति का पुरुष प्रेम करता है तो उसे इस जाति मे मिल जाना पडता है। ऐसे प्रेमियो की प्रेम-घटनाओं को लेकर अनेक गीत और कथाएँ प्रचलित हो जाती हैं। इन प्रेम-कथाओ मे लवारखी री, बरछा धारण री, जैनाराण निरोवत री, हरसुखलाल बिस्नोई री बातें आदि काफी प्रचलित हैं। विस्तार-भय से प्रेम-कथाओ के इस विवेचन को यही समाप्त किया जाता है।

(३) अद्भुत कार्यों से सम्बन्धित कथाएँ

इस श्रेणी मे स्थान पाने वाली लोक-कथाओ मे किसी अद्भुत कार्य का वर्णन पाया जाता है। चरित नायक अपने अदम्य साहस का परिचय देते हुए ऐसे कार्यों को प्राण की बाजी लगाकर भी सम्पन्न करता है। इन कार्यों की ओर कभी

---

१ बीझो घर रो भाणजो *मिल बठ घेलण भाय।*
पग री पायल घस गई, बीझा भेद बताय ॥

नायक स्वत प्राप्त होता है, कभी स्वप्न-दर्शन इस प्रकार का [illegible] आधार होता है, कभी सौतेली माता जान-बूझकर झूठे बहाने बनाकर सौतेले पुत्र को ऐसे अनहोने कार्य करने के लिए बाध्य करती है, और कभी राजा द्वारा परित्यक्त महिषी का पुत्र अपने भाग्य को परखने के लिए भी ऐसा करता है। कभी-कभी किसी परिचारक की रूपवती पत्नी को पाने के इच्छुक राजा द्वारा उसके पति को ऐसे असामान्य कृत्य सौंपे जाते है। इन कार्यों मे फॅफ के फूल लाना, अमृत लाना, डाइन के हाथ का स्वर्ण-कडा प्राप्त करना, शेषनाग की मणि को प्राप्त करना, सिंहनी का दूध लाना, स्वर्ग मे वास करने वाले पूर्वजो तक सन्देश पहुँचाना, अमरफल लाना, नदी मे प्रवाहित किये गये हार को पुन प्राप्त करना आदि मुख्य हैं।

ऐसी कथाओ मे फॅफ रा फूल, सूळा हदी सेज, आसकरण, मसाण री माया, आठ राजकवर, मतके बाज, थाटवो राजकवर, गुटियो राजा, नाहरसिंघ बछराज-सिंघ, गोगा री जीमण, रन वण्यो राजा आदि राजस्थानी लोक-कथाओ के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

इस प्रकार की लोक-कथाओ मे एक बहुत बडा वर्ग उन कथाओं का भी परिगणित किया जाता है, जिनमे विवाहार्थियो द्वारा अद्भुत परीक्षाएँ दी जाती हैं। कुछ आत्माभिमानिनी नारियो का यह प्रण होता है कि कुछ विशिष्ट कार्य सम्पन्न करने वाले पुरुष के साथ ही वे विवाह करेंगी। विवाह की वाछा से सुदूर प्रदेशो से आगत राजकुमारो और अन्य व्यक्तियो को परीक्षा मे अनुत्तीर्ण होने पर कठोर कारावास भुगतना पडता है। इस बुरे समय मे इन्हे चक्की भी चलानी पडती है। अन्तत कोई पात्र उन परीक्षाओ मे उत्तीर्ण हो जाता है और प्रण करने वाली स्त्री से विवाह कर कैद मे पडे सभी लोगो को मुक्त करा देता है। कभी-कभी विवाहार्थ गये पति को कैद मे डाल दिये जाने पर उसकी पत्नी मर्दाना वेश धारण कर वहाँ जाती है और परीक्षा की सभी समस्याओ को सुलझा देती है। ऐसी परिस्थिति मे उसका पति ही उस प्रण करने वाली नारी का अधिकारी होता है। कई व्यक्ति श्रोतानुराग मे प्रेरित हो वहाँ जाते हैं, तो कुछ लोग भाभी आदि के व्यग्य-वाक्य से क्षुब्ध होकर जाते है और कुछ भाग्य की आजमाइश करने हेतु ही जाते हैं। विवाहार्थियो से पूछे जाने वाले प्रश्नो मे अपेक्षतया कुछ पेचीदगी होती है। अनेक अवसरो पर उन्हे भी कोई अद्भुत कार्य करने हेतु कहा जाता है। इस प्रकार के प्रश्नो मे ऊजळो कुण, मत किण मे, चोखणी किणरी, धणी कुण आदि प्रश्न प्रमुख हैं। ऐसे अद्भुत कार्यों मे तीन मुट्ठी चावल उबलें तब तक करील-वृक्ष को काट चरखा बनाकर सूत कतवा देना, सात कोस मे बिखरी राई को एकत्र करना, समुद्र मे गिराये गये सात मन मोती पुन: प्राप्त करना, पिंजरे मे बन्द सिंह को बिना पिंजरे को खोले बाहर निकालना, तीन दिन

म एक मन फूला का रंग इकट्ठा करना धूल म मिली सात मन नक्कर को साफ करना आदि काय विशेष रूप स गिनाये जाने योग्य हैं। इन कथाओ म चौवाली आठ राजकवर काठ री हस सपना री राजकवरी आदि कथाए अत्य धिक प्रसिद्ध हैं।

उक्त प्रकार के असम्भवप्राय काय नायक के बुद्धि-कौशल से अतिप्राकृतिक पात्रो की सहायता स (दैत्य पुत्री) अय जीव-जन्तुओ (सांप और मडक की सहायता से) और अय पशुओ (जिह कभी कृताथ किया था) के सहयोग से मुनि की तपश्चर्या स एव इष्ट-वस्त क आधार पर सम्पन्न होते हैं।

अदभुत कार्यों से सम्ब ध रखने वाली कथाएँ अलौकिक एव अतिप्राकृतिक तत्त्वो स युक्त होती है। इनम परिकल्पित भूत प्रत दैत्य डाइन आदि का भी वणन पाया जाता है। ऐसे कार्यों को सम्पादित करन के लक्ष्य स निकल राज कुमारो या भाइयो म प्राय सबसे छोटे राजकुमार या भाई को सफलता प्राप्त होती है। ऐसे नायक चरित्रो स वैमनस्य रखन वाल भाई विमाता और अन्य पात्र अततोगत्वा उसी की शरण म प्रणतजनवत शरण जत हैं। इस प्रकार के पात्रो के जम की घटनाए भी बडी अजीब होती हैं (यथा—रानी द्वारा गुठली खाये जान पर गुठिय राजा का ज म आदि)।

(४) त्रिया-चरित्र एव नारी चातुय सम्बधी कथाए

त्रिया चरित्र पुरुषस्य भाग्य न जानाति दवा पर विचार करन स विदित होता है कि नारी क चरित्र को सहजतया नही समझा जा सकता। फिर भी लोक-कथाओ म स्त्री चरित्र के विविध रूपो को बहुत कुशलता स उभारा गया है। लोक-कथाओ म कही हम वात्सल्य भावाभिभूत ममतामयी माँ के दशन होते हैं कही पति का परमेश्वर मान पातिव्रत्य धम रत पत्नी दिखायी देती है कही भ्रातृत्व भाव म विह्वल बहिन दखन को मिलती है कही दवर को तानो स क्षुब्ध करने वाली भाभी वर्णित है तो कहा छलना रूप उभरकर सामने आता है कही पर पुरुष पयकशायिनी के रूप म चित्रित है कही प्रमी स मिलन को उत्सुक दिखायी देती है कही निद्रित पति को घर म छोड नख शिख शृगार कर जोगी या परदार प्रिय लम्पट से मिलने को जाती नजर आती है आदि। किसी ने पति के पावन प्रम की पुजारिन बनकर अनागत की घटनाओ को जानने की शक्ति अर्जित कर ली है और किसी ने पति के साथ रति क्रीडा करते समय भी पर पुरुष मे अपने मन को रमाकर नारी जाति के गौरव को मिट्टी मे मिला दिया है। इस प्रकार की लोक कथाए नारी मनोविश्लेषण म बहुत सफल रही हैं। पुत्र को राजसिंहासनारूढ करान के लिए अपने पति के विरुद्ध ही षडयन्त्र करते समय उसके मजुल मन से सारी आदशमयी भावनाए डरा कूच कर जाती हैं। कौवे की बोली के श्रवण मात्र स भयभीत होने वाली राजमहिषी पर राजा

अंधविश्वास कर बैठता है कि उसकी अर्द्धांगिनी कितनी पतिव्रता है। परन्तु उस भोले राजा को क्या पता कि रात्रि-काल में यही स्त्री नग्न तलवार हाथ में थाम बहुमूल्य अलंकरणों से अलंकृत हो, एक लम्पट साधु से सदैव मिलने को जाया करती है। जब यह गुप्त रहस्य कथा-वाचक ब्राह्मण को ज्ञात होता है तो वह स्त्री येन-केन-प्रकारेण निर्बुद्धि नृप का उस ब्राह्मण की पत्नी से सहवास करवाकर ब्राह्मण का मुंह सदा सदा के लिए बन्द कर देती है। सेठ की पुत्र-वधू साधु के रूप पर आसक्त हो गयी और यत्र-तत्र-सर्वत्र साधु की आंखों की सुन्दरता का बखान करते न थकती। फलतः साधु ने अपनी आँखें फोड़कर उसकी आँखें खोलीं। रुग्णा सेठानी के हठ करने पर कि मेरे मरणोपरांत तुम मुझे भूल जाओगे और दूसरा विवाह कर लोगे, मतिहीन सेठ ने अपने-आपको हिजड़ा बना दिया। पर पूर्ण स्वस्थ होने पर सेठानी को ज्योंही पुरुष की आवश्यकता सताने लगी तो वह घर के नौकरों से केलि-क्रीडा कर अपनी काम-क्षुधा शान्त करने लगी। कुन्तल-विन्यास में लीन रानी पर जब कबूतर ने विष्ठा कर दी तो अविवेकी राजा से उसने समस्त पक्षियों को मरवाने का आदेश निकलवा दिया। कुरूप पति की रूपवती पत्नी भगवत-तुल्य भरतार का ताले में बन्द कर राजकुमार के साथ परिरम्भण करती रहती। रूप की चकाचौंध से अन्धे बने पति से उसके ही पुत्र-पुत्रियों का मरवा देना, नदी आदि में प्रवाहित करवा देना, सर्प के साथ ब्याह देना आदि घटनाएँ त्रिया-चरित्र के तथ्यों को ही प्रकट करती हैं। इस प्रकार की कथाओं में सर्वत्र नारी का दोहरा रूप प्रदर्शित किया गया है। एक रूप, जो प्रत्यक्ष है, बहुत ही भोला-भाला दिखायी देता है और दूसरा रूप, जो प्रच्छन्न है पर वास्तविक है, कुटिलताओं एवं घृणास्पद-से-घृणास्पद कार्य करने में पटु प्रतीत होता है। इन कथाओं में साच री भरम, भिणगा री कुंवारी, पुटियो राजा, पग री जूती, आगा अमरधन, दुमात री दाभ, राणी अर बामण री वारता आदि कथाएँ विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

इन कथाओं के साथ-ही-साथ नारी की चतुराई से सम्बन्धित भी अनेक कथाएँ राजस्थान प्रदेश में प्रचलित हैं। ऐसी कहानियों में नारी के चातुर्य से ही उसके पति और पुत्रादि की रक्षा होती है। उसका परिवार श्री-सम्पन्न बनता है। सुख और वैभव उसके पैर चूमते हैं। इसी रूप को ध्यान में रखकर ही तो स्त्री को गृह की लक्ष्मी कहा गया है। पति की मूर्खता पर नारी अपने चातुर्य का पर्दा डालकर उसे समाज में रहने योग्य बना देती है। ऐसे चतुर नारी-पात्र रूपासक्त राजाओं को, जो उनके पतियों को मारकर उन्हें हथियाना चाहते हैं, सदा मूर्ख बनाते रहते हैं। बनजारे और बनजारिन के आपस में ठन जाने पर बनजारिन गँवार लड़के को कुलीन और समाज में कुछ कहने योग्य, सभा में व्याख्यान देने योग्य बनाकर अपने चातुर्य का परिचय देती है। त्रिमनम री वार्ता

हो जाने पर कि ऐसी ही तू कुशल है तो बिना पर-पुरुष के ससर्ग मे आये, मेरे परदेशवास की अवधि मे पुत्र-प्राप्ति कर दिखलाना, वह गूजरी का वेश धारण कर अपने पति को ही मोहित कर उसके अंश को अपने गर्भ मे धारण करती है और पति को पता भी नही चलने देती। ऐसी चतुर ललनाएँ विविध पशु-पक्षियों की बोली को समझकर अनगिनत धन-राशि भी प्राप्त कर लेती हैं।[1] इस प्रकार की कथाओ मे वर्णित स्त्रियाँ अपने चातुर्य के बल से ही विघ्न-बाधा मे फँसे अपने पतियो को उबार लेती हैं। अपनी चतुराई के परिणामस्वरूप ही वे अपने खोये पतियो को प्राप्त कर लेती हैं। सदाव्रत बाँटने एव नित-नयी कथा सुनने की घटनाएँ स्त्री-चातुर्य एव सूझ बूझ की ही परिचायक हैं। इस प्रकार की कथाओ मे फोफाणद चारण री बात, मा रो बदळो (श्री विजयदान देथा प्रणीत लोक-उपन्यास) आदि अत्यधिक प्रशस्य कथाएँ हैं। 'गुणवती' और 'अब छाछ को सोच कहा करिहै' कथाएँ भी इस सन्दर्भ में विवेच्य हैं। 'अब छाछ को सोच कहा करिहै' की नायिका राजकुमार की भोग-लिप्सा की शिकार बन राजमहल मे पहुँचायी जाती है। पर रात के समय मदिरा मे मत्त राजकुमार को छोड वह साहसी नारी जगल में भाग जाती है। वहाँ भी चोरो के हाथ पड जाने पर भी मूल्यवान गहने-कपडे देकर वह अपने अनमोल सतीत्व पर लाछन नही लगने देती।

(५) अति-प्राकृतिक तत्वों से युक्त कथाएँ

अति प्राकृतिक तत्त्व-युक्त कहानियो मे मानवीय पात्रो की भाँति मानवेतर पात्र भी कार्य-व्यापार करते दिखायी देते हैं। इन पात्रो मे परियो, भूत-प्रेतो, दैत्यो, डाइनो, सिद्धि प्राप्त जोगियों और नागो का प्रामुख्य है। ये पात्र कभी अत्यन्त साहसिक कार्य सम्पन्न करते दिखायी देते है, कभी पानी पर चलते नजर आते हैं, कभी हवा म अठखेलियाँ करते दीखते है और कभी अदृश्य भी हो जाते हैं। कभी सहयोगी बनकर मन मोह लेते है और कभी सम्पूर्ण मानव जाति को नष्ट करने के उद्देश्य से विकराल रूप भी धारण कर लेते है। सास्कृतिक दृष्टि से मानव विकास को समझने मे इन कथाओ का विशिष्ट स्थान है। कल्पना-प्रसूत ये कथाएँ और उनके अनोखे पात्र हमारे समक्ष विविध रूप-चित्र उभारते है। प्रायः ऐसी कथाओ मे मानव-चरित्र का सघर्षरत चित्रण हुआ है। इन कथाओं को दो उपवर्गों मे रखा जा सकता है—

(५ क) परी-कथाएँ—समग्र ससार के प्रत्येक कोने मे परी-कथाएँ बहुलता से उपलब्ध होती है। राजस्थान मे मिलने वाली इस प्रकार की कथाओ के पात्र इन्द्रलोक की परियाँ अथवा दैवत्त्व-गुण-सम्पन्न व्यक्ति हुआ करते हैं। कभी कभी

---

१ कोक पढता हे सखी, कावा युगन विचार।
इण बादळ री गुड में, चरू है धन रा च्यार॥

इन्द्रपुरी के अभिशप्त व्यक्ति अथवा परी को पुरुष तथा नारी-रूप में पार्थिव-जीवन-यापन करने को आना पडता है। अभिशप्त कभी तो पूर्णरूपेण मानव-देह में ही वास करते हैं और कभी दिन में तो वे किसी पशु (गधा आदि) का रूप धारण करते हैं और रात में मानव देह पाकर अपना समय व्यतीत करते हैं। ये अभिशाप कभी तो अवधि-विशेष के पश्चात समाप्त हो जाते हैं, कभी पुत्र-प्राप्ति उनकी शाप-मुक्ति का मूल कारण सिद्ध होती है, कभी किसी सम्बन्धी (बहुधा सास) द्वारा पशु विशेष के आवरण को चुराकर जला देने पर अभिशप्त जीवन की समाप्ति हो जाती है। शाप-समाप्ति पर वह पात्र पुन अपने लोक को लौट जाता है। 'गधा रो खोळियो' नामक राजस्थानी लोक-कथा इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

कुछ कथाओ मे इस लोक मे भ्रमणार्थ आयी परियो मे से कोई परी इह-लौकिक मनुष्य के रूप-सौन्दर्य पर आसक्त दिखायी गयी है तो कुछ कथाओ में स्नान करती परियो को देखने पर द्रष्टा के हृदय मे परी को प्राप्त करने की प्रबल भावना जाग्रत हो जाती है। प्राय ऐसी कथाओं मे परी अपने प्रेमी को किसी भाँति इन्द्रलोक म ले जाती है। वहाँ वह मृदग वादन या तबला-वादन से इन्द्र को प्रसन्न कर उस परी को वरदान स्वरूप प्राप्त कर लेता है। परन्तु उनके गार्हस्थ्य-जीवन यापन की भी अवधि या कुछ शर्तें होती हैं। यदि पति पत्नी को नग्नावस्था मे देख लेगा, या तीन दिन और रात उससे अलग रह गया तो वह पुन अपने लोक को चली जायगी अथवा पाषाण-मूर्ति मे परिवर्तित हो जायेगी। 'लीलगर री बेटी' ऐसी कथाओ का एक ज्वलत उदाहरण प्रस्तुत करती है। इस कथा मे लीलगर की बेटी के रूप म अभिशप्त जीवन-यापन करने वाली परी के साथ राजकुमार विवाह कर लेता है। मगर इस परी को यह शाप दिया हुआ है कि बिना इन्द्राज्ञा के यदि उसके पति ने उसके मुखारविन्द को देखा तो वह मर जायगा। अन्तत राजकुमार परियो के विमान को पकडकर इन्द्रलोक पहुँचता है। वहाँ तबलची के रूप म इन्द्र को रिझाकर उसे (परी को) अपनी पत्नी के रूप में पुन प्राप्त करता है।

एक सर्प-कथा मे भी परी कथा की-सी समानता मिलती है। इसमे इन्द्र-सभा मे तबला बजाने वाले को शाप-वश सर्प-योनि धारण करनी पडी। परिणीता पत्नी को जब यह ज्ञात हुआ तो वह परियो के साथ इन्द्रलोक मे पहुँचती है। वहाँ अपने अद्भुत नृत्य से इन्द्र को खुशी कर अपने पति को प्राप्त कर लेती है।

परी-कथाओं मे परिया के मनुज-अनुरजनकारी और मानव-अनिष्टकारी दोनो रूप चित्रित हैं। चरित-नायक के सहयोगी के रूप मे ये असम्भव-से-असम्भव कार्य सम्पन्न करते दिखायी देते हैं। सात कोस तक बिखरी 'राई' एव तृणो को चिड़िया बनकर ये परियाँ ही आनन-फानन मे एकत्र कर नायक को विजयी बना

देती हैं। कुपित इन्द्र द्वारा रोकी गयी वर्षा को पुन प्रारम्भ करवाने के उपाय भी ये ही बताती हैं।

कई कथाओं मे परियाँ मानव-विरोधी कार्य करती दिखायी देती हैं। किसी व्यक्ति पर मोहित हो जाने पर ये उसका अपहरण कर लेती हैं। उसके गले मे काली डोरी बाँध उसे शुक बना देती है। अन्तत चरित नायकअपने अद्भुत साहस और बुद्धि-कौशल के बल पर ही इनके चंगुल स छुटकारा पाता है।

ऐसी कथाओं मे मुख्य रूप स परियो द्वारा मनुष्य को सहायता प्रदान करना, परियो द्वारा मानव को क्षति पहुँचाना, मनुष्यों का अपहरण करना, कृत्रिम पुत्र-दान करना, मानव की परीस्तान-यात्रा, प्रेमी या प्रेमिका के रूप मे परी चित्रण आदि वर्णन ही पाये जाते हैं।

(५ ख) भूत-प्रेत-दैत्यादि से सम्बन्धित कथाएँ—लोक-कथाओ मे भूत-प्रेत और दैत्यादि पात्रो से युक्त कथाओ का विशिष्ट स्थान है। आदिम-मानव के विचारो और धारणाओ को भली-भाँति समझने के लिए इन कथाओं का विशेष महत्त्व है। भूत-प्रेतादि की कथाओ म वर्णित भूत प्राय मानव-जाति को कष्ट देता दिखायी देता है। अदृश्यमान रहने वाला भूत मानव-शरीर म प्रवेश कर उस मनुष्य का असह्य यातनायें देता है। यह पात्र पशु (ऊँट, भैंसा, बकरा), पक्षियों (कबूतर) के रूप का भी धारण कर लेता है। कही तो यह मन्त्रोपचार से ही मानव के शरीर का त्याग देता है और कही अन्य किसी कारण से। कभी-कभी भूतो मे परस्पर लडाई हो जाने पर वे एक-दूसरे के निवारण का उपाय बताते हैं, जिसका पास ही कही छुपा अन्य कथापात्र सुन लेता है और समय आने पर उस उपाय का प्रयोग करता है। भूतो और मनुष्यो के द्वन्द्व-युद्ध के भी अनेक वर्णन लोक-कथाओ म पाय जाते है। पिटाई स भूत बहुत डरता है। राजकुमारी के पिण्ड मे प्रविष्ट भूत का जाट ज्योही सुनाता है कि 'जूता वाळी राह अठं ताई पूगगी', भूत शीघ्र ही वहाँ स भाग छूटता है। युद्धादि मे परास्त करके या मन्त्र-बल से वशीभूत करके मानव भूतों से अनेक असम्भाव्य कृत्य सम्पन्न करवा देता है, जिनम गाँव भर म कुएँ खोदना, नगर का परकोटा बनाना आदि प्रमुख हैं। निश्चित दिन पर भूतो की सभाओ का आयोजन भी हुआ करता है। भूतों मे बुद्धि की पूर्ण रूप से कमी होती है। अत थोडी-बहुत बुद्धि रखने वाला भी उसे सहजतया परास्त कर सकता है। परास्त करने वालो को ये अनोखी वस्तुएँ (सोने की मीगणी करने वाली बकरी, इच्छानुकूल भोजन प्राप्त हो जाये ऐसा कडाहा आदि) उपहार स्वरूप दिया करते है। प्रेम के वशीभूत हो जाने पर ये अपने मन के मालिन्य को मिटा देते हैं। सेठानी पर आसक्त भूत उसके पति के परदेश चले जाने पर वैसी ही रूपाकृति कर सेठ के घर पहुँच जाता है। माता-पिता को तो भ्रमित कर देता है पर पत्नी के समक्ष सही बात बता देता है कि

वह भूत है और उससे प्रेम करता है। इस सम्बन्ध में श्री देथा की यह पंक्ति सार्थक प्रतीत होती है—'प्रीत करया उपरान्त भूता री ई मन घुप जावैं।"

लालच की प्रवृत्ति इन पात्रों में अधिक पायी जाती है। आसन्नप्रसवा वधू के कहने पर कि यदि वह उसे नहीं खायेगा तो वह अपने पीहर वालों को यहाँ बुलाकर ले आयगी, वह उसे छोड़ देता है। उसने सोचा कि एक स्त्री को जान बख्श देने पर उसे कई व्यक्ति खाने को मिलेंगे। इस प्रकार की भूत-कथाओं में चुड़ैल की कथाओं का भी अपना स्थान है। ये चुड़ैलें चूड़े की खनखनाहट से राहगीरों को भयभीत किया करती हैं। रास्ते में अग्नि जलाकर भी पथिकों को भ्रमित करना इनका ही काम है। कुछ भूत-पात्र कृषि-कार्य, भवन-निर्माण आदि में सहायता करते भी देखे जा सकते हैं। इन कथाओं में ठाकर रो भूत, दुविध्या, कमर रो परछाणी, साता नें गिटकायो जाय, खोडियो-भूत, जाट अर भूत, चुड़ैल रा चाळा आदि कथाएँ अत्यन्त प्रसिद्ध हैं।

दैत्यों की कथाओं में दैत्य को बहुधा दुखदायी पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। कहीं ये नगर खाली करवा देते हैं, कहीं किसी राजकुमारी को उठा ले जाते हैं, कहीं व्यक्तियों को मार-मारकर उनके पास मिलने वाली धन-राशि को संगृहीत करते रहते हैं। ऐसे पात्रों के प्राण अन्यत्र किसी जीव में स्थित होते हैं, अतः जब तक उस जीव को न मार दिया जाय ये दैत्य नहीं मरते। इन स्थानों तक पहुँचना भी तलवार की धार पर चलने के समान है। प्राणों की बाजी लगाने वाला व्यक्ति ही इन्हें मारने में सफल होता है। इस प्रकार के कार्यों को हाथ में लेने वाले व्यक्तियों की सहायता दैत्य-पुत्री या दैत्य के आधीन रहने वाली राजकुमारी द्वारा की जाती है। प्रायः इनके प्राण शुक में अवस्थित होते हैं। कभी-कभी शस्त्र-विशेष से ही इनकी मृत्यु होती है अन्यथा नहीं। दैत्य से सम्बन्ध रखने वाली कुछ राजस्थानी लोक-कथाएँ ऐसी भी हैं जिनमें कथा-नायक के सदुपदेशों से दैत्य का हृदय-परिवर्तन होना दिखाया गया है। ऐसी कथाओं में सात भाइयों की अकेली बहिन को विवाह-मंडप से चुराकर ले जाने वाले दैत्य की कथा उल्लेख्य है। अपहृत नारी को मारकर उसके रक्त की बूँदों से वह बहुमूल्य मणियों का निर्माण किया करता था। कई बार ऐसा भी होता है कि कथा-नायक दैत्य को मारकर उसकी खोपड़ी में अवस्थित अमृत-डिबिया में अमृत को छिड़ककर मृत व्यक्तियों को पुनर्जीवित कर देता है।

डाइन की कथाओं में उचित अवसर का लाभ उठाकर डाइन मनुष्यों को खाने का उपक्रम करती दिखायी गयी हैं। ये बहुधा रूपवती नारी के रूप में ही रहा करती हैं। कभी-कभी ऊँटनी आदि का रूप भी धारण कर लेती हैं।

---

१ दुविध्या—बातां री फुलवाड़ी, भाग १०, विजयदान देथा, पृ० १८५

सासारिक-जीवन मे ये इतनी सुशील एव सीधी बनकर रहती हैं कि लोग इन पर सहज ही मे सन्देह भी नही कर सकते। यदि किसी को इनके कुकृत्यों का ज्ञान हो जाता है तो ये उसे येन-केन-प्रकारेण मरवाने की ताक मे रहती हैं। कई डाइनें तो अपने रूप से राजाओं तक को विमोहित कर लेती हैं और तब अपनी मन चाही करती हैं। कभी-कभी इनके प्राण भी अन्यत्र स्थित रहते हैं। ये स्त्रियाँ अनेक प्रकार की जादुई-विद्याओ मे पारगत हुआ करती हैं। इनकी कथाओं मे प्राय नन्हे-मुन्हे बालक विजयी के रूप मे हमारे समक्ष आते हैं। ऐसे ही अद्वितीय प्रतिभा-सम्पन्न बाल-गोपाल अपने बौद्धिक चातुर्य से इन डाइनों को इनके ही पुत्र खिला देते हैं। 'डाकण रा चाळा' नामक कथा इस प्रकार की प्रमुख कथा है। कई बार ऐसी डाइन स्त्रियाँ मृत बालक को पुन जीवित कर उससे गीत आदि सुनने की इच्छा करती हैं तो यह बालक वाद्य यत्र लाने का बहाना कर घर जाकर इनके कुकर्मों का महाफोड कर देता है।

अपनी तपस्या से प्राप्त हुए वरदान या अद्वितीय शक्ति का दुरुपयोग करने वाले साधुओ, जोगियो, नाथों और सिद्धो की कथाएँ भी इसी कोटि में रखी जायेंगी। ऐसे लम्पट जन अपने सिद्धि-यन्त्र या मन्त्र-बल से सुन्दर नारियो का अपहरण करते रहते है। इनके साथ भोग विलास करना इनका प्रमुख कार्य बन जाता है। अपने प्राणो को ये भी अन्यत्र स्थित रखते हैं। कभी-कभी ऐसे दुर्नीति पात्र पति पत्नी के शयन कक्ष में पहुँच पति को पलग से नीचे गिरा स्वय पत्नी के सौन्दर्य का उपभोग करते है। अदृश्य हो जाने एव अन्य किसी को भी अदृश्य करने की शक्ति से ये सम्पन्न होते हैं। अपहृत ललनाओं को छुडाने का साहस करने वाले व्यक्ति को ये मौत के घाट उतार देते हैं या पाषाण रूप मे परिवर्तित कर देते हैं। जादुई वस्तुओ के प्रयोग से ही (यथा—शेषनाग की दाढ से निर्मित काजल) ये दिखायी देते है। कोई सुन्दरी ही इनकी मृत्यु के रहस्य को जान पाती है। और तब उसके द्वारा चरित नायक का ज्ञान होने पर उनका नाश किया जाता है। अमनाथ जोगी, भमडो नाथ अर महाराणी आदि कथाएँ इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाली राजस्थानी कथाएँ हैं। यहाँ यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि नाथो, सिद्धो जोगियो और सन्तो के सम्बन्ध मे मिलने वाली ऐसी कथाएँ नाथ-सिद्ध युगीन साधुओ की सकीर्ण मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करती हैं। इन सन्तो की वासनामयी दृष्टि से बचने के लिए सास अपनी बहू को सीख दिया करती है। ये लोग अभिमन्त्रित प्रसाद खिलाकर भी नारी को वशीभूत कर लिया करते हैं। दैत्यों से सम्बन्धित पूर्व प्रचलित कथाओ के अति-प्राकृतिक तत्व कालान्तर मे इन कथाओ के साथ भी जोड दिये गये। इस प्रकार के तत्वो पर गम्भीर गवेषणा करते हुए लोक-कथाओ का ऐतिहासिक क्रम निर्मित किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी लोक-कथाओं में अति-प्राकृतिक तत्त्वों से युक्त कथाओं की बहुत अधिक संख्या है। जितना संघर्ष इन कथाओं में मिलता है उतना अन्य कथाओं में नहीं। इन कथाओं में कालान्तर या प्रासंगिक कथाओं का भी बाहुल्य रहता है। कथानक के आरोह एवं अवरोह एवं पात्रों के वैविध्य की दृष्टि से भी इन कथाओं का अधिक महत्त्व है। कथाओं का अन्त प्रायः मंगलमय होता है।

(६) सर्प-कथाएँ

राजस्थानी लोक-कथाओं में सर्प-कथाओं की एक समृद्ध परम्परा प्राप्त होती है। इन कथाओं का सम्बन्ध वैदिक कालीन नागपूजा से सहजतया स्थापित किया जा सकता है। लोक देवता गोगा और केसरिया कंवर तो नाग-देवता के रूप में ही प्रसिद्ध हैं। छोटी-छोटी हँसी मजाक की बाल कथाओं से लेकर रात भर तक चलने वाली सर्प-कथाएँ मिलती हैं। प्रकाशवान मणि को धारण करने वाले साँप और उसकी पुत्री नाग-कन्या का वर्णन तो हमें कई राजकुमारों की साहसिक एवं अद्भुत कार्य सम्पन्न करने वाली कथाओं में भी मिलता है। पाताल-लोक को तो नाग लोक की संज्ञा से ही अभिहित किया गया है। शेषनाग को इस लोक का राजा माना गया है। कुछ कथाओं में दैविक-शक्ति सम्पन्न पात्रों को अभिशाप-वश सर्प-योनि में जीवन बिताते दिखाया गया है। कुछ कथाएँ ऐसी भी प्राप्त होती हैं जिनमें प्रेमी के प्रतीक रूप में साँप का चित्रण किया गया है। इन कथाओं में सर्प-पात्र को स्त्री के अंग-रस के लोलुप के रूप में चित्रित किया गया है। ठाकुर के प्रवास गमनोपरान्त ठकुरानी द्वारा साँप के समक्ष गार्हस्थ्य जीवन-निर्वाह हेतु की गयी अनुनय विनय से सर्प के प्रेम-रूप का तथ्य और भी स्पष्ट होता है—

'म्हारा हिवड़ा में थारै जैड़ो ई नागण फुफकारा भरै। वा मनै दीसै कोनी। थारा जीव अर म्हारा जीव री मन मिळग्यो, पछै घरवास में काई खामी।'[1]

पुनः सर्प भी ठकुरानी को किस मनोवैज्ञानिक ढंग से (स्त्री जाति पर सहजतया विश्वास नहीं आता, यह बात कहकर) वचन बद्ध करता है, यह भी द्रष्टव्य है—

'लुगायां रै मन री काई पतियारो।'' म्हारै साथै प्रीत नी तोड़ै तो म्हे कठै ई नीं जावूं। थारै म्हारै घरवास।'[2]

और सर्प नवयुवक रूप धारण कर ठकुरानी का उपभोग करता है। विमाता के सौतेले व्यवहार से संत्रस्त सौतेली पुत्री को उनके द्वारा भेजने पर सर्प के साथ

---

१ रमकम दिवली मर्द्धे—बातां री फुलवाड़ी, भाग १०, विजयदान देथा, पृ० ३

२ वही, पृ० ४

विवाह कर उसके पीछे भी चला जाना पडता है। सर्प-पति को परमेश्वर स्वीकार वह पतिपरायणा नारी सर्प के साथ पाताल-लोक भी जाती है। प्राय पाताल मे पहुँचकर सर्प मानव रूप धारण कर लिया करता है। सर्प के साथ विवाहित पुत्री को जब पिता लेने जाता है तो उसके हृदय मे पुत्री को सर्व प्रकार के सुखोप-भोग करते देख ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है। फलत विमाता अपने पति से कह-कर उस पुत्री को मरवाकर अपनी पुत्री को उसके स्थान पर भिजवा देती है। कुछ कथाओ मे ऐसा भी वर्णन मिलता है कि परिणीता पत्नी के अधर-रस का पान करते ही सर्प नवयुवक रूप मे परिवर्तित हो जाता है। कुछ अन्य कथाओ में उदारमना राजा के उदरस्थ सर्प का चित्रण पाया जाता है। प्राय भिखारी जैसे रूप मे रहने वाले नरेन्द्र का विवाह आपकर्मी कन्या के साथ होता है। यह भाग्य-शालिनी युवती सर्पों के परस्पर वाक्युद्ध से उन्हे मारने के उपायो से अवगत हो जाती है। अपने पति के पेट मे रहने वाले सर्प को भी मारने मे सफल होती है और भूगर्भ अवस्थित कोष पर एकाधिकार जमाये रहने वाले साँप को भी मारकर अपार निधि की स्वामिनी बनती है। कही कही अविवेकी पत्नी पडोसिन के बहकावे मे आकर अपने पति की जाति पूछने का हठ करती है। अन्तत सरोवर पर पहुँच उसका पति ज्योही सर्प रूप मे परिवर्तित होता है, तब वह अपने दुर्भाग्य को कोसती है। कही-कही निस्सन्तान व्यक्ति के यहाँ पुत्र-रूप मे रहकर उनके अभिशप्त जीवन को सर्प ही सुधारते दिखायी देते हैं। कही कही अमुक व्यक्ति को दशनार्थ गयी क्रोधित नागिन उसी व्यक्ति को नाग-परिवार की हित कामना करते देख अपने मनोमालिन्य को प्रेम-सुधा से धो डालती है। कुछ कथाओ मे सर्प का चित्रण भ्रातृत्व प्रेम के प्रतीक स्वरूप भी हुआ है। सदैव सर्प को धारोष्ण दूध पिलाने वाली राजपूतनी की मनोव्यथा को भाँपकर उसकी पुत्री के विवाहार्थ वही सर्प उस अनमोल मणियाँ प्रदान करता है और लोक लाज के भय से विषपान कर मृत पडे राजपूत (उसके पति) के विष का चूसकर पुनर्जीवित कर देता है। ससुराल वालो के अमानुषिक अत्याचारो म व्यथित वधू पुच्छ विहीन सर्प के राखी बाँध बहुत सारा धन प्राप्त करती है। सन्यासियो के स्थिर मन को भी अस्थिर करने वाली माला के प्रतीक स्वरूप वर्णित सर्प की भी हमे अनेक कथाएँ मिलती हैं। इस वर्ग का प्रतिनिधित्व करने वाले सर्प-पात्र व्यक्ति के समक्ष उसके वैभव-शाली भविष्य एव दारिद्र्य युक्त भविष्य की पूर्व-घोषणा करते दिखायी देते हैं। ऐसी कथाओ मे 'पीळो साँप' कथा उल्लेख्य है, जिसमे स्वर्ण सर्प माया के इतर रूप मे वर्णित है और वह सर्वत्र एक साधु का पीछा करता रहता है। अन्तत वही साधु के सर्वनाश का कारण सिद्ध होता है। कई सर्प-पात्र ऐसे होते हैं जो जब तक उनके साथ सद्व्यवहार किया जाता है तब तब तो वे भी सद्व्यवहार करते रहते हैं और ज्योही उनके साथ घात कर दी जाती है तो वे भी डसकर बदला ले लेते

है। 'सीधौ हिसाब' कथा इस प्रकार की प्रतिनिधि कथा है। इसके अतिरिक्त कुछ सर्प-पात्र ऐसे भी होते हैं जो उनका भला करने वालो का भी मौका आने पर बुरा ही किया करते हैं। विकराल वह्नि से व्यथित सर्प के अनुनय-विनय पर राजा के पेट मे सुरक्षा मिलती है पर वही कृतघ्न सर्प विघ्न टलन पर उदर से विलग होने का तो नाम ही नही लेता, उल्टा उसकी आंतो को ही काटने लग जाता है। कालबेलियो के द्वारा पीछा किये जाने पर कोई सांप किसी राहगीर के पटोरे आदि मे शरण पाता है पर ज्योही उसे स्वतन्त्र किया जाता है, वह उसी शरणागत-वत्सल को डसने की घोषणा कर देता है। सर्प-कथाओ मे पहेलियो को भी उचित स्थान मिला है। इन मुभौवलो के परिपार्श्व मे सर्प-प्रेमी का अहित-चिन्तन करने वाले विवाहित-पति को दडित करन की भावना निहित रहती है। प्रेमी-सर्प की मृत्यु का कारण बनने वाले पति को निम्नलिखित पहेली का अर्थ न बताने तक अन्न-जल न ग्रहण करने की शर्त पर ठकुरानी वचनबद्ध कर लती है।

'रस कस सौ दिवलौ बळै, घड़ ढोल्या रै हट।
सुगरा नै नुगरौ मार्‌यो, राय चम्पा रै हेट॥'

इन सर्प कथाओ मे हितकारी (सुगरा) और अनिष्टकारी (नुगरा) दोनो प्रकार के सर्पों का चित्रण देखने को मिलता है। ऐसी कथाओ मे प्रमुख हैं—रस कस दिवलो बळै, नुगरौ सांप, लिखिया लेख टर्ळ, सीधौ हिसाब बाड्यौ वीर, कालिदर री सुगराई, नागण थारो वस वधै, जून्यौ सरप, फूलकवर, पीळौ सांप आदि।

(७) चोर, ठग और धाड़ायतियो से सम्बन्धित कथाएँ

कलाओ और विधाओ मे चोरी की कला और ठग-विद्या को भी स्थान मिला है। इन कथाओ के पात्र प्रत्युत्पन्नमति सम्पन्न, अनेक प्रकार की मानवीय बोलियाँ और पशु-पक्षियो की बोलियाँ निकालने मे प्रवीण, अद्वितीय शौर्य-शाली, कुशल चालबाज, शकुन-शास्त्र-दक्ष, पद-चिह्नो को पहिचानने मे निपुण, विविध वेश-विन्यास पारगत हुआ करते हैं। इनमे वाक्-चातुर्य एव द्रुत गति से कार्य करने की अद्भुत क्षमता होती है। कुछ कथाओ मे निरूपित चरित्रो पर दृष्टिपात करने से विदित होता है कि य पात्र कोई भी ऐसा कार्य नही करते जो सामाजिक आदर्शो और पारिवारिक सम्बन्धो के लिए घातक स्वरूप सिद्ध हो। इन कथाओ का प्रसिद्ध पात्र खापरिया अपना मौलिक व्यक्तित्व रखता है। किसी घर मे चोरी करने गया, अज्ञानवश किसी पात्र मे रखे नमक पर उसका हाथ पड गया। भूल से उसने उस लवण-वेष्टित अगुली को चाट लिया। वह घर से बिना चोरी किये ही निकल पडा। क्योंकि जिस घर का उसने नमक खाया, उसमे भला चोरी कैसे कर सकता है? एक अन्यत्र गृह मे उसके चलने से उत्पन्न पाद-ध्वनि का श्रवण कर गृह-स्वामिनी के मुख से बलात् 'वीरा' शब्द निकल गया। बिना चोरी किये]

खापरिया लौट आया। बहिन के घर में वह क्योंकर चोरी कर सकता है! उलझे हुए और पेचीदे प्रश्न पूछने में भी खापरिया पूर्ण पटु है। कुछ चोर-पात्र ऐसे भी हैं जो 'सत्यवद' के सिद्धान्त का अक्षरशः पालन करते हैं। ऐसे पात्रों का सत्य बोलना ही उनके कर्म में सहायक हो जाता है। उनके मुख से 'मैं चोर हूँ' की बात सुनकर लोग उन्हें चोर न समझकर नया दीवान, सिद्ध-महात्मा आदि समझ बैठते हैं। इस बहाने ऐसे पात्रों को चोरी करने में सुविधा मिल जाती है। उनका मार्ग निरापद हो जाता है। कभी-कभी दो चोर चोरी करके धन को वहीं जमीन में गाड़ देते हैं और अगले दिन बँटवारे की बात निश्चित करते हैं। पर अवसर पाकर उनमें से कोई एक उस धन को निकाल लाता है। कभी-कभी चौर्य-कला-पटु दो चोरों में अपनी-अपनी पटुता प्रदर्शित करने हेतु शर्त भी हो जाती है। ये चोर इष्ट-बली भी हुआ करते हैं। चोरी करने जाते समय ये आराध्य देव से प्रार्थना करके जाते हैं और अपार धन राशि प्राप्त होने पर राजा या राजकुमारी की बलि चढ़ाने की बात भी आराध्य-देव के समक्ष कह जाते हैं। इस प्रकार की कथाओं में राजा भोज अर खापरियो चोर, खातीलो चोर, स्यानी चोर, सचबोलो चोर, चोर री आखड़ी, लालजी पेमजी आदि प्रसिद्ध कथाएँ हैं।

लोक-कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि प्राचीन समय में ठगों के पूरे-के-पूरे गाँव बसे हुए थे। इन ग्रामों को 'ठगां रा गुडा' कहा जाता रहा है। नवागन्तुक का बहुत आतिथ्य-सत्कार कर अन्ततः उसके सारे माल को हथिया लेना और उसे मार डालना इनके प्रमुख कृत्य थे। इन दुष्कर्मों के लिए ये लोग अपनी यौवनारूढ़ा रूपवती कन्याओं को पथिक को भ्रमित करने हेतु साधन-स्वरूप व्यवहृत करते थे। कई बार ये लोग सामूहिक भोजन के आयोजन पर किसी वस्तु के चोरी जाने का पथिक पर मिथ्यारोप लगाकर उसका धन-माल हड़प लिया करते थे। 'मुख ऊपर मिठियास, मन माही खोटा घड़ै' की उक्ति इन पर पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। ये लोग सिखाये पढ़ाये पशु-पक्षियों द्वारा भी राही को भ्रमित करवाकर अपने चंगुल में फँसा लेते थे। इन कथाओं में चरित नायक के सदुपदेशों से ठग पुत्री का हृदय परिवर्तन होना व उसके साथ खूब धन माल लेकर भाग जाना दर्शाया गया है। इन कथाओं में मिनखजमारों, ठगां री गुडी, जवारियो ठग, एक लुगाई अर च्यार ठग, ठगां रो ठरको आदि कथाएँ काफी प्रचलित हैं।

डाकुओं और धाड़ायतियों की शौर्य-कथाओं को भी जन-साधारण बड़ी ही रुचि से सुना करता है। प्रायः गार्हस्थिक वैमनस्य से व्यथित, आर्थिक कठिनाइयों से सन्त्रस्त व्यक्ति ही डाकू बनता दिखायी देता है। ये लोग पूँजीपतियों से लूट-खोसकर प्राप्त किये धन को सर्वसाधारण में बाँट देना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि लोक मानस ने इन कथाओं के माध्यम से तथाकथित

समाजवाद और सम्पत्ति के सन्तुलित बँटवारे की बात ही कही है। ये डाकू औ घाडायती जनता जनार्दन द्वारा हेय दृष्टि से न देखे जाकर आदर की दृष्टि स देखे जाते रहे हैं। इन लोगो के चरित्रो एव कृत्यो के सम्बन्ध मे अनेकानेक लोक गीत भी प्रचलित हैं। ये लोग बहुधा धनिक सेठो की बारातें एव लखपति बनजारो की बाळदें लूटा करते थे। प्राचीन राजपूताने म वास करने वाली कुछ जातियो के लोग पेशेवर घाडायती ही होते थे। डूगजी-जवारजी, धनपालसिंघ, बिडदी शाहवी, ओमपुरी-लालपुरी, बाकासर रो बळवतसिंघ, चिमनजी धाडवी, मेघजी ारण धाडवी आदि की कथाएँ विशेष रूप स उल्लेख्य हैं।

८) धन-माया से सम्बन्धित कथाएँ

राजस्थान मे माने गये आठ प्रकार के सुखो मे धन-दौलत से सम्पन्न व्यक्ति को द्वितीय सुख का अधिकारी बताया गया है।[1] इहलौकिक सुख सुविधाओ की दृष्टि से धन को और भी अधिक महत्त्व मिल जाता है। इस कामणगारी माया (जादुई माया) के चक्कर मे पडने पर भले-भले स्थिर चित्त व्यक्ति अपना धैर्य खो बैठते हैं। राजस्थानी लोक कथाओ का सूक्ष्म दृष्टि स पर्यवेक्षण करने पर ज्ञात होता है कि व्यापारी वर्ग (विशेष रूप से बनिया जाति) धन की अधिष्ठात्री देवी लक्ष्मी का अनन्य उपासक है। इस बनिया जाति की कृपणता और सचयवृत्ति से सम्बन्धित अनेक कथाएँ मिलती हैं। इस चचला ही अपना परम लक्ष्य समझने वाले व्यक्तियो का भी ऐसी कथाओ मे कुशलता से चरित्र-चित्रण किया गया है। 'चाम जाय पर दाम न जाय' और 'चमडी जाय पण दमडी न जाय' जैसी कहावतें माया के अद्वितीय श्रद्धालुओ को दृष्टि मे रखकर ही निर्मित की गयी हैं। धन-प्राप्ति के लालच मे आकर माता पिता अपने पुत्र को मारते हुए दृष्टिगोचर होते हैं, दानी सेठ निष्ठुरता और निर्दयता की चरम सीमा को लांघ जाते हैं, सासारिक बन्धनो से मुक्त प्रकृति की सुरम्य आक्रोड मे शान्त जीवन यापन करने वाले साधु-सन्यासियो को निकृष्टतम कार्य करते देखा जा सकता है, पति अपनी पत्नी-विक्रय हेतु कटिबद्ध नजर आते हैं, बुद्धिजीवी सामने मृत्यु को मुंहबाये खडी देखकर भी वहाँ तक जाने मे नही हिचकिचाते, नारियाँ अपने नारीत्व का सर्वस्व लुटा देने तक का दुस्साहस कर बैठती हैं। लोक-कथाओ के कई पात्र दिन-रात अथक परिश्रम करने पर भी माया को जाड नही पाते और कही पर घर-बैठे लोगो को ही किसी-न किसी माध्यम से असूट धन राशि प्राप्त हो जाती है। कुछ पात्र दुर्भाग्यवश हाथ मे आये धन को भी खो बैठते हैं। 'मगती अर मगती' की कथा मे यही बात कही गयी है। राह चलते दुखी भिखारी और भिखारिन को

---

1 पैली सुख नीरोगी काया, दूजो सुख घर म रहै माया। तीजो सुख रूपवती नारी चौथो सुख पुत्र इग्याकारी। पाचमो सुख राज मे पायो।

देखकर शिव-पार्वती रास्ते मे धन से भरी एक थैली डाल देते हैं। इधर भिखारी और भिखारिन सोचते हैं कि वार्धक्याधिक्य के कारण जब हम दोनो अन्धे हो जायेंगे तो हमे एकदम चलने मे बहुत कठिनाई होगी अत हम इस निर्जन राह मे अन्धे बनकर चलने का पूर्वाभ्यास कर लें। इस प्रकार की विचारणा करने के उपरान्त वे अन्धे बनकर चलते चलते धन की थैली पर से गुजर जाते हैं। कुछ कथाओं मे ऐसे वर्णन भी मिलते हैं कि भूगर्भ मे गाडी गयी धन-राशि भी एक स्थान पर स्थिर नही रहकर मन्थर गति से इधर-उधर होती रहती है। इस माया का मोह इतना खतरनाक है कि मरणोपरान्त भी वह मनुष्य का पीछा नही छोडता। वह भूत प्रेत की योनि या सर्प की योनि धारण करके उस माया की रक्षा किया करता है। वह माया भाइयों के प्रेम को वैरभाव मे परिणत कर देती है, सहधर्मियों के सहयोग को प्रतिशोध की आग मे झोंक देती है, ज्ञानियो के ज्ञान को निस्सार कर देती है। धन लिप्सु चार डाकू मित्रो मे से दो मित्रो को, जो लड्डू लाने गये थे, पुन लौटते समय अन्य दो मित्रो की गोलियो का शिकार बनना पडता है और शेष रहे वे दो भी जहरीले लड्डुओं को खाकर मरण की शरण मे चले जाते हैं। उन द्वारा लूटा हुआ धन तो वैसे ही बिखरा पडा रहा पर उनके शव वन्य-पशुओं का भक्ष्य बने। इस कथा को ध्यानस्थ रखते हुए 'बाता री फुलवाडी' की भूमिका मे बडी ही सारगभित बात कही गयी है—

> 'हीरे-मोतियो का वह अमोलक खजाना उनके साथ नही चला, वही पीछे रह गया। जगल के हिंस्र पशुओ ने उनकी लाशो को तो खा डाला किन्तु उस खजाने की ओर उन्होने आँख उठाकर भी नही देखा।'[1]

इस प्रकार की धन-माया से सम्बन्धित कथाओ मे कही-कही स्वय लक्ष्मी भी एक पात्र के रूप मे चित्रित की गयी है। कही वह अपने भक्तो की कठोर परीक्षाएँ लेती हुई भी दृष्टिगोचर होती है। इन कथाओ मे नवो जलम, आ माया कामण-गारी, लिछमी रा चाळा, पुन अर पाप, लखारी नै बाळदियै रो बळद आदि कथाएँ उल्लेखनीय हैं।

(६) भाग्य से सम्बन्धित कथाएँ

'भाग्य फलति सर्वत्र न बुद्धि च पौरुष' सूक्ति वाक्य आर्य-संस्कृति के अनुयायियो के लिए सदैव आत्म-सान्त्वना-दायक सिद्धान्त सिद्ध हुआ है। राजस्थानी लोक-मानस को उक्त धारणा की प्रभुसत्ता इन शब्दो मे स्वीकार्य है—

'भागा खेती निपजै अर भागा दूजै गाय।' परन्तु दूसरी ओर लोक ने भाग्यवाद के भरोसे रहने वालो की खिल्ली भी उडायी है। भाग्यवाद की विडम्बनामयी धारणा मनुज को निष्कर्मण्य बनाने वाली प्रतीत हुई। फलत आत्माभिमानी लोक-

---

१ बाता री फुलवाडी, भाग १, भूमिका, पृ० २२

चरितो ने असम्भाव्य कृत्यों को सम्पन्न कर भाग्य को भी वश में कर लिया। हमें दोनों प्रकार के पात्रों की कथाएँ मिलती हैं। कुछ कथाओं में भाग्य-देवता और लक्ष्मी का परस्पर वाद विवाद भी प्रदर्शित किया गया है। इनमें अन्ततः भाग्य की विजय दिखायी गयी है। पग-पग पर पैर चूमने वाली सम्पदा को अभागा पात्र अपनी अविवेकशीलता के कारण त्याग देता है। 'जोग री बात' नामक कथा इस प्रकार का एक ज्वलंत उदाहरण प्रस्तुत करती है। वहीं पर कपटी मित्र सदाचारी मित्र के विरुद्ध षड्यन्त्र करता दिखायी देता है पर अन्ततोगत्वा सारे त्रास कपटी मित्र को ही आ घेरते हैं। अपने पुत्र को सिंहासनारूढ़ कराने एवं उचित पात्र को राजगद्दी से वंचित रखने की छल-प्रपंचमयी योजनाएँ बनाने वाला पिता दुर्भाग्यवशात् अपने पुत्र को ही खो बैठता है। पुत्री द्वारा पति रूप में स्वीकारे गये व्यक्ति को अपनी इच्छा के विरुद्ध दामाद न बनने देने वाला श्वसुर भाग्य के फेर से कराल-काल के मुंह में प्रवेश कर चिर-शान्ति पाता है। इस दृष्टि से 'राजी-खुशी' नामक कथा उल्लेख्य है। उक्त समस्त प्रकार की कथाओं में जिसके विरुद्ध षड्यन्त्र किया जाता है, उसकी भाग्य ही रक्षा करता है। राजस्थान में भाग्य लेख लिखने वाली देवी को 'वैमाता' कहा जाता है। इन कथाओं में कुछ पात्र ऐसे भी हैं जो भाग्य लेखनार्थ आगत वैमाता को तब तक घर में प्रवेश नहीं पाने देते जब तक वह उन्हें भाग्य-लेख बताने का वचन नहीं दे देती। ये पात्र भाग्य की वस्तुस्थिति का ज्ञान लेने के बाद उन दुर्भाग्यशाली पात्रों पर भविष्य में आने वाली विपदाओं को दूर करने का यथाशक्ति प्रयत्न करते हैं और प्रायः इन्हें सफलता की प्राप्ति भी हो जाती है। कई अन्य कथाओं में 'बाप-करमी' और 'आप-करमी' कथाओं के उदाहरण भी मिलते हैं। इन कथाओं में निष्कर्षतः यही निर्देशित है कि विजय श्री 'आप करमी' के गले में ही पड़ती है। इन कथाओं में कुछ ऐसे चरित्र भी मिलते हैं, जो अपने साहसपूर्ण कार्यों से भाग्य को पूर्णतः बदल तो नहीं सकते पर उसके प्रवाह में कुछ परिवर्तन अवश्य करते हैं। कुछ पात्र अपने बुद्धि चातुर्य से दूसरों के भाग्य में भी एक नया मोड़ उपस्थित कर देते हैं। कई ऐसे पात्र भी दृष्टिगोचर होते हैं जो अपने भाग्यशाली भविष्यत् की पूर्ण जानकारी के पश्चात् ही अपरबली दैत्य, भूत प्रेतादि से युद्ध करते हैं। इन कथाओं में जोग री बात, मूडी अर भलो, वैमाता रा लेख, करणी जैडी भरणी आदि कथाएँ उल्लेखनीय हैं।

—(१०) साधु सन्यासियों से सम्बन्धित कथाएँ

सामाजिक दायित्व की दृष्टि से साधु-सन्यासियों का भी बहुत बड़ा कर्तव्य है। राजस्थानी लोक कथाओं में सामाजिक हित चिन्तन करने वाले साधुओं की भी अनेक कथाएँ मिलती हैं। इन साधुओं को तपस्या के बल पर नाना प्रकार की सिद्धियाँ प्राप्त होती हैं। इन सिद्धियों का उपयोग ये साधु समाज विरोधी तत्त्वों

(भूत प्रेत, खईम, डाकी, डाकण के निवारणार्थ) के विनाश हेतु किया करते हैं। इनके मन्त्रोपचार आदि से अनेक प्रकार के दुस्साध्य रोग नष्ट हो जाते हैं। इनके वरदान कई निस्सन्तान दम्पतियो के नीरस और अभिशप्त जीवन को सुखी जीवन मे परिणत कर देते है। शकुन शास्त्र-निष्णात और भाग्य वेत्ता ये साधु समाज मे सर्वत्र आदर पाते हैं। समाधिस्थ रहने वाले साधु अपनी समाधि-वेला मे परिचर्या करने वाले गृहस्थो को वरदान भी दिया करते है। किसी कारणवश कुपित हो जाने पर ये साधु पूरे नगर को भस्मीभूत करने में भी नही हिचकिचाते।

कपटी, छद्म भेषधारी, लम्पट साधुओं की भी अनेक कथाएँ लोक म प्रचलित हैं। इनका ज्ञान थोथा और सारहीन होता है। ये साधु श्मशान जगाने, मूठ (मन्त्र फेंककर किसी दूरस्थ व्यक्ति को मारना, भवन या पेड का गिरा देना) चलाने, कामण (जादूई विद्या) करने जैसी अनिष्टकारी कलाओ म पारगत हुआ करत हैं। भोली भाली नारियो को भ्रमित कर पथभ्रष्ट करने म इन साधुओ को अत्यन्त आनन्द की प्राप्ति होती है। शान्त स्वभाव का प्रदर्शन करने वाले ये साधु सहज-विश्वासी लोग द्वारा रक्षार्थ सौपी गयी सम्पदा को डकार जाते हैं। अभि मन्त्रित प्रसाद खिलाकर स्त्रियो का अपने वश म कर लिया करत हैं। 'धुलाई लाडी अर धाई पाडी' नामक कथा में इस प्रकार की प्रवृत्ति रखने वाले साधुओ के कुकृत्यो का ही भडाफोड किया गया है। वैधव्य जीवन से व्यथित हो भगवत भजन में मन लगाने वाली अबला स्त्रिया के साथ बल प्रयोग करते भी ये कभी सकुचात नही। विधवा बामणी अर राम सनेई सन्त री वात ऐसी कथाओं का प्रतिनिधित्व करती है।

लोक कथाआ मे कुछ ऐस साधु पात्रो के चरित्र भी उभारे गये है जो ठोक-पीटकर साधु बने प्रतीत होते हैं। 'तीर नही तो तुक्का ही सही' सूत्र वाक्य इनका पथ प्रदर्शन करता है। बिना सोचे समझे की गयी य निराधार भविष्यवाणियाँ प्राय सत्य घटित हो जाती है और इन्हे प्रसिद्धि प्राप्त हो जाती है। श्री देथा ने तीडो राव नामक लोक उपन्यास म व्यग्य शैली का प्रयोग कर ऐसे साधु चरित्रो पर ही पूर्ण प्रकाश डाला है।

(११) प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध व्यक्त करने वाली लोक-कथाएँ

राजस्थान प्रदेश म उपलब्ध अनेक कथाओ म मनुष्य के प्राकृतिक जीवन की महत्ता को प्रतिपादित किया गया है। इन कथाओ के चरित्र-नायक प्रकृति में शान्तिमय वातावरण म व्यतीत किये जाने वाले सुखद जीवन की तुलना मे वैभव-सम्पन्न और ऐन्द्रिय सुखोपभोग प्रधान जीवन को हेय एव त्याज्य मानते हैं। ये पात्र खग विहग का-सा स्वतन्त्र जीवन बिताना श्रेयस्कर समझते हैं। प्रपीडित पशुओ, व्यथित विहगो, पीले पडते पत्तो, सूखते सरोवरो और कँटीली झाडियो के रूप में परिवर्तित होते हरित द्रुमो को देखकर इनका हृदय टूक टूक हो जाता है।

ये प्रकृति के बन्धनमुक्त अक्षय आगार को देख फूले नहीं समाते। विपदग्रस्त के बचाव के लिए ये पात्र अपने प्राणो को जोखिम मे डाल देते हैं। भौतिकता-प्रधान ससार की प्रदर्शन-प्रियता और वाह्याडम्बर इन्हे प्रभावित नही कर सकते। 'अमोलक खजानो' नामक कथा का नायक गडरिया हमारे समक्ष एक आदर्श-चरित्र के रूप मे उपस्थित होता है। स्वर्ण-केशी 'कान्ह-गुवाळ' हमे कृष्ण की गौ-सेवा एव पशु-धन-प्रियता की सहज ही मे याद दिला देता है। पेड की छाल तक को उतारने के कर्म को पाप-कर्म समझने वाला, साँपो को दूध पिलाने वाला, पक्षियो को दाना-पानी देने वाला, पशुओ की बुभुक्षा भी सब प्रकार से तृप्त करने वाला बढई पुत्र जिस नैसर्गिक सुख का आनन्द उठाता दृष्टिगोचर होता है, वह सुख त्रिभुवन की राज्य-प्राप्ति पर भी प्राप्त नही किया जा सकता। नैसर्गिक जीवन की अहकार शून्य सहकारिता की भावना इन सभी कथाओ में देखने को मिलती है। स्वय प्रकृति तथा प्रकृति की ममतामयी गोद मे स्वर्गिक आनन्द का अनुभव कर जीवन बिताने वाले समस्त प्राणी ऐसी कथाओ के चरित-नायको के सहयोगियो के रूप मे चित्रित किये गये हैं। इन कथाओ मे अमोलक खजानो, कमाई री जोग, कान्ह-गुवाळ आदि कथाएँ उल्लेखनीय है। ये कथाएँ प्रकृति और मनुष्य के बीच रागात्मक सम्बन्ध प्रस्थापित करने के साथ ही मानव के प्राकृतिक जीवन की स्मृति को तरोताजा कर देती हैं।

(१२) प्रतीकात्मक कथाएँ

लोक मानस ने लोक-जीवन के विविध रूपो को अनेक प्रतीको के माध्यम से अभिव्यजित किया है। लोक-कथाओ मे प्रयुक्त इन विभिन्न प्रतीको को भली-भाँति समझने की आज महती आवश्यकता है। इन प्रतीकात्मकता प्रधान कथाओ मे आदर्श प्रेम की भी अभिव्यक्ति हुई है। 'राजी-सुखी' नामक कथा मे दो प्रेमियो की जीवनी वर्णित है। उनके प्रेम का अमर सन्देश सुनाने के लिए लोक-मानस प्रतीक स्वरूप उनके नामो (राजी-सुखी) को कुशल पूछने मे अद्यावधि व्यवहार मे लाता है। इसी प्रकार राजकुमारी एव उसके पति के अभिन्न प्रेम की करुण कथा बनाने के लिए उनके दाह-स्थल पर प्रतीक स्वरूप 'केळ और केवडा' नामक पौधे उग आये। राजकुमारी को हथियाने की हीन-भावना रखने वाले चोरो और उसकी पत्नी के निम्नकोटि के प्रेम को व्यक्त करने के लिए उनके दाह-स्थल पर आक और धतूरे के पौधे उगे। 'केळू री काम' नामक कथा भी भ्रातृत्व प्रेम को प्रकट करने वाली प्रतीकात्मक कथा है।

एक अन्य कथा 'देवाळा री वाधीती' मे आद्यन्त विविध प्रतीको का प्रयोग हुआ है। देवाळा (दिवालापन) बेचने वाला ब्राह्मण अपने दिवाले को एक सेठ के हाथो बेचता है। सेठ उस देवाले को एक सुन्दर-सी सन्दूक मे बन्द करवा देता है। रात्रि के समय चोरी के उद्देश्य से निकले बावरी (एक जाति-विशेष) अवसर

पाकर उसी सेठ की हवेली मे प्रविष्ट होते हैं। दिवाले वाली पेटी को वजनदार देख वे समझते हैं कि इसी पेटी मे सर्वाधिक धन-माल है। अत उसे सिर पर उठाकर ले जाते है। पेटी खोलने पर और वस्तुस्थिति से अवगत होने पर वे उस दिवाले सहित पेटी को कृषक के कुएँ मे डाल देते हैं। सेठ ने दिवाले को बन्द रखा था अत वह धनवान होता है। बावरी (निम्न जाति) दिवाले की पेटी को उठाकर ले गये थे और आज भी सभी को विदित है कि निम्न जातियो को जीवन-भर कर्ज का बोझ उठाना पड़ता है। कृषक के कुएँ मे पेटी को स्थायी वास मिला था अत कृषक सदैव ऋण के भार से दबा रहता है। फसल पकने पर प्रत्येक बार वह यही सोचता है कि इस बार मैं उऋण हो जाऊँगा पर दिवाले ने तो स्थायी रूप से उसके आतिथ्य को स्वीकार कर लिया है। इस सम्बन्ध में कथा लेखक श्री देथा के शब्द वस्तुस्थिति का चित्र उपस्थित कर देते हैं—

'अबूझ करसा जाणै कै वेरा सू पाणी सीच नै वे खेती रै मिस कमाई करै, *पण वा रै तो फगत देवाळो हाथ लागै। कमाई पाधरी बाणिया री हवेली* पूगै।'[1]

इसी प्रकार एक और कथा मे मनुष्य-जीवन की विभिन्न अवस्थाओं की स्थिति का प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है। बैल, कुत्ता व उल्लू ब्रह्मा के सम्मुख अपना दुखड़ा रोकर अपनी उम्र कम करवा लेते है। और इसके विपरीत मनुष्य अपनी कम उम्र सम्बन्धी चिन्ता व्यक्त करके अधिक उम्र करवा लेता है। उक्त तीनो प्राणियो की उम्र के साथ उन तीनो के गुण भी मनुष्य को प्रदान कर दिये गये। चालीस वर्ष और उसके बाद तक मनुष्य घरवालो के लिए बैल की तरह जी तोडकर मेहनत करके अर्थोपार्जन किया करता है। जब उसके बच्चे बड़े हो जाते है तो वह उन पर कुत्ते की भाँति गुर्राया करता है पर वे उसकी बिलकुल भी परवाह नही करते। वार्धक्यावस्था मे उसम उल्लू के गुण आ जाते हैं। उसकी बुद्धि समाप्त हो जाती है। भाँति भाँति स उसे घरवाले तंग किया करते हैं। इस प्रकार की प्रतीक-प्रधान कथाओ म ऊमर री लेखो, देवाळा री बापौती, राजीखुशी, केळू री काब, आक-धतूरो नामक कथाएँ विशेष रूप से उल्लेख्य हैं।

(१३) जातीय गौरव की कथाएँ

राजस्थानी जातियाँ अनेक उप-जातियो (खांपों) म बँटी हुई हैं। अनेक गोत्रो के सम्मिश्रण से उप जातियाँ निर्मित हुई हैं। राजस्थान प्रदेश के निवासियो का जातीय वर्गीकरण बहुत ही सूक्ष्म विवेचन का और गहन अध्ययन का विषय हो सकता है। यहाँ की प्रत्येक जाति के अपने विशिष्ट रीति-रिवाज हैं। यहां तक कि भाषायी स्तर स भी उच्चारण (सुर और लय) के आधार पर

---

१ देवाळा री बापौती—बाता री फुलवाडी, भाग १०, विजयदान देथा, पृ० १७१

व्यक्ति की जाति का पता लगाया जा सकता है। और तो और, कुछ ग्रामीण जन शारीरिक बनावट के परीक्षण से ही व्यक्ति की जाति बता दिया करते हैं। इसी प्रकार राजस्थान में जातीय बन्धन भी अद्वितीय और महत्त्वपूर्ण बात है। आज बीसवीं शताब्दि में भी जातीय पंचों द्वारा दिये गये निर्णय उच्चतम न्यायालय के निर्णयों से कहीं अधिक महत्ता रखते हैं। इस प्रदेश में पायी जाने वाली जातियों के सम्बन्ध में कई लोक-कथाएँ भी प्रचलित हैं। इन कथाओं में से कुछ तो कहावती लघु कथाएँ हैं, जिनका विवेचन अन्यत्र किया जायेगा। इनके विपरीत कुछ दीर्घ कथाएँ भी हैं जिन्हें लोग प्रायः अपनी जाति के लोगों को ही बड़े गर्व के साथ सुनाया करते हैं। ऐसी कथाओं का संक्षिप्त परिचय यहाँ भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

राजस्थान में मिलने वाली सभी जातियों के उद्भव से सम्बद्ध अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। प्राय इस प्रकार की कथाओं में प्रत्येक जाति अपना सम्बन्ध देव-जाति से जोड़ती है। सभी जातियों के लोग अपनी जाति को स्वर्ग में वास करने वाली जाति बताया करते हैं तथा भूमि का भार (पाप के अर्थ में) उतारने के लिए भगवान ने उनकी जाति को मृत्यु-लोक में भेजा है। कुछ जातियाँ किसी देव-विशेष से अपना उद्भव मानती हैं। निम्न-से-निम्न एवं पिछड़ी जाति भी अनेक प्रकार की कथाओं को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करके अपनी जाति की उत्कृष्टता सिद्ध करती है। इन कथाओं के सम्बन्ध में यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि अपनी जाति के गौरव की कथाएँ कहते समय साथ कुछ ऐसी कथाएँ भी कहते हैं जिनमें अन्य जातियों की हँसी उड़ायी गयी है। प्रत्येक जाति का अपना एक कुल-देवता या कुल-देवी है। इन देव-चरित्रों को लेकर भी उस जाति-विशेष में अनेक प्रकार की कथाएँ प्रचलित होती हैं। वह जाति उस देवी या देवता को अन्य सभी देवताओं से श्रेष्ठतम मानती है। सभी प्रकार के असम्भाव्य, अलौकिक, अद्वितीय और अभूतपूर्व कार्यों को करने की क्षमता से सम्पन्न बताकर उस देवता की महत्ता को और भी बढ़ा दिया जाता है। यह जाति उस देवता को ही जगत-नियन्ता के रूप में स्वीकार करती है। विभिन्न जातियों में पायी जाने वाली ऐसी कथाओं में नामान्तर के अतिरिक्त अत्यल्प परिवर्तन को छोड़कर प्राय समान कथानक वाली कथाएँ ही मिलती हैं। इस सन्दर्भ में यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि जातीय गौरव एवं जातीय देवता के गौरव से सम्बन्ध रखने वाली कथाएँ स्वजातीय लोगों के ही समक्ष या जातीय सम्मेलनों के अवसर पर ही कही-सुनी जाती हैं। जाति-विशेष को गौरवान्वित करने वाले वीर-रणधीर पुरुषों के चरित्रों को लेकर भी अनेक कथाएँ उस जाति में प्रचलित हो जाती हैं। अपनी जाति की गौरवशाली परम्परा से अवगत होने पर वक्ता और श्रोता फूले नहीं समाते।

(१४) धार्मिक और पौराणिक कथाएँ

राजस्थान प्रदेश मे जन-सामान्य के मनोमोदन एव धार्मिक प्रवृत्ति को जाग्रत करने वाली अनेक धर्म-कथाएँ प्रचलित है। इन कथाओ मे देवी-देवताओ को भी साधारण मनुष्य की भाँति व्यवहार करते देखा जा सकता है। लोक ऐसी कथाओ के कथन-श्रवण से पुण्य-लाभ होने की बात मानता है। इन कथाओं मे धर्म-भावना प्रमुख रूप से पायी जाती है। कथा का चरित नायक किसी बाधा के उपस्थित हो जाने पर यदि अपने सभी प्रयत्नो के व्यवहार के उपरान्त भी असफल हो जाता है तो वह धर्म का सम्बल ग्रहण करता है। धर्म के भरोसे छोडा वह कार्य शीघ्र ही सम्पन्न हो जाता है। ऐसी कथाओ की सर्जना जनता मे धार्मिक चेतना जाग्रत करने के लिए ही की गयी है। अनेक कथाओं मे कथा-नायक द्वारा किये गये एक छोटे-स पुण्य (धर्म) को कागज पर लिखकर उस कागज को अपार धन-राशि से तोलने का उल्लेख मिलता है। और उस छोटे से कागज के टुकडे का पलडा भारी रहता है। इन धर्म कथाओ मे पृथ्वी के उद्भव, प्रलय-काल, स्वर्ग-वर्णन, पशुओ के जन्म आदि के सम्बन्ध मे भी कई कथाएँ मिलती है। ससार-भर की धर्म-कथाओ मे प्राय बहुत साम्य पाया जाता है। कुछ कथाओ म ऐसे भी वर्णन मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि पहले कभी पृथ्वी और आकाश मिले हुए थे। कुछ तारो, बादलो, पर्वतो और पेडो की कथाओ को भी धर्म-कथाओ म माना जायेगा, क्योकि उनके परिपार्श्व मे भी धार्मिक भावना की स्पष्ट झलक दिखायी देती है। इस प्रकार की कथाओं मे मिलने वाली 'झीडकी मेघ-माळ' कथा राजस्थान प्रदेश मे बहुत रुचि के साथ सुनी सुनायी जाती है, क्योकि मरुस्थली को शस्य श्यामल यह मेघ माला ही बनाती है।

उक्त कथाओ के अतिरिक्त राजस्थानी लोक मे अनेक पुराख्यान प्रचलित हैं। इन आख्यानो के चरित-नायक एक आदर्श-जीवन का उदाहरण प्रस्तुत करते है। इन आख्यानो मे कही धार्मिकता प्रधान जीवन की महत्ता प्रतिपादित की गयी है, कही परोपकारी प्रवृत्ति की प्रकृष्टता को सिद्ध किया गया है और कही 'हीमत कीमत होय' उक्ति का मूल्याकन किया गया है। इस प्रकार के पौराणिक आख्यान भारत के प्राय सभी प्रदेशो मे ठीक उसी रूप मे मिलते हैं जिस रूप मे राजस्थान मे मिलते हैं। इसका मूल कारण आर्य जाति की सास्कृतिक विचार-धारा रही है। इन कथाओ मे इन चरित-नायको का सम्बन्ध प्रत्येक देश के वासी अपने प्रदेश से जोडते दिखायी देते है। राजस्थान प्रदेश मे इस श्रेणी मे आने वाली निम्न कथाओ का ज्यादा प्रचलन है—राजा भोज री बात, वीर विकरमादित री बात, भरतरी गोपीचन्द री बात, गरु गोरखनाथ री बात, राजा रामचन्दरजी री बात, पलक दरियाव री बात, दमयन्ती री बात, किसन भगवान री बात, स्रिस्टी अर परळै, काळ री बात, महादेव पारवती री बात, अजना सती

री बात आदि।

(१५) एकांतरे की कथाएँ

बीच में एक दिन छोड़कर प्रत्येक दूसरे दिन आने वाले बुखार को राजस्थान में 'एकांतरे री ताव' कहा जाता है। इस प्रकार के ज्वर से छुटकारा पाने के लिए भी एक कथा कही जाती है। इसे हम मन्त्र-कथा के नाम से भी अभिहित कर सकते हैं। इस कथा को कहते समय वक्ता एक स्थान पर बैठा रहता है। वक्ता के ठीक सामने बीस-पच्चीस गज की दूरी पर ज्वर ग्रस्त व्यक्ति बैठा रहता है। अन्य श्रोता वक्ता की तरफ ही उसकी अगल-बगल में बैठे या खड़े रहते हैं। इस स्थिति को देखते हुए ही हमने इस कथा को माडकर कही जाने वाली कथाओं में स्थान दिया है, क्योंकि यहाँ भी श्रोताओं का एक समूह उपस्थित जो रहता है। यह कथा प्रायः गाँव के चौपाल (जिसे राजस्थानी में 'गवाड़' कहा जाता है) या मन्दिर के सामने ठीक संध्या-समय कही जाती है। अन्य कथाओं और इस कथा में एक बहुत बड़ा अन्तर यह पाया जाता है कि इस कथा को कहते समय किसी भी प्रकार का हुंकारा नहीं दिया जाता। श्रोतागण प्रायः मौन साधे रहते हैं। इसके परिपार्श्व में यह मान्यता प्रबल रही है कि यदि कोई इस कथा में हुंकारा दे दे तो 'एकांतरे का ताव' उसे सताने लग जाता है। कथा का अन्त होते ही ज्वर-ग्रस्त व्यक्ति को उठकर पीछे की ओर भाग जाना पड़ता है। कथा के वक्ता के समीप बैठा एक व्यक्ति ज्वर-पीड़ित के पीछे (भागते समय) जूता फेंकता है। यदि ज्वर-ग्रस्त के वह जूता लग जाता है तो उसे ज्वर से छुटकारा नहीं मिलेगा और नहीं लगता है तो छुटकारा मिल जायेगा, ऐसी मान्यता है। ज्वर पीड़ित को भागते समय पीछे मुड़कर भी नहीं देखना चाहिए। वस्तुतः देखा जाय तो ऐसी कथाएँ ही लोक मानस के सही रूप का प्रतिनिधित्व करने वाली कथाएँ सिद्ध हो सकती हैं।

(१६) बुद्धि कौशल और ज्ञान से सम्बन्धित कथाएँ

अपनी बुद्धि के बल पर ही मनुष्य सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी स्वीकारा गया है। मानव द्वारा अर्जित ज्ञान, उस ज्ञान के उचित प्रयोग तथा बुद्धि-कुशलता से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कथाएँ राजस्थान प्रदेश में प्रचलित हैं। अपने गहन ज्ञान के आधार पर व्यक्ति किसी के द्वारा कही गयी बात या शब्द का वक्ता के अभिप्रेमार्थ से भिन्न अर्थ किस प्रकार ग्रहण कर लिया करता है, इन कथाओं में द्रष्टव्य है। 'झूपड़ी री ग्यांन', 'डोकरी अर राजा भोज', 'राजा भोज माघ पिंडत अर डोकरी' नाम से मिलने वाली कथाएँ इस प्रकार की कथाओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। इस कथा के माध्यम से भोली-भाली ग्रामीण जनता में ज्ञान-सामुद्ध्य, प्रत्युत्पन्नमति, हाजिर-जवाबी की प्रवृत्ति को उभार-कर प्रस्तुत किया गया है एवं अपने-आपको सर्वज्ञानी समझने वाले धोंधा-

वसन्त, प्रदर्शन-प्रिय, तर्क-हीन, छिछला-ज्ञान रखने वाले नागर-जनों का मज़ाक उड़ाया गया है। इस प्रसंग में निम्न पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'झूपड़ी रो ग्यान' नामक इस कथा में नगरवासी आभिजात्य वर्ग के ऊपरी, थोथे और आडम्बर-युक्त ज्ञान के प्रति करारा व्यंग्य तथा गाँवों की शोषित जनता की व्यावहारिक कुशलता व प्रखर बुद्धि की ओर तो स्पष्ट संकेत है ही, किन्तु इस कहानी के बहाने लोक-जीवन के जिस अतुलनीय साहित्य, कला व उसकी मर्मस्पर्शी जीवन्त भाषा के वृहत् खजाने की ओर जो अनजाना संकेत मिलता है, वह अधिक महत्त्वपूर्ण है।[1]

इन कथाओं में कुछ कथाएँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें ज्ञानोपलब्धि के साथ-साथ मानव की विचारधारा के परिवर्तित रूपों को दर्शाया गया है। कितनी सहजता और कितनी त्वरित गति से मनुष्य अपने आदर्शों और विचारों को बदल देता है, इसका 'समझ री भरम' नामक कथा में व्यंग्यात्मक शैली में चित्रण हुआ है। पद-चिह्न पहिचानने का ज्ञान रखने वाले व्यक्तियों के सम्बन्ध में भी अनेक कथाएँ हैं। 'अक्ल-बादर' नामक कथा इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ कथा है। ठीक इसके विपरीत अज्ञानियों से सम्बन्धित भी कई कथाएँ मिल जाती हैं। इन कथाओं के पात्र प्रायः अपने द्वारा किये गये अविवेकपूर्ण कार्यों का प्रायश्चित एवं पश्चाताप करते दृष्टिगोचर होते हैं।

पुरुष वर्ग में माडकर कही जाने वाली कथाओं के विभिन्न उप वर्गों की कथाएँ विवेचित करने के पश्चात हम स्त्री वर्ग की कथाओं और बाल-कथाओं को लेते हैं। परन्तु पिछले दोनों वर्गों की कथाओं के सम्बन्ध में यह ज्ञातव्य है कि बात का जो 'बणाव' (सौन्दर्यमय रूप) पुरुष वर्ग की कथाओं में निरखना है वैसा इन वर्गों की कथाओं में देखने को नहीं मिलता।

(आ) माडकर कही जाने वाली (स्त्री वर्ग में) कथाएँ

राजस्थान प्रदेश में नारी जीवन बहुत सारे प्रतिबन्धों से प्रतिबन्धित रहा है। आज भी गाँवों में स्त्रियों का जीवन इस विडम्बना से ग्रस्त है। रात दिन यन्त्रवत कार्य करते रहने और झोपड़ी को घेरे रखने वाली चौतरफी ऊँची 'बाड़' में घिरे रहने में ही उसकी शोभा और शालीनता है। अपने कोमल हृदय में उठने वाली वेगवती आनन्ददायिनी अनेक भावनाओं को कुचलकर भी उसे उक्त जीवन की मर्यादाओं में रहना पड़ता है। जब चाहे तब ये अबलाएँ कहीं मिल भी तो नहीं सकतीं, फिर माडकर कथा कहने का अवसर ही कैसे उपस्थित हो सकता है? इन सब प्रकार के बन्धनों के उपरान्त भी धर्म-भीरु जनता की धार्मिक भावना

---

१ बातां री फुलवाड़ी—भाग ५, भूमिका, कोमल कोठारी, पृ० १२ १३

ने स्त्रियों के स्नेह-सम्मिलन के लिए कुछ गुंजाइश रखी। विविध व्रतों और पर्वों आदि के अवसर पर स्त्रियाँ किसी एक स्थान पर एकत्रित होती हैं। इन अवसरों पर कथाएँ भी कही जाती हैं। एक स्त्री कथा-वाचन करती है और अन्य स्त्रियों का समूह कथा-श्रवण करता है। इस अवसर पर माड़कर कही जाने वाली कथाओं का समा उपस्थित हो जाता है। स्त्री वर्ग की कथाओं में केवल व्रत तथा पर्व आदि से सम्बन्धित कथाएँ ही प्राप्त होती हैं, जिनका यहाँ विवेचन किया जा रहा है। इसके अतिरिक्त यहाँ यह उल्लेख्य है कि स्त्रियाँ 'जवाई को रमाते' समय 'जवाई' से कुछ कथाएँ कहकर उनके आधार पर पहेलियाँ पूछती हैं, पर इस प्रकार की कथाओं का विवेचन अन्यत्र किया जायेगा।

धर्म के प्रति अत्यधिक आस्था रखने वाली राजस्थानी नारी के जीवन में व्रतों का अद्वितीय और आदरणीय स्थान है। यहाँ पर सप्ताह में प्रत्येक दिन और माह की प्रत्येक तिथि को कोई-न-कोई व्रत पड़ता ही है। तैंतीस कोटि देवताओं के अतिरिक्त यहाँ अनेक लोक-देवताओं की पूजा और उपासना का प्रचलन है। इस प्रदेश का एक भी गाँव ऐसा नहीं है, जहाँ विविध देवताओं के पचास साठ मन्दिर या 'थान' न हों तथा एक भी घर ऐसा नहीं है जिसमें सध्या-समय केवल एक ही देवता का दीपक जलाया जाता हो। एक ही घर में अलग-अलग देवताओं की अर्चना के लिए अलग-अलग स्थान पर अलग-अलग दीपक रखे जाते हैं। गाँव तो क्या, वन-प्रान्तर में भी प्रत्येक सौ-पचास पेड़ों के बाद किसी पेड़ के नीचे किसी देव-प्रतिमा के दर्शन हो जायेंगे। सारत. यही कहा जा सकता है कि इतने सारे देवताओं से सम्बन्धित अनेक व्रत प्रचलित हैं, और इन व्रतों का पालन प्राय गृह-लक्ष्मी ही करती है। इन सभी व्रतों के माहात्म्य को प्रतिपादित करने वाली अनेक कथाएँ हैं, जो इन व्रतों के अवसर पर कही जाती हैं।

व्रत-कथाओं में धार्मिक भावना कूट-कूटकर भरी हुई है। इन व्रत-कथाओं के प्रारम्भ में प्राय. किसी भिखारी, लकड़ी बेचने वाले, मछुए आदि को व्रत की ओर प्रेरित होते दिखाया जाता है। वह भी अपनी कमाई आदि से प्राप्त पैसों से व्रत की आवश्यक सामग्री खरीदकर विधिवत व्रत करने का निश्चय करता है। व्रत-पालन से वह श्री-सम्पन्न होता है। अधिक धनाढ्य होने पर प्रमाद-वश उस व्यक्ति द्वारा या उसके परिवार के किसी सदस्य द्वारा व्रत-पालन में कुछ कमी रह जाती है और देव-विशेष की कोपाग्नि का उस परिवार को शिकार बनना पड़ता है। अपने द्वारा हुई इस प्रकार की भूल को वह पुन सुधारता है और फलत फिर से लक्ष्मी उसके पाँव चूमती है। कभी-कभी प्रिय-मिलनोत्सुका पत्नी द्वारा समुद्र-तट पर प्रवासी-प्रिय से मिलने जाते समय भूल से देव-प्रसाद की उपेक्षा कर दिये जाने पर उसे कोप-भाजन बनना पड़ता है। इन व्रत-कथाओं में

व्रत-सम्बन्धी देवता का सर्व-शक्तिमान, सर्वव्यापी ईश्वर के समान चित्रण मिलता है। व्रतो से सम्बन्धित कुछ कथाओ मे एक के स्थान पर दो परिवारो या व्यक्तियो का प्रमुख रूप से चित्रण किया गया है। इनमे से एक परिवार व्रत-पालन के परिणामस्वरूप सभी प्रकार के सुखो का उपभोग करता दिखायी देता है और दूसरा व्रत की उपादेयता की हँसी उड़ाने के कारण नारकीय यातनाओ को झेलता दिखायी देता है। कई कथाओ में स्त्री या पुरुष के स्थान पर अन्य जीव को व्रत-साधना-रत दिखाया गया है। अनेक बार स्त्रियाँ महीने-भर तक व्रत रखा करती हैं। इसे राजस्थानी में 'न्हावणो' (यथा—बैसाख न्हावणो, काती न्हावणो) कहा जाता है। वे सवेरे जल्दी स्नान किया करती हैं और तदनन्तर पीपल सिंचन का कार्य सम्पन्न करती है। इस समय कही जाने वाली कथाओ में प्रतिदिन स्नान करने के माहात्म्य और वृक्ष को पानी देने के माहात्म्य का चित्रण रहता है। पर्वो के सम्बन्ध मे भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इन दिनो पर भी स्त्रियाँ व्रत रखा करती हैं। इन कथाओ में पर्व माहात्म्य, उस पर्व पर किये जाने वाले कार्यों के महत्त्व पर प्रकाश डाला गया है। राजस्थान प्रदेश के कुछ व्रतो पर विशेष प्रकार का भोजन ही बनाया जाता है। ऐसे व्रतो की कथाओ मे विशिष्ट प्रकार के भोजन की आवश्यकता पर भी कुछ टिप्पणियाँ मिल जाती हैं। (यथा—कुछेक व्रतो पर दही और सोगरा खाना, सन्तोषी माता के व्रत के दिन खटाई नही खाना आदि।) इन कथाओ का अन्त भी विचित्र प्रकार से किया जाता है। सुखान्तता और प्राणी-मात्र की मगल-कामना ऐसी कथाओ के अन्त की उल्लेखनीय विशेषताएँ है। इन कथाओ मे व्रत विधि-विधान का भी वर्णन मिलता है। उदाहरण स्वरूप कुछ अश प्रस्तुत है—

> 'राजा [1] काती वदि अमावस आवै तद परभात रा उठनै क्षातण सिनान करीजे। रोकड रपइया री पूजा कीजे। केसर कुमम सो पूजा करिनै अस्यत चढाइजे। पुसब चढाइजे। अगर धूप खेवीनै नैवद धाढीजे। मुख वास मुदरा पिण चढाइजे। पान बीडा चढाइनै, मिठाई-पताासा री परसाद बाटीजे। घणो उछाह करि बामणा नू सकति माफक दिखणा दीजे। तठा उपरात भात-भात रा जीमण बणायनै बेरासणो कीजे।'
>
> (दीवाळी री बात)

इन कथाओ के अन्त करने की विधि भी निम्न अवतरण मे द्रष्टव्य है—

> 'इमे जिको मिनख दीवाळी रै दिन महालिखमी जी री पूजा घणी उत-माई नै घणै उछाह सू करसी तथा घणा दीवा करसी, च्यारै पुहर रात जागरण राखसी, तिस सू श्री महालिखमी जी आणद वामण मू हुवा ज्यू ही तुस्टमान होंगी।' (वही)

इन व्रत कथाओ मे ये कथाएँ अधिक प्रचलित है—करवा-चौथ, ऊभछठ,

सूरज-रोटे री बात, रिख पाचम री बात, बछ बारस, अणत चउदस, इगियारस री बात, निरजळा इगियारस री बात, सनिसर री बात, सन्तोषी माता री बात, दीवाळी री बात, आसलो बावळियो, सतनाराण भगवान री बात, वैसाख री बात, काती री बात, कीडी नै कण अर हाथी नै मण री बात, दूबडी सातू, गवर-उजमण री बात, सावण-तीज री बात, पूनम री बात, गणेस-चौथ री बात, जन्मास्टमी री कथा, बुधास्टमी री बात, राम-नवमी री बात, सोमोती अमावस री बात, सिवरात री बात, दछादाई री बात आदि।

(इ) माइकर कही जाने वाली बाल-कथाएँ

लोक कथा बालक को सुलाने तथा हठधर्मी बालक के हठ की याद को भुलाने का साधन है, उसके मनोरंजन का माध्यम है और उसकी ज्ञान-संवृद्धि का अनोखा उपाय है। बालकों द्वारा अथवा नानी-दादी द्वारा बालकों के मन-बहलाव हेतु कही जाने वाली इन बाल कथाओं में शिशु की जिज्ञासा वृत्ति और विश्वास-प्रतिपादक-वृत्ति की सर्वत्र प्रधानता पायी जाती है। इन कथाओं के निर्माण में आश्चर्य-उद्दीपक-वृत्ति का भी विशेष रूप से योगदान रहा है। ये कथाएँ प्राय बहुत छोटी हुआ करती हैं। इन कथाओं में अवान्तर या प्रासंगिक कथाओं की अवतारणा प्राय नहीं हुआ करती। कहीं कहीं पद्यात्मक अवतरणों का पाया जाना भी इन कथाओं की एक विशेषता है।

बाल गोपालों के अनुरंजनार्थ कही जाने वाली इन कथाओं में न तो पुरुष वर्ग की दीर्घकाय कथाओं की सी संघर्ष-बहुलता दिखायी देती है और न ही स्त्री वर्ग की कथाओं-सी धर्म-भावना एवं धर्म भीरुता। इन कथाओं का आनन्द लूटने के लिए मध्योपरात बालकों का समूह चौगान में या दादी नानी के पास जमा हो जाता है और तब बात पर-बात का दौर प्रारम्भ होता है। पारिवारिक रक्त सम्बन्धों, जातीय विशेषताओं और कमजोरियों, पशु पक्षी और पेड़ों से सम्बन्धित अनेकानेक कथाएँ बाल जगत में प्रचलित हैं।

(१) भाई-बहिन के प्रेम और घृणा की कथाएँ

भाई-बहिन के पुनीत प्रेम की भावना अनेक कथाओं के माध्यम से अभिव्यक्त हुई है। बालकों की इन कथाओं में बहिन के लिए सर्वस्व न्योछावर करने वाले भाई का भी चित्रण किया गया है और बहिन का जीना दूभर करने वाला भाई भी चित्रित है। इन कथाओं में चित्रित भाभी प्राय ननद के प्रति कुटिलता-पूर्ण और निर्दय व्यवहार करती दिखायी देती है। मातृ-प्रेम वंचित और सौतेली माँ के दुर्व्यवहारों के शिकार बने नन्हे-मुन्हे होनहार शिशुओं के जीवन की दुखद कहानी इन कथाओं में कही गयी है। विमाता के कहने पर पिता अपने पुत्र को मारता हुआ इन कथाओं में ही दिखायी देता है। वही मृत पुत्र अपनी बहिन की

रक्षार्थ अनेक पक्षियो या पेडो का रूप धारण करता रहता है। एक कथा मे ब्राह्मण अपनी दूसरी पत्नी के बहकावे मे आकर अपने ही पुत्र को मार डालता है। वही पुत्र अपनी बहिन की भलाई के लिए कभी शुक का रूप धारण करता है और कभी मेढक बनता है तो कभी बेर की झाडी। स्वर्ण-केशी सोनल बाई जब जोगी द्वारा अपहृत हो जाती है तभी उसकी ईर्ष्यालु भाभियो को सुख की नीद आती है, पर उसके भाइयो और माता-पिता की नीद हराम हो जाती है। इस कथा का कुछ पद्यात्मक अश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

'अेक हुतो अे माई दख्यो राजा
जिणरै हुता सात बेटा
माता बिचला सोनल बाई
मोतीडा चुगता जोगीडै उठाई
धाल माई भिक्स्या
जीवै थारा बिचिया।'

इन कथाओ मे कुछ कथाएं ऐसी भी मिल जाती हैं, जिनमे एक बहिन आवश्यकता से अधिक सीधी सादी, भोली भाली एव परोपकारी चरित्र के रूप मे चित्रित मिलती है तो दूसरी बहिन अपनी बुरी आदतो के कारण दूसरो का सदैव अहित करती रहती है। 'म्हे हू सठवा सूठ' नामक कथा मे हल्दी और सूठ (दोनों बहिनें) क्रमश अच्छाई और बुराई के प्रतीक रूप मे चित्रित की गयी हैं। 'केळू री काब' कथा मे भी प्रतीकात्मक आधार पर बुरे भाई की अच्छी बहिन का चित्रण किया गया है। इस कथा की निम्न पक्तियाँ कितनी मार्मिक हैं और इनमे सारे कथानक की सारभूत बात भी कह दी गयी है—

'मामकजी ओ गायकजी भल वाढी केळू री काब।
पापली भाई पापसी भोजाई वेनड मार चूदड रगाई।'

और वह 'केळू री काब' पति द्वारा काटी जाने पर सुन्दरी का रूप धारण कर लेती है। बचपन मे ही इस प्रकार की कथाएं सुनाकर बालक के मन मे गुणशाली भाई के प्रति श्रद्धा जाग्रत करने और कुटिल भाई के प्रति घृणा पैदा करने का सद्-प्रयत्न किया जाता है। ऐसी कथाओ मे केळू री काब, म्हे हू मठवा सूठ, बीरो म्हारो भाई, सोनल बाई आदि कथाएँ बाल जगत की बहु-प्रचलित कथाएँ हैं।

(२) वरदान-अभिशाप की कथाएँ

स्व और पर के बीच तादात्म्य स्थापित करने वाली इन कथाओ के परिपार्श्व मे धार्मिकता का विशेष महत्त्व दिखायी देता है। व्यथित प्राणी पर व्यग्य करने व उसका उपहास करने पर वह कठोर-से-कठोर अभिशाप दे सकता है और प्रसन्न होने पर वही प्राणी वरदान भी दे दिया करता है। वरदान-अभिशाप देने

की शक्ति महान ऋषियों तक ही नहीं थी, अपितु लोक-कथाओं के सजीव और निर्जीव सभी प्रकार के पात्र भी इस कला में दक्ष दिखायी देते हैं। एक प्राणी दूसरे की सहायता करता है और दूसरा उसे प्रसन्न होकर वरदान देता है। फिर तीसरा प्राणी या पात्र उसकी खुशियों को अपनी खुशियों के रूप में ग्रहण करता है। प्रसन्नाधिक्य से प्रेरित हो वह पात्र अन्य पात्रों को वरदान दे देता है और इस प्रकार से वरदान का क्रम चलता रहता है। ठीक इसके विपरीत अभिशप्त पात्र अपने सम्पर्क में आने वाले सभी पात्रों को शाप देता रहता है। यहाँ दोनों प्रकार की कथाओं का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया गया है—

वरदान

'ऊजळी पाखा हंस
लीलो पाखा सूवटिया
मुधरी बांणी कोयला
छतरधारी मोरूडा
मैं कूकडो कलगीधारी।'

अभिशाप

'पान झड पीपळी
टाग सड तीडियो
धाडा नेरा
चूटा स्याळ
गळी भतवारण
वेंतिया हाळी
तिपलो डूगर
गूगो भाटो
खारो समदर
नाचनी पिणिमारिया
वेदलो राजा
दातनी राणियां
गोवणा कवर।'

(३) पशु-कथाएँ

इन कथाओं में पशु ही प्रमुख पात्रों की भूमिका अदा करते हैं। लोक-साहित्य के अध्येताओं ने पशु कथाओं को अति प्राचीन लोक कथाओं के रूप में ग्रहण किया है। मानव जाति और पशुओं के पारस्परिक सम्बन्ध को लेकर निर्मित की गयी अनेक कथाएँ पशु-युग की ही देन हैं। इन कथाओं के माध्यम से अनेक पशुओं की विविध आदतों को समझाने का सहज प्रयास किया गया है। जैसे -

दानें इन कथाओ में से बहुत-सी कथाएँ धर्म-कथाओ और नीति-कथाओ के रूप मे विकसित हो गयी। इन कथाओ का श्रोता पशुओ के बोलने, चालाकी-युक्त क्रिया-व्यापार करने में पूरा-पूरा विश्वास रखता है। उसे पशु का मानववत् कार्य करना भी सहज स्वीकार्य है। पशु-कथाओ मे भी हमें दो प्रकार की कथाएँ मिलती हैं। एक तो वे, जिनमें सारे पात्र पशु ही हुआ करते हैं और दूसरी वे, जिनमें कुछ पात्र पशु होते हैं और अन्य कुछ मनुष्य, पक्षी व अन्य जीव। इन कथाओं मे पशुओं की चतुराई और मूर्खता को भी दर्शाया गया है। कुछ पशु अत्यन्त आश्चर्यजनक कार्य सम्पन्न करते भी दीख पडते हैं। राजस्थान प्रदेश मे पायी जाने वाली इन कथाओ में सिंह को सर्व शक्तिशाली, पर निपट मूर्ख के रूप मे चित्रित किया गया है। चालाक पशु उसे पग पग पर मूर्ख बनाकर उसके चगुल से निकल भागते हैं। कई कथाओ में तो उसे अपनी मूर्खता के कारण अपने प्राणो से भी हाथ धोना पडता है। कुछ कथाओ मे उसे दयावान भी बताया गया है। 'हसी री म्यानी' तथा 'कुण छोटो कुण मोटो' नामक कथाएँ इस प्रकार की अति प्रसिद्ध कथाएँ हैं। हरिण इन कथाओ मे भोले-भाले और सहज-विश्वासी पशु के रूप मे चित्रित है। भेडिया अपनी कुटिलताओ, छल-प्रपचमयी नीतियो के कारण इन कथाओ मे कुख्यात है। वह झूठ-मूठ की बोली निकालकर दूसरे पशुओ के नन्हे बच्चो को खा जाता है। एक कथा में वह हरिणी की बोली में हरिणी के बच्चो को पुकारता है और बच्चो द्वारा दरवाजा खोले जाने पर घर मे प्रविष्ट हो, सभी मृग शावको को अपना भक्ष्य बना लेता है। उदाहरणार्थ कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'काजळियो कूपलो
रायलो रूपलो
···बेटा आडो ई खोल आडो ई खोल
थारी मा घरै आई।'

चतुर सियार अपने बुद्धि-बल से बलशाली बर्बर सिंह के भी छक्के छुडा देता है। यह पशु अनेक कथाओ मे न्यायाधीश के रूप में भी चित्रित किया गया है। इस पशु की स्वार्थपरता स सम्बन्धित भी अनेक कथाएँ मिल जाती हैं। दूसरे पशुओ स काम लेने की अनेक युक्तियो म यह पूर्ण पटु है। किसी भी पशु की छल-कपट की भावना का भी पता यह प्राणी अत्यल्प काल में ही लगा लेता है। धोखा देने मे इसके जितना प्रवीण पशु शायद ही मिले। इस पशु का मिथ्याभिमान भी देखने योग्य ही है। कुटिलता मे भी यह किसी से कम नही है। अेक स्याळ री कुटळाई, होडाहोड रो रग, रगियोडो स्याळ, सेखोजी सकरान्तियो, अकल उजागर अेक स्याळ री, स्याळ रो न्याव, स्याळ रो अटकळ, स्याळ री अक्ल अर सिंघ रो बळ आदि कथाएँ सियार क चरित्र को एक मूर्तिमन्त रूप प्रदान करती हैं। इन पशु-

कथाओं मे गधे को मूर्ख के रूप मे, बैल को बुद्धि-हीन के रूप मे और बकरे को सामर्थ्य हीन तथा शीघ्र ही बहकावे मे आ जाने वाले पशु के रूप मे चित्रित किया गया है। 'चल म्हारी ढेमकी ढमाक ढम, किसका बक्कर किसका तम' का पात्र बकरा अवश्य कुछ बुद्धिमान पात्र है। इन कथाओं मे स्थान स्थान पर पद्यात्मक अवतरण भी पाये जाते हैं।

(४) पक्षियों की कथाएँ

बाल-जगत मे पक्षियो का अपना विशिष्ट स्थान है। चिड़िया, कौआ, कबूतर, मोर आदि पक्षियो को लेकर अनेकानेक बाल कथाएँ मिलती हैं। पक्षियों से सम्बन्ध रखने वाली कथाओं मे सहयोग और सहकारिता की भावना कूट कूट-कर भरी हुई है। धोबिन ने 'चिड़े' को मार दिया तो चिड़िया अन्य कुछ पक्षियों और साँप बिच्छू की सहायता से अपने पति की मृत्यु का प्रतिशोध लेती है। कुछ कथाओं मे पक्षियों की बुद्धिमत्ता और मानव के बुद्धूपन के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं और मनुष्य की हँसी उडायी गयी है। एक कथा मे रानी के इशारों पर नाचने वाले राजा का एक चिड़िया ने अच्छा-खासा मजाक उडाया है। इसी प्रकार अन्य एक कथा मे वर्णित शिकार रूप मे राजा के हाथ लगा मुर्गा अपनी चालाकी से पुन स्वतन्त्र हो गया। इन कथाओं मे कई क्रम-सम्बद्ध-कथाएँ भी मिलती हैं जिनमे एक पक्षी दूसरे पक्षी द्वारा प्रपीडित किया जाने पर अन्य पक्षियों या जीवों से सहायता माँगता है। कई प्राणियों के नकारात्मक उत्तरों को सुन वह हताश होकर किसी क्षुद्र कीट या पक्षी के समक्ष अपना दुखड़ा रोता है। वह उसकी सहायता के लिए राजी हो जाता है और कथा उसी गति से पीछे की ओर चलती है। ऐसी कथाओं मे प्राय चींटी ही सहायतार्थ आगे आती दिखायी गयी है। कौवे ने चिड़िया को मिला मोती छीन लिया। चिड़िया ने वट वृक्ष से कौवे को उड़ा देने के लिए कहा पर वृक्ष ने ध्यान नही दिया। तब वह निराश होकर क्रमश बढ़ई, राजा, रानी, चूहे, बिल्ली, कुत्ते, लकड़ी, आग, समुद्र और हाथी के पास गयी पर सर्वत्र हताश ही होना पडा और अन्तत चींटी ने अपना कार्य करना स्वीकार कर लिया तो इन सभी पात्रों ने भी अपना-अपना कार्य करने की हाँ भर ली। इस प्रकार चिड़िया को पुन अपना मोती प्राप्त हुआ। इस प्रकार की कथाओं से सिद्ध यही होता है कि दलित और शोषित वर्ग की सहायता कोई भुक्तभोगी या दलित वर्ग वाला ही कर सकता है। इस वर्ग को तथाकथित शासक वर्ग से सहायता प्राप्ति की इच्छा ही नही करनी चाहिए। पक्षी विशेष की बौद्धिक-कुशलता को एवं अन्य पक्षी विशेष के दुर्गुणों एवं मूर्खता को प्रकट करने वाली भी अनेक कथाएँ मिल जाती हैं। पक्षियों से सम्बन्धित इन कथाओं के माध्यम से मानव की श्रमशील प्रवृत्ति एवं आलस्य-वृत्ति का भी निरूपण किया गया है, और अन्तत श्रमशीलता की महत्ता को प्रकट किया गया है। 'आऊ लें

थाऊ आवलिया मटकाऊँ' कथा इस प्रकार का सर्वश्रेष्ठ उदाहरण है। इन पशु-कथाओ के माध्यम से भाई बहिन के पावन-प्रेम का अमरसन्देश भी प्रेषित किया गया है। 'बाई डावी फडकावू कँ जीमणी' नामक कथा मे प्यार-दुलार रखने वाली बहिन को मोर-भैया बहुत सारे आभूषण प्रदान करता हुआ दिखाया गया है। इन कथाओ से अनेक नैतिक बातें भी सीखी जा सकती हैं। 'खुसामद रो मिठास' कथा चाटुकारिता की महत्ता को प्रतिपादित करती है। कई कथाओं में पशु-पक्षियो की प्रतियोगिताओ का भी उल्लेख मिलता है, जिनमें एक पात्र दूसरे पात्र को मूर्ख बनाने का प्रयत्न करता है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं, जिनमें परतन्त्र पक्षी मनुष्य के समक्ष स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु अनुनय-विनय करता दिखाया गया है। मनुष्य से उसे सहायता मिलनी तो दूर रही, वह तो उस और अधिक कुचक्रो के जाल मे फँसा लेता है। ऐसे असहाय पक्षियो का उद्धार किसी पक्षी या मानवेतर जीव द्वारा ही होता है। 'बाधी कुरज' कथा में अन्तत चूहा ही कुज पक्षी को बन्धनमुक्त कराता है। इन कथाओ में कुछ पक्षी ऐसे भी मिलेंगे जो अपनी हठीली आदतो स बाज न आने पर कराल-काल की निर्दय चपेट म आ जाते हैं। इन कथाओ से विदित होता है कि पक्षी भी विभिन्न उत्सवों और समारोहों पर मानव की भाँति आनन्दाभिभूत हो जाते हैं।

(५) अन्य जीव-जन्तुओ और कीडे-मकोडो से सम्बन्धित कथाएँ

इस प्रकार की कथाओ मे चूहे चुहिया एव चींटी की कथाओ का बाहुल्य है। चुहिया को सर्वत्र निर्बुद्धि और हठधर्मी पात्र के रूप मे चित्रित किया गया है। अनेक कथाओ मे चूहे और चुहिया की गृहस्थी के व्याज से हर बात मे नमन करने वाले पति और घमडी पत्नी पर करारा व्यग्य किया गया है, घर का सारा कार्य करने के बाद वह चूहा अपनी रूपगर्विता पत्नी को इन शब्दो म मनाता है—

'चाल म्हारी रूपाळी नार
कचकचती सीरो व्हैगो त्यार।'

काम के नाम स कतराने वाली पत्नी को और क्या चाहिए—उसका उत्तर द्रष्टव्य है—

'चाल म्हारा भोळा जीव, थनैं बुलावण आयो पीव।
आई ओ सायबजी आई, धणी-लुगाई रै काई लड़ाई।'

इसके अतिरिक्त एक अन्य पात्र मेढक प्राय सकीर्ण मनोवृत्ति का प्रतिनिधित्व करता ही दिखायी देता है। उसके द्वारा हाथ पाँव पसारे जाने के बावजूद भी जब हाथी उसे यह कहता है कि समुद्र तो इससे भी बडा होता है तब मेढक हाथी की बात को मन गढत मिथ्या बात कह देता है—

'पग पसारिया हाथ पसारिया, पसारियौ सगळौ गात रे।
सौ ई समदर रो थाग नी पायो, कोई झूठी उडाई वात रे।'

इन कथाओ मे मकोडै वाळो ढोल, जू जू सिंध जावें अे, चरखा-फरखा फेर पड्सी, खवोचिया रो मीडको, थू म्हनै मारी, ऊंदरो पूछ गमाई पण भारी लायी आदि कथाएँ अति प्रसिद्ध कथाएँ हैं।

पशु-पक्षियो और अन्य जीव-जन्तुओ के सम्बन्ध मे यह विशेष रूप से ज्ञातव्य है कि राजस्थान मे निवास करने वाली जातियो का अनादर सूचक नामकरण विभिन्न पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और पेड पौधो के नाम के आधार पर भी किया जाता है। इस दृष्टि से परखने पर ज्ञात होता है कि उन कथाओ मे जातीय विशेषताओ एव कमियो का पता लगाया जा सकता है।

(६) अनोखे पेडो से सम्बन्धित कथाएँ

अद्भुत वस्तुएँ बाल जिज्ञासा को जाग्रत करने का सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। पेडो और फलो को लेकर अनेक प्रकार की कथाएँ बाल-जगत मे प्रचलित हैं। ये पेड-पौधे और फल भी मानव की भाँति कार्य करते दिखायी देते हैं। ये बडे अद्भुत और चामत्कारिक कार्य सम्पन्न करते कुछ भी देर नही लगाते। ऐसी कथाओ मे वर्णित 'मरवाचर' एक ऐसा पात्र है जो बडे अनूठे काम (यथा—बैलो को चराना, खेत पर रोटी लेकर जाना आदि) करता रहता है। सत्वर गति से काम करने की भावना बाल मन की चचलता का ही परिणाम है। इन कथाओ के द्वारा बालक के कौतूहल को जाग्रत किया जाता है। इन पेड-पौधो के सम्बन्ध मे असम्भव घटना का उल्लेख कर बालक को हँसाने का प्रयास किया जाता है। एक कथा मे कुएँ के मुँह पर उगे तिल के पौधे से हाथी की रगड से तिलो के झडने पर पूरे कुएँ का भर जाना वर्णित है। इन कथाओ मे बालको ने अपनी मनपसन्द मिठाइयो के पेडो का होना भी स्वीकारा है। 'अनूठो रूख' कथा मे गुलगुलो के पेड का वर्णन है। कभी-कभी ये अनोखे पेड साहसी बालक को अलौकिक-अहितकारी तत्वो की क्रूरता से बचाने के लिए अपनी शाखाओ का प्रसार आकाश तक कर देते हैं और कभी-कभी उस हिम्मतवान को अपने तने मे स्थान देकर पाताल-लोक मे पहुँचा देते हैं। ये पेड-पौधे आवश्यकता पडने पर चल-फिर भी लेते हैं। कई कथाओं मे वर्णित बेर की झाडी सत्य पथ के राही को अक्षयार्थ बेर प्रदान करती हुई और दुर्नीति रखने वाले चरित्रो के कॉटे चुभाती दिखायी देती है। कुछ पेड भविष्य-वाणियाँ भी करते हैं। इन कथाओ मे अनूठो रूख, मरवाचर, पेमली बोरा री बोरडी आदि कथाओं के नाम उल्लेख्य हैं।

(७) जातीय-चरित्र निरूपित करने वाली कथाएँ

उक्त प्रकार की कथाओ के अतिरिक्त अनेक ऐसी कथाएँ मिलती हैं, जिनके आधार पर जातीय-चरित्र को निर्मित किया जा सकता है। यद्यपि जातीय

विशेषताओ को प्रतिपादित करने वाली कथाओ का विवेचन पुरुष वर्ग की कथाओ मे कर दिया गया है, परन्तु उन कथाओ का प्रचलन प्राय. जाति-विशेष मे ही होता है। यथा—राजपूत जाति की महत्ता को व्यक्त करने वाली कथा राजपूत जाति मे ही कही-सुनी जाती है और चारण जाति की महत्ता को व्यक्त करने वाली कथा चारण जाति मे ही। वे कथाएँ अपेक्षतया बडी होती हैं। उनके परिपार्श्व म धार्मिक भावना का भी पुट रहता है। पर बाल-जगत मे प्रचलित जाति-सम्बन्धी कथाएँ छोटी होती हैं। सभी जातियो की कथाएँ कही भी कही सुनी जा सकती हैं। इनके कथन-श्रवण पर किसी भी प्रकार का जातीय बन्धन नही है। पृष्ठ सख्या १६६-६७ पर विवेचित जातीय गौरव की कथाओ मे केवल जाति प्रशसा और तज्जातीय गुण वैशिष्ट्य की ही भरमार पायी जाती है जबकि बाल जगत म प्रचलित इन कथाओ मे जाति स सम्बन्धित अच्छाइयाँ और बुराइयाँ—दोनो ही देखने का मिलती है। उन कथाओ के आधार पर एक जाति की महत्ता से (चाहे वे गुण कपोलकल्पित ही हो) पाठक या श्रोता अवगत हो सकता है पर इन कथाओ के आधार पर पाठक या श्रोता जातीय चरित्र का निर्माण कर सकता है। उन कथाओ के गठन म पक्षतापूर्ण रवैया अपनाया गया है जबकि इन कथाओ का निर्माण निष्पक्षतापूर्ण रवैया बरतने का परिणाम है। इन कथाओ मे प्राय व्यक्तिवाचक नाम की अपेक्षा जाति-वाचक सज्ञा का प्रयोग किया जाता है। जातीय गौरव स सम्बन्ध रखने वाली कथाओ मे सदैव अपनी जाति के पूर्व-पुरुष का नाम आदरपूर्वक लिया जाता है और कभी किसी देव-विशेष को पूर्व-पुरुष सिद्ध किया जाता है। कभी कभी पूर्व-पुरुष की महत्ता को बहुत बढा-चढाकर वर्णित किया जाता है। उसे देव तुल्य चरित्रवान बताकर जातीय स्तर पर उसकी अर्चना भी की जाती है। इसके विपरीत इन (जातीय चरित्र निरूपक) कथाओ के प्रारम्भ म 'एक हो बामण या एक हो बाणियो या राजपूत' आदि सूचक सज्ञाओ का प्रयोग करते है। इस दृष्टि से परखने ■ ज्ञात हा जाता है कि इन कथाओ मे व्यक्ति के चरित्र को न उभार कर जातीय चरित्र को ही उभारा गया है। अब हम इन कथाओ का मूल्याकन करते हैं।

इन कथाओ मे वर्णित ठाकुर का एक रूप निरकुश, शोषण-पटु, अव्यवहारी, विवेकशून्य, मिथ्याभिमानी, दुर्व्यसनी, ठग विद्या-प्रवीण, दूसरो के इशारो पर चलने वाला, बात बात पर बल-प्रयोग करने को उद्धत, रूप लिप्सु, भोगी, तामसी-वृत्ति प्रधान है तो दूसरा रूप परोपकारी, कुल परम्परा की गरिमा को पूर्ववत् बनाये रखने वाला, प्रजा हितार्थ स्वार्थपरता की नीति त्यागने वाला, भविष्यवेत्ता एव कुशल कूटनीतिज्ञ है। इस प्रकार की कथाओ मे मूछ मूछ रो फरक, चक्रू बोले, तरवार गमगी, चांद सूरज री साख, ठाकर रो आसण, सावचेती, अमलदारा

री बावडी, ठाकर री चित्राम निर्गदास्ती आदि कथाएँ पठनीय हैं। इस प्रकार की कथाओ मे से एक कथा का कुछ अंश उदाहरणार्थ प्रस्तुत किया जा रहा है—

'काला थू तो दिना मे ई थारी गमियोडी चीजा साधणी चावै। अर वे ई ठाकरसा री धोलर मे! अठै होका, चिलम अर रचोढिया रा काई थाग लागै! म्है लारला मतरै बरसा सू रात-दिन म्हारा गमियोडा बेरा सोध रह्यो हू। जिण धोलक मे इक्कीस बेरा नै तीन हजार बीघा जाव री ई पतो नी लागो उठै थारो रचाढिया रो काई पतो लागै। × × आयै साल पाच हजार मण गहूवा री लालिया रा कूढा ठाकरसा दबार जावै, जिणरी पाछी दाणी ई हाथ लागणो कैडो व्है। × × × बावळा कठै ई थारी मगज तो नी मचग्यो ठाकरसा रा पेट मे गियोडी चीजा री पाछी आस करै।'[1]

व्यापार करने वाली बनिया जाति को भी इन कथाओं में स्थान मिला है। अर्थोपार्जन पटु बनिया 'चमडी जाय पण दमडी न जाय' कहावत को पूर्णत चरितार्थ करता है। वह डरपोक अवश्य है पर अपने चातुर्य से घर की सेंध लगाने वाले चोर को सहज ही मे पकड लेता है या पकडा देता है। पैसे के समक्ष उसकी दृष्टि में न शान है न मान। घूरे पर पडी मोहर को उठाने के लिए वह अपनी सामाजिक प्रतिष्ठा का कतई ख्याल न करके घूरे पर लोटने लग जाता है। उसके लिए पाप और पुण्य का निर्णायक धन है। अपने बुद्धि-कौशल से बलशाली ग्राम ठाकुर के भी छक्के छुडा देता है। किसी पर विश्वास करना तो उसने सीखा ही नहीं। प्रत्युत्पन्नमति और अनोखी सूझ-बूझ उस पर आने वाले सभी प्रकार के सकटो से उसका पीछा छुडा देती है। किसी का चार आदमियो मे पानी उतार देना और किसी से गधे की भाँति काम लेना इसे खूब आता है। असत्य भाषण इसका अमोघ अस्त्र है। भाँति भाँति की बातें बनाना इसके बाँए हाथ का खेल है। प्रतिशोध की आग इसके हृदय मे बदला न लने तक जलती रहती है। भूखे पेट सोकर भी धन जुटाना बनिये का स्वीकार्य है। वाग्जाल मे वह भूत तक को सहजतया फँसा लेता है। लक्ष्मी तक को ठगने मे वह नही चूकता। इसकी कार्य-पटुता, कर्मठता एव कार्य क्षमता आदि उल्लेखनीय विशेषताएँ हैं। बनिया परम्पराओ का अनन्य उपासक है पर लकीर का फकीर नही। धन के समक्ष वह किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नही स्वीकारता। नेक-सलाहकार के रूप मे भी बनिया काफी प्रसिद्ध है। कमाने की अदम्य लालसा इसके अन्तस्तल मे सदैव घर किये रहती है, तभी तो धर्मराज के पूछने पर बनिये ने दो पैसे की अधिक कमाई होने वाले स्थान (स्वर्ग एव नरक) को जाना उचित समझा। वाणियँ री निजराणी, वाणियँ री चाकर, वाणियँ री पाडोस, लिछमी री पुजारी, भली करी रे वाणिया,

---

1 साची वारता—बाता री फुलवाडी, भाग १, विजयदान देथा, पृ० ५८-५६

अवल उजागर सठ, तावडी रौ परचौ, बडेरा री परख, वावोजी अटी मे, माया री मरजादा, धन री फटकार, मूजी मूरखौ, बाणियँ री बदळौ, धडो लगायदू तेजा हो, बाणियँ री चतराई आदि कथाएँ इस वर्ग का सही प्रतिनिधित्व करने वाली कथाएँ है।

चारण जाति की चामत्कारिक बुद्धि से सम्बन्धित भी अनेक कथाएँ प्रचलित हैं। इन कथाओ से इस जाति के लोगो की वाक्-पटुता, व्यग्यात्मक शैली मे दक्षता, वाग्वैदग्ध्य आदि का ज्ञान होता है। इस जाति के लोग भी बनिये की भाँति ही कृपण प्रवृत्ति के हुआ करते हैं। समभावण-समभावण मे फरक, नाई नै राजी करणौ आदि कथाएँ चारणो के बुद्धि-कौशल को प्रकट करती हैं।

राजस्थान प्रदेश मे चौधरी जाति के सम्बन्ध मे भी कई कथाएँ प्रचलित हैं। इन कथाओ मे सर्वत्र चौधरी को भाले-भाले, सीधे-सादे पात्र के रूप मे चित्रित किया गया है। थोडी-बहुत बुद्धि रखने वाला व्यक्ति भी इन्हे सहज ही मे ठग सकता है। इन लोगो मे काम करने की अद्वितीय लगन होती है। कठिन-से-कठिन परिश्रम करने मे ही ये अपने जीवन की सार्थकता समझते हैं। दूसरी ओर इन लोगों जैसे मूर्ख भी शायद ही कही देखने को मिलें। किसी के भी बहकावे मे आकर य अपने सम्बन्धियो स सम्बन्ध तोडने पर उतारू हा जाते है। इनकी अधिक भोजन करने की आदत के सम्बन्ध मे भी कथाएँ मिल जाती हैं। चौधरी की अपेक्षा उसकी पत्नी को इन कथाओं मे कुछ बुद्धिमान बताया गया है। इनके साहस और हिम्मत को लेकर भी कई कथाएँ प्रचलित हैं, जिनमे ये भूत तक से मल्ल-युद्ध करते दिखायी देते है। वाणी कौशल इनम नही पाया जाता। स्पष्ट-भाषी के रूप म भी ये प्रसिद्ध हैं। इनकी मिष्ठान्न प्रियता भी अनेक कथाओ मे दखन को मिलती है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जिनमे चौधरी को आलस्य का घर सिद्ध किया गया है। अपनी बात के लिए ये अपनी जान को भी जोखिम मे डाल देते हैं। इन कथाओ मे बाडा री मरजाद, बाजरी लेमो कै आटौ, कोई लुगाई बणै तौ रोवती ढबू, मैंणत सार, हरड मुसन्दा हो, मौका री उपज, चौधरण री चतराई आदि कथाएँ उल्लेखनीय है।

इन कथाओं मे ब्राह्मण को ठग, माँगकर खाने वाले, कार्य करने की क्षमता न रखने के कारण पूर्णतया पराश्रित रहने वाले पात्र के रूप मे चित्रित किया गया है। ब्राह्मण सर्वत्र अन्न और धन के प्रति लालायित रहता है। कही पर धर्म-ज्ञान की बात कहने वाले ब्राह्मण भी मिल जाते है। कुछ कथाओ म वह गरीब एव सरल-हृदय व्यक्ति के रूप मे भी हमारे समक्ष आता है। कही पर उसे पथ-भ्रष्ट एव कामी भी बताया गया है। उसकी परोपकार की प्रवृत्ति भी कुछ कथाओ मे अभिव्यक्त हुई है। सीख री बात, बिस्वास रौ बळ, कळजुग रौ धरम, बामणी रौ परचौ नामक कथाएँ द्रष्टव्य है।

भांबी का जीवन सर्वत्र दूसरों के कार्य करते ही व्यतीत होता दिखाया गया है। उसने तो बेगार के लिए ही जन्म पाया है, ऐसा इन कथाओं से प्रतीत होता है। इसकी बेवकूफी और नासमझी के भी अनेक उदाहरण इन कथाओं में भरे पड़े हैं। धोखा देने का भी कभी-कभी वह साहस कर लिया करता है। ढोली एक आलसी-विशेष के रूप में इन कथाओं में हमारे समक्ष आता है। अपने यजमान से हठपूर्वक कुछ भी प्राप्त कर लेने में वह पूर्ण पटु है। दूसरों की सीख भी वह शीघ्र ग्रहण कर लेता है, उस समय वह यह नहीं सोचता कि बात मेरे हित में है या अहित में। बावरी प्राय साहसी लुटेरे के रूप में चित्रित पाया जाता है। मूर्खता में उक्त तीनों जातियाँ एक दूसरे से बढ़कर ही हैं। भूठां री सिरदार, खोटी खरी परखावणो, लेतो जा, कौड़ी भाटै हाथी, ढोली री घोड़ी आदि कथाएँ उक्त जातियों से ही सम्बन्धित हैं।

राजस्थानी कथाओं में नाई कुटिल, नारद-वृत्ति का प्रतिनिधित्व करने वाले, चाटुकार, चतुर बुद्धि वाले पात्र के रूप में प्रदर्शित किया गया है। राज्याश्रय में रहने वाला नाई प्राय अहकारी के रूप में चित्रित है। नीवू री सवाद और अकल उजागर सेक नाई री कथाएँ द्रष्टव्य हैं। इन कथाओं में राईके को हठी और साहसी पात्र के रूप में उभारा है। कुम्हार सद्-जीवन बिताते दिखाया गया है।

उक्त कथाओं के अलावा कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जिनमें समूह के चरित्रों को उभारा गया है, इन कथाओं में साधु या सन्त को निर्मोही और लम्पट के रूप में दिखाया गया है, ग्रामीण जन को निष्कपट और चतुर पात्र के रूप में चित्रित किया गया है तथा शहरी व्यक्ति को एक चालबाज का प्रमाण पत्र दिया गया है।

(२) उद्धरणात्मक कथाएँ

अपने कथन की पूर्ण पुष्टि के लिए पूर्व घटित घटना अथवा वस्तुस्थिति से साम्य रखने वाले तथ्य का उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत करना मानव का स्वभाव सा हो गया है। अनेक अवसरों पर वह अपने पूर्वजों द्वारा अनुभूत या स्वानुभूत सत्य-कथाओं का सहारा लिया करता है। ऐसे कथनों में निहित सन्देश को ग्रहण कर जीवन-पथ का निर्माण किया जा सकता है। ये परम्परित कथन श्रोता और वक्ता के मध्य सम भाव सस्थापन में सहायक होते हैं। कई स्थितियों को इन कथनों के प्रस्तुतीकरण मात्र से सत्य सिद्ध किया जा सकता है और कई को झुठलाया भी जा सकता है। कभी तो कथन के उच्चारण मात्र से ही वक्ता की उद्देश्य-पूर्ति हो जाती है और कभी इन कथनों को पृष्ठभूमि के रूप में किसी कथा को प्रस्तुत करना पड़ता है। इस प्रकार की कथाओं को हम उद्धरणात्मक कथाओं की सज्ञा से अभिहित करते हैं। किसी भी उपस्थित परिस्थिति में सम-भाव रखने वाली

स्थिति, वस्तु या घटना से सम्बन्धित कथा को उदाहरण स्वरूप उद्धृत करना उद्धरणात्मक कथाओ की प्रथम विशेषता है।

ये उद्धरणात्मक कथाएँ प्राय छोटी-छोटी ही हुआ करती हैं। परन्तु यहाँ यह जानने योग्य बात है कि कभी-कभी उदाहरण रूप मे उद्धृत की जाने वाली कथा के कथानक के साथ बँधे-बँधाये वर्णनो को जोडकर, कथा के पात्रो को अलौकिक तत्वो से सम्पन्न बताकर उसे माडकर कही जाने वाली कथा के समकक्ष लाया जा सकता है। इसी प्रकार माडकर कही जाने वाली कथा को निरलकृत कर एव वर्णन वैविध्य-रहित कर उद्धरणात्मक कथा की कोटि मे परिगणित किया जा सकता है। इस प्रकार के घटाव-बढाव के परिणामस्वरूप एक ही कथा दोनो श्रेणियो मे रखी जा सकती है।

उद्धरणात्मक कथाओ मे बात मनाने की अचूक शक्ति होती है। कथन की परिपुष्टि के लिए उद्धृत कथा श्रोता के हृदय पर सीधा प्रभाव डालती है। ये कथाएँ एक प्रकार से तर्क सूत्रो का काम करती हैं। उद्धरण के रूप मे प्रस्तुत की जाने वाली इन कथाओ मे विभिन्न नीतियो का निचोड, सासारिक सत्यो का सार, अनुभूत ज्ञान का आलोक, सुव्यवस्थित जीवन-यापन हेतु मार्ग-निर्देश आदि कई बातें पायी जाती हैं। स्थिति को स्पष्टतया उभारकर प्रस्तुत करने के लिए ये कथाएँ प्रमाण स्वरूप उद्धृत की जाती हैं। कथन या वस्तुस्थिति का तर्क-पुष्ट बोध करवा देने मे ही इनकी उपादेयता है। इन कथाओ मे निहित ज्ञान आप्त-वाक्यो या नीति वाक्यो से कदापि कम आदरणीय नही है। इन कहानियो का सन्देश सभी द्वारा एव सर्वत्र अतर्क्य भाव से सहज स्वीकार्य होता है। कुछ परिस्थितियाँ ऐसी भी होती है जिनमे दोनो परस्पर विरोधी पक्षो की बात को सत्य साबित करने के लिए इन कथाओ को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किया जा सकता है। वस्तुत इन उद्धरणात्मक कथाओ का सत्य परिस्थिति सापेक्ष सत्य हुआ करता है। इन कथाओ के द्वारा दुर्नीति एव दुराचारी व्यक्ति को नीतिवान बनाया जा सकता है, पथ विचलित जन का पथ-प्रदर्शन किया जा सकता है, अस्थिर चित्त वाले की चचल चित्त वृत्ति को शान्त किया जा सकता है, मूर्ख और बुद्धू के हृदय मे ज्ञान की ज्योति जगायी जा सकती है, हताश को हिम्मत बँधायी जा सकती है। सस्कृत-साहित्य म पचतन्त्र की कथाएँ इस प्रकार की सर्वश्रेष्ठ कथाएँ हैं। मूर्ख और कर्त्तव्य के प्रति अजागरूक राजकुमारो को नीति कथनो की पुष्टि मे इन कथाओ को उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर कर्त्तव्य-बोध कराया गया था। राजस्थान मे मिलने वाली इन कथाओ का यहाँ विवेचन किया जा रहा है।

(१) कहावती कथाएँ

लोक जीवन मे कहावतो का एक विशिष्ट स्थान है। इस सम्बन्ध मे कहावतो के अध्याय मे विशद् विवेचन किया जायेगा। कुछ कहावतें ऐसी हुआ करती

हैं जो किसी कथा का प्रतिनिधित्व किया करती है। कथा का सार उस कहावत मे अन्तर्निहित होता है। इन कहावती कथाओ मे लोक-व्यवहार के ज्ञान का अदोप भडार भरा पडा है। व्यग्यात्मक पृष्ठभूमि वाली हास्यप्रधान कहावतों को देखने पर लोक की कलात्मक अभिव्यक्ति का सहज ही ज्ञान हो जाता है। इन कहावती कथाओ में एक बहुत बडा वर्ग उन कथाओ का है जिनमे 'वाला' या 'वाली' का प्रयोग करके वस्तु का व्यक्ति या घटना मे सम्बन्ध स्थापित किया जाता है। इन कथाओ के द्वारा व्यक्ति या जाति की विशेषताओं को प्रकट किया गया है अथवा व्यक्ति या जाति पर करारा व्यग्य किया गया है। कुछ कथाओ मे स्वार्थपरता और कूपमडूकता की भावना भी व्यक्त हुई है। कई कथाओ मे एक पात्र द्वारा दूसरे पात्र को मूर्ख बनाने या ठगने का वर्णन मिलता है। 'कमेडी वाळी कौडी' नामक कथा मे एक विशिष्ट प्रकार की चिडिया (कमेडी) राजा के साथ बहुत ही मनोवैज्ञानिक ढग से बातें कर उसे मूर्ख बनाती है और अपना कार्य सिद्ध कर लेती है। कुछ कथाओ मे अन्धानुसरण वृत्ति का मजाक बनाया गया है। 'जवाई वाळो कागद' कथा म निरक्षर दामाद पत्र को हाथ मे थाम इसलिए रोने लगा कि उसे पढना नही आता, पर उसे रोता देख सभी घरवाला ने कोहराम मचा दिया। उन लोगो ने सोचा कि शायद पत्र म किसी का मृत्यु सन्देश लिखा हुआ हो। 'भावी वाळी भैंस' मे अस्थिर चित्त व्यक्तियो, वस्तुस्थिति की उपस्थिति के पूर्व ही लम्बी-चौडी योजनाएँ बनाने वालों की अन्ततोगत्वा होने वाली हास्यास्पद स्थिति को उभारकर सामने लाया गया है। एसे लोगो का उचित बात समझाने पर भी समझ मे नही आती। उनका तो न्याय भी शक्ति-प्रयोग पर ही आधारित है। 'माबी वाळो सपनो' म मनुष्य की लालची वृत्ति को दर्शाया है। चाटुकारिता की भावना का प्रतिनिधित्व करने वाली 'काजाजी वाळो कुत्तो' नामक कथा मे चापलूस लोग काजी को कुतिया मर जाने पर शोक प्रकट करने जाते हैं। शायद इसी बहाने उनका हित हो जाय। पर जब स्वय काजी की मृत्यु होती है तब कोई नहीं जाता क्योकि काजी के साथ ही सभी के स्वार्थ समाप्त हो गये। 'राईका वाळी परख' म अज्ञानी व्यक्तियो की महामूर्खता का अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। इसी भांति 'बारठजी वाळो आगळो' नामक कथा मे दूसरो के कार्यों पर यश प्राप्त करने वाला की ओर इगित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन कथाओ के माध्यम से अनेक चित्र उभारकर लोक के समक्ष प्रस्तुत किये गये हैं, जिनसे व्यक्ति एव समाज कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकें। इस प्रकार की अन्य कथाओ मे नाई वाळी ठोळियो, बाणियै वाळी मूछ, चारण वाळो मोर्मालयो, कुलटी वाळो बीटियो, पूछ वाळो मादगी, कूजरे वाळो नफो आदि कथाएँ राजस्थानी लोक मे बहुत प्रचलित हैं।

कहावत-प्रधान कथाओं मे पशु पक्षी और अन्य जीव जन्तुओ को भी पात्र के

(ख) आ थोडी आडो घणो, किण विध करा विसास
मामी मूसा चेतग्या, थू अजै न छोडी आस।

(ग) सपट सघी रे आधळा, आछी आई आडी
वेटे सूघी लाडी आई, बळदा सूघी गाडी।

'सुख तो घडी रो ई चोखो', 'देर है अधेर कोयनी', 'आपरी गोरी गाय रो घी जचै जठै खा ई' आदि एक सूत्रीय शीर्षको वाली भी अनेक कहावती कथाएँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की जा सकती हैं।

(२) उद्धरणात्मक कथाओं मे नीति

अपनी बात के साथ तर्कस्वरूप उद्धृत की जाने वाली राजस्थानी लोक-कथाओ मे नीति सिद्धान्त भरे पडे हैं। किसी कथा मे शास्त्रोक्त नीति-कथन का उल्लेख मिलता है तो अन्य कथा मे लोक-प्रचलित नीति को स्थान मिला है। लोक-जीवन मे इन नीतिप्रद कथाओं का महत्त्व नीतिशास्त्र से कदापि कम नही है। इन्हीं कथाओं मे पायी जाने वाली नीतियों को प्रमाण मानकर लोक अपने जीवन को नीतिमय बनाने का सतत प्रयत्न करता है। इन नीति-कथाओ के माध्यम से प्राय जन साधारण को सद्व्यवहार की शिक्षा दी गयी है। ये नीति-प्रद कथन लोक को बुराइयों से बचाने मे ढाल का काम करते है। अहकारी का पतन अवश्यम्भावी है, इस नीति-कथन को 'म्हे गळो वढावे' नामक कथा मे बहुत ही सुन्दर ढग से पश किया गया है। एक प्रसिद्ध कारीगर ने अपनी सूरत से हूबहू मिलती बीस प्रस्तर-मूर्तियां निर्मित की। यमदूत मृत्यु के समय उन इक्कीस एक-से व्यक्तियो को एक जगह पाकर स्तम्भित रह गये कि असली व्यक्ति कौन है? अन्तत यमराज ने वहां आकर मूर्तियो की भूरि-भूरि प्रशसा की, तो निर्माणकर्ता से शान्त न रहा गया। वह आगे आकर बोला कि इन भव्य प्रतिमाओ का निर्माण मेरे द्वारा हुआ है। यमराज उसे मारकर ले गये और कहा कि 'मैं' ही तो मनुष्य के नाश का कारण है। इस कथा मे नीति की बात को कितनी सरलता से समझाया गया है, यही तो दृष्टव्य है। धर्म भीरु लोगो के समक्ष ऐसे उदाहरण प्रस्तुत किये जाने पर भी बात उनकी समझ मे नही आती है।

एक बार एक सन्त के पैर मे बिच्छू ने डक मार दिया। दयालु सन्त ने उसे अपने हाथ मे उठा लिया। बिच्छू ने तो पाँच सात बार और डक मार दिया। क्रोधी शिष्य ने कहा कि यदि मैं आपकी जगह होता तो अब तक बिच्छू को मार दिया होता। सन्त ने कहा कि जब यह इतना छोटा और अविवेकी जीव होकर भी अपना स्वभाव (दुष्टता) नहीं छोडता तो फिर विवकी मानव को अपना स्वभाव (अच्छाई) क्यो छोडना चाहिए? नीति भी यही कहती है कि दुष्ट के साथ सद्-व्यवहार करने से दुष्ट भी अपनी दुष्टता छोड देता है। 'जो तोको कॉंटा बुवै, ताहि बोय तू फूल' म भी प्रकारान्तर से उक्त तथ्य का ही विवेचन

मिलता है।

समय बहुत ही मूल्यवान है। जो समय को नहीं समझता या समय के अनुकूल नहीं चलता, वह सदैव बाद में पछताया करता है। समय के साथ चलना मानव के लिए सदैव हितकर ही है।[1] हिन्दी के महाकवि तुलसी ने भी समय को ही शक्तिशाली बताया है।[2] 'वेळा रा वायोडा मोती नीपजै' कथा में भी समय की सर्वोपरिता को सिद्ध किया गया है। इसी प्रकार एक अन्य कथा में एकाधिक नीति कथनों की पुष्टि की गयी। एक शिष्य को उसके गुरु ने प्रसन्न होकर उसे पन्द्रह दिन के लिए पारस पत्थर दिया। पर हतभाग्य सेवक पन्द्रह दिन तक लोहे का संग्रह ही करता रहा। उसने सोचा कि पहले बहुत सारा लोहा एकत्रित कर लूँ और तब इससे सोना बनाऊँगा। समय तो निश्चित था ही, अत बाद में वह पछताता ही रहा। इससे यही ज्ञात होता है कि समय के अनुकूल व्यवहार न करने वाला और लालची-वृत्ति वाला सदैव घाटे में रहता है।

'माऊ री मिजाज' नामक कथा में एक वृद्धा को सभी ग्रामीण आदरपूर्वक 'माऊ' शब्द से सम्बोधित करते थे। पर वह गर्वित होकर अपने से वयोवृद्ध व्यक्तियों और गाँव के प्रतिष्ठित व्यक्तियों को भी 'बेटा' कहकर ही बतराया करती थी। नीति भी हमें यही बताती है कि ओछे व्यक्ति को आवश्यकता से अधिक प्रतिष्ठा मिल जाने पर वह अपने बराबर किसी को नहीं मानता। अपने मिथ्याभिमान के सामने उसे सभी छोटे नजर आते हैं। 'क्षुद्र नदी भरि चलि इतराइ' और 'अधजल गगरी छलकत जात' की नीति को राजस्थानी कथा का प्रतिनिधित्व करने वाली इस कथन 'भरिया सो छळकै नहीं, छळकै सो आधा' में देखा जा सकता है। मृदुभाषण से हर किसी के जी को जीता जा सकता है। दूसरी ओर कर्ण-कटु कर्कश वाणी कितनी ही घनिष्ठ मित्रता को क्षण भर में निर्मूल करने में पूर्ण समर्थ है। 'कुल्हाई रा माडणा उगडिया रैसी' नामक कथा में इसी नीति का समर्थन किया गया है। खरगोश बुढ़िया, सेठ व तेली के समक्ष नम्रतापूर्वक बात करने के कारण उचित आदर एवं अभीप्सित वस्तु, दोनों पाता है, जबकि सियार अपनी बुरी वाणी के कारण तमाम तीनों स्थानों से खदेड़ दिया जाता है। अत सिद्ध यही होता है कि मृदु भाषण ही सर्वोत्कृष्ट है।[3] ऐसी कथाओं के द्वारा लोक में सद्वृत्ति को जाग्रत किया गया है।

इन उद्धरणात्मक कथाओं में राजनीति, कूटनीति आदि की बातें भी वर्णित

१ जेड़ो बाजै वायरो वैड़ो लीजै ओट।
२ तुलसी नर को का बडो, समय बडो बलवान।
  काबौ लूटी गोपिका, वेई अर्जुन वेई बान॥
३ मिलाइये—कौआ काको धन हरै, कोयल काको देय।
  मीठो बाणी बोलकर, मन बस म कर लेत॥

है। एक कथा मे एक चिडिया द्वारा लालची राजा को ये नीतिमय बातें बतायी गयी—

(१) एक बार पकड मे आने पर दुश्मन को कभी न छोडना,

(२) अनहोनी बात पर कदापि विश्वास न करना,

(३) बीती बात पर पश्चाताप न करना।

इनके अतिरिक्त उद्धरणात्मक कथाओ मे 'एकता ही मे बल है', 'समय आने पर छोटा भी बहुत बडा काम निकाल सकता है', 'समय सामर्थ्य का निर्णायक है', 'मुसीबत मे सदैव बल प्रयोग की अपेक्षा बुद्धि से काम लेना चाहिए' आदि अनेक नीति वचन मोतियो की भाँति बिखरे पडे हैं।

नीति-वचनो पर ही पूर्ण रूप से आधारित उद्धरणात्मक कथाओ के शीर्षक भी नीति-वचन ही हुआ करते है। ये शीर्षक प्राय पद्यात्मक रूप मे होते हैं। कभी पद्यांश ही शीर्षक का काम निकाल देते हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) सगत बडां री कीजिये, बहुत बहुत बढ जाय,
बकरी हाथी पर चढो, चुग चुग कूपळ खाय।
(बूढ़ी बकरी री बात)

(२) अेक माता अेक पिता, अेकै सरवर खापता,
कुळ हीणा मत कैवो राजा, सगत रा फल लागता।
(सूवटा री बात)

(३) हसा उड सरवर गिया, अबै काग भया परधान,
थू भाळा बिपर, सिंघ किणरा जजमान।
(सिंघ अर बूढै बिपर री बात)

यहाँ यह द्रष्टव्य है कि परिस्थिति विशेष के उपस्थित हो जाने पर व्यक्ति अपनी बात को मनाने के लिए इन नीति वचनो व पुष्ट पद्यो को प्रस्तुत करता है और *आवश्यकता पडने पर इन वचनो की पृष्ठभूमि का काम करने वाली* कथाओ का भी उद्धृत करता है। पर य ही कथाएँ कभी-कभी मात्र शीर्षक का नाम बता देने के पश्चात बालका आदि को सुनायी जा सकती है। ऐसी स्थिति मे उक्त पद्यावतरण कथा की समाप्ति पर उद्धृत किये जाते हैं।

नीति कथनों स युक्त इन कथाओ का प्रधान उद्देश्य नैतिक शिक्षा देना या उपदेश देना हाता है। कभी कभी इन कथाआ म मानव-जीवन के किसी एक अग या अश को लेकर एक व्यग्योक्ति की जाती है। कुछ विद्वानों की धारणा है कि ये कथाएँ लोक सामान्य की रचनाएँ न होकर सभ्य और सुसस्कृत व्यक्तियो द्वारा निर्मित हैं। इस सम्बन्ध म वे तर्क प्रस्तुत करते है कि विकसित मानव द्वारा निर्मित होने के कारण ही इन कथाओ म बहुमूल्य नैतिक शिक्षा का इतना प्राचुर्य पाया जाता है। पर हम यह बात उचित प्रतीत नही होती। सुसस्कृत लोगो के

नीतिशास्त्र से अलग जन साधारण का नीतिशास्त्र हो सकता है। हाँ, यह बात अवश्य स्वीकारी जा सकती है कि छल-प्रपंचमयी नीति वाली कथाएँ जन-साधारण द्वारा निर्मित न होकर सुसस्कृत जन समुदाय के सदस्यों द्वारा निर्मित की गयी हो। क्योंकि सर्व-साधारण नागर-जनों जितना चतुर एवं विचारशील न होकर भावनाशील होता है। कुटिलतापूर्ण नीति-कथाओं की अपेक्षा सामाजिक मर्यादाओं और आदर्शों तथा पारिवारिक या जातीय सम्बन्धों से सम्बन्ध रखने वाली नीति-कथाओं के निर्माण में अवश्य ही लोक का अधिक योगदान रहा होगा।

(३) उद्धरणात्मक कथाओं में व्यंग्य

अभीप्सित व्यक्ति, वस्तु या घटना की प्रशंसा करना और अनिच्छित व्यक्ति, वस्तु या घटना पर फब्ती कसना मानव का स्वभाव सा बन गया है। लोक मानस ने समाज में प्रचलित अन्ध विश्वासों, मिथ्याडम्बरों, सामाजिक विषमताओं तथा शोषण आदि की भावना पर परोक्ष रूप से लोक कथाओं में करारे व्यंग्य कसे हैं। इनमें न देवी देवता को बख्शा गया है न ठाकुर नरेशों को। 'वाणियै नै ठाकर को दियो नी' कथा में मूर्ति-पूजा की हँसी उड़ायी गयी है। 'गमभ गमभ्क री भरम' कथा में भी कल्पित शक्तिशाली देवों की निर्बलता पर व्यंग्य किया गया है। जो देवता भक्त द्वारा श्रद्धापूर्वक चढ़ाये गये प्रसाद की रक्षा चूहों तक से नहीं कर सकते वे भक्तों की रक्षा कैसे कर सकेंगे!

इन कथाओं में राजतन्त्र की कमजोरियों को भी उजागर किया गया है। नखराली रानियों के इंगितो म नाचने वाले विलासी नृपतियों एवं राज-काज से बेखबर नरेशों को इन कहानियों में धिक्कारा गया है। शासन की ऐसी बिगड़ी व्यवस्था में अपना उल्लू सीधा करने वाले मन्त्रियों के कुकृत्यों का यहाँ भंडाफोड़ किया गया है। अव्यवस्थित शासन का अनुचित लाभ उठाने वाली चंचल मनो-वृत्ति वाली परिचारिकाओं के चरित्र को भी इनमें निरूपित किया गया है। 'सेवट गाली री आत दरमाया री' नामक कथा इस प्रकार का श्रेष्ठ उदाहरण है। कुछ ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं जिनमें प्रत्यक्षतः पशुओं का वर्णन है पर परोक्षतः राज से सम्बन्धित लोगों की पाशविक वृत्तियों को चित्रित किया गया है। राज कर्मचारियों की चापलूसी धांधाधंडी, कपट व्यवहार, अगम्य भाषण-प्रवीणता, छल प्रपंचमय नीति अवसरवादिता आदि अनेक स्थितियों एवं भावनाओं पर इन कथाओं ने अच्छा प्रकाश डाला है। इनमें जनसामान्य की कुत्सित वृत्तियों पर भी तीखा व्यंग्य किया गया है। 'पागडी नै तो भैंस खायगी' कथा में न्याय-प्राप्ति का आधार रिश्वत बनाकर न्यायाधीशों की मनोवृत्ति पर व्यंग्य किया गया है। 'भावाँ री बेगार' कथा में 'निर्बल व्यक्ति का सर्वत्र शोषण होता है' तथ्य प्रस्तुत किया गया है। 'चढ़िया नै ई हँसै अर उतरिया नै ई हँसै' कथा में प्रतिपल परिवर्तनशील सामाजिक विचारधारा पर व्यंग्य किया गया है। 'मियाजी री

फारसी' कथा मे देशी लोगो के परदेशी खान-पान, रहन-सहन एव भाषा प्रेम पर करारा व्यग्य किया गया है।

इन व्यग्यात्मक कथाओ का प्रमुख उद्देश्य समाज-सुधार रहा है। प्रत्येक व्यक्ति निडरता से अपनी बात नही कह सकता था, अत इन कहानियो के माध्यम से अनीतिमय कृत्यो का भडा फोडा गया है। इनके माध्यम से यह अमर सन्देश प्रेषित किया गया है कि मनुष्य मलिन मनोवृत्ति का परित्याग करके ही सुखी जीवन बिता सकता है, समाज मे स्वस्थ परम्पराएँ स्थापित कर सकता है। इसके अतिरिक्त यह भी सही है कि मनुष्य सरल कथन की अपेक्षा उदाहरण एव तर्कपुष्ट कथन से अधिक तथा शीघ्र प्रभावित होता है।

(४) समस्या-प्रधान उद्धरणात्मक कथाएँ

राजस्थान प्रदेश मे मिलने वाली समस्या-प्रधान उद्धरणात्मक कथाओ के निर्माण की पृष्ठभूमि मे लोक की जिज्ञासा वर्द्धन की प्रवृत्ति, मानस-विकास की भावना, पाडित्य-प्रदर्शन की उत्कट अभिलाषा, अभिव्यक्ति कला-कौशल, चिन्तन शीलता, वाद-विवाद प्रतियोगिता की भावना एव आमोद-प्रमोद की भावना का प्राधान्य रहा है। ये कथाएँ बौद्धिक स्तर की परीक्षा करने की दृष्टि से भी पूछी जाती रही हैं। प्रश्नकर्त्ता कथा का शीर्षक मात्र समस्या-स्वरूप प्रस्तुत करता है और उत्तर देने वाला उस समस्या का निदान प्रस्तुत करता हुआ कथा को उद्धृत करता है। कई जातियो मे ससुराल आये जवाई से स्त्रियाँ पेचीदा कथाएँ पूछती हैं। एक कथा उदाहरण स्वरूप उत्तर सहित प्रस्तुत की जा रही है—

एक ककडी बेचने वाले से चार स्त्रियाँ ककडी ले जाती हैं और अपने घर का पता इस प्रकार बताती हैं—(१) हाथ मे घर, (२) घर मे घर, (३) मुँह मे घर, (४) घर के पास घर। बडा पेचीदा प्रश्न है। इसका उत्तर इस प्रकार है—

(१) हाथ मे घर—उसके घर के आगे मेहदी का पौधा लगा है।

(२) घर मे घर—घर के आगे नारियल का पेड लगा है।

(३) मुँह मे घर—घर के सामने हाथी-दात के चूडे की दुकान है।

(४) घर के पास घर—घर के पास गाँधी (इत्र बेचने वाला) का घर है। क्योकि गाँधी के घर मे रखे इत्र की सुगन्ध पास के घर तक पहुँचती है।

'पाप रो बाप' नामक कथा भी ऐसी ही समस्या प्रधान कथा है, जिसमे लोभ को पाप का बाप बताया गया है। इन कथाओ से लोक मानस के चिन्तन-गाभीर्य का सहज ही मे अनुमान लगाया जा सकता है। ये कथाएँ लोक के प्रतीक-विधान का भी प्रतिनिधित्व करती हैं। इनमे भावनाओ एव विचारो का मनोवैज्ञानिक विश्लेषण मिलता है। ये कथाएँ विकसित लोक-मानस की परिचायक हैं।

इन समस्याओं के समाधान प्रस्तुत करने वालों को पारितोषिक भी प्रदान किये जाते थे। विभिन्न सामाजिक आयोजनों पर लोग परस्पर इन समस्याओं के प्रस्तुतीकरण एवं उद्धरणस्वरूप कथा प्रस्तुत कर स्व-मनोरंजन भी किया करते थे। इसी प्रकार इनके माध्यम से लोक शिक्षण का कार्य भी सम्पन्न किया जाता रहा है। इन कथाओं में शारीरिक संकेतों के माध्यम से भी विविध प्रश्न पूछे गये हैं। (यथा—मेंहदी के पत्ते को तोड़कर पैर से लगाना, फिर चूड़े से स्पर्श करना, छाती से लगाना फिर कान में लगाकर डाल देना)। कहीं सामाजिक मान्यताओं को प्रस्तुत करते हुए प्रश्न पूछे गये हैं, और कहीं पर फाँसी चढ़ने से पूर्व आयी हँसी का म्याना (कारण) पूछा गया है।

राजस्थानी लोक-कथाओं का शिल्प-विधान

राजस्थानी लोक-कथाओं में हमें एक ओर मात्र पाँच दस पंक्तियों की कथाएँ भी मिलती हैं और दूसरी ओर तीन चार सौ पृष्ठ में समाप्य वृहद्-कलेवरा कथाएँ भी मिलती हैं। अतः कुछ कथाओं को अपवाद स्वरूप छोड़कर अन्य सारी कथाओं के कथात्मक विधान पर विचार करने से विदित होता है कि इन लोक-कथाओं में भी आधुनिक कहानी या उपन्यास के लिए आवश्यक स्वीकार गये छहों तत्त्व मिलते हैं।

किसी प्रकार की घटना, बात या विषयवस्तु के बिना लोक-कथा नितान्त निरस्तित्व है। कुछ राजस्थानी लोक कथाओं में केवल आधिकारिक कथा ही मिलती है जबकि अन्य कई कथाओं में प्रमुख कथा के साथ प्रासंगिक कथाएँ भी मिलती हैं। मांडकर कही जाने वाली कथाओं में अपेक्षतया अवान्तर कथाओं का आधिक्य मिलता है। एक के बाद दूसरी और दूसरी बाद तीसरी—इस प्रकार कथाओं की शृंखला विवर्धित ही होती जाती है। ऐसी कथाएँ प्रारम्भ होते ही क्षिप्र गति से आगे बढ़ती हैं। कुछ कथाएँ ऐसी हैं जिनमें एक ही गुण या तथ्य का बार-बार उल्लेख मिलता है। आन्तरिक अन्तर्द्वन्द्व एवं मानसिक उद्वेलन को निरूपित करने वाली कथाएँ अल्पतर हैं, जबकि शारीरिक संघर्ष का जीता जागता दृश्य प्रस्तुत करने वाली कथाएँ अधिक हैं। ऐसी कथाएँ जिज्ञासा वर्द्धन की दृष्टि से श्रेष्ठ मानी जा सकती हैं। यह भी उचित है कि ऐसी कथाओं की चरम सीमा के प्रति पाठक या श्रोता के मन में विशेष उत्सुकता नहीं रहती, क्योंकि प्रायः इन कथाओं में नायक एवं खलनायक के पारस्परिक संघर्ष को ही चरमोत्कर्ष पर विशेष रूप से दर्शाया जाता है, जिसका पाठक या श्रोता को पूर्वाभास होता है।

चूँकि यहाँ कथाएँ मौखिक रूप में मिलती हैं अतः इनमें वार्तालापों की एक-रूपता नहीं मिलती। फलतः कथा वक्ता अपनी योग्यता एवं इच्छानुसार लघु या दीर्घ वार्तालापों का निर्माण करता रहता है। वार्तालापों का निर्माण करते समय

वक्ता के मानस में अवसरानुकूलता की बात प्रधान रूप से रहती है। वह परिस्थिति एवं प्रसंग की उपयुक्तता को मद्देनजर रखकर संवादों की संयोजना करता है। वार्तालापों की मधुरता ही श्रोताओं को बाँधे रहती है। वार्तालापों के अनुसार श्रेष्ठ आंगिक चेष्टाएँ करने वाला वक्ता ही श्रोताओं पर विशेष प्रभाव छोड़ सकता है।

राजस्थानी लोक-कथाओं में उत्कृष्टतम एवं निकृष्टतम दोनों सीमाओं के चरित्रों को उद्घाटित किया गया है। दीर्घ-कलेवरा कथाओं के प्रारम्भ एवं मध्य में कुटिल चरित्र भोग-विलासरत अपार धन-राशि का अपव्यय करते कथा-नायक एवं नायिका को त्रस्त करते दिखायी देते हैं। नायक सर्वत्र साहसी, वीर, निर्भीक, संघर्षरत तथा अलौकिक कृत्य तथा असम्भव-से असम्भव कार्य करने में समर्थ दिखाया गया है और खलनायक लम्पट, भीरु एवं कामी के रूप में चित्रित है। अन्ततोगत्वा जीत नायक की होती है। वहीं खलनायक मृत्यु की गोद में सो गया है तो कहीं उसका हृदय परिवर्तित हो गया है। इन कथाओं में मनुष्यों की भाँति अन्य प्राणियों तथा निर्जीव उपादानों को भी पात्रों के रूप में चित्रित किया गया है। इनमें नदी-पहाड़, कुए-बावड़ी, सूर्य-चन्द्र एवं कई वन्य जन्तु नायक के सहयोगी तथा अवरोधक पात्रों के रूप में निरूपित हैं। परी, दैत्य, डाकण, भूत-प्रेत, राक्षस, अति-प्राकृतिक शक्ति सम्पन्न पात्र भी इन कथाओं में मिलेंगे। इनमें से कई पात्र जादुई शक्ति सम्पन्न भी होते हैं। कई कथाओं में देवता भी पात्रों के रूप में वर्णित हैं।

ऐतिहासिक कथाओं में तत्कालीन परिस्थितियों एवं वातावरण की स्पष्ट झलक दिखायी देती है। वातावरण की दृष्टि से इन कथाओं में स्थानीय रंगत एवं भौगोलिक प्रभावों का विशेष रूप से प्रस्तुतीकरण हुआ है। इन कथाओं के माध्यम से तद्युगीन सामाजिक, जातीय एवं पारिवारिक वातावरण को पुन निर्मित किया जा सकता है। ये कथाएँ उस युग की सामाजिक मान्यताओं का भी बोध कराती हैं। इन कथाओं में मिलने वाले वातावरण से राजस्थान का सच्चा इतिहास लिखा जा सकता है।

लोक-कथाओं की शैली वक्ता पर निर्भर करती है। प्रत्येक वक्ता का अपना विशेष ढंग होता है। इस ढंग में वह जितना पारंगत होगा, उस द्वारा कही गयी कथा भी उतनी ही रोचक और श्रुति प्रिय होगी। प्राय लोक-कथा-वक्ता स्थान-स्थान पर पूर्व-निर्मित वर्णनों की अद्भुत छटा से अपनी कथा को अद्वितीय रूप प्रदान करने की चेष्टा करता है। प्रत्येक कथा पर उसके वक्ता की कथन-शैली की स्पष्ट छाप रहा करती है। वस्तुत कथा-वक्ता की कथन-शैली में ही कथा का सौन्दर्य समाविष्ट रहता है। राजस्थानी लोक-कथाकार विभिन्न छोगों एवं विविध वर्णनों के अंश यथास्थान जोड़कर अपनी कथा को आकर्षक और प्रभावो-

त्पादक बनाया करते हैं।

राजस्थानी लोक कथाओं का उद्देश्य असद् वृत्तियों पर सद् वृत्तियों की विजय दिखाना रहा है, अत सभी कथाएँ सुखान्त हैं। अन्तत धर्म की ही जीत प्रदर्शित करना लोक-मानस का अभिप्रेत रहा है। कुछ कथाओं के निर्माण में मनोरंजन की भावना तो कुछ कथाओं के निर्माण मे बुद्धि-विलास प्रमुख रूप से सहयोगी रहा है। आदर्श-स्थापना भी लोक-कथाओं के निर्माण का एक कारण है। हमारे यहाँ कुछ दुखान्त कथाएँ भी मिलती हैं। इनके माध्यम से मानव को जीवन के कटु सत्यों से अवगत कराया गया है।

राजस्थानी लोक-कथाओं में मिलने वाले अभिप्राय

लोक-कथाओं का निर्माण विभिन्न अभिप्राय सूत्रों के समायोजन से होता है। ये तन्तु सर्वाधिक ध्यानाकर्षक होते हैं। इन्हें सहज ही में एक कथा से विलग कर दूसरी कथा की विषयवस्तु से जोड़ा जा सकता है। सर्वसाधारण द्वारा शीघ्र ही मे याद रखे जाने वाले य तत्त्व असाधारण होते हैं। यथा—'माता' अभिप्राय नहीं हो सकती पर 'सौतेली निर्दयी माता' एक अभिप्राय है। यहाँ पर हम राजस्थानी लोक-कथाओं में मिलने वाले विशिष्ट अभिप्रायों की तालिका प्रस्तुत कर रहे हैं—

(क) पौराणिक अभिप्राय

(१) मानव की उत्पत्ति ईश्वर के मुँह, पेट, भुजा व पैरों से चारों वर्णों की उत्पत्ति

(२) स्वर्ग

(अ) अभिशप्त जीव का स्वर्ग से पतन

(आ) स्वर्ग में पूर्वजों को खाना पहुँचाना

(इ) स्वर्ग में पूर्वजों की दाढ़ी बनाने के लिए नाई को भेजना

(ई) स्वर्ग की अदृश्य सीढ़ियाँ

(३) नरक

(४) देवताओं के विविध रूप

(अ) सूर्य का मानव रूप धारण करना

(आ) चन्द्रमा का पक्षी रूप धारण करना

(इ) पृथ्वी का नारी-रूप धारण करना

(ई) पार्वती का 'सुगन चिड़ी' बनकर उड़ जाना

(५) पुत्र-प्राप्ति हेतु देवताओं को बलि चढ़ाना

(६) देवताओं का मनुष्य-रूप में पृथ्वी पर भ्रमण करना

(७) वचनबद्ध 'बैमाता' द्वारा भाग्य-लेख बताना

(ख) पशु-पक्षी एवं अन्य जीवों से सम्बन्धित अभिप्राय

(१) (अ) पशु १—बुद्धिमान पशु

२—चातार पशु (क) स्वय को मुसीबत मे बचाने वाले

(ख) दूसरों को मुसीबत से बचाने वाले

(ग) नासमझ को समझ देने वाले

(घ) अभिमानी का घमड चूर करने वाले

३—धूर्त पशु (क) अपने मित्रो को धोखा देने वाले

(ख) लालची मनुष्य को लालच देकर मारने वाले

(ग) राहगीरो को भ्रमित कर दैत्यों व ठगो तक पहुँचाने वाले

४—पशुओं द्वारा भविष्यवाणी

५—पशुओ का अद्भुत दरबार

६—पशुओ का विवाह

७—पशु एव मानव का विवाह

८—पशुओ द्वारा निर्दिष्ट इलाज से असाध्य रोग का निदान

९—विश्वासपात्र एव सहायक पशु

१०—पशुओ मे मनुष्य से प्रतिशोध लेने की भावना

११—सूर्यमुखी घोडा

१२—पवनपदी घोडा

१३—स्वर्ण-मृग

१४—निर्णायक के रूप मे पशु

१५—अभिशप्त पशु

(आ) पक्षी १—पक्षियों का मानव-वाणी मे बोलना

२—चकवे-चकवी का वार्तालाप (नायक पर आने वाली आपत्तियो का उल्लेख)

३—वृक्ष की जडो मे गडे खजाने को बताने वाला कौआ

४—लकडी का बना तैरने वाला एव द्रुत गति से उडने वाला हस

५—'सुगन चिडी' द्वारा अच्छे एव जहरीले लड्डुओ मे परिवर्तन करना

६—सिर मे कील ठोकने पर पक्षी बन जाना

७—मन्त्र के धागे को गले मे बाँधते ही मनुष्य का पक्षी बन जाना

(इ) अन्य जीव (अ) विपन्न सर्प को सुरक्षा मिलना
१—मनुष्य के पेट मे
२—राहगीर के कटोरे मे
(आ) सर्प द्वारा रूपाकृति-परिवर्तन
१—नौलखा हार बन जाना
२—लकडी बन जाना
३—मनुष्य बन जाना (स्त्री के होठो का स्पर्श पाते ही)
४—शिशु बन जाना
(इ) सर्प द्वारा रक्षित खजाना
(ई) रक्षित खजाने की प्राप्ति का रहस्योद्घाटन सर्प द्वारा
(उ) सर्प की मणि दिखाते ही पानी का दो भागो मे बँट जाना
(ऊ) कृतघ्न सर्प
(ए) कृतज्ञ सर्प
(ऐ) सर्प का नियमित रूप से दूध पिलाना
(ओ) साँप की फूंक से मनुष्य का पत्थर बन जाना
(औ) उडने वाला अजगर
(क) सोने का साँप
(ख) सर्प का मानव-वाणी मे बोलना
(ग) सर्प के साथ दाम्पत्य-जीवन बिताना

(ग) वर्जनाएँ
१—वर्जित स्थान एव क्षेत्र
२—वर्जित दिशा
३—अभिशप्त स्त्री के मुँह को देखने की वर्जना
४—परी को नग्नावस्था मे न देखना
५—पति या पत्नी की जाति न पूछना
६—अलौकिक स्त्री को विशिष्ट अवसरो पर न देखना
७—वर्जना की शर्त तोडने पर अन्धा हो जाना, मर जाना या गायब हो जाना
८—पत्नी रूप मे रहने वाली परी को स्नान करते समय निर्वसना न देखना
६—वर्जित नदी का पानी पिलाने पर मनुष्य का मोर, कुत्ता और साँप बन जाना

१०—रूप एव आकृति मे परिवर्तन

(घ) जादू

(१) (अ) जादुई शक्ति से एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य की शक्ल दे देना

(आ) जादुई शक्ति से मनुष्य को पशु या पक्षी बना देना

(इ) जादुई सूत्र बाँधने से मनुष्य का रूप-परिवर्तन व उसके टूटने पर पुन मनुष्य-रूप धारण

(२) लिखावट मे परिवर्तन

(अ) जादुई अजन लगाने पर अति-प्राकृतिक शक्तियो की लिखावट को देख सकना

(आ) जादुई कलम से पत्र के वर्ण्य-विषय मे परिवर्तन

१—मृत्यु के स्थान पर विवाह लिखना

२—मृत्यु के स्थान पर नायक को अभीप्सित वस्तु उसे देने का लिखना

३—जादुई प्रभाव से यौवन-प्राप्ति

४—जादुई प्रभाव से पुनर्जीवन-प्राप्ति

५—जादुई कडाहे से अटूट भोजन की प्राप्ति

६—सोने की 'मीगणियाँ' करने वाली जादुई बकरी

७—जादुई अजन (इसके लगाने से देश व काल के पर दिखायी पडना)

८—बाल मे जादुई शक्ति

९—जादुई प्रभाव से परस्पर भिडते भाखरो (पर्वतो) का रुक जाना

१०—जादुई वस्त्र धारण करने पर मानव द्वारा उडान भर सकना सम्भव

११—जादुई ओषधियाँ

१२—जादुई विमान

१३—जादुई खडाऊँ पहिनने पर उड सकना सम्भव

१४—जादुई चुटिया (लकडी)

१५—जादुई चिमटा

१६—जादुई उपकारी पलग

१७—मन्त्र-शक्ति

(अ) मन्त्र-सिद्धि से रक्त की बूंदो को हीरे-मोतियो मे परिवर्तित कर देना

(आ) उडते विमान का रुक जाना एव उडना

१—मन्त्रित पंख के स्पर्श से

२—मन्त्र-पाठ से

(इ) अभिमन्त्रित जल

१—ऐसे जल से मृत को जीवित करना

२—ऐसे जल के स्पर्श से यौवन-प्राप्ति

३—ऐसा जल छिड़ककर स्त्री को वशीभूत कर लेना

(ई) अभिमन्त्रित फल

१—खाने से यौवन-प्राप्ति

२—खाने से सन्तान-प्राप्ति

(उ) किसी पर 'मूठ' फेंककर उसे मार देना

(ऊ) 'कामण' द्वारा मनुष्य को वशीभूत करना

(ए) मन्त्र-बल से बाग को सुखा देना एव हरा करना

(ऐ) मन्त्र-बल से वर्षा कराना

(ओ) निर्मल जल-कूप के जल को मन्त्र-बल से सुखा देना

(औ) मन्त्र-बल से झोपड़ी के स्थान पर महल-निर्माण

(क) अभिमन्त्रित चन्दन का पलना

(ख) पक्ष-स्पर्श से वृद्ध से युवक बन जाना

(ग) काले हरिण की सींग में मन्त्र लिखा कागज छुपा देने से वर्षा का न होना

(छ) राक्षस और भूत-प्रेत

(१) राक्षस अथवा दैत्य

(अ) नरभक्षी राक्षस

(आ) दैत्य द्वारा अपहृत बालिका या राजकुमारी

(इ) दैत्य के प्राणो की अन्यत्र स्थिति

१—सात समुद्र पार मन्दिर मे रखे पिंजरे के तोते मे

२—अमृत की डिबिया मे

३—पशु के पेट मे रखे पिंजरे के तोते मे

(ई) दैत्य द्वारा नायक की उम्र का विधाता से पता लगाना

(उ) दैत्य के वहाँ रहने वाली सुन्दरी द्वारा नायक को मक्खी बनाकर रखना

(ऊ) सुन्दरी की सहायता से दैत्य की मृत्यु का रहस्य जानना

(ए) अपहृत नारियो को छुड़ाने वाले साहसी युवको को दैत्य द्वारा पत्थर की मूर्ति बना देना

(ऐ) दैत्य के प्राणो तक पहुँचाने वाली राह की अनोखी कठिनाइयाँ

१—भिड़ते भाखर (पर्वत)

२—उड़ते साँप
३—बोलने वाली व व्यक्ति को निगलने वाली गुफाएँ
४—गगन-स्पर्शी विकराल वह्नि
५—मन्त्र-ज्ञाता मगरमच्छ
(ओ) दैत्य का वज्र-सदृश कठोर शरीर
(औ) दैत्य द्वारा रक्षित खजाना
(क) लालची दैत्य
(ख) विवाह मंडप से दुल्हन का अपहरण करने वाला दैत्य
(ग) झूला झूलती ललनाओं का अपहरण करने वाला दैत्य
(घ) साधु वेशधारी राक्षस
(ङ) दैत्य की मृत्यु
१—सिंहनी के दूध से स्नान तलवार से
२—साँप से पीटे जाने पर
३—सात तहखानों के अन्दर पड़ी तलवार से सिर काटने पर
४—गर्भिणी लोमड़ी व कौए के रक्त से रंगा हरिणी का सींग छाती में घुसेड़ने पर
५—वर्जित बावड़ी के पानी में सात बार नहलाई तलवार से
(च) दैत्य के दाँत का चूड़ा
(२) डाकण (डाइन), चुड़ैल, स्यारी और सीकोतरी
(अ) पलंग के नीचे से सात बार निकलकर बिरछी रूप धारण करना
(आ) मृत बालक को कब्र से सात बार निकालकर उसका कलेजा खाना
(इ) डाकण का कहा
(ई) डाकण द्वारा रक्त-पान
(उ) कलेजे पर जीभ फेरने वाली डाकण
(ऊ) डाकण की सवारी बिल्ली या सिंहनी या ऊँटनी
(ए) चूड़ा खड़खड़ाकर एक ओर से हँसकर डराना
(ऐ) मन्त्र-बल से दूध घी इत्यादि स्यार लेना
(ओ) दुधारू पशु को नजर लगा देना
(औ) सीकोतरी द्वारा मृतक का कलेजा खाना
(३) भूत-प्रेत
(अ) चोटी पकड़े जाने पर भूत का वश में होना
(आ) भूत द्वारा रूप-परिवर्तन
१—पशु-रूप धारण—ऊँट, भैंसा, बकरा, भेड़
२—पक्षी-रूप धारण—कबूतर, गिद्ध

३—बीटोरा (काँटो का ढेर) बन जाना
४—किसी व्यक्ति-विशेष का रूप धारण कर लेना
(इ) मन्त्रो से भूत को बाँधा जाना
१—वृक्ष में कील ठोककर
२—घड़े या दीवडी मे बन्द करके गाड देना
(ई) व्यक्ति के पिंड मे भूत का प्रवेश
(उ) व्यक्ति द्वारा भूतो की उपासना (श्मशान-साधना)
१—बाकले चढाना
२—बकरे की बली
३—अपनी कनिष्ठिका का रक्त चढाना
(ऊ) भूतो द्वारा व्यक्ति की सहायता
१—सुदूर प्रदेशो मे पहुँचाना
२—गड़ा हुआ धन बताना
३—रात-भर मे परकोटा बनाना या वापिका निर्मित करना
(ए) छाया रहित भूत
(ऐ) उलटे पैरो का भूत
(ओ) बिना सिर का भूत, माथे बायरो सईस
(घ) चमत्कार या अद्भुत कार्य
(१) अन्य लोक मे गमन
(अ) पाताल गमन
१—मन्त्र-बल से
२—सर्प के साथ
(आ) इन्द्रलोक गमन
१—परियो के साथ (विमान पकडकर)
२—मन्त्र-बल से
३—इन्द्र से वरदान प्राप्त ढोलक-वादन या नृत्य म
(२) अन्य लोक के प्राणियो का पृथ्वी पर आगमन
(अ) परियो का
१—स्त्री रूप मे
२—पक्षी-रूप मे
(आ) देवताओ का मनुष्य-रूप मे पृथ्वी पर विचरण
(३) अद्भुत प्रण
(अ) मोतियो की पगरखी वाली से विवाह करना
(आ) सोनल केशो वाली से विवाह करना

(इ) स्वप्न मे दिखायी देने वाली स्त्री से
(ई) कुदुम के पगलियो वाली से
(उ) हीरे-मोतियो से जडे चीर को ओढने वाली स
(ऊ) मौन भग करवाने वाले से
(ए) पहेलियो का सही उत्तर देने वाले से
(ऐ) असम्भव कार्य कर दिखाने वाले से
(ओ) भोजन करने से पहले जूते खाने वाले/वाली से

(४) अद्भुत घटनाएँ एव असम्भव कार्य
(अ) चीटी द्वारा उत्पन्न ऊँट
(आ) हल को कान पर व बैलो को कधे पर लटकाये रखना
(इ) चील द्वारा ऊँटो के टोले को उडा ले जाना
(ई) समुद्र मे गिरे हार को प्राप्त करना
(उ) सात कोस मे बिखरी राई को नियत अवधि तक इक्टठी करना
(ऊ) अमरफल लाना
(ए) डाकण का कडा प्राप्त होना
(ऐ) अमृत लाना
(ओ) पैंप के फूल लाना
(औ) वासुकि की मणि प्राप्त करना
(क) मनो फूलो का रस लाना

(५) अनाखे स्थान एव वस्तुएँ
(अ) स्वर्ण-महल
(आ) पानी का महल (बादल-महल)
(इ) कुकुम और केसर से निर्मित महल
(ई) अद्भुत कार्यों को प्रत्यक्ष करके दिखाने का आग्रह

(छ) परीक्षाएँ
(१) पहेलियाँ पूछना
(२) उलझे हुए प्रश्न करना
(अ) अकल कहाँ रहती है ?
(आ) अकल क्या खाती है ?
(इ) दूध स सफेद क्या है ?
(ई) आसमान से ऊँचा क्या है ?
(उ) अन्धकार से काला क्या है ?
(ऊ) जबरो कुण ? (जबर्दस्त कौन)
(ए) सत किण म ? (सत किसम)

(ऐ) बीदणी किण री ? (वधू किसकी)
(ओ) धणी कुण ? (पति कौन)
(औ) पाप का बाप कौन ?
(३) पेचीदे प्रश्नो के उत्तर निर्जीव वस्तुओं द्वारा
(अ) हार द्वारा
(आ) खाट द्वारा
(इ) चूदडी द्वारा
(ई) पीलजोत द्वारा
(४) विवाहार्थियो के समक्ष शर्त रखना
(अ) मौन-भग की
(आ) चौपड मे जीतने की
(इ) कटघरे को खोले बिना उसमे बन्द सिंह को बाहर निकालना
(ई) समुद्र मे गिराये हार को पुनः प्राप्त करना
(उ) सात मोस मे बिखरी राई को इकट्ठा करना
(ऊ) अमरफल लाना
(ए) मृत पूर्वजो के समाचार लाना
(ज) बौद्धिक कौशल एवं मूर्खता
(१) बौद्धिक कौशल
(अ) विक्रयार्थ बाजार मे आयी प्रत्येक वस्तु को खरीद लेना (हानिकारक भी)
१—सजीव—मनुष्य, पशु, कीडे-मकोडे
२—निर्जीव—उपले, पत्थर, लकडी, दिवाला
(आ) कथा-श्रवण से खोये पति को प्राप्त कर लेना
(इ) पिंजरे मे स्थित मोम के सिंह को पिंजरे के पास आग ले जाकर पिघला देना
(२) मूर्खताएँ
(अ) अपने-आपको न गिनना
(आ) बिना कारण जाने दूसरो को रोता देखकर रोने लगना
(इ) जिस डाल पर बैठना उसी को काटना
(ई) धूप से गर्म हो जाने पर गाडी को बुखार आया मानना
(उ) बुढिया की मक्खियो से रक्षा करते हेतु तलवार लेकर खडे रहना
(ऊ) कान मे लगे लाल धागे को देखकर स्वय को मृत समझना
(झ) धोखा
(१) कुरूप दूल्हे (या दुल्हन) के स्थान पर रूपवान दूल्हे (या रूपवती दुल्हन) को भेजना

(२) साथी को धोखे मे रखकर अनुचित बँटवारा करना
(३) चोरी का धन
(४) चोरो के धन को हड़प लेना
(अ) पेड पर से चमडा गिराकर
(आ) विचित्र प्रकार की बोली बोलकर
(५) सोये हुए को कुएँ म डाल देना
(६) पानी निकालते समय कुएँ म धकेल देना
(७) मर्दाना वेश धारण किये रहने से अपनी पुत्री को नही पहचानना
(८) पत्नी के साथ मर्दाना वेश धारण कर सोई पुत्री को मार डालना
(९) भ्रम-वश वफादार पशु पक्षी को मार डालना
(ञ) भविष्यवाणी एव स्वप्न दशन
(१) भविष्यवाणी
(अ) मनुष्यो और देवताओ द्वारा
(आ) पशु पक्षियो एव जीवो द्वारा
(२) भविष्यवाणी से आगे आने वाले दुखो का ज्ञान हो जाना
(३) स्वप्न-दशन
(अ) भावी पत्नी सम्बन्धी
(आ) भविष्य म मिलने वाली धन राशि स सम्बन्धित
(इ) स्वप्न दशन साहसिक कार्यों के प्रेरक
(ई) आधा सच्चा आधा झूठा स्वप्न
(ट) भाग्य एव सयोग
(१) कमवाद
(अ) पाप कर्मी
(आ) आप-कर्मी
(ठ) वरदान अभिशाप
(१) अभिशप्त जीवन यापन
(अ) सप के रूप म
(आ) पशु के रूप म
(इ) पक्षी के रूप म
(ई) कुरूप पुरुष या स्त्री के रूप मे
(२) शाप मुक्ति
(अ) निश्चित अवधि बीत जाने पर
(आ) शिव पार्वती द्वारा
(इ) मनुष्येतर रूप की खाल जला देने पर

(३) अभिशप्त अप्सरा या देव
(४) अभिशप्त पत्नी का मुख देखने पर अन्धा हो जाना
(५) अभिशप्त पत्नी के शरीर का स्पर्श करते ही मर जाना
(६) शाप के भय से पतिव्रता की देह न छूना

(ड) विविध अभिप्राय

(१) पुनर्जीवन-प्राप्ति
(२) देश निकाला
(३) लाग-डांट (दो व्यक्तियों में, दो देवताओं में, दो अमूर्त भावों में)
(४) पुनरागमन प्रतीक्षा
(५) असम्भव का सम्भव से निराकरण
(६) हरा पेड़ जीवन का प्रतीक
(७) कब्र पर उगे पौधे प्रेमी-युगल के प्रेम का प्रतीक
(८) तारे का टूटना, किसी बड़े आदमी की मृत्यु का सूचक
(९) सबसे छोटे लड़के का सर्वाधिक साहसी होना
(१०) अद्भुत शपथ
(११) सदावत बाँटना
(१२) विविध रूपों को धारण करने वाली मृत्यु
(१३) पशु द्वारा राजा का चुना जाना
(१४) दृष्टि-गर्भ।

उक्त विवेचन से विदित होता है कि राजस्थानी लोक कथाओं का अक्षय-कोष विषय-वैविध्य से भरा-पूरा है। इसमें पृथ्वी से लेकर आकाश तक की सारी बातें न्यूनाधिक रूप में वर्णित हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इन लोक-कथाओं का संग्रह करके वैज्ञानिक प्रक्रिया को अपनाते हुए राजस्थानी समाज की विचारधाराओं, आदर्शों, अन्धविश्वासों, रूढ़ियों, परम्पराओं आदि का अध्ययन किया जाय।

अध्याय : ४

राजस्थानी लोक-गाथा

लोक-गाथा क्या है ?

विविध मतभेदों के पश्चात अब हिन्दी क्षेत्र में 'लोक-गाथा' शब्द अंग्रेजी शब्द Ballad (बैलेड) के समानार्थी के रूप में प्रतिष्ठित हो चुका है। प्रारम्भ में इस शब्द के अर्थ को घोषित करने के लिए ग्राम गीत, नृत्य-गीत, आख्यान-गीत, आख्यानक-गीत, वीर-गाथा, वीर गीत, वीर-काव्य आदि अनेक शब्दों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु आज (लोक गाथा) यह शब्द (बैलेड के लिए) रूढ एव सर्वमान्य हो गया है।

अंग्रेजी का 'बैलेड' (ballad) शब्द लैटिन के ballare शब्द से निष्पन्न है। मूलत इस शब्द का अर्थ 'नाचना' होता है। वेबस्टर के शब्दकोश में संज्ञा-शब्द ballade का अर्थ 'a dancing song' एव क्रियापद ballare का अर्थ 'to dance' दिया गया है। इसी कोश में ballad की परिभाषा इस प्रकार से दी गयी है—

'A short narrative poem, especially such as is adepted for singing a poem partaking of the nature both of the Epic and the lyric'[1]

आगे चलकर पौर्वात्य एव पाश्चात्य विद्वानों ने लोक वार्ता की इस समृद्ध विधा को कई प्रकार से परिभाषित किया। विश्व विश्रुत ब्रितानिका शब्दकोश में कहा गया है कि लोक-गाथा एक ऐसी पद्य शैली है जिसका रचयिता अज्ञात होता है, जिसमें साधारण उपाख्यान का वर्णन हो और जो सरल मौखिक परम्परा के लिए उपयुक्त तथा ललित कला की सूक्ष्मताओं से रहित हो।[२]

प्रोफेसर कीटीज ने बैलेड को ऐसा गीत बताया है जिसमें कोई कथा कही

---

1 Webster's New Twentieth Century Dictionary, p 138

२ इनसाइक्लोपीडिया ब्रितानिका पृ० ९९३

गयी हो अथवा दूसरी दृष्टि से विचार करने पर बैलेड वह कथा है जो गीतों में कही गयी है।[1] लोक गाथा सरल वर्णनात्मक गीत है जो लोक मात्र की सम्पत्ति होती है और जिसका प्रसार मौखिक रूप से होता है।[2] लोक गाथा गान के लिए रची गयी एक ऐसी कविता है जो सामग्री की दृष्टि से सर्वथा व्यक्ति शून्य हो और सम्भवतः उद्भव की दृष्टि से सामुदायिक नृत्य से सम्बद्ध हो किन्तु जिसमें मौखिक परम्परा प्रधान हो गयी हो। इसके गाने वाले साहित्यिक प्रभावों से मुक्त होते हैं।[3] लोक गाथा छोटे पदों में रचित एक ऐसी प्राणमयी सरल कविता है जिसमें कोई लोकप्रिय कथा बहुत ही विशद रीति से कही गयी हो।[4] अमेरिका के प्रसिद्ध विद्वान मैक एडवर्ड लीच ने बैलेड को प्रबन्धात्मक या आख्यानात्मक लोक गीत का एक प्रकार माना है।[5] डा० कृष्णदेव उपाध्याय के अनुसार लोक गाथा वह गाथा या कथा है जो गीतों में कही गयी हो।[6] हिन्दी में यह शब्द (लोक गाथा) वृत्तान्त या जीवनी के अर्थ में प्रयुक्त होता है। गाथाओं में आख्यानों का सूक्ष्म उल्लेख या संकेत होने के कारण कालान्तर में यह शब्द आख्यान कहानी या जीवन वृत्तान्त के ही अर्थ में प्रयुक्त होने लगा ऐसा प्रतीत होता है।[7]

महाराष्ट्र में इस अर्थ के द्योतनार्थ पवाड़ा शब्द का प्रचलन है। गुजराती

---

1 English and Scotish popular ballads p 11 (A ballad is a song that tells a story or to take other point of view a story told in song)

2. Simple narrative songs that belong to the people and are handed on by word of mouth फ्रैंक सिजविक Old ballads भूमिका पृ० 3

3 A poem ment for singing quite impersonal in meterial probably conected in its origin with the communial dance but subsitted to a process of oral tradition among people who are free from literary influences and fairly monogams in character

—A handbook of literature (Ballad) एच० वी० गुमर पृ० 37

4 A simple spirited poem in short stanzas in which some popular story is graphically told

—डा० मरे (रावर्ट ग्रेव्स की The English Ballad की भूमिका से पृ० 8)

5 Form of narrative song Dictionary of Folklore

६ भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन पृ० २६०

७ हिन्दी साहित्य-कोश भाग १ डा० धीरेन्द्र वर्मा पृ० २९८

लोक-साहित्यविद् श्री झवरचन्द मेघाणी ने इसे कथा-गीत कहा है।[1] राजस्थान के विद्वान श्री सूर्यकरण पारीक ने 'बैलेड' के लिए 'गीत-कथा' नाम उपयुक्त समझा।[2]

इस बात पर प्राय सभी विद्वानों मे मतैक्य है कि 'बैलेड' मे नृत्य का प्रमुख स्थान रहा है। हमारे यहाँ पर भी प्राचीन काल मे रास, फाग, चर्चरी आदि सामूहिक नृत्य प्रचलित थे। गोल घेरे मे नर्तन करना भी इसकी एक प्रमुखतम विशेषता रही है। एक विद्वान के मतानुसार 'बैलेड' के विकास मे नृत्य का भी सहयोग रहा है। उनके ही शब्दो मे—'We can at the most say that dance has been a contributing, but not dominent factor in the development of ballad forms'[3]

शनै शनै नृत्य के साथ साथ गीत भी जुडते गये। कालान्तर मे नृत्य को कम महत्व दिया जाने लगा और कथा-विशेष गीतो के कलेवर मे सजने-सँवरने लगी। चौदहवी शताब्दी तक तो बैलेड मे गीत एव नृत्य का ही प्राधान्य रहा पर सोलहवी शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक उसमे कथा का प्रामुख्य हो गया। अब बैलेड एक कथात्मक गीत हो गया। नृत्य इसका आवश्यक अग न रह गया फिर भी नृत्य का कथा एव गीत के साथ साथ प्रचलन रहा। यहाँ तक आते-आते इसमे शैली-पटुता एव वर्णन कौशलता का भी समावेश हो गया। अब 'बैलेड' के लिए कार्य (घटना), चरित्र, वर्ण्य-विषय एव इन सभी का उचित सयोजन (action, character, theme and setting) ये चार तत्त्व आवश्यक हो गये। कार्य का इन सबमे प्राधान्य रहा। वर्ण्य-विषय प्राय एक-सा रहता। चरित्र बहुधा पूर्व-निर्धारित रहते। इस प्रकार सामूहिक नृत्य के रूप मे प्रारम्भ होने वाला 'बैलेड' समय चक्र के साथ गेय-कथात्मक रूप तक पहुँच गया। लोक गाथाओ की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे अनेक विद्वानो का अनुमान है कि लोक-गाथाओं का उद्भव सामूहिक प्रयास से ही सम्भव है। पर इस सम्बन्ध मे इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इनके विकास मे सामूहिक प्रयत्नो का भी पूर्ण योगदान रहा है।

कई लोगो ने लोक गाथा, अवदान एव धर्म-गाथा को एक ही समझने की निरी भूल की है। अवदान के विषय का प्रमुख स्रोत इतिहास है। धर्म-गाथा एव पौराणिक गाथा मे धार्मिकता एव ईश्वर सम्बन्धी बातो की प्रमुखता पायी

---

१ लोक साहित्य, (धरती नु धावण) खड १, पृ० ५१

२ राजस्थानी लोक गीत, पृ० ७८

3 Folklore Reader, Theories of Origin, Evelyn Kendrick Wells, p 337

जाती है। इनमें संस्कृति के उद्भव एवं विकास की बात भी रहती है। सामाजिक और सांस्कृतिक रीति-रिवाजों का उल्लेख रहता है। पर लोक-गाथा इनसे पूर्णतः भिन्न है। इसमें ऐतिहावृत्त कल्पना में बिन्दुओं से भी घिरे रहते हैं और धर्म तथा संस्कृति भी लोक-विश्वासों एवं धारणाओं से आवृत रहती है।

राजस्थानी लोक गाथाओं पर दृष्टिपात करने पर ज्ञात होता है कि लोक-गाथा एक गेय कथा होती है। इसमें बीच-बीच में गद्यावतरणों का भी प्रयोग होता रहता है जो गीतों में कथाओं की जोड़ी वाले होते हैं। इन कथात्मक गीतों के साथ सांगीतिक यन्त्रों एवं लोक-वाद्यों का भी प्रयोग होता है। कुछ राजस्थानी लोक-गाथाओं के साथ तो एक निश्चित लोक-वाद्य ही बजाया जाता है, यथा—पाबूजी की पड़ के साथ रावण हत्थे का प्रयोग। राजस्थान में प्रचलित सभी गाथाओं के साथ अवश्य ही किसी न-किसी वाद्य का प्रयोग किया जाता है। राजस्थानी लोक-गाथाओं में कथा के अतिरिक्त गीत, संगीत एवं नृत्य का त्रिवेणी संगम पाया जाता है। लोक-गाथाएँ अन्य विधाओं की अपेक्षा लोक की सभ्यता एवं संस्कृति के तत्वों का सही प्रतिनिधित्व करने वाली हैं।

लोक-गाथाएँ दीर्घ गीत-कथाएँ हैं जिनका उद्देश्य सर्वसाधारण का आमोद-प्रमोद करना रहा है। लोक ने अपने रक्षक नर-पुंगवों, प्रेमी-युगलों की कथाओं को इन गीतों के माध्यम से ही याद रखा है।

लोक गाथाओं के प्रारम्भ के सम्बन्ध में भी विद्वानों में पर्याप्त मत-वैभिन्य है। कुछ लोग इनके प्राकट्य के परिपार्श्व में सामुदायिक प्रयास का प्राधान्य स्वीकारते हैं। अन्य कुछ विद्वान लोक-गाथाओं को जाति-विशेष की देन मानते हैं। कई यह धारणा रखते हैं कि ये एक व्यक्ति द्वारा निर्मित हुई और समूह द्वारा अपना ली गयी। कालान्तर में इन पर से वैयक्तिकता की छाप मिट गयी और समूह की छाप लग गयी। मारिया लीच ने भी यह स्वीकारा है कि लोक-गाथाएँ साहित्यिक कवियों की देन हैं न कि आदिम एवं बर्बर जातियों की। इनमें लोक के साहित्यिक मानस की अभिव्यक्ति हुई है। मारिया लीच ने तो लोक-गाथा को लोक-वार्ता, अवदान एवं स्थानीय इतिहास का अद्भुत मिश्रण बताया है।[1] इनके प्रारम्भ के सम्बन्ध में भले ही विद्वानों में मतैक्य न हो पर सभी ने स्वीकारा है कि इनका प्रचलन मौखिक रूप से था। हजारों वर्षों से लोगों के मुख पर ही प्रतिष्ठित रहने के कारण इनमें सुधार एवं परिवर्तन होते रहे। इनके रूप एवं विषय में भी परिवर्तन होते रहे और इनकी घटनाएँ और शैली भी बनती बदलती रही। मुख्यतः तो इनमें एक आधिकारिक कथा रहती है पर उसमें अनेकानेक उपकथाएँ समुफित रहती हैं।

---

१ डिक्शनरी ऑफ फोकलोर, मारिया लीच, पृ० १०७

ऋग्वेद (१।७।१) में 'गाथिन्' शब्द का प्रयोग ऐसे व्यक्ति के लिए हुआ है जो किसी प्राचीन आख्यान या कथा को कहने वाला हो। 'गाथा' शब्द से इन् प्रत्यय करने पर इस पद की निष्पत्ति होती है, अतः 'गाथा' शब्द का अर्थ हुआ कोई आख्यान या कथा। ऋग्वेद में 'गाथा' शब्द एक विशिष्ट मन्त्र के अर्थ में भी प्रयुक्त हुआ है। कालान्तर में गाथा एक छन्द भी बन गया।

वैदिक युग में गाथाओं का इतना अधिक महत्त्व था कि 'रैभी' और 'नाराशंसी' गाथाओं की अलग रचना हुई। सायण-भाष्य के अनुसार विवाह के अवसर पर विभिन्न वैवाहिक विधियों के समय जो गीत गाये जाते थे वे 'रैभी','नाराशंसी' गाथा के नाम से प्रसिद्ध थे। इससे ज्ञात होता है कि वैदिक युग में शुभ अवसरों पर गाये जाने वाले गीतों को भी 'गाथा' ही कहा जाता था। ऋग्वेद के कुछ सूक्तों और नाराशंसी गाथाओं को प्राचीनतम लोक-गाथाएँ माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त वैदिक काल में विशिष्ट राजा के सत्कृत्य के सम्बन्ध में जो जनगीत गाये जाते थे उन्हें भी 'गाथा' ही कहा जाता था। ब्राह्मण ग्रन्थों पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि गाथाएँ 'ऋक्', 'यजु' और 'साम' से पृथक् होती थीं। ऐतरेय ब्राह्मण में 'ऋक्' एवं 'गाथा' में पार्थक्य दर्शाया गया है। 'ऋक्' दैवी होती थी और 'गाथा' मानुषी। गाथाओं की उत्पत्ति में मनुष्य का ही उद्योग प्रधान कारण होता था। (ऐतरेय ब्राह्मण, ७।१८) शतपथ ब्राह्मण एवं ऐतरेय ब्राह्मण में भी वैदिक गाथाओं के उदाहरण मिल जाते हैं जिनमें अश्वमेध यज्ञ करने वाले राजाओं के उदात्त चरित्र का वर्णन किया गया है। इस समय तक गाथा को साहित्य का एक पृथक् अंग स्वीकार लिया गया था। निरुक्त में दुर्गाचार्य ने यह स्पष्टतः कहा है—

> 'स पुनरितिहास ऋग्बद्धो गाथा बद्धश्च
> तृच प्रकार एव कश्चित् गाथेत्युच्यते।
> गाथा शंसति नाराशंसी शंसति इति
> उक्त गाथानां कुर्वीतेति।'[1]

प्राचीन आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं के एकत्र संकलन का ही नाम 'पुराण' माना गया है। पुराणों में भी 'सुपर्ण की गाथा' तथा 'कद्रु एवं वनिता की गाथा' आदि गाथाएँ मिल जाती हैं। पुराणों में गाथा का कितना महत्त्व है, इसे स्वयं व्यास ने स्पष्ट किया है—

> 'आख्यानैश्चाप्युपाख्यानैर्गाथाभिः कल्पशुद्धिभिः
> पुराण संहिता चक्रे पुराणार्थ विशारदः।

---

१ निरुक्त, ४।६ (दुर्गाचार्य की टीका)

प्रख्यात व्यास शिष्योऽभूत् सूतो वैलोमहर्षण.
पुराण संहिता तस्मै ददौ व्यासो महामुनि ॥"[1]

बुद्ध भगवान के समय तक आते-आते गाथाओं का प्रचलन सर्वसाधारण में हो गया था। वैदिक काल में जिन गाथाओं पर मन्त्र-पाठी ब्राह्मण का ही अधिकार था वे अब जनसाधारण की सम्पत्ति बन गयीं। यद्यपि गाथाओं का प्रचार वैदिक काल में भी था पर इस समय तक इनका प्रसार अधिक बढ़ गया। सातवाहन ने लोक-प्रचलित सहस्रों गाथाओं में से ही सात सौ गाथाओं का चयन कर 'गाथा-सप्तशती' नामक पुस्तक का प्रणयन किया। यही इसका पुष्ट प्रमाण है। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित कथाओं एवं गाथाओं का एकत्रीकरण 'जातक' नामक पालि-ग्रन्थों में हुआ है। अपभ्रंश काल में लोक-तत्वों एवं लोक-जीवन के सम्बन्ध में वर्णन करने वाला ग्रन्थ मिलता है—'सन्देश रासक'। 'काव्यानुशासन' में हेमचन्द्र ने 'रासक' को गेय रूप माना है। 'रासक' को इस समय की लोक गाथाओं के आधार पर निर्मित माना जा सकता है। कई विद्वानों का मत है कि वाल्मीकि ने 'रामायण' की रचना तत्कालीन राम-सम्बन्धी लोक-प्रचलित लोक-गाथाओं के आधार पर ही की।[2] इसके अतिरिक्त लव और कुश वीणा पर 'रामायण' का गान करते हुए ऋषिगणों को प्रसन्न रखते थे। इसमें भी लोक-गाथा के तत्व दृष्टिगोचर होते हैं। महाकाव्यों की रचना और विकास में भी लोक-गाथाओं का विशेष योगदान रहा है।

उक्त विवेचन से यह पुष्ट भी हो जाता है कि भारत-भूमि पर अत्यन्त प्राचीन काल से चरित-गाथाओं, यज्ञ-गाथाओं, नीति-गाथाओं तथा साहित्यिक गाथाओं का प्रचलन रहा है। आज भी विभिन्न प्रदेशों में अनेक गाथाएँ लोक मनोरंजनार्थ गायी और सुनी जाती हैं। कुछ पौराणिक चरित्रों पर आधारित लोक-गाथाएँ ऐसी हैं जो भारत के प्रायः सभी प्रान्तों में पायी जाती हैं। प्रान्त-भेद से उनमें भाषा-भेद अवश्य आ गया है और न्यूनाधिक विषय-परिवर्तन भी।

लोक-गाथा-नायक : एक विवेच्य प्रसंग

लोक-गाथा के नायक का स्वरूप लोक-गाथा के निर्माण में एक प्रमुख प्रेरक तत्व रहा है। प्रत्येक समाज में वीरता का भाव सदैव पूज्य रहा है। 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' और 'Might is Right' जैसी कहावतें भी इसी बात की पुष्टि करती हैं। एक वीर नायक समाज में दीर्घ अवधि तक प्रतीक एवं आदर्श के रूप में प्रतिष्ठित रहता है। देश और देश के बाहर भी उसकी अमिट छाप

---

१ विष्णु-पुराण, अंश ३, अंक ६

2 History of the Indian Literature, Vol I, विन्टरनीत्स, पृ० 311

सदैव विद्यमान रहती है। आत्मिक जगत मे जितनी प्रतिष्ठा एव महत्ता एक सन्त की होती है उतनी ही प्रतिष्ठा और महत्ता एक बहादुर की वीरत्व के समार मे होती है। जिसने अपने अद्वितीय शौर्य से समाज को गौरवान्वित किया है वह उस समाज को अपने शौर्य के प्रभा मडल से देदीप्यमान रखता है। ऐसा वीर समुदाय के सदस्यो के शरीर का ही राजा नही होता अपितु वह उनके हृदय का ईश भी होता है। वे समस्त सदस्य उसे आदर और श्रद्धा से देखते हैं। मानव की प्रारम्भिक अवस्था मे प्रत्येक मनुष्य प्रसिद्धि एव बदनामी (Fame and Blame) के दृष्टिकोण से बडा सावधान रहता था। प्रसिद्धि एक मनुष्य के जीवन को बहुमूल्य बना देती थी पर बदनामी उसके जीवन का अवमूल्यन कर देती थी। उस जमाने मे मनुष्य को नाम की बहुत भूख थी, जैसा कि निम्न पक्तियों से विदित होता है—

> 'Cattle die, and Kinsmen die
> And so one dies one's self,
> But a noble name will never die,
> If good one gets.'[1]

गौरवशाली पद प्राप्ति की पिपासा ही व्यक्ति मे असह्य आपदाओ को सहन करने की शक्ति सचरित करती थी। उन दिनो आदर और प्रसिद्धि—ये दोनो ही एक व्यक्ति के जीवन के प्रधान आधार थे। वीर के लिए तो ये प्राथमिक आवश्यकताएँ थी। यद्यपि आज भी व्यक्ति वैयक्तिक बेइज्जती को कथमपि सहन नही कर सकता, पर उन दिनो व्यक्ति को वैयक्तिकता की अपेक्षा सामुदायिक प्रतिष्ठा का अधिक ध्यान रखना पडता था। तब उसे अपने अतिरिक्त समस्त पारिवारिक सदस्यों के लिए भी सोचना पडता था। यही प्रसिद्धि की भूख सदैव उसमे वीरता का सचार करती रहती थी। यही प्रसिद्धि गीतो मे गायी जाती थी। समाज के समक्ष सर्वदा के लिए आदर्श बन जाती थी। यह कामना मनुष्य में सहज रूप मे पायी जाती थी। एक विद्वान के अनुसार—

'It is the heroic ideal of the warrior to be atrong and courageous, to conquer all opponents, and so to win fame with prosperity All ever the world this thirst for glorious remembrance ■ yound It ■ innate in man Many an unappreciated artist or scholar has yound consolation in the though that posterity would give him the honour that his own time denied him'[2]

---

1. The Haramal or the Lay of the High, stanza 77
■ Heroic Song and Heroic Legend, J an de Vries, p 180

वीरत्व-व्यजक इन गीतों में अन्य लोगों को प्रेरित करने की एव शिक्षा देने की अद्वितीय शक्ति है। समाज के सदस्यों के लिए ऐसे वीर नायक का चरित्र अनुकरणीय आदर्श होता है। उसका प्राकट्य समाज के लिए अजीब घटना एव अनोखा मोड होता है। राजस्थान प्रदेश में भी ऐसी कई लोक-गाथाएँ मिल जायेंगी जिनके नायक का पालन-पोषण ननिहाल में होता है। कभी-कभी ऐसा नायक अपनी माता के साथ किसी जगल में एकान्तवास करता दिखायी देता है। प्रकट में उसके शत्रुओं के खतरों का डर रहता है। कई बार वह उचित शिक्षण से वचित रह जाता है। फिर भी वह इतना निपुण और पारगत होता है जिससे यही अनुमान लगाया जा सकता है कि ईश्वर ने परोक्ष रूप में उसे सभी विद्याएँ प्रदान कर दी।

गाथा नायक के स्वरूप निर्माण में उसके जीवन की अद्वितीय घटनाओं के अतिरिक्त अनेक प्रकार की अन्य घटनाओं और अनोखे कृत्यों का भी योगदान रहता है। उसका चरित्र तो अनुपम आदर्शों का मिश्रित रूप होता है। अत नायक के बारे में जानकारी प्राप्त करने हेतु पूर्ण रूप से इतिहास पर आश्रित नहीं रहा जा सकता। इतिहास में जहाँ नायक के जीवन से सम्बन्धित दो चार उल्लेख्य घटनाएँ मिल जायेंगी वहाँ लोक-गाथा में बीस पच्चीस अद्वितीय घटनाएँ प्राप्त होंगी।

अनेक गाथाओं में वीर नायक का जन्म कुमारी कन्या के गर्भ से हुआ बताया गया है। वह ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न होता है। कई बार वह ईश्वरीय शक्ति-सम्पन्न होता है। कई बार वह ईश्वर के अश से ही उत्पन्न होता है। कई गाथाओं में पशु के रूप में रहने वाला अभिशप्त देव ऐसे वीर का पिता बताया गया है। राजस्थान में मिलने वाली 'बगडावत' नामक गाथा में हम ऐसा ही वर्णन मिलता है। ऐसे वीर का जन्म कभी कभी निकट सम्बन्धियों के साथ किये गये व्यभिचार का परिणाम भी हो सकता है। ऐसे वीर नायक का जन्म बहुत ही अप्राकृतिक ढग से होता है। कुछ गाथाओं में ऐसा भी वर्णन पाया जाता है कि वीर बालक को जन्म लेते ही उसके असली माँ बाप त्याग देते हैं और उसका भरण-पोषण अन्य दम्पति से होता है। वीर नायक का बचपन बहुत ही आपदाओं से ग्रसित रहता है। कई बार वीर को प्रकट करने में प्रमुख हाथ उसके पिता का रहता है। ऐसी परिस्थिति में उसके पिता को स्वप्न में ज्ञात होता है कि उसका पुत्र उसके लिए घातक सिद्ध होगा और तब उसका पिता उसे प्रकट करने के लिए कटिबद्ध हो जाता है। प्रकट होने से पूर्व कई वीर बालक पशुओं से आहार पाते रहे या गडरियों के सरक्षण में रहे। अन्य लोगों के सम्मुख जाते समय कुछ वीर ऐसे भावों को प्रदर्शित करते हैं कि भ्रमवश लोग उन्हें गूँगे एव अविकसित मस्तिष्क वाले बालक जान लेते हैं। ऐसे वीर नायकों के कृत्यों के प्राय किसी

दैत्य से युद्ध होता तो वर्णित रहता ही है। अत यह वीर नायक भयानक कठिनाइयो को पार करता हुआ अन्तत किसी सुन्दरी को प्राप्त करता है। इन वीरो की जीवनी मे मृत्यु-लोक के अतिरिक्त स्वर्ग या पाताल-लोक की यात्रा के वर्णन भी पाये जाते हैं। प्राय. ऐसे वीरो को 'देश निकाला' दे दिया जाता है। इस समय मे वे अनेकानेक अद्भुत कृत्यो को सम्पन्न कर पुनश्च स्वदेश को लौट आते हैं। ये वीर नायक अपने युवा-काल मे ही कराल-काल के गाल मे समा जाते हैं। प्रत्येक देश की लोक-गाथाओ मे गाथा नायक का ऐसा ही चरित्र मिलता है। प्रेम प्रधान एव भक्ति-निर्वेद-प्रधान लोक-गाथाओ के नायको के स्वरूप मे कुछ भेद अवश्य पाया जाता है पर वीर-गाथाओं मे तो यही स्वरूप न्यूनाधिक परिवर्तन से मिल जाता है। राजस्थान प्रदेश मे पायी जाने वाली वीर-गाथाओ मे तो नायक का यही स्वरूप मिलता है। अन्य प्रकार की गाथाओं की बात और है, जिसका विवेचन यथावसर कर दिया जायेगा।

राजस्थानी लोक-गाथाओं की सामान्य विशेषताएँ

(१) अज्ञात रचयिता

राजस्थान प्रदेश मे मिलने वाली लोक-गाथाओ पर व्यक्ति विशेष की छाप नही है। आज किसी को भी ज्ञात नही है कि ये रत्न किस मानस की अनूठी देन हैं। अपने प्रारम्भिक रूप से वर्तमान स्वरूप की प्राप्ति तक इनमे कितने परिवर्तन हुए, यह अविदित है। इनके रूप-विकास मे कब, किसने और कितना योगदान दिया, यह बताना सामर्थ्य स परे है। समाज के कठ पर सुशोभित होने वाली य हीरक मणियाँ सामूहिक प्रभाव स प्रभावित हैं। इन गाथाओं म व्यक्ति के वैयक्तिक मानस की अपेक्षा उसके सामूहिक मानस न अधिक अभिव्यक्ति पायी है। जिस प्रकार एक अलकृत काव्य मे उसका लेखक अपने काव्य-पात्रो के सम्बन्ध मे वैयक्तिक राय भी रखता है, उस प्रकार का विधान हमे लोक-गाथाओ म नही मिलता। 'बगडावत' गाथा के माध्यम स बगडावतो के यश का प्रसार किसने किया ? 'नागजी नागवन्ती' के प्रेम की पावन भावना को लोक मे पहुँचाने वाला कौन है ? पाबूजी के अलौकिक वीर कृत्यो का अकन 'पड' पर करके उनकी कीर्ति पताका को किसने फहराया ? इन सभी प्रश्नो का उत्तर पा लेना असम्भव है। लोक-गाथा का रचयिता अज्ञात रहता है। इस सम्बन्ध मे फ्रेंक सिजविक के विचार उल्लेख्य हैं—

'The first and the formost quality of the ballad in any language is not its personality but its impersonality'[1]

---

१ द बैलेड, फ्रैंक सिजविक, पृ० ११

(२) मंगलाचरण का विधान

राजस्थानी लोक गाथाओं की दूसरी उल्लेख्य विशेषता यह है कि प्रत्येक गाथा के प्रारम्भ में मंगलाचरण मिलता है। प्रत्येक मंगलाचरण में सर्वप्रथम गणेश-वन्दना मिलती है। गणेश स्तवन के पश्चात अन्य देवी देवताओं की स्तुति की जाती है। लोक-मानस ने किसी भी देवी-देवता का किसी से भी कम नहीं समझा है। लोक-गाथाओं में सभी पौराणिक देवताओं एवं लोक-देवताओं की स्तुति का विधान है। लोक-गाथाओं की परम्परा मौखिक रही है। जिस प्रकार गाथा के वर्ण्य-विषय में परिवर्तन होते रहे हैं उसी प्रकार मंगलाचरण में भी सम्वर्द्धन होते रहे हैं। कुछ पौराणिक लोक-गाथाएँ ऐसी भी मिल जायेंगी जिनमें मंगलाचरण में उल्लिखित लोक-देवता का आविर्भाव-काल गाथा-नायक के काल के पश्चात ठहरता है। यह भी आवश्यक नहीं है कि मंगलाचरण में देव-संस्तवन का कोई क्रम-विशेष हो। गायक अपनी इच्छानुसार एवं स्मृति के अनुसार क्रम में हेर-फेर करता रहता है। कुछ गाथाओं के मंगलाचरण के साथ एकाध लघु कथा भी जोड़ दी जाती है इसके परिपार्श्व में लोक के मनोरंजन की भावना ही प्रधान रूप से रही है। इन पंक्तियों के लेखक ने 'पाबूजी की पड़' अलग-अलग समय में अलग-अलग भोपों से सुनी। एक भोपे ने प्रारम्भ में गणेशजी की वन्दना करके उनके वाहन मूषक के बारे में वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। यह वर्णन भी चमत्कारक है। इसमें चूहे एवं चुहिया के दाम्पत्य-जीवन का चित्रण किया गया है। पति-पत्नी का मान-मुटाव, हर्ष-शोक, रूठना-मनाना सभी बातों का विवेचन किया गया है। 'मतराळी ऊंदरी' अपने पति से 'रीसाणी' करके चली गयी—'अदरे अदरी रै हुई लड़ाई, जुड़ियो भारत भारी' कहकर भोपा इस लघु-कथा के वर्णन को शुरू करता है। अन्तत हारकर चूहा चुहिया को मनाने जाता है। वर्णन ऐसा है कि श्रोतागण हँस-हँसकर लोट-पोट हो जाते हैं/लगते हैं। कुछ गाथाओं के मंगलाचरणों में हिन्दू-देवों की स्तुति के समान मुस्लिम पीर-पैगम्बरों की भी स्तुति की गयी है। यह दोनों संस्कृतियों के मंजुल मेल का प्रतीक है। कभी-कभी मंगलाचरण के अन्त में धर्म एवं आदर्श गुणों को सर्वोत्कृष्ट बताया जाता है। कई गाथाओं के नायकों को भी देव-तुल्य बताकर उनका भी स्तवन किया गया है। यहाँ हम उदाहरण स्वरूप 'बगड़ावत' लोक-गाथा का मंगलाचरण प्रस्तुत करना चाहते हैं—

> 'पैली विनायक सिंवरजो, च्यार भुजाधारी। रिध सिध नारी, थारे मूसे री असवारी ॥
>
> विघन विनायक सिंवरजा, पौरस ने अगनि रो छड़मांन। रिध सिध भाळानाथ ने सिंवरजो, पारवती रो नाथ ॥

गढ़ी, मढ़ी, कोटडी, पुडले, वडले रा सवार, इतरी विलिया सिवरियें पारवतो रा पूत ॥
सदा भवानी दायनी, सुण गुणेस, पांच देव रिछ्या करें बिरमा बिसनू महेस ॥
आरद राणी सारद राणी, बरण वेद म तू ही वखाणी । वेता है लख च्यार, विद्या मागे सरसती रें यार ॥
कोढ नै टूटो मोद नै आखर दोई च्यार । सारद वडी ससार ॥
कानन कुण्डळ सिर जटा, अग भभूत लगाय । माहादेव नैं सिंवरो मेघाडम्बर छाय ॥
बिहद रचायी धरतरी ओ'''अकास ! म्हे पुरख नही है माय अर बाप ॥
नरसिंहाजी ने सिवरजो धर मे राखो पोर ।'''पैल्हाद'''सकट पड़्या ईं जोर ॥
ध्रुव रो तारो सिवरजो, बिरख्या के री जोड ! '''लका राळी तोड ॥
सरवर हसला सिंवरजो सोनेभरणी (बरणी) वाव । बळमी घोडी''' पदम पवर से पाच ॥'

(३) लोक-वाद्यो का प्रयोग

राजस्थानी लोक-गाथाओ के साथ लोक-वाद्यो का प्रयोग भी होता है । कई गाथाएँ तो ऐसी हैं जिनको गाते समय वाद्य-विशेष का ही प्रयोग होता है । पर अनुमानत कहा जा सकता है कि सभी गाथाओ मे किसी-न-किसी वाद्य का प्रयोग होता ही है । वाद्य का प्रयोग गीत के साथ सगीत का विधान करने के लिए होता है । एक 'बगडावत' के गायक को किसी वाद्य की प्राप्ति न हुई तो उसने पीतल की थाली बजाकर ही काम चला लिया । वाद्य के प्रयोग से गायक को कुछ आराम भी मिल जाता है । सगीत के सहयोग के बिना गाथा श्रुति-प्रिय भी नही लगती । सगीत और गीत का अभिन्न साहचर्य गाथा मे ही मिलता है । गीत और सगीत के सामजस्य से गाथा और भी सरस बन जाती है । एक आग्ल-विद्वान ने तो यही तक कहा है—

'The ballad is incomplete without an exciting and repetitive music '[1]

भारत नाम से जानी जाने वाली समस्त राजस्थानी गाथाओ मे वाद्य-यन्त्रो का प्रयोग होता है । गोपीचन्द-भर्तृहरि की दीर्घ गेय गाथाएँ भी किसी-न किसी वाद्य-यन्त्र के साथ ही गायी जाती हैं । इन वाद्य-यन्त्रो मे 'रावण-हत्था', 'डेरू',

१ द इग्लिश बैलेड, राबर्ट ग्रेव्स, पृ० १७

'तन्दूरा', 'थाली', चंग' आदि प्रमुख हैं।

(४) स्थानीय रंग

यद्यपि इस प्रदेश में प्रचलित गाथाओं में से अधिकांश गाथाओं के नायक इसी प्रदेश के नर-रत्न हैं तथापि कुछ नायक ऐसे भी हैं जिन पर सम्पूर्ण आर्यावर्त का समान रूप से अधिकार है। पर ऐसी गाथाओं पर दृष्टिपात करने से स्पष्टत ज्ञात हो जाता है कि इन गाथाओं पर भी स्थानीय वातावरण की पूरी-पूरी छाप है। यहाँ के रहन-सहन, रीति-रिवाज, खान-पान, वेश-भूषा सभी का इन गाथाओं में वर्णन हुआ है। इस प्रान्त के निवासियों की मान्यताओं और धारणाओं का भी पूरा-पूरा ब्यौरा हमें इन गाथाओं में मिल जाता है। इस प्रदेश में घटित घटनाओं के संकेत भी मिल सकते हैं। अनेक स्थल ऐसे भी चुने जा सकते हैं जहाँ गाथा-नायक की उपमा अन्य किसी लोक-नायक या देवता से दी गयी है। यह समस्त स्थानीयता का ही प्रभाव है। कुछ पौराणिक गाथाओं के मंगलाचरण में लोक-देवताओं की स्तुति करके स्थानीय प्रभाव का निर्वाह किया गया है। गाथाओं में यथावसर लोक-प्रचलित दोहों को जोड़कर स्थानीयता को ही बढ़ावा दिया गया है। ऐसे दोहे प्रसगानुसार किसी भी गाथा में जोड़े जा सकते हैं। ऐसे दोहों से कभी-कभी ऐतिह्यवृत्त भी उभरकर सामने आ जाते हैं। ये दोहे भी गाथा पर स्थानीयता की मुहर लगा देते हैं। इस सम्बन्ध में एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

किसी स्त्री के मान-वर्णन का प्रसग आने पर यह दोहा जोड़ा जा सकता है—

'मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान।
दो-दो गयद न बधसी, एकै खभू-ठाण॥'

कृपणता का उल्लेख आने पर निम्न दोहा जोड़ दिया जाता है—

'खाया सो ही खरचिया, दीना सो ही दत्त।
जसवन्त घर पौढ़ाविया, माल पराये हत्थ॥'

इस प्रकार के दोहों से यहाँ की स्थानीय घटनाओं का ज्ञान होता है।

राजस्थानी लोक-गाथाओं में राजस्थानी प्रकृति का चित्रण भी मिलता है। ये गाथाएँ ऐसे स्वच्छ दर्पण हैं जिनमें यहाँ की प्रकृति एव लोक-मानस का सही प्रतिबिम्ब दिखायी देता है। इन गाथाओं में वर्णित ऊँट और घोड़े इस प्रदेश की अमूल्य निधियाँ हैं। इनमें उल्लेखित लघु-कथाएँ (गौ-धन-हरण पर प्राणोत्सर्ग करना, विपन्न की सहायता करना, वचनबद्ध हो जाने पर किसी भी कीमत पर वचन का पालन करना आदि) यहाँ के मानस को सही माने में प्रतिबिम्बित करती हैं।

(५) प्रत्येक गाथा के रूपात्मक-गठन में अन्तर

राजस्थान में मिलने वाली प्रत्येक गाथा का अपना रूप है। सभी गाथाओं के पद्यात्मक गठन में अन्तर है। भले ही इनमें शास्त्रीय छन्दों का प्रयोग न हुआ

हों पर इन सभी में अपना-अपना छन्द-विधान है। इनके अतिरिक्त इनमें एक समानता भी पायी जाती है और वह है टेक पदों की पुनरावृत्ति। यह लोक-गाथाओं की सामान्य विशेषता है। ये टेक-पद कभी तो कथा के प्रारम्भ की ही एक पंक्ति होते हैं और कभी वर्णन विशेष में तत्सम्बन्धी प्रारम्भिक पद्य की प्रथम पंक्ति। कई बार ईश्वर या किसी देवता के नाम के साथ दो-चार और शब्द जोड़ लिये जाते हैं और वही पंक्ति टेक पद का काम करती है। यथा—'बगडावत' में 'म्हने भोळा शम्भू (भोळानाथ) री आण' या 'म्हने म्हारा जीव री आण' का टेक-पद के रूप में प्रयोग किया गया है। इन सभी गाथाओं की कथा को कहने का ढंग भी अलग अलग है। जिस ढंग से 'बगडावत' की गाथा गायी जाती है उस ढंग से 'तेजा' नहीं गाया जाता और 'पाबूजी की पड़' का अपना ढंग है तो 'निहालदे-सुलतान' का अपना।

(६) गीतांशों के बीच गद्यावतरणों का प्रयोग

राजस्थानी लोक-गाथाओं में गीतांशों के साथ-साथ गद्यावतरणों का भी स्थान-स्थान पर प्रयोग पाया जाता है। ये गद्य-खंड गीतों में वर्णित कथा को जोड़ने के लिए कड़ी का काम करते हैं। कभी-कभी गद्य में ही कुछ कथा कह दी जाती है और तब गीत में आगे की कथा का विवेचन मिलता है। कई बार गद्य का प्रयोग कथा की व्याख्या करने के लिए भी किया जाता है। राजस्थानी गाथाओं में अपेक्षतया कथा का गेय रूप में कम ही मिलता है। प्राय प्रमुख घटनायें गेय रूप में वर्णित हैं। गेय रूप के समाप्त होते ही गद्य में कथा कहकर सत्वर गति से आगे बढ़ा जाता है। फिर पुनश्च किसी मुख्य घटना का निरूपण गेय रूप में पाया जाता है।

(७) संदिग्ध ऐतिहासिकता

सभी प्रदेशों की लोक-गाथाओं की भाँति राजस्थानी लोक-गाथाओं के चरित्रों के ऐतिहावृत्त भी पूर्णरूपेण नहीं मिलते। यदि मिलते भी हैं तो उनके ऐतिहासिक रूप एवं गाथा-नायक के रूप में रात-दिन का अन्तर मिलता है। इससे हमें एक बार भ्रम भी हो सकता है कि गाथा में वर्णित यही चरित्र इतिहास में मिलने वाला ही है अथवा नहीं। इन सभी पात्रों की ऐतिहासिकता संदिग्ध होती है। ऐसी ही बात राजस्थानी गाथाओं के मूल-पाठ के सम्बन्ध में कही जा सकती है। जिस रूप में आज हम गाथा मिलती है, वह कितने परिवर्तनों को झेल चुकी है, इस सम्बन्ध में कुछ भी निश्चित रूप से कहना कठिन है। आज मिलने वाले पाठ की प्रामाणिकता को जोर देकर सिद्ध नहीं किया जा सकता। कोई भी नहीं जानता कि यह पाठ कितना विकृत है।

(८) व्यंग्य-वाक्य—नायक के लिए प्रेरणा-स्रोत

राजस्थान प्रदेश में कुछ गाथाएँ ऐसी भी मिल जाती हैं जिनमें वर्णित 'भाभी

की व्यंग्य-वाक्यावली' कथा को नया मोड़ देने का कार्य करती है। व्यंग्य-वाक्य कथा-नायक को अद्भुत कार्य करने के लिए प्रेरित एवं प्रोत्साहित करते हैं। ये वाक्य उसके लिए चुनौती का काम करते हैं। कई बार पनिहारिनों के 'अवळे बोल' कथा के प्रमुख पात्र को प्रेरित करते हैं। 'चौपड़ री पवाड़ो' और 'तेजाजी' की गाथा में ये वाक्य ही कथा को अग्रसर करने का मूलाधार हैं।

(६) अन्तर्कथाओं की बहुलता

राजस्थानी लोक-गाथाओं की एक यह भी विशेषता रही है कि इनमें अन्तर्कथाओं की भरमार रहती है। इन अन्तर्कथाओं में कुछ कथाएँ तो आधिकारिक कथा से सम्बन्ध रखती हैं और अन्य कुछ अन्तर्कथाएँ मुख्य कथा से असम्बद्ध होती हैं। ऐसी अन्तर्कथाएँ प्रसंग विशेष [illegible] ही सम्बन्धित होती हैं। 'निहालदे-सुलतान', 'बगडावत' एवं 'पाबूजी री पड़' में ऐसी अनेकानेक अन्तरकथाएँ मिलती हैं। 'पाबूजी री पड़' की बूढ़े-बुढ़िया वाली कथा और 'बगडावत' में भगवान और देवी दोनों में बड़ा कौन है? इससे सम्बन्ध रखने वाली कथा प्रसिद्ध अन्तर्कथाएँ हैं।

राजस्थानी लोक-गाथाओं में सीधे और सरल चित्र पाये जाते हैं जो सहज-तया सर्वसाधारण की समझ में आ जायें। इन लोक-गाथाओं में व्यंग्यात्मक चित्र भी बहुतायत से मिल जाते हैं। ये व्यंग्य अधिकांशतः राजनीतिक पहलुओं से सम्बन्धित हैं। इनमें सुखांत और दुखांत दोनों प्रकार की गाथाएँ मिल जाती हैं। लोक-प्रचलित विश्वासों को भी इन गाथाओं में स्थान मिला है, जो लोक-मानस का प्रतिनिधित्व करते हैं। इन गाथाओं में वर्णित प्रेम जीवन के संघर्षों का सामना करता हुआ भी अन्त में सफल होता हुआ प्रदर्शित किया गया है। राजस्थानी लोक-गाथाओं में ऐतिहासिक तथ्यों, परा-प्राकृतिक तत्त्वों, जादुई शक्तियों, जाँच अभियोग की कथाओं, दैनन्दिन होने वाले क्रिया-कलापों का अच्छा दिग्दर्शन कराया गया है।

आज इस युग में इन गाथाओं का दिनोंदिन महत्त्व घटता जा रहा है। इनके प्रचार और प्रसार में पूर्ववत् गति नहीं है। यदि यही स्थिति रही तो वह दिन भी दूर नहीं है जब राजस्थान के जन-मानस से निःसृत इन अमूल्य मणियों का महत्त्व जन साधारण में भी न रहे। इस सम्बन्ध में जी० एफ० किटरेज के विचार उल्लेख्य हैं—

'जैसे-जैसे सभ्यता का विकास होता गया वैसे-वैसे लोक-गाथाएँ सम्भ्रान्त समाज से हटकर निम्न लोक के अन्तर्गत जाती गयीं, जिनमें कातने-बुनने वाले, हल चलाने वाले तथा चरवाहे प्रमुख हैं।'[1]

---

१ चाइल्ड इंग्लिश एंड स्काटिश पापुलर बैलेड्स, भूमिका, जी० एफ० किटरेज, पृ० १२७

इतना होते हुए भी राजस्थानी लोक-गाथाओं का भावात्मक महत्त्व एवं कलात्मक मूल्य अक्षुण्ण है। इनकी वाक्-शैली का सौन्दर्य प्रशस्य है। गाथाओं में मिलने वाली कल्पना की सम्पन्नता इनकी उल्लेख्य विशेषता है। इनका महत्त्व प्राचीन संस्कृति के संरक्षक के रूप में भी है और नवीन सभ्यता एवं संस्कृति के उपादानों को ग्रहण कर विकसित होने की दृष्टि से भी है।

लोक-गाथाओं का वर्ग-विभाजन एवं राजस्थानी लोक-गाथाएँ

प्रत्येक प्रदेश में मिलने वाली लोक-गाथाओं को प्रमुख रूप से दो आधारों पर वर्गीकृत किया जा सकता है। इनमें एक आधार तो आकृति परक अथवा लोक-गाथा के कलेवर से सम्बन्ध रखता है और दूसरा आधार उन गाथाओं का वर्ण्य-विषय है। कलेवर की दृष्टि से यदि विचार किया जाये तो समस्त लोक-गाथाओं को दो वर्गों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वर्ग में बृहत् गीत-कथाएँ परिगणित होंगी और द्वितीय वर्ग लघु गीत-कथाओं का होगा। कलेवर की दृष्टि से तो राजस्थान प्रदेश की लोक-गाथाएँ भी उक्त दो वर्गों में ही विभाजित होंगी। 'बगड़ावत', 'पाबूजी री पड़', 'निहालदे-सुलतान' आदि गाथाएँ बृहत् गीत-कथाओं की श्रेणी में गिनी जायेंगी एवं 'डूंगजी-जवारजी रो गीत', 'गोपीचन्द भर्तृहरि' आदि की गाथाएँ लघु गीत-कथाओं की श्रेणी में रहेंगी।

परन्तु अधिकांश विद्वानों ने लोक-गाथाओं के वर्ग-विभाजन के समय उनके वर्ण्य-विषय को अधिक महत्ता दी। वर्णित विषय को दृष्टिगत रखते हुए विद्वानों ने लोक-गाथाओं को नानाविध वर्गीकृत किया है। कुछ विद्वानों ने लोक गाथाओं के वर्गीकरण का मुख्य आधार सौन्दर्य-शास्त्रपरक अथवा कला परक स्वीकारा है। जैसा कि एक विद्वान ने लिखा भी है—

'If the ballad is to be classified at all, it must be classified on aesthetic grounds, the best possible grounds, after all, for the literary Critic.'[1]

डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय ने लोक-गाथाओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है[2]—

(१) प्रेम कथात्मक,
(२) वीर कथात्मक,
(३) रोमांच कथात्मक।

लोक-वार्ताविद् टेम्पल महोदय ने लोक गाथाओं को ६ चक्रों (Cycles)

---

1 The Common Muse, p. III
२ भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, डॉ० उपाध्याय, पृ० ३६४

मे विभाजित किया है[1]—

(१) रसाल चक्र—(चमत्कारपूर्ण साहसी कार्यों से सम्बन्धित),

(२) पांडव-चक्र—(महाभारत के प्रकार की गाथाएँ),

(३) शौर्य और सिद्धि समन्वित (गूगा-चक्र-योद्धाओ व सिद्धो से सम्बन्धित),

(४) सिद्ध सम्बन्धी,

(५) मल्ली मरवर सम्बन्धी,

(६) स्थानीय वीरो से सम्बन्धित।

डॉ० सत्या गुप्त ने अपने शोध-प्रबन्ध 'खड़ीबोली का लोक-साहित्य' मे लोक-गाथाओ की तीन श्रेणियाँ बनायी हैं।[2]

प्रो० कीटीज ने भी लोक गाथाओं के दो प्रकार माने हैं[3]—

(१) चारण गाथाएँ (मिस्ट्रल बैलेड),

(२) परम्परागत गाथाएँ (ट्रेडिशनल बैलेड)।

प्रो० गूमर ने इन गाथाओ को ६ श्रेणियों मे बाँटा है[4]—

(१) प्राचीनतम गाथाएँ (ओल्डेस्ट बैलेड),

(२) कौटुबिक गाथाएँ (बैलेड्स ऑफ किनशिप),

(३) दोषपूर्ण और अलौकिक गाथाएँ (कोरोनेच एंड बैलेड्स ऑफ द सुपर नेचुरल),

(४) निजधरी गाथाएँ (लीजेन्डरी बैलेड्स),

(५) सीमान्त गाथाएँ (बार्डर बैलेड्स),

(६) आरण्यक गाथाएँ (ग्रीनवुड बैलेड्स)।

एक अन्य आंग्ल-विद्वान ने लोक-गाथाओ के चार प्रकार—परम्परानुगत लोक गाथाएँ, चारण लोक-गाथाएँ, प्रकाशित लोक-गाथाएँ और साहित्यिक लोक-गाथाएँ माने हैं। डॉ० कृष्णकुमार शर्मा ने राजस्थानी लोक-गाथाओ को दृष्टि मे रखते हुए उनका निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया है[5]—

(१) वीर कथात्मक लोक-गाथाएँ,

(२) प्रेम कथात्मक लोक गाथाएँ,

(३) रोमाच कथात्मक लोक-गाथाएँ,

(४) पौराणिक लोक-गाथाएँ,

---

1. The legends of the Panjab, First part, Introduction, Sir R. C Temple, p 12
२. खड़ीबोली का लोक साहित्य, डॉ० सत्या गुप्त, पृ० २४१
३. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (षोडश भाग), प्रस्तावना, पृ० १०५ से उद्धृत।
४ वही, पृ० १०६
५ परम्परा २१-२२, सन १९६६, पृ० १२५

(५) निर्वेद कथात्मक लोक-गाथाएँ।

पाश्चात्य देशों में लोक-गाथाओं की सशक्त परम्परा रही है। मौखिक परम्परा में मिलने वाली लोक-गाथाओं से अत्यधिक प्रभावित होकर वहाँ के प्रसिद्ध कवियों ने अनेक 'बैलेड्स' का प्रणयन किया। वहाँ पर 'ट्रेडिशनल बैलेड्स' एवं 'स्ट्रीट बैलेड्स' की जोरदार परम्परा रही है। इस प्रकार के 'बैलेड्स' के वर्गीकरण के सम्बन्ध में एक विद्वान ने लिखा भी है—

'I have arranged the ballads in seven books of which the first deals with Megic and the supernatural, the second (and on the wholemost beautiful) with stories of absolute romance and the third with romance shading off into real history, the fourth with Early Carols and ballads of Holy writ, the fifth book is of the Green wood and Bobin wood, the sixth follows history down from Chevy Chase and the Homeric deeds of Dougles and Percy to less renowned if not less spirited Border Feuds, while the seventh and last book presents the ballad in various aspects of false beginning and decline '[1]

हमें राजस्थानी लोक-गाथाओं के विषयगत वर्गीकरण करने से पूर्व इनके सम्बन्ध में कुछ विशेष रूप में ज्ञातव्य बातों का उल्लेख कर देना समीचीन प्रतीत होता है। राजस्थानी लोक गाथाओं की विशेषताओं के बारे में पहले ही जानकारी दी जा चुकी है। यहाँ हम यह बता देना चाहते हैं कि राजस्थानी लोक-गाथाओं के नामों के साथ कुछ पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग भी मिलते हैं। पारिभाषिक शब्द इन गाथाओं के स्वरूप, रचना विधान वर्ण्य-विषय, चित्रांकन आदि बातों का प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। 'पड़' नाम से जानी जाने वाली गाथाओं में जिज्ञासु कथा के साथ साथ पटांकित चित्रों का लाभ भी उठा सकते हैं। 'भारत' नाम से मिलने वाली गाथाओं में युद्धों का प्राधान्य पाया जाता है। 'पाबूजी एवं देवनारायण' की पड़ें प्रसिद्ध हैं तो 'माताजी रो भारत' और 'काळा गोरा रो भारत' भी प्रसिद्ध हैं। 'व्यावलो' नामक गाथाओं में कथा-नायक के जन्म (कभी कभी गर्भाधान में ही) से लेकर विवाह तक के कार्यों का ब्यौरा मिलता है। विवाह के कुछ समय पश्चात या कभी कभी विवाह सम्पन्न होते ही नायक सन्यास धारण कर लेता है। गरासिया जाति में इन 'व्यावलों' का अधिक प्रचलन है। इन व्यावलों में 'रामसा पीर रो व्यावलो', 'मीरा बाई रो व्यावलो', 'दयालु बाई रो व्यावलो', 'अणची बाई रो व्यावलो' और 'शंकर

---

1. The Oxford book of Ballads, Preface, p vii-ix

रो ब्यावलो' आदि बहुत प्रसिद्धि प्राप्त हैं।

हमारे दृष्टिकोण से राजस्थानी लोक-गाथाओं को प्रमुख रूप से चार वर्गों में रखा जा सकता है—

(१) प्रेम-प्रधान लोक-गाथाएँ,
(२) वीरत्व-व्यंजक लोक-गाथाएँ,
(३) पौराणिक लोक-गाथाएँ (पौराणिक चरित्रों एवं पौराणिक प्रसंगों से सम्बन्धित)
(४) भक्तिपरक लोक-गाथाएँ।

राजस्थानी लोक-गाथाएँ

वर्गीकरण के अनुसार राजस्थानी लोक-गाथाओं का अध्ययन करने से पूर्व राजस्थान प्रदेश की प्रसिद्ध लोक-गाथाओं के कथानकों का संक्षिप्त विवरण देना उचित प्रतीत होता है। अत यहाँ पर हम इन गाथाओं का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

यहाँ हम यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि विद्वानों ने 'बैलड' के समानार्थी शब्द 'लोक-गाथा' के लिए गीत, संगीत एवं नृत्य—तीन आवश्यक तत्त्व माने हैं। पर सभी राजस्थानी लोक गाथाओं के साथ नृत्य आवश्यक तत्त्व के रूप में नहीं जुड़ा हुआ है। कुछ गाथाओं का समायोजन विधिपूर्वक होता है और कुछ बृहत्-लघु गीत-कथाओं को भिखारी आदि गाते फिरते हैं। विधिवत आयोजन की दृष्टि से पाबूजी की पड, बगड़ावत, देवनारायण की पड, निहालदे सुलतान आदि गाथाएँ उल्लेख्य हैं। इनमें गीत और संगीत के साथ नृत्य तत्त्व भी जुड़ा रहता है। पाबूजी की गाथा को गाते समय भोपा नृत्य भी करता है।

(१) बगड़ावत

लीला सेवड़ी (लीला सेडी) नामक गाँव में एक नरभक्षी सिंह का बड़ा आतंक था। सिंह के कारण प्रतिदिन कोई-न-कोई अप्रिय घटना घटित होती रहती। अन्तत एक वीर क्षत्रिय ने उसको मारकर उस गाँव के निवासियों का संकट दूर किया। उस वीर युवक ने जंगल में सिंह को मारा था और प्रमाण स्वरूप वह उस सिंह के सिर को लेकर वापस गाँव की ओर आ रहा था। रास्ते में उसे प्यास लगी तो वह रास्ते में पड़ने वाली वापिका पर गया। वहाँ एक ब्राह्मण-कन्या निर्वस्त्र हो स्नान कर रही थी। उस वीर की दृष्टि उस कन्या पर पड़ी और उसे (कन्या को) आधान रह गया। इस ब्राह्मण कन्या को समय पर पुत्र-रत्न की प्राप्ति हुई। इसी पुत्र का नाम 'बाघा' रखा गया। समय के साथ-साथ बाघा भी बड़ा होता गया। जब वह खेलने योग्य हुआ तो गाँव के बच्चों के साथ खेलने जाया करता। पर गाँव के सभी बच्चे उससे घृणा करते, क्योंकि

उसकी देह यद्यपि विद्रूप थी। अन्तत तग आकर उसके सम्बन्धियो ने उसे (बाधा को) नाम पहाड पर छोड दिया। वहाँ उसे एक बगीचे मे बन्द रखा गया। एक बार तीज के त्योहार के दिन झूला झूलने के लिए गांव की कन्याएँ उस बगीचे मे पहुँच गयी। बाधा न उन कन्याओ को झूला नही झूलने दिया। उसने उन सबक समक्ष एक शर्त रखी कि यदि सभी लडकियाँ बाधा के चारो ओर चक्कर लगा दें तो वह उन्हे झूला झूलने देगा। अबोध बालिकाओं ने ऐसा करने म कोई हर्ज नही समझा। उन सभी कन्याओ ने उसके चारो ओर एक चक्कर लगा दिया और तब मस्ती स झूला झूलकर अपन अपने घरो को चली गयी। कालान्तर म जब य बच्चियाँ युवतियाँ हुई तो इनक सम्बन्धियो को इनके विवाह की चिन्ता हुई। इन सभी कन्याओ के सम्बन्धियो न भरसक प्रयत्न कर लिये पर इनका तो 'सावा' ही नही निकला। बहुत छानबीन के पश्चात यह तथ्य सामने आया कि इन कन्याओ न बाधा के चारो ओर चक्कर लगाया था अत इनका सावा नही निकल सकता। ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाने पर इन सभी कन्याओ का विवाह बाधा स करना पडा। इन्ही कन्याओ स चौबीस बग-डावतो का जन्म हुआ।

ये सभी भाई कुछ बडे होने पर अपने गौ धन की रक्षा करने म लग गये। यही उनकी आजीविका का साधन था। इन भाइयो मे प्रमुख भाइयो के नाम सवाई भोज, तेजा, नीया आदि थे। सवाई भोज गायें चराता एक दिन क्या देखता है कि एक गाय सदैव उसकी गायो के साथ चरने को आ जाया करती है। उसने सोचा कि बिना चराई दिये ही ऐसा कौन है जो मुझसे अपनी गाय की देखभाल करवा लेता है। एक बार वह उस गाय के पीछे हो गया। गाय एक कन्दरा म प्रविष्ट हुई। सवाई भोज भी वहाँ चला गया। वहाँ पर एक तपस्वी के रूप म शिव विराजमान थे। भोज ने कहा कि बाबाजी आपकी गाय सदैव मेरी गायो के साथ चरती है और आपने कभी भी इसकी चराई नही दी। योगी के रूप मे रहने वाले शिव ने भोज को जवार के दान चराई के रूप म दिय। रास्त म भोज ने सोचा कि इस तुच्छ चराई का न जाकर क्या करूँगा ? अत ऐसा विचार कर उसने जवार के दाने झोली स वही नीचे गिरा दिये। सयोगवश कुछ दाने झोली के अन्दर ही अटककर रह गय। रात्रि समय भोज ने उक्त घटना अपनी माता क समक्ष कही तो माता ने कहा कि तूने बुरा किया जो योगी-प्रदत्त दानो को गिरा दिया। जब उसकी माता ने झोली देखी तो उसके भीतर बचे दानो की जगह पर मोती पडे चमक रहे थे। भोज ने अपनी भूल पर पश्चाताप किया। दूसरे दिन भोज फिर गाय क पीछे पीछे चला गया। वहाँ जाने पर बाबा ने कहा कि सदैव किस बात की चराई माँगता है ? कल तो लेकर गया था। ज्यादा कहन पर योगी ने बताया कि यदि तू इस गर्म तेल म भरे कडाह के चारो ओर

चक्कर लगा दे तो मैं तुझे कुछ द्रव्य दूँगा। भोज ने कहा कि मुझे तो ध्यान नही कि चक्कर किस प्रकार लगाते हैं ? अत पहले आप मुझे चक्कर लगाकर दिखाओ ताकि बाद मे मैं भी कर सकूँ। चक्कर लगाते समय भोज ने शिव को कडाह मे डाल दिया। कडाह मे गिरते ही योगी का शरीर सोने के पुतले मे परिवर्तित हो गया। और बाद मे शिव ने भोज को वरदान दिया कि (बारा बरस तक माया बारा बरस तक माया) बारह वर्ष तक तुम्हारा पार्थिव गात रहेगा और बारह वर्ष तक ही तुम्हारे पास अटूट धन-राशि रहेगी।

चौबीसो भाई भर जवानी मे थे और अद्वितीय साहसी तथा शक्तिशाली भी थे। उन पर अनन्त धन प्राप्ति का वरदान मिला, फिर उनमे विवेकशीलता कैसे रह सकती थी ? यौवन, धन-सम्पदा, प्रभुत्व, अविवेकता—चारो तत्त्व एकत्र हो गये। वरदान-प्राप्ति के पश्चात सभी भाइयो ने सलाह की कि धन का उपयोग किस प्रकार किया जाय ? किसी ने कहा कि धन को जमीन मे गाड देना चाहिए और दुविधा के समय काम मे लेना चाहिए तो एक ने राय दी कि धन ब्याज पर लोगों को दे दिया जाना चाहिए जिससे हम सवाया धन अर्जित कर सकेंगे। अन्ततोगत्वा यही तय रहा कि जीवन बार बार नही मिलता अत जितनी मौज कर सकते हैं इस धन-माया के आधार पर मौज करें। खूब खायें-पीयें और मौज उडायें। धन माया मे परोपकार भी करें क्योकि 'जस रा आखर जेहरा, जाता जुबान न जाय'। यह विचार कर सभी पास के शहर रैण मे गये। वहाँ जाते ही बाग-रक्षक माली से कहा सुनी हो गयी। वह रैण के राणा के पास गया व सभी भाइयो की शिकायत की। रैण का राणा शिकार पर गया हुआ था। उस समय शिकार मे नोया (बगडावतो के एक भाई का नाम) ने 'सूर' को मारकर राणा की दृष्टि म ऊँचा स्थान पा लिया। इस प्रकार बगडावतो व रैण के राणा मे भाईबन्दी हो गयी।

बगडावत रैण मे वास करते समय बहुत शराब पीते थे। बगडावतो और कलाळी की होड का प्रसग भी जोरदार है। बगडावतो को गौरव का इष्ट था। अपने इष्टबल पर बगडावतो ने कलाळी की सारी शराब को पी लिया। इन लोगो ने इतनी शराब पी कि शराब की बूँद पाताल वासी पृथ्वी को उठाये रखने वाले वासुकि के फणो पर आ लगी। इससे वासुकि बहुत क्रोधित हुए। बगडावतों को मारने के लिए वासुकि, हनुमान, गणेश और भगवान स्वय को जाना पडा पर बात जमी नही। अन्तत देवी ने उन्हे मारने का बीडा उठाया।

देवी ने जैमती नामक कन्या के रूप म पृथ्वी पर मानवी रूप धारण किया। युवावस्था मे जब उसके पिता ने अपने पडित को नारियल देकर जैमती का रिश्ता तय करने भेजा तो जैमती ने पडितजी को अपने पास बुलाया और कहा कि आप बगडावतो मे मेरा रिश्ता तय कर आना। पडित घूमता फिरता बगडावतो के

वहाँ पहुँचा। जैमती द्वारा बताये गये सभी निशानो को पाकर सवाई भोज को रिश्ते का नारियल दे दिया। बगडावतो ने सोचा कि क्षत्रिय कन्या का रिश्ता क्षत्रिय के साथ ही होना चाहिए अत उन्होने पडितजी को कहा कि आप यह नारियल रैंण के राणा को दे दीजिये। हुआ भी यही। जैमती और राणा का विवाह तय हो गया। विवाह के अवसर पर बगडावतो को भी बारात मे चलने के लिए कहा गया।

बारात मे बगडावत इस अद्वितीय सजधज के साथ चले कि वहाँ के लोगो को भ्रम हुआ कि दूल्हा सवाई भोज है या रैंण का राणा। बगीचे मे ठहरने पर जैमती ने अपनी हीरू दासी के हाथो सवाई भोज की तलवार और रूमाल मँगा लिया और कहलाया कि मैं तो आपकी हूँ। मैंने तो यहाँ से आपके लिए ही नारियल भिजवाया था। मैं तो आपकी तलवार के साथ फेरे खाऊँगी अत आप भी राणाजी से पहले ही तोरण की वन्दना कर देना। वैसा ही हुआ। जैमती ने हृदय से सवाई भोज को पति स्वीकार कर लिया। और दिखावटी उसने राणाजी के साथ फेरे खा लिये। रात्रि समय मे वह हीरू दासी को लेकर भोज से मिलने गयी। वहाँ भी उसने यही कहा कि मैं तो आपके पीछे रहूँगी। बारात रवाना हुई। रास्ते मे भोज ने जैमती रानी को बताया कि अभी तो आप राणा के वही चली जाओ और कुछ दिन बाद मैं आकर आपको ले जाऊँगा।

कई दिनो के पश्चात राणाजी दल-बल सहित शिकार खेलने गये तो पीछे से जैमती ने बगडावतो को पत्र लिख भेजा। पत्र पढकर जब सवाई भोज जाने लगे तो उसके बडे भाई और भाभी ने बहुत समझाया कि ऐसा करना बडी भूल है। इसके लिए हमे बहुत कष्ट उठाने पडेंगे। पर भोज तो जैमती को ले ही आया। शिकार से लौटने पर जब राणाजी को वस्तुस्थिति का ज्ञान हुआ तो उन्होने पत्र लिखा कि या तो रानी जैमती को लौटा दो वरना इसके लिए भारी युद्ध होगा। जैमती को पुन नही लौटाया गया। फलत रैंण की सेनाएँ बगडावतो पर चढ आयी। जब सेनाएँ बगडावतो पर जा रही थी तो बीच मे ही भोज की पुत्री दीपकँवर ने सेनाओ को रोक लिया। सेना से वीरता के साथ लडते हुए उसने वीर गति प्राप्त की। तदनन्तर राणा की सेना व बगडावतो का युद्ध हुआ जिसमे सभी बगडावत खेत रहे। जैमती भी भोज के पीछे सती हो गयी।

इस मुख्य कथा के साथ साथ इसमे और कई छोटी छोटी कथाएँ मिल गयी हैं। इनमे पीपूरी की कथा, साडू के स्नान करते समय जोगी के आने की कथा, देवी एव भगवान के परस्पर विवाद की कथा आदि मुख्य हैं।

(२) देवनारायण

रैंण के राणा की सेना से वीरतापूर्वक लडते लडते चौबीसो बगडावतो ने वीर-गति प्राप्त की। सवाई भोज की पत्नी साडू बहुत ही पतिव्रता स्त्री थी।

बगडावतों की पत्नियों ने अपने पतियों के मरणोपरान्त अपना जीवन भी निरर्थक समझा। सभी अपने पतियों के साथ सतियाँ हो गयी। साडू जब सती होने को तत्पर हुई तो आकाशवाणी हुई कि तू अभी सती मत हो। तेरे गर्भ में जो बालक है वह ईश्वर का अंश है। तेरे गर्भ से जन्म लेकर यह बालक बडा होने पर अपने पिता एवं सम्बन्धियों का प्रतिशोध लेगा। ऐसा सुनकर साडू ने अपना विचार बदल दिया। समय पर देवनारायण का जन्म हुआ। बडा होने पर उस वीर बालक ने अपने पिता का वैर लिया। देवनारायण की पड में देवनारायण को ईश्वरीय अंश बताने हेतु निम्न प्रकार का वर्णन मिलता है—

'माला सेरी री डूगरी में कावर फाड कवल पांगरियो। जिणमें देवनारायण भगवान रो जलम हुयो अर भाज गे लुगाई साडू उवा ने झोल में ले लियो।'

(३) पाबूजी

राजस्थानी साहित्य में वीर एवं धर्मरक्षक पाबू के सत्कृत्यों का लेखा-जोखा बहुतायत में मिलता है। राजस्थानी लोक में 'पाबूजी री पड' का बहुत ही आदर है। पाबूजी राठौड कोल्हूगढ के रहने वाले थे। चांदा और डामा नामक दो वीर इनके प्रिय सहयोगी थे। जब पाबूजी युवा हुए तो अमरकोट के सोढा राणा के यहाँ से इनके लिए रिश्ते का नारियल आया। रिश्ता तय हो गया। पाबूजी ने देवल नामक चारण देवी को बहिन बना रखा था। देवल देवी के पास एक बहुत ही सुन्दर और सर्वगुण सम्पन्न घोडी थी जो 'केसर काळवी' के नाम से प्रख्यात थी। देवल देवी अपने गौ-धन की रखवाली इस घोडी के सहारे करती थी। जायल के जिन्दराव खीची की आँख इस घोडी पर सदैव से थी। जिन्दराव खीची एवं पाबूजी राठौड दोनों में आपसी मन-मुटाव था। पाबूजी ने विवाह के अवसर पर देवल देवी से 'केसर काळवी' घोडी मांगी। देवल देवी ने वस्तुस्थिति बतायी। पाबू राठौड ने यह वादा किया कि यदि देवल देवी के गौ-धन पर किसी प्रकार का सकट आ पडा तो मैं किसी भी कार्य को बीच में ही छोडकर आ जाऊँगा। देवल देवी ने घोडी पाबूजी को दे दी। जब पाबूजी की बारात रवाना हुई तो शकुन अच्छे नहीं हुए थे। बारात अमरकोट पहुँची। वैवाहिक कार्यक्रम होने लगे। बहुत ऊँचाई पर बांधे गये तोरण की वन्दना पाबूजी ने घोडी की सहायता से कर दी। इधर जिन्दराव खीची अवसर का अनुचित लाभ उठाकर देवल देवी की गायों को घेरकर ले भागा। देवी ने चील का रूप धारण किया और सीधी अमरकोट पहुँची। उस समय पाबूजी राठौड 'फेरे' ले रहे थे। देवी के आर्त्त-स्वर को सुनकर वे उसी समय विवाह-मडप से उठ गये और घोडी पर सवार होकर जिन्दराव का पीछा किया। जिन्दराव से सभी गायों को तो छुडा लिया और स्वयं खेत रहे। अर्द्ध-विवाहिता सोढी भी युद्ध-क्षेत्र में आये पाबूजी के कपडों के साथ सती हो गयी।

(४) तेजाजी

गौ-रक्षक तेजाजी खरनालिये गाँव के रहने वाले थे। इनका विवाह बाल्य-काल में ही हो गया था पर अभी मुकलावा नहीं हुआ था। बहुत छोटी उम्र में विवाह हो जाने के कारण इन्हें ध्यान भी नहीं था कि मैं विवाहित हूँ। एक बार जब ये अपने खेत में हल चला रहे थे तो इनकी भाभी खाना लेकर देरी से पहुँची। इन्होंने कह दिया कि भाभी इतनी देर क्यों की? जबकि पास वाले खेतों में काम करने वालों को खाना देकर स्त्रियाँ घर भी पहुँच चुकी हैं। भाभी ने ताना दिया मैं जल्दी कैसे आ सकती थी। मुझे घर पर भी सबसे ज्यादा काम रहता है। आपकी पत्नी तो पीहर में बैठी मौज कर रही है और मैं यहाँ काम की चक्की में पिसती जा रही हूँ। तेजा को यह बात बुरी लगी। उसने खाना नहीं खाया और काम छोड़कर घर आया। अपनी माता से ससुराल तथा ससुर आदि का नाम-पता पूछा। वहाँ से घोड़ी पर सवार होकर चला। वह सन्ध्या समय अपने ससुर के मकान के सामने पहुँचा। बाड़े में उस समय उसकी सास गाय दुह रही थी। घोड़ी के खुरों की ध्वनि से गाय डरकर रस्सी तुड़ाने लगी। अकस्मात सास के मुँह से निकल गया कि 'नाग रो काटियोड़ो कुण है जको म्हारी गाया भिड़कायदी'। सास द्वारा इस प्रकार अपमानित हो स्वाभिमानी तेजा पुन लौट पड़ा। ससुराल वालों को जब यह पता चला कि वह व्यक्ति और कोई नहीं, उन्हीं के घर का दामाद है तो सभी तेजाजी को मनाने गये पर तेजा ने किसी की न सुनी। तेजा की पत्नी ने बहुत मुश्किल से उसे एक रात ठहरने के लिए राजी किया। पर तेजा ने कहा कि वह ससुराल के मकान में तो ठहरेगा नहीं। अन्तत लाछा नामक गूजरी के यहाँ ठहरने की बात तय रही।

रात्रि काल में कुछ 'धाड़ायती' आये और लाछा गूजरी की गायों को घेरकर ले गये। गूजरी ने राजा के पास जाकर अनुनय विनय की पर राजा ने उसके करुण क्रन्दन पर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। हारकर उसने तेजाजी को उठाकर अपनी करुण कथा सुनायी। तेजाजी डाकुओं के पीछे बाहरे चढ़े। रास्ते में आग में जलते ढेर में विपन्न साँप को देखकर अपने भाले की नोक से उसे बाहर निकाला। बाहर निकलते ही साँप ने कहा कि मैं तो तुम्हें डसूँगा। तेजा ने अपनी नाजुक परिस्थिति बताते हुए कहा कि अभी तो मैं गायों को छुड़ाने के लिए जा रहा हूँ और वहाँ से लौटकर तुम्हारे समक्ष उपस्थित होऊँगा। सर्प तेजा की बात मान गया। तेजा ने डाकुओं को मार भगाया और गायों को छुड़ाकर ले आया। जब गूजरी ने अपनी गायें देखी तो बड़ी प्रसन्न हुई पर अपने 'काणे केरड़े' को (काणा साँड) न देखकर उसे बहुत दुख हुआ। तेजा फिर से गया और उस साँड को भी पुन ले आया। दो दो बार डाकुओं से मुठभेड़ करने के कारण तेजाजी का सारा शरीर लोहू लुहान हो गया था। फिर भी अपने वायदे के अनुसार वे साँप की बाँबी

पर गये और नागराज को दर्शनार्थ कहा। साँप ने उत्तर दिया कि तुम्हारे शरीर में तो कहीं भी ऐसी जगह नहीं है जहाँ से रक्त न टपकता हो। और रक्तरंजित गात मे मैं दाँत नही लगाता। तब तेजा ने अपनी जिह्वा निकालकर बतायी और कहा कि यहाँ स लहू नहीं टपकता है अत आप यहाँ डस लीजिये। सर्प ने ऐसा ही किया। तेजा का प्राणांत हो गया। उसकी पत्नी उसके पीछे सती हो गयी।

(५) निहालदे-सुलतान

सुलतान चकवे बेन का पोता और मेनपाल का पुत्र था। सुलतान के जन्म की कथा भी कम आश्चर्यजनक नहीं है। एक बार मेनपाल मृगयार्थ जगल मे गया। वहाँ उसने भागते हरिण पर तीर चलाया। घायल हरिण एक गुफा मे चला गया। राजा ने भी हरिण का पीछा किया। उस गुफा मे गुरु गोरखनाथ की 'धूनी' थी। गोरखनाथ ने मन्त्र-बल स मेनपाल की रानी करणावती को गुफा में बुलाया और उसे जौ के दाने दिये। इन्हीं से सुलतान का जन्म हुआ। बड़े होने पर सुलतान द्वारा एक बार एक ब्राह्मण कन्या के कलश को फोड़ दिये जाने पर उसे 'देश निकाला' दिया गया। अपने देश से निष्कासित सुलतान ईडर-कोट पहुँचा। वहाँ उसकी टक्कर कमवजराव की सवारी स हो गयी। कमवजराव ने उसे होनहार युवक समझकर अपने साथ ले लिया। कमवजराव के पुत्र का नाम फूलकँवर था। एक बार फूलकँवर और सुलतान मृगया हेतु निकले तो समीप-वर्ती राज्य केलागढ मे पहुँच गये। वहाँ के नरेश का नाम मघ था। निहालदे इसी राज्य की राजकुमारी थी। ये दोनों कुँवर घूमते-घूमते जनाना बाग में चले गये, जहाँ निहालदे और सुलतान का प्रथम मिलन हुआ। प्रथम मिलन में ही दोनो ने एक-दूसरे को स्वीकार कर लिया। केलागढ नरेश मघ द्वारा अपनी पुत्री निहालदे के लिए आयोजित स्वयवर-आयोजन में सुलतान ने मत्स्य वेध करके निहालदे का वरण किया। इससे फूलकँवर को गहरी चोट लगी। ईडर पहुँचने पर फूलकँवर ने अपनी माँ को भरमाया। फलस्वरूप उसने सुलतान को भला बुरा कहा। सुलतान निहालदे को ऊन्दा नामक भाट-कन्या एवं कमवजराव के भरोसे छोड़कर कहीं अन्यत्र चला गया। वह वहाँ से चलकर ढोलकुँवर के नरवलगढ में पहुँचा, वहाँ ढोलकुँवर की रानी मारुणि का आदेश चलता था। नरवलगढ मे अपने साहसी कार्यों के कारण उसने काफी ख्याति प्राप्त की। उसके अद्वितीय पराक्रम से प्रसन्न होकर मारुणि ने सुलतान को 'लाख टके' की नौकरी पर रख लिया। वहाँ पर रहते सुलतान की मित्रता पनिया पठान, कानी चोर, गोहू बावलिया आदि से हो गयी। सुलतान ने सम्पूर्ण राज्य म सदैव व्यवस्था को बनाये रखा एव अपने सौहार्द्रपूर्ण व्यवहार स नगरवासियो के हृदय को जीत लिया। मारुणि के साथ उसका भ्रातृवत् नाता था। इधर निहालदे को विरह सताने लगा तो उसने सुलतान के नाम परवाना लिख भेजा जिसमे उसने अज्ञानवश मारुणि को 'सौत'

जैसे नाम से अनेक बार सम्बोधित किया। इसके अतिरिक्त एक और अप्रिय घटना यह हुई कि कुछ लोगों ने एवं ढोलकुँवर की दूसरी रानी अभियादे ने ढोलकुँवर के मारुणि एवं सुलतान के सम्बन्धों को लेकर कान भरे। जब सुलतान वहाँ से विदा होने लगा तो मारुणि ने उसको बताया कि कुछ दुर्बुद्धिजनों में कैसी अफवाह है। उसने सूर्य को प्रत्यक्ष रखकर कहा कि यदि मेरा एवं मारुणि का भाई-बहिन का पावन नाता है तो गढ़ के 'कांगरे' झुक जाने चाहिए। कहते ही गढ़ के 'कांगरे' झुक गये। वहाँ से प्रस्थान करते समय सुलतान ने मारुणि को कहा कि बहिन तू अभियादे की पुत्री फूलकँवर को गोद ले ले। जब तू इसकी शादी करे तो मुझे 'माहेरा' भरने के लिए बुलाना। जब मैं भात भरने आऊँगा तो ऐसा देखकर लोगों का मनोमालिन्य मिट जायेगा। सुलतान वहाँ से ईडरगढ पहुँचा और निहालदे को लेकर रास्ते की अनेक कठिनाइयों को झेलता हुआ अपने पिता के राज्य में पहुँचा। वहाँ बहुत ही खुशियाँ मनायी गयी। वहाँ सुलतान का राज्याभिषेक भी किया गया।

जब मारुणि ने फूलकँवर का विवाह रचाया तो उससे कुछ दिन पूर्व वह ढोलसिंह को लेकर अपने धर्म-भाई सुलतान को न्योतने आयी। कीचलगढ में सुलतान ने बहिन एवं बहिनोई का भव्य स्वागत किया। कुछ दिन उनका आतिथ्य-सत्कार कर उन्हे विदा किया और स्वयं भात की तैयारी में लग गया। सम्पूर्ण सामग्री जुट जाने पर वह सज धजकर नरवलगढ के लिए रवाना हुआ। ईडरगढ में उसने फूलकँवर को भी साथ ले लिया। फूलकँवर ने मार्ग में सुलतान के साथ धोखा भी किया (बूँदी के हाड़ा नरेशों को बुलाकर दूतों के साथ निहालदे को हाड़ा नरेशों के यहाँ भिजवा दिया)। पर जानी चोर हिजड़े के वेश में जाकर निहालदे को हाड़ा नरेशों के चंगुल से बचा लाया।

इधर सुलतान मार्ग की नाना बाधाओं से लोहा ले-लेते दिन-प्रतिदिन आगे बढ़ रहा था और उधर मारुणि का पिता जैसलमेर नरेश बुधसिंह भाटी अपने दोनों पुत्रों सहित भात लेकर पहुँच गया था। वह भात भरने की जल्दी कर रहा था। और इधर मारुणि कह रही थी कि पहले भात सुलतान भरेगा, और बाद में पिताजी। बुधसिंह और उसके पुत्र प्रतीक्षा करते करते तंग आ गये थे। विवाह की तिथि दिनोदिन आगे बढ़ायी जा रही थी। सुलतान के आगमन से पहले ही बारात भी पहुँच गयी थी। फूलकँवर ने भी मारुणि को अनेक उपालम्भ दिये और बुधसिंह का पक्ष लिया। अन्तत सुलतान वहाँ पहुँचा। उसने मारुणि के बताये अनुसार 'काकड़े' को चूनरी 'ओढ़ाई' और तब निर्देशानुसार 'माहेरा' भर दिया। विवाह के सुचारु रूप से सम्पन्न हो जाने पर सुलतान ने बहिन मारुणि से विदा ली।

नरवलगढ से पुन कीचलगढ लौटते समय भी सुलतान व उसके साथियों को

अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बीजनगढ़ पहुँचने पर फूलसिंह एक वापिका में स्थित अद्वितीय सुन्दरी की मूर्ति देखता है और उससे विवाह करने का हठ कर लेता है। अनेक कष्टों को झेलने के पश्चात सुलतान इस कार्य को भी सम्पन्न करवा देता है।

निहालदे सुलतान एक बहुत लम्बी लोक गाथा है। इसमें अवान्तर कथाओं की जोरदार भरमार है। इन गौण कथाओं एवं घटनाओं में प्रमुख ये हैं—नाम-पडिता सेठ-कन्या की कथा, चन्द्रवली दानव की कथा, रूमी धूमी पहलवानों की घटना, जानी चोर के हृदय-परिवर्तन की घटना, भोमसिंह बनजारे की कथा, ठगों की कथा, मल्लाह की लड़की से मिलन की घटना, सुलतान के दरियाई घोड़े की घटना, हुडदम बेगम की कथा, निहालदे की सती होने की तैयारी, शिव-पार्वती द्वारा निहालदे सुलतान के विवाह करवाने की घटना, झगेरीमल सेठ, सुलतान को जबरदस्ती 'बौद' बनाया जाना, खैरात बाजार लगाने की घटना, जल में प्रवाहित काठ की बतली एवं अदली खाँ पठान के यहाँ कैद धौल की कुँवरी महकदे को छुड़ाने की कथा, धरती बघेल या देहो पनट रायस की कथा, देवलगढ़ के भानुसिंह से सम्बन्धित कथा, कनेसिह की कथा, स्वर्ग से 'पैप' के फूल लाने की घटना, गगराढ़ की भीडी की घटना, निहालदे को 'धौले' साँप का पी जाना, पनवाड़ी द्वारा सुलतान का पुत्र एवं भोमसिंह को सरमोदा बना दिया जाना, सुलतान का परियों के साथ स्वर्ग जाना एवं वहाँ अपने दादाजी के दर्शन करने की घटना, सुलतान एवं दोलपाड़ दानव का युद्ध, फूलसिंह का आभनगर के आभासिंह राव की पुत्री आभलदे से विवाह करने का हठ, पुदचली की कथा, जलदीप की कथा, राजा गैंद की कथा, बैठे राजा की कथा।

(६) पृथ्वीराज मुरजा

चायलपुरी नरेश शालगमानी बड़े ही प्रतापी राजा थे। उनके पुत्र का नाम पृथ्वीराज एवं पुत्री का नाम मुरजां था। इनकी रानी बहुत ही भली और दयालु स्वभाव की थी। पिता के स्वर्गवास होने पर प्रजाहितैषी राजकुमार पृथ्वीराज ने राजसिंहासन सँभाला। प्रजा हितार्थ पृथ्वीराज अपना सर्वस्व लुटा सकते थे। एक बार रात्रि में इन्हें बड़ा बुरा स्वप्न आया। आपने देखा कि राज्य में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ा है। जनता और पशुओं की बड़ी दयनीय स्थिति हो गयी है। पृथ्वीराज ने दूसरे दिन विचार किया कि प्रजा की ऐसी बिगड़ी दशा मैं देख नहीं सकूँगा। अतः पृथ्वीराज ने अपने स्वप्न के बारे में अपनी माता को बताया और कहा कि हम अभी से ही कहीं चले चलना चाहिए। अन्ततः निश्चय करके माता, बहिन व एक डावडी (दासी) को लेकर पृथ्वीराज बिरखा' (बुरे दिन) काटने के लिए दूसरे राज्य में चले गये। साथ की डावडी का नाम बदरी था। जिस राज्य में जाकर वे रुके थे वहाँ के राजा का नाम हरिचन्द था।

वे उस राज्य में एक मालिन के बाग में ठहरे। ज्योंही उन्होंने बाग में प्रवेश किया त्योंही दुष्काल की छाया से प्रभावित शुष्क बाग पुनः हरा-भरा हो गया। वे यहाँ पर अपने दिन काटने लगे। संयोग की बात कि एक बार मालिन की गायों को धाड़ायती (डाकू) भगाकर ले गये। इन धाड़ायतियों के नाम बल्लू, मारू, बाघो, विलासो आदि थे। मालिन ने राजा के समक्ष जाकर अपनी करुण कथा सुनायी पर राजा ने टके-सा जवाब दे दिया। राजा ने कहा कि रक्षक तो तेरे बाग में ही रहता है फिर तू फरियाद लेकर मेरे पास क्यों आयी ? हताश होकर मालिन को लौटना पड़ा। मालिन ने पृथ्वीराज के सम्मुख अपना दुखड़ा रोया। पृथ्वीराज ने उसको आश्वासन दिया कि रोने की कोई बात नहीं है, मैं अभी तुम्हारी गायों को लौटा लाता हूँ। जब पृथ्वीराज घोड़ी पर सवार होकर डाकुओं के पीछे रवाना हुआ तो रास्ते में उसे अपशकुन हुए। काफी दूर जाने पर शनिदेव ने पृथ्वीराज की घोड़ी के पैर काट दिये। पृथ्वीराज को घोड़ा लेने के लिए पुनः लौटना पड़ा। बाग में जाकर पृथ्वीराज ने घोड़ी के बच्चे को तैयार किया। बछेरे (घोड़ी का बच्चा) पर बैठकर पृथ्वीराज डाकुओं के पीछे गया और उन्हें मार भगाकर गायों को वापस ले आया। पर जल्दी में एक गाय व काना केरड़ा पीछे रह गये। जब मालिन ने देखा तो पाया कि उसके दो पशु कम हैं। उसने उपालम्भ दिया कि पृथ्वीराज तूने क्या गाय एवं काने केरड़े की डाकुओं को रिश्वत दी है। पृथ्वीराज ज्योंही आया त्योंही लौट पड़ा। उसकी बहिन भी घोड़ी पर सवार हो भाई के साथ हो ली। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि बहिन सुरजा को एक दिन पहले यही स्वप्न आया था। इस स्वप्न में उसने देखा कि गायों को छुड़ाने में पृथ्वीराज प्राणों से हाथ धो बैठा। दोनों पशुओं को छुड़ाकर गाँव के रास्ते की ओर हाँक दिया। पीछे ये दोनों बहिन-भाई आ रहे थे कि रास्ते में भाई की पगरखी (जूती) गिर गयी। किसी और शहर में जाकर उन्होंने पगरखी ली। वहाँ से इन्होंने बायें हाथ का रास्ता ले लिया जो राक्षसों के गाँव को जाता था। राक्षसों से युद्ध करते-करते ये पृथ्वी में प्रविष्ट हो गये। समाधिस्थ होने के पश्चात् देवता मान गये।

एक बार 'सावण की सुरंगी तीज' पर सुरजा को माता की याद सताने लगी। बहिन के बार-बार कहने पर भाई ने हाँ की और कहा कि माता से केवल आँखों का मिलन हो सकेगा। मनुष्यों का स्पर्श हम देवताओं के लिए वर्जित है। इधर दोनों भाई-बहिन माता से मिलने को जा रहे थे और उधर बदरी डावड़ी पृथ्वीराज की माता को अपने स्वप्न की बात बता रही थी। उसने बताया कि मुझे स्वप्न आया कि पृथ्वीराज जी एवं सुरजा दोनों अपने घर पर आये हैं। माता उसे गालियाँ दे रही थी कि बेवकूफ लड़की मेरे जले पर क्यों नमक छिड़क रही है। इतने में तो भाई बहिन भी पहुँच गये। सभी ने एक-दूसरे को बड़े प्यार

से देखा। नियत समय व्यतीत हो जाने पर भाई-बहिन पुन अन्तर्धान हो गये।

(७) काळा-गोरा री भारत

पूजा-पाठ मे विष्णु भगवान को तन्मय देखकर कमस्या देवी, नागली तेलण, कपूरी धोबण बेरळो, बणियाणी, मामा मोचण, लूणादी चमारी और अममालर्य जोगी—इन सातो न विष्णु का 'जतरवैण' चुरा लिया। जतरवैण को पुन प्राप्त करने के लिए भगवान के दरबार मे बीडा फेरा गया। नारद ने उस बीडे को उठाया। नारदजी ने इस चोरी की खबर भोले शम्भू को दी। शम्भू ने बताया कि इसकी प्राप्ति कपाली देवी की सहायता बिना असम्भव है। शिवजी कपाली देवी के पास पहुँचे। उस समय सभी देवियाँ नृत्यरत थी। शिव की दृष्टि कपाली देवी पर पड़ते ही उसे गर्भ रह गया। कपाली ने इस बात की शिकायत पार्वती से की एव पार्वती के पूछने पर उसने अपने-आपको शिव की पत्नी बताया तथा दृष्टि-गर्भ से उत्पन्न भैरू की कथा भी बतायी। जब काले और गोरे भैरव ने 'जतरवैण' लाने की बात कपाली से कही तो कपाली देवी ने उन्हे शिव से आदेश-प्राप्ति के लिए कहा। अन्तत दोनो भैरव इस कार्य के लिए निकल पड़े।

वे दोनो उक्त सातो मन्त्रबाजो के गाँव पहुँचे। काला भैरव गाँव के कुएँ पर बैठा रहा और गोरे भैरव को चिलम के लिए अग्नि लाने को कहा। दुर्भाग्यवश गोरा भैरव 'नागली तेलण' के घर पहुँच गया। वहाँ ज्योंही वह आग लेने के लिए झुका कि उस 'तेलण' ने मन्त्र-बल से गोरे भैरव को बैल बना दिया एव कोल्हू मे जोत दिया। वह तेलण दिन-भर तो गोरे को बैल बनाकर कोल्हू मे जोते रखती और रात्रि मे उसे मनुष्य बना देती। इसी नागली ने श्रृंगार करके काले भैरव को भी ठगना चाहा। वह भैरव के पास पहुँची और कहने लगी कि अपना विवाह बाल्यकाल मे ही हो चुका है। आप मेरे पति हैं अत आप घर पर पधारिये। जब काला भैरव नही माना तो उसने काले के एक लात लगायी। इधर क्रोधित हो काले ने मन्त्र-बल से उसे चील बना दिया। पर तत्पश्चात अपने मन्त्र-बल से पुन स्त्री बन गयी और इस बार काले के इतनी जोर से लात लगायी कि वह पाताल-लोक मे जा गिरा।

शेषनाग के बगीचे मे गिरे काले को नागिन ने देखा तो बड़ा ही अचम्भा किया। नागिन काले के लिए कपाली व शिव के पास गयी पर कुछ भी बात नही बनी। अन्तत. उसने तक्षक नाग (तक्षक) को जगाकर सारी कथा सुनायी। नाग ने काले से कहा कि मैं धूंगलगढ के कुँवर को डसूँगा। उन सातो के मन्त्र से भी मेरा विष नही उतरेगा एव वह कुँवर मर जायेगा। शव को लेकर जब सभी व्यक्ति आयें तो तू उन्हें रास्ते मे खड़े मिलना। वहाँ तू मुर्दे पर नीम की टहनी फेरना जिससे कुँवर पुन. जीवित हो जायेगा। राजा प्रसन्न होकर जब वर माँगने को कहे तो राजा से तू उन सातो मन्त्रबाजो को माँग लेना। काले ने वैसा ही

मारूंगा। ऐसा ही किया गया। जब मैंली राणी ने यह दृश्य देखा तो अपनी भूल स्वीकार की। उसने दासी के साथ डामा को कहला भेजा कि मेरा जी दुख पा रहा है अतः आप मेरे भाई को बन्धन मुक्त कीजिये। बहुत अनुनय विनय के बाद उसे छोड़ा गया। मैंली राणी ने अपनी भूल स्वीकार की और अणदू को अपने पास ठहरने के लिए कहा। पर अणदू ने कहा कि दीदी आपने तो मेरे साथ बहुत अच्छी की है! अब भी मैं आपके पास ठहरूँगा! मैं तो अब पाबू राठौड़ के पास ही ठहरूंगा और अगले दिन पुनः गाँव लौट जाऊँगा। इतना कहकर वह डामाजी के साथ पाबूजी के यहाँ चला गया।

(१०) जनकाव्य रूपादे

विदरे भाटी की कन्या का नाम रूपादे था। बाल्यकाल से ही इस बालिका का मन ईश्वर भजन में अनुरक्त हो गया। साधु-सन्यासियों की सेवा करना, उनके साथ रहना एवं उनके काम करना ही उसे प्रिय था। निर्गुणी सन्तों के प्रति रूपादे को अपार श्रद्धा थी। एक बार रूपादे अपनी सहेलियों के साथ तीज के त्यौहार पर झूला झूलने के लिए बाग में गयी थी। उधर से 'सूरों' की शिकार करने के लिए निकले महूवे के रावळ मालदे को जोर से प्यास लगी। वह घूमता-फिरता उसी बाग में आ पहुँचा। वहाँ रावळ मालदे उसे पानी पिलाने के लिए कहता है। रूपादे ने अपने इष्टबल से थोड़े पानी से सभी की तृष्णा मिटा दी। राव ने अपने मित्र सालरिये मीणे से कहा कि यह तो कोई जादूगरनी है। इससे यदि शादी हो जाय तो यह निश्चिततः बुरे समय में काम आयेगी। उसने अपने राज्य में पहुँचते ही रूपादे के पिता को विवाह के आशय का पत्र लिखा। संयोग की बात कि भक्तिवान को नास्तिक एवं अनाड़ी के घर जाना पड़ा। उसने अपने पिता से कहा कि आप धारूड़े 'धोरे' को मेरे साथ भेज दें। कुछ समय पश्चात निर्गुणी सन्तों का मेला लगा जिसमें गुरु उगमसी ने रूपादे को भी बुलाया। धारूड़े ने रूपादे को गुरु का सन्देश सुना दिया। रानी रूपादे ने जुमले में उपस्थित होने में असमर्थता प्रकट की और कहा कि गुरुजी को मेरा प्रणाम कहना। इस पर धारूड़े ने कहा कि हे सुहागिन रानी! तू इतना अभिमान मत कर। उचित अवसर पाकर रात्रि के समय रूपादे जुमले में जाने को तैयार हुई। उसने अपनी सेज में नागिन को सुला दिया ताकि उसकी फुफकार को सुनकर रावळ मालदे यह समझ ले कि रानी सोई हुई है। इधर तो रूपादे जुमले के लिए चली और उधर मालदे की दूसरी रानी चन्द्रावली ने मालदे को जगाकर कहा कि आपकी रानी तो मेघवालों (चमार) के यहाँ चली गयी है। राजा ने महल ढूंढा तो चन्द्रावली की बात सही निकली। इस पर राजा को गुस्सा आया और वह सालरिये मीणे को लेकर जुमले में गया। जुमले में रूपादे की जूती खो गयी अतः उसने कुछ लोगों को कहा कि जल्दी से ढूंढकर मेरी जूती ला दो। यदि जूती राजा मालदे के हाथ

लग गयी तो मुश्किल होगी। इधर जब रूपादे पुन राजप्रासाद में आयी तो राजा मालदे ने पूछ ही लिया कि हे रानी! वर्षा की अँधेरी रात में तू कहाँ घूम-फिर रही है? प्रत्युत्तर में रानी ने कहा कि मुझे फूलों का शौक है अत मैं फूल लेने हेतु बाग में गयी थी। राजा ने कहा कि मेरे महलों में तो बाग ही नहीं है फिर तू फूल कहाँ से ले आयी? तू कहीं और गयी थी और अब बहाने बना रही है। तुम कलंकिनी को आज मैं विनष्ट करके ही रहूँगा। रूपादे भटियाणी ने कहा कि मारने से पहले यह तो बता दीजिये कि मेरी गलती क्या है? बिना गुनाह बताये मुझे मारोगे तो लोग तुम पर हँसेंगे। रावळ ने कड़ककर कहा कि इससे बढ़कर और क्या हो सकता है कि तू जुमले में गयी थी। और वहाँ तूने साधु-सन्यासियों के लिए 'धुनी' पीसी। तूने मेरे महलों की मर्यादा का बिलकुल ध्यान नहीं रखा। रूपादे ने तो अब भी कहा कि मैं तो फूल लेने बाग में गयी थी। उस पर राव ने फूल दिखाने के लिए कहा। रूपादे ने इष्टबल से राजा को फूल दिखा दिये। लज्जित होकर मालदे उसके पैरों में गिर पड़ा।

(११) जीण माता

धांगू नामक गाँव में घंग नामक क्षत्रिय रहता था। उसके एक पुत्र एवं एक पुत्री थी। भाई-बहिन के नाम हर्ष और जीवनी थे। अल्पायु में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया था। मरणासन्न माता-पिता ने हर्ष और जीवनी की उचित देखभाल करने की बात कही। हर्ष ने भी माता पिता को विश्वास दिलाया कि जीण (जीवनी) को किसी भी वस्तु की कमी नहीं खलने दूँगा। हर्ष के विवाह के पश्चात घर में थोड़े दिन तो शान्ति रही और बाद में ननद-भाभी में खटपट होने लगी। एक दिन वे दोनों पानी लाने के लिए गयी। वहाँ पर घड़ा उठवाने की बात को लेकर दोनों में विवाद हो गया। भाभी ने कहा पहले मुझे उठवाओ और जीण ने कहा नहीं पहले मुझे। इस पर क्रोधित होकर भाभी ने उसके चरित्र को लेकर कई ऊल जलूल बातें कहीं। इन सब बातों को जीण सहन नहीं कर सकी। अत उसने आजीवन कौमार्य-व्रत रखने का प्रण कर लिया। वह अरावली की पहाड़ियों की तरफ चली गयी। पीछे जब भाई को सारी स्थिति का ज्ञान हुआ तो वह बहिन को मनाने के लिए गया। उसने भाँति-भाँति से बहिन को समझाया पर बहिन ने एक न सुनी और वह अपने निश्चय पर अडिग रही। जब किसी भी शर्त पर बहिन न मानी तो भाई ने भी गृह को त्याग दिया। बहिन ने जब भाई को बहुत समझाया कि तू पुन लौट जा पर वह भी न माना। दोनों ने सीकर के समीप एक पर्वत शृंग पर तपस्या की और लोगों को सदुपदेश दिया। लोक प्रचलित मान्यता है कि तत्कालीन बादशाह ने जीण माता के सम्बन्ध में कुछ भला बुरा कहा और अन्य मन्दिरों की भाँति उनके मन्दिर (जहाँ वे तपस्या करते थे) को भी तुड़वाना चाहा पर जीण माता के

होती जा रही हैं। गोगा के सम्बन्ध मे ऐतिहासिक जानकारी देते हुए डॉ० दशरथ शर्मा ने लिखा है कि—'गोगा की माँ का नाम शुभा एव बाप का नाम तक्षराज और नाना का नाम नागेन्द्र था। नागेन्द्र किसी परमेश्वर का पुत्र था। दादा का नाम देवराज था। इन नामो से सिद्ध होता है कि गोगा के पिता व नाना दोनों नागवंशी थे।'[1]

डूगजी-जवारजी की पड मे अग्रेजी सल्तनत के विरुद्ध विद्रोह करने वाले वीर क्षत्रिय डूगजी के साहसी कार्यों का उल्लेख है। अग्रेजो ने धोखा करके इस विप्लवकारी को पकड लिया व आगरा की जेल में बन्द कर दिया था। इनके विश्वासी सहयोगी योद्धा लोटिये जाट एव करणिये मीणे ने इनको जेल स छुड़वा दिया। यह वीर अग्रेजो की छावनियाँ लूटा करते थे और जो भी धन माल हाथ लगता उसे गरीबो मे बाट देते। कुछ लोगो ने डूगजी को डाकू समझने की भारी भूल की है।

'जसमादे ओडणी' नामक कथा काव्य मे जसमा ओडणी पर राव संगार के मोहित होने का वर्णन है। वह इस ओडणी को हथियाना चाहता है। उसे भाँति-भाँति के प्रलोभन देता है। अन्तत तग आकर रात के समय ओड डेरा कूच कर जाते हैं। राव उनका पीछा करता है एव ओड तथा ओडणियाँ काल के गाल मे समा जाते हैं।

'रामू-चनणा' गाथा मे राजकुमारी चनणा रामू नामक सुनार से प्रेम करती है। बडी होने पर उसका विवाह राजकुमार से हो जाता है। फिर भी रामू और चनणा का प्रेम अटूट रहता है। एक बार उसका पति उस लेने के लिए आता है। काफी रात ढल जाने पर चनणा को जब यह विश्वास हो जाता है कि पति गाढ निद्रा मे सोया है तो वह उठकर रामू से मिलने जाती है। उसका पति भी पीछे पीछे जाता है। वहाँ वह जोगी के रूप मे प्रेमी-युगल से कुछ भिक्षा माँगता है। चनणा के आने से पहले आकर वह सो जाता है। दूसरे दिन सवेरे चनणा को ससुराल के लिए रवाना होना पडता है। मार्ग मे उसका पति उसे रात वाली घटना के बारे म बताता है। लोक-लाज के भय से उसके प्राणपखेरू उड जाते है और जब इधर उसकी मृत्यु का समाचार रामू को मिलता है तो उसी क्षण वह भी प्राण मुक्त हो जाता है।

'मूमल-महेन्द्र' की गीत कथा मे लोद्रवे की राजकुमारी मूमल और अमरकोट के राजकुमार महेन्द्र की प्रेम-कथा वर्णित है। महेन्द्र सदैव रात को मूमल से मिलने जाया करता था। एक रात जब वह मूमल के महल मे जाता है तो देखता है कि मूमल पर-पुरुष के साथ सोई हुई है। वह वही स ही उसे बिना जगाये लौट

---

1 मरुभारती, वर्ष ६ अक ४, डॉ० दशरथ शर्मा लिखित गोगा सम्बन्धी लेख।

जाता है। वस्तुत मूमल ने अपनी बहिन को मर्दाने कपडे पहिनाकर अपने साथ सुला रखा था। इस प्रकार सदा का संयोग वियोग में बदल गया।

'नागजी-नागवन्ती' का प्रेम भी वियोग की वह्नि में तपकर आज भी प्रेमियों के समक्ष एक आदर्श स्थापित किये हुए है। इस गीत-कथा में पुरुष-मन का अच्छा वर्णन मिलता है। एक दोहा द्रष्टव्य है—

'सूनो सूटी ताण, वतळाया बोल नही।
पदेयक पडसी काम, नोरा करसी नागजी।।'

पाबूजी की पड के अतिरिक्त राजस्थान प्रदेश में अन्य कई पडों का भी प्रचलन है। इनमें प्रमुख पडें हैं—रामदेवजी की पड, माताजी की पड (या भैंसासुर की पड), रामदला की पड एवं कृष्णदला की पड। रामदेवजी की पड में रामदेवजी के सत्कृत्यों का उल्लेख है। माताजी की पड में महिषमर्दिनि चामुण्डा एवं महिषासुर के युद्ध का चित्रण है। इन दोनों पडों में अन्य कई देवताओं, स्वर्ग-नरक, धर्म करने पर मिलने वाले फलों एवं पाप करने पर मिलने वाले भोगों का भी विवेचन किया गया है। रामदला एवं कृष्णदला की पड बिना वाद्य के दिन में बाँची जाती है। इनके वाचक हाडौती में अधिक हैं। इनके वाचन का भी अजीब ढंग है। रामदला की पड में समस्त चराचर जगत के कार्यों का ब्यौरा मिल जाता है। सत्कृत्यों एवं दुष्कर्मों का लेखा-जोखा भी मिल जाता है। रामदेवजी की पड उनके भक्तों (भांबियों, चमारों तथा बलाइयों) में प्रचलित है। माताजी की पड का वाचन नहीं किया जाता परन्तु चोरी करने के लिए जाते समय बावरी लोग इसकी पूजा करके शुभ शकुन लेते हैं।

'भारत' नाम से जानी जाने वाली गाथाओं में नायक का अनुकरणीय चरित्र देखने को मिलता है एवं नायक परोपकार हेतु युद्ध करता प्रदर्शित किया गया है। निम्नलिखित प्रसिद्ध भारत हैं—माताजी रो भारत, ताखाजी रो भारत, तेजाजी रो भारत, खालकदेव रो भागत (अंबा माता रो भारत), चावडा रो भारत, मासीमा गो भारत, नाथू रो भारत, चौधरी भारत, नारसिंघी रो भारत, रेवारी रो भारत, काळा-गोरा रो भारत, गाळवा रो भारत, और पाडवों रो भारत।

जैसा कि पहले ही बता दिया गया है कि राजस्थानी लोक-गाथाओं में 'ब्यावलों' का भी उल्लेख्य स्थान है। इन ब्यावलों में चरित-नायक के जन्म से लेकर उसके विवाह तक की कथा वर्णित रहती है। कभी कभी यह कथा गर्भाधान से लेकर विवाह तक का उल्लेख करने वाली होती है। इनमें प्रमुख रूप से यही दर्शाया गया है कि सदुपदेश से या किसी अद्भुत घटना से प्रभावित होकर नायक (कभी कभी नायिका भी) विवाह सम्पन्न होते ही सन्यास ले लेता है। ये ब्यावले गरासिया जाति में अधिक प्रचलित हैं। इन ब्यावलों में राममापीर रो ब्यावलो, मीरा बाई रो ब्यावलो, अणची बाई रो ब्यावलो, दयालु बाई रो

ब्यावलो, शकर रो ब्यावलो आदि प्रसिद्ध हैं।

(१) प्रेम-प्रधान राजस्थानी लोक-गाथाएँ

मनुष्य के जीवन मे प्रेम सर्वोपरि है। प्रेम मे निश्छलता एव निष्कपटता का होना अत्यावश्यक है। प्रिय के लिए अपना सर्वस्व लुटा देने की भावना ही प्रेम को चिरस्थायी रख सकती है। प्रेम की ज्योति यदि दोनो हृदयो मे जलती रहती है, उस प्रेम के लिए 'सोने मे सुगध' की कहावत चरितार्थ होती है। एकपक्षीय प्रेम कई बार घातक भी सिद्ध होता है। राव सँगार जसमल पर मोहित हो गया पर जसमल उसे बिलकुल नही चाहती। पतिव्रत धर्म का पालन करने वाली जसमल 'देमत बिगाड़ू रावजी' का भाँति-भाँति से समझाने का प्रयत्न करती है पर निर्बुद्धि नृप के हृदय पर कुछ भी प्रभाव नही पडता है। राव उसे अनेक प्रलोभन देता है पर उसे लुभाने वाला तो उसका पति है। राव के प्रेम मे कामान्धता है और जसमल के प्रेम मे (अपने पति के प्रति) पातिव्रत्य। इन प्रेम-कथाओ मे प्रसग आने पर तत्सम्बन्धी अन्य उदाहरण या वर्णन जोड दिये जाते हैं। यथा—जब राव सँगार जसमल को कहता है कि तेरा पति तो काले रग का है। लोक-गाथाकार को यहाँ किसी प्रकार का वर्णन जोडने की छूट मिल गयी। वह जसमल के मुँह से कहलवाता है कि काली कस्तूरी होती है जो बहुत ही मूल्यवान है। वन खड मे वास करने वाली कोयल भी काली होती है पर अपनी मधुर वाणी से सभी को मोहित कर देती है। भैंस का रग भी काला होता है पर वह घी-दूध से सभी को तृप्त कर देती है। अत महत्ता रग की ही नही अपितु गुणो की है। कहने का आशय यह है कि यथावसर उदाहरणो एव प्रसगोचित वर्णनो की भरमार राजस्थानी लोक-गाथाओ मे मिलती है। यह प्रवृत्ति वीरत्व व्यजक गाथाओ मे भी मिल सकती है।

प्रेम-प्रधान लोक-गाथाओ मे भी नायक-नायिका की देह यष्टि के सौन्दर्य-चित्रण की प्रवृत्ति पायी जाती है। विविध उपमानो का प्रयोग कर नख शिख वर्णन किये गये हैं। मूमल और महेन्द्र की गीत कथा इसका ज्वलत उदाहरण है।

इन गाथाओ मे प्रथमदृष्टि प्रेम को सर्वोत्कृष्ट बताया गया है। महेन्द्र मूमल को पहली बार देखते ही उस पर मुग्ध हो जाता है और मूमल भी अपना हृदय दे बैठती है। 'निहालदे सुलतान' नामक वीर-गाथा मे भी नायक-नायिका प्रथम मिलन पर ही एक-दूसरे के हो बैठते है।

प्रेमी अपने ससार मे मस्त रहना चाहते हैं पर सासारिक उन्हें चैन से नही जीने देना चाहते। उनके प्रेम मार्ग में अनेक प्रकार की बाधाएँ उपस्थित की जाती है। लोक लाज प्रेमियों की सबसे बडी बाधा है। वे अपनी इच्छानुसार मिल-जुल नही सकते। महेन्द्र मूमल से मिलने के लिए सदैव रात मे चोरी छुपे जाता है। कही कही पर सम्बन्धी दो प्रेमियो के मिलन मे अनेक प्रकार की अडचनें डाल

देते हैं। कभी यह कार्य सपत्नी द्वारा सम्पन्न किया जाता है। 'जलाल-बूबना' एव 'बींभा-सोरठ' के परस्पर मिलने म उनके सम्बन्धियों द्वारा कठिनाइयाँ उपस्थित की गयी। मालवणी ढोला को मारू से नही मिलने देना चाहती। राजकुमारी चनणा को जब यह विश्वास हो जाता है कि उसका पति सो गया है तो वह अपने प्रेमी रामू सोनार से मिलने के लिए जाती है। इतनी कठिनाइयों को सहर्ष झेलते हुए प्रेमी नियत समय पर मिले बिना नही रहते। प्रेम के आदर्श को सर्वोपरि स्वीकार प्रेम करने वाली इन नायिकाओ के आवास-स्थल पर कडे पहरे लगा दिये जाते हैं। पर प्रेमी येन-केन-प्रकारेण किसी-न-किसी भेष मे मिल ही लेते हैं।

राजस्थानी प्रेम गाथाओं 'बाळपणे री प्रीत' को बहुत अधिक महत्त्व मिला है। बाल्यकाल का यह प्रेम कभी गुड्डे-गुड्डी के खेल-खेल मे उत्पन्न हुआ है, कभी बछडे चराते समय एक-दूसरे के जीवन मे बहुत नजदीक आ जाने पर हुआ है। रामू और चनणा बालपन मे ही एक-दूसरे के जीवन-साथी बन गये थे। 'नागजी और नागवन्ती' की प्रेम-गाथा में भी एक स्थान पर कहा गया है कि बालपन के प्रेम को तोड डालना नितान्त असम्भव है। प्रेम कभी भी पुराना नही होता। वह तो नित-नूतन है। कुछ पक्तियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'नागजी तडक तडक मत तोड रे वैरी कसवारी रे तार ज्यू ओ नागजी
नागजी ज्यू तूटे त्यू जोड रे वैरी प्रीत पुराणी ना पडे ओ नागजी।
नागजी नागर वेलडी रे वैरी पसरे पण फूले नही ओ नागजी
नागजी बाळपणे री प्रीत वैरी पिछडे पण छूटे नही ओ नागजी।'

राजस्थान की इन प्रेम-गाथाओ मे विरह-भावना को भी स्थान मिला है। इनमें सन्देश-प्रेषण, मृदु-उपालम्भ, मान प्रसंग, विरह-काल में विरही हृदय पर पड़ने वाले प्राकृतिक व्यापारो के प्रभावो का भी लेखा-जोखा मिलता है। पावस-काल प्रेम की पुजारिन मारवणी को विरह-काल सदृश प्रतीत होता है। अपनी परिस्थितियों से तग आकर वह ढोला के नाम ढाढ़ो के साथ सन्देश भेजती है। ढोला-मारू मे प्रकृति-चित्रण भी बहुत अच्छा हुआ है। नागजी नागवन्ती से रूठ गया है। नागवन्ती उसे मनाने के सैकडों उपाय करती है। वह सयोगावस्था की रगरलियों की याद करके मन-ही मन मे रोती रहती है। वियोग ने उसके शृगार को भी छीन लिया। विरह-कातरा नागवन्ती की करुण कथा निम्न पक्तियो मे द्रष्टव्य है—

'नागजी साथी खजाने रो माल रे वैरी लूण हरामी हो गियो ओ नागजी
नागजी एकर घुडलो घेर रे वैरी मनडे री बाता म्हैं कँवू ओ नागजी
नागजी भलो निभाई प्रीत रे वैरी रैण विछोवो कर चल्यो ओ नागजी
नागजी रमता एकज मेडा रे वैरी सब रग फीका तैं कर्या ओ नागजी
नागजी रहता अेकज मन रे वैरी रैण विछोवो तैं कर्यो ओ नागजी

नागजी सूवना अेक पिलग रे वैरी न्यारा न्यारा तें कर्या ओ नागजी
नागजी टीको फीकी पड गई रे वैरी कजळो सगळो बह ग्यो ओ नागजी
नागजी होय ऊमगी बादळो रे वैरी नयणा बरस मेहजी ओ नागजी
नागजी माखनडो सो तें लियो रे वैरी रह गई खाटी छाछ ओ नागजी
नागजी अेकर मुक्डे वाल रे वैरी बास निराशी मत करो ओ नागजी।'

पुरुष मान का कैसा सुन्दर चित्रण है। कितना मृदु उपालम्भ है। प्रियतम साथ ही है पर वह प्रिया से बात भी नही करता। एक वे रूठ जाने पर प्रेम कहाँ रहा। ढोला मारू मे भी विरह के हृदयस्पर्शी अनेक वर्णन मिलेंगे।

ये प्रेम गाथाएँ सुखात भी है और दुखात भी। ढोला मारू सुखात प्रेम-गाथा है। नागजी नागवन्ती, रामू चनणा आदि दुखात प्रेम गाथाएँ हैं। जसमादे ओडणी मे जसमल का प्राणान्त हो जाता है। नागजी-नागवन्ती के प्रेम सूत्र को तोड देता है। रामू-चनणा मे भी दोनो प्रेमी अपनी इहलौकिक लीला समाप्त कर देते है।

(२) वीरत्व-व्यजक राजस्थानी लोक-गाथाएँ

विश्व मे 'हीमत की कीमत' है। हिम्मतवान की अक्षय कीर्ति पताका युग-युगान्तर तक फहराती रहती है। उसका पार्थिव गात मिट जाता है पर उसके यशोकार्य को मिटाने वाला कोई नही है। वह मरकर भी अमर हो जाता है। लोगो के समक्ष आदर्श उपस्थित कर जाता है। भावी पीढियाँ उसका देवतुल्य सम्मान करती हैं। 'निहालदे सुलतान' नामक गाथा मे कहा भी गया है—

'इळ ऊपर रहसी अमर कीरत रा कमठाण।'

इस प्रकार से अमर रहने वाली कीर्ति के उपासक के लिए कौन कौन सी विशेषताओ का होना आवश्यक है, यह 'निहालदे-सुलतान' की निम्न पक्तियो से ज्ञात हो जाता है—

'सदा रहै काछ री दौड जुद्ध मू पीठ नी मोडे।
रण मे रहै निसक, सीम मनवारा ताडे।
बोले नही वड बोल काठ नही मन का।
विपत देख कै सधरै, गरब होय न धन का।
सिरणागत री रिच्छा करै, दया धरम अर चाकरी।
दस लच्छण रजपूत रा, नाम धरावै छातरी।'

उक्त दस गुणो से सम्पन्न होने वाला व्यक्ति वीर कहलाने का अधिकारी है। राजस्थानी लोक-गाथाओ के नायक इन सभी गुणो से विभूषित हैं। क्या सुलतान, क्या पाबू राठौड, क्या सभी बगडावत, क्या तेजा, क्या गोगा, क्या पृथ्वीराज, कोई भी किसी से कम नही है। यहाँ की वीरागनायें भी अपना सर्वस्व न्यौछावर करने मे कतई हिचकिचाती नही। 'सजना' ने पुरुष-वेश धारण कर राजा की चाकरी पूरी की और अपने वृद्ध पिता की चिन्ता दूर की तो निहालदे ने वीर

पुरुष का बाना पहिनकर जलदीप की माता रूपादे से विवाह किया। पृथ्वीराज की बहिन सुरजा भी भाई की सहायतार्थ डाकुओं के पीछे गयी। यदि हमें इन गाथाओं के नायकों का सही परिचय जानना है तो 'निहालदे-सुलतान' के नायक द्वारा उच्चरित निम्न पंक्तियाँ देख लेनी चाहिए। व्यक्तिगत नामों एवं पारिवारिक सम्बन्धों के पचड़ों को अलग कर देने पर यह पद्य खंड सही माने में राजस्थानी लोक-गाथाओं के नायकों का परिचय प्रस्तुत करता है। सुलतान मात भरने के बाद सभी सरदारों के समक्ष कहता है—

'म्हे ई कहो जू कौवलगढ रो गढपति
तो जणे मैनपाल री बाळ गोपाळ
तो जणे पोतो कहो जू और राजा चकवें वेन रो
तो जणे इतरी ओपमा ई म्हारी करजो नाय
मूँडे रोती झूठ नी म्हे बोलतो
तो जणे सभा मे बैठने ई नी चूकू दान
रण मे जायने ई पाछो उलटो नी बावड़ू
तो जणे परतिरिया ई समझू माता रे समतूळ
पाच ई बरस री बेटी म्हारे लागती
तो जणे पनरे बरस री समझू बैन
माड़े रो जती हाथ रो सखी म्हनें जाणला
तो जणे पर दुखा रो ई मजणहार
किणी ई गरीब नैं म्हूँ नी सतावतो
उणरो दुख ई निवारण म्हू करू
तो जणे जे **छतरीपण रा है काम**
चेलो कहो जू गोरखनाथ रो
तो जणे गह परिया सीस पर हाथ
या कामा रा नेम नेला राखजे
तो जणे जुग मे हुय जावे अम्मर नांव (निसाण)
कवि तो करेला दुनिया मे थारी ओपमा
तो कटेला गुणणिया रा पाप
गुरवा रा वचन हे निभावना
तो जणे बेड़े नें लघावें परले पार
गुरवा री दया म्हारे पर हा गई
तो जणे हुण विध भरिया सत रा भाव ।।'

उक्त पद्य मे मोटे अक्षरों वाली पंक्ति 'जे छतरीपण रा है काम' सारी बातों को स्पष्ट कर देती है। ये सारे कार्य केवल सुलतान के ही नहीं हैं अपितु प्रत्येक

क्षत्रिय के है। क्षत्रिय शब्द यहाँ पर जाति-विशेष का सूचक न होकर वीर व्यक्ति का बोधक है।

वीरत्व-व्यंजक राजस्थानी गाथाओं में हमें वीर पुरुष एवं वीरांगना की चारित्रिक विशेषताओं का भी पूरा-पूरा ब्यौरा मिलता है। इन विशेषताओं के आधार पर राजस्थानी वीर का सही चित्र हमारे समक्ष उभर आता है। वीर व्यक्ति स्वाभिमानी होता है। राजस्थान में कुछ वस्तुओं पर पूर्णरूपेण वैयक्तिक अधिकार का होना आवश्यक माना गया है। वैयक्तिकता के प्रसंग में जगतसिंह से सुलतान द्वारा कहे गये निम्न शब्द परोक्ष रूप से वीर पुरुष की स्वाभिमानता की भावना को ही प्रकट करते हैं।

जगतसिंघ हाथ री लावडी, पग री मोचडी, माथैं री पागडी अर परणियोडी लुगाई निपोछिये सू निपोछिये मिनख ई मरिया मारिया बिगर दूजै नैं को सूंपै नी।

इस सन्दर्भ में बगडावत के एक पात्र नैंवा का कथन भी द्रष्टव्य है—

'भाभी था बरज तो रिया हो पण था ई बेदो के घर री लुगाई डरप न दूजा रै घरे छोड दा काई ? राणी जैमती भोजै री परणियोडी है।'

इन गाथाओं में 'आव फळै नीचो लुळै' कहकर नायक की विनम्रता को प्रकट किया है। इन वीरों को परोपकार करने में, दूसरों के दुख में हाथ बँटाने में अतीव प्रसन्नता होती है। वीर लोग भयंकर-से-भयंकर शत्रु से लोहा लेने का तो साहस रखते ही हैं पर साथ-ही साथ दुर्दैव तथा दुर्दिन का डटकर सामना करने का भी इनमें अपूर्व साहस होता है।

वीरता-प्रधान ये गाथाएँ तत्कालीन समाज की अवस्थाओं, सामाजिकों की मान्यताओं और धारणाओं का भी उल्लेख करती हैं। उस जमाने में दूल्हे की योग्यता तोरण-वन्दना से भी आँकी जाती थी। वधू-पक्ष वाले जान-बूझकर तोरण को काफी ऊँचे स्थान पर रखते थे। 'पाबूजी री पड' में भी हम वर्णन मिलता है कि सोढों ने तोरण की ऊँचाई बहुत ऊँची रखी थी। कई बार तोरण-वन्दना ही वाद-विवाद का विषय बन जाता था। रानी जैमती के विवाह में रैण के राव एवं बगडावतों में परस्पर कलह हो गयी थी। यहाँ उदाहरणार्थ कुछ पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं—

रैण रो राव—

'म्हारो तोरण वादता था भगडो लीधा मोल।
कातर काढू रावत भाज को, मारू मदवो मौज।'

उत्तर नीमदे द्वारा—

'लडू औ लडू काई करै, लडिया तणा वखाण
बावू औ वावू काई करै, वाया तणा वखाण।

थारे अस्यो घमोड़ सैलडो, जाणे हल मे पूरी हाल ।
थारै डाढो मे मान्नी रोप दू म्हनै सवाई भोज री आण ।'

उन्ही दिनो किसी के विवाह हेतु नारियल आ जाता तो उसे वापस लौटाना अप्रतिष्ठा की बात थी । जैमती के पिता द्वारा भेजे गये पडित ने सवाई भोज को नारियल देना चाहा पर बगडावतो ने तय किया कि नारियल हमे स्वीकार नही करना चाहिए । तभी सवाई भोज कह उठता है—'दादा नारेळ पाछो फेरणो तो चौखो नी लागे ।' इस प्रकार के गर्वीले वीरो के स्वाभिमान को जब ठेस पहुँचती है तो उन्हें 'सूरापण' चढता है । डूगजी को अग्रेजो ने धोखे से बेडियो मे जकड लिया, उस समय की उनकी स्थिति द्रष्टव्य है—

'बडबड चावै आगळी वो कडवड चावै जाड ।
नैण अगे ज्यू दीवळा ज्या री सवा हाथ री नाड ॥
भळ भळ तो माथो करै नैणा अगे मसाल ।
इसडो रावड एक है जे होवे दो च्यार ।।'

वीर के हाव-भावो एव आगिक चेष्टाओ का सजीव चित्रण किया गया है । यह तो पृथ्वी ही है जो ऐसे उद्‌भट वीरो के भार को सह सकती है ।

'धिन धिन माता धरतरी सह्‌यो भडा रो भार ।'

ये वीर किसी गरीब की हाय नही लेना चाहते । वे तो उनके दुखडे मे शरीक होना चाहते हैं । मालिन की गायें डाकू घेरकर ले गये । राजा ने उसकी पुकार नहीं सुनी पर वीर भाई पृथ्वीराज अपनी वीर बहिन की उचित सलाह को कैसे टाल सकता था ?—

'बीरा हितरा देयरी रै मालण धामसी दैय री गाया रो सराप ।
पिरथी ओ राजा कोनी मिळै गाया रो सराप ।'

इन वीरो के लिए कर्तव्यपरायणता सबसे बडी बात है । इन्हे अपने कर्तव्य एव धर्माधर्म का सदैव ज्ञान रहता है । इन लोगो की तो यहाँ तक मान्यता है कि कर्तव्य के पथ पर जो चिह्न-चिह्नित हो गये हैं वे कदापि मिट नही सकते । एक स्थान पर मुलतान कहता भी है—

'रे चेला आछा करतब ई दुनिया मे करो
तो जणे करतब रा करया ई रूपे निसाण
हलायोडा ई धरम रा निसांण ना हिलै
तो जणे कवि ई करै जिणा री ओपमा ।'

ये वीर सत्य और धर्म के रक्षक थे । सत्य की अपरिमित शक्ति मे इन्हे दृढ विश्वास था । सत्य और धर्म-प्रधान जीवन-यापन करने के कारण ही काल भी इनका कुछ नहीं बिगाड सकता था । वीर तो यही मानता है कि पृथ्वी भी सत्य के आधार पर टिकी हुई है । धर्म की महत्ता को इन गाथाओ मे बार-बार

स्वीकारा गया है। जैसा कि 'निहालदे-सुलतान' में वर्णित है—

'उण ई सगसा री चालें जुग में वारता
तो जणे धरम रा करिया जिणा ई काम।'

बगड़ावत गाथा में कहा भी गया है—

'बगडावत सत रा पूत हा। धरम रा नाती हा। धरम पुन्न आगे काळ रो डाव वणो रै नी लागतो।'

छल-कपट एवं स्वार्थपरता से व दूर ही रहते थे। वचन-निर्वाह इनका उद्देश्य रहता था। देवल देवी को वचन देने वाला पाबू राठौड़ विवाह-मंडप से उठ आया। सवाई भोज ने जैमती को रैण के राव के वहाँ से ले आने का वचन दिया था जो उसने पूर्ण रूप से निभाया। हाँ यह बात दूसरी है कि इसके लिए सभी भाइयों को अपने प्राणों की बलि देनी पड़ी। तेजे का सारा शरीर लहू-लुहान हो गया था पर अपने वचन से बँधा वह वासुकि के पास आकर ही रहा। इन सभी गाथाओं में 'प्राण जाइ पर वचन न जाई' बात का प्रकारा-तर से समर्थन किया गया है।

राजस्थानी लोक-गाथाएँ वीरों की दानवीरता के उदाहरणों से भी भरी पड़ी हैं। ये वीर शरीर की दृष्टि से 'वज्रादपि कठोर' और हृदय से 'मृदुनि कुसुमादपि' हैं। दान दी हुई पृथ्वी पर तो ये पैर भी नहीं रखना चाहते। ये धन के सचय की अपेक्षा उसे गरीबों में बाँट देना उचित समझते हैं। बगड़ावतों की दानशीलता इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

'भोजो तो माया मांल्हवा लागा। धोवा भर-भर मोहरा लुटावे। जाचक खाली हाथ भोजा रे घरे आवे जो मोहरा री भोळिया भरिया पाछा जावे। सूळा सोपता खावे ने खुवावे।' ये ही बगड़ावत जहाँ आते हैं वहीं मोहरें-ही-मोहरें बिखेर देते हैं। 'डूगसिंघ' लूटमार से हाथ लगे धन को गरीबों में बाँट देता था। डूगजी-जवारजी री पड से कुछ पंक्तियाँ उल्लेख्य हैं—

'चुग चुग हार्‌या बाळदी, चुग चुग छक्या गुवाळ।
चुग चुग दुनिया धापगी, वा जै बोलती जाय।
सात ऊँट दखा रा भरिया, पोकरजी नै जाय।
पोकरजी रे घाट का जाजम दई विछाय।
गरीब गुरवा वामणां ने हेलो दियो पडाय।
रुपिया धापा वामणिया भौरा धापा भाट।'

विजित शत्रु के साथ कैसा व्यवहार करना चाहिए ? इसमें ये पूर्ण पटु हैं। सुलतान फूलसिंह को भ्रातृवत् मानता था, फिर भी बूंदी के हाडा नरेशों को बुलाकर फूलसिंह ने धोखा किया पर गम्भीर प्रकृति वाले सुलतान ने फूलसिंह को सदा अहसानों से दबाना श्रेयस्कर समझा। पृथ्वीराज डाकुओं से कहता है कि मैं

तुम्ह मारूँ या 'लीलडे वछेरे री लात' से मरवाऊँ पर मुँह मे तृण ...ज देने पर वह उन्हें जान बख्श देता है। पाबूजी का सहयोगी डामा गैली राणी के 'अणदू वीर' को सरोप पकड़ना जाता है पर उस अणदू द्वारा भी मुँह मे घास के तिनके डाल देने से उसका क्रोध शान्त हो जाता है।

वीरता प्रधान इन गाथाओं म नायक के प्रति किसी पात्र द्वारा कहे गये व्यग्य-वाक्य गाथा को नया मोड देते हैं। शूर-वीर किसी की कड़वी बात कदापि नही सह सकता। बगड़ावत मे कहा भी गया है—

'सूरा ने नी खटे अवळा बोल।'

पाबूजी चौपड के खेल मे हार गये। भाभी का सात्वना देना उन्हें क्योकर सुहाता। वह तो व्यग्यात्मक वाक्यो से जले पर और नमक छिड़कने लगी। एक-एक वाक्य ने पाबू के हृदय को बेध डाला। ऐसी परिस्थिति मे पाबू की निम्न पक्तियाँ सार्थक ही प्रतीत होती हैं—

'हार्‌योडी बाजी पर बोल्या भावज अवळा बोल।
काई तातै घावा पै रे यो लूणज भावज छिड़कियो॥
भावजडी री वाता खटके काळजिये रे माय।
बाई म्हाने तो बिसरायो अणदू वीर ने॥
चादा बायेला हिरण घोडे पर काठी दे मडवाय॥
बाई बाघ तो म्हैं लावू रे गैली रे अणदू वीर ने॥'

तेजा भी भाभी के कडवे बोल सुनकर अपनी पत्नी लाने ससुराल चला गया। पृथ्वीराज मालिन की गायें छुड़ाकर ले आया पर मालिन ने कहा कि 'कुड़याळी गाय' और 'काणो केरडो' किस दे आया? क्षत्रिय के ऐडी से लेकर चोटी तक आग भभक उठी। नेत्र लाल हो गये। उस समय के वर्णन मे वीर रस के सचारियो का चारु चित्र खींचा गया है। उदाहरणार्थ केवल यहाँ एक पक्ति प्रस्तुत की जा रही है—

'अेडी सू चोटी तक भळ नीवळी
अर राता चुट्ट हुयग्या छतरी रा नैण जी
वाह्‌दली पड्‌बे हिरदा हूकसे
वाइ आसर्डालिया भाळा नीवळे।'

और पृथ्वीराज पुन दोनो बचे पशुओ को लाने के लिए निकल पडा। डूगर-सिंह आगरे की कैद मे बन्द कर दिया गया। जोरावरसिंह दारू मे मस्त रहे, यह क्षत्राणी क्योकर सहन कर सकती थी। उसने जोरावर को निम्न पक्तियो मे फटकारा, फलत जोरजी सारे कार्यों को छोड अपने चाचा डूगरसिंह को छुड़ाने को चल दिये—

'..........थारी दारू मे धिरकार ।
क्याने बाधी सीस पाघडी, क्याने बाघो सूत ?
सगो काको पड्यो कैद मे, क्यो बाजो रजपूत ?
हाथा रा हथियार सूप दो, चूडी लाख री पैरो ।
धोती जोडा उरा सूप दो, पगा घाघरो पैरो ।
पडदे मायने लुक्ने बैठो, नैणा काजळ घालो ।
जाय कत री वेडी काटू, म्हूँ तिरिया री जात ।।'

इन वीर-गाथाओ मे वीरो द्वारा खेली जाने वाली मृगया एव किये जाने वाले युद्ध के भी अनेक चित्र मिल जाते हैं, जिनमे मृगया नैपुण्य एव रणकौशल का उल्लेख मिलता है । इस प्रकार के वर्णनो मे वीर की वेश-भूषा, उसके शस्त्रास्त्रो, उसके वाहन घोडे अथवा हाथी, सेना के चलने का ढग, एक-दूसरे पर किये जाने वाले प्रहारो, युद्ध करने की पद्धतियो आदि का उल्लेख मिलता है । इन वर्णनों मे वीरत्व-व्यजक शब्दो का प्रयोग बाहुल्य है । यहाँ कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

(१) *मृगया वर्णन*—

तरवार रो ओसाण ई चूक गिया । रो भाला ओसाण ई चूक गिया । खने ताजणो हो घोडे रो जो दे आवाळ पागडा पे पग ने भाटकियो ओ बाटका । जाणें दो भाया बटकीधा व्है । दो बटका कर दीधा । भाला री अणी मे पोय, भालो खडियो रो खडियो हाथ मे, पाछा बाग धकै ।

(तियोजी द्वारा सूर की शिकार करना नीमदे के सामने)

(२) सेना के प्रयाण का चित्रण—

'चढ्यो राण रो धणी, घटा बाध धणघोर
'''नोपत घुरे पडे रणगजरा सरठौर
मोछर छूटे घणो उडियो सोर
अरडनाळ बहे गोळा बाघलडे बदनौर ।
तो जणे वे चाले ही भीडी गागराड री
तो जणें उठण लागा फौजा रा चक्कर धाण
तो जणें गरद अकासा चढ रही
तो जणें हाथी घोडा ई जिण रा वगरिया ।'

(३) युद्ध-वर्णन—

'भागभडा ओफ गढा माचय्यो अर नाच्यो तरवारा रो रग
बदनोर मे जुड्यो राड को सपरजग
दळ माजे मार्फी बावडे भल पूचा रजपूता रा बेटा आय
धामधूम सेल्या री बहगी, तरवारा री उड़गी लाय
भाला साधे बीजळसारा रा, कसवै दिया ताण

अर्ब चमके बीजळी, बादला मे बहग्या बाण
टूटे टोप उडे खोपडी माथा पडग्यो मग
बदनोर रे मायने, नेबो जी लगा दिया चक्कर दग
बीरदे रावत चढ नीकळ्यो, लीनी ज्वाला हाथ
सूरज ऊगता होज गैळी राणा वाकर री रेण
पिरथवी चढगी परवता घरहर धूजी रेण
सारी रेण लूटली छोडी पाबू री हवेली पिछाण
देसदेस में ओदू पड्यो राणा जी खबर पूगी जाण
चढियो घणी रेण रो पखड्या छा रह्यो घेरो
आयो राणो जी वीर खेत बदनेर
दरसण उतरया देवता, ऊपर सू उतरिया विमाण ।'

ऐसा भयंकर युद्ध हुआ कि देवता लोग भी अपने विमान लेकर देखने आ पहुंचे । सवाई भोज की पुत्री दीपकंवर ने भी बहुत बहादुरी से रैण के राव की फौज से युद्ध किया था । उसके पीछे तो लोकोक्ति चल निकली कि 'और जगा लडे लोग रायळा मे लडे लुगाई' । युद्ध का समाचार सुनते ही घोडों को भी 'सूरापण' चढ जाता था । जैसा कि निम्न पंक्तियों में वर्णित है—

'तोपा चाली जद नीलखे बछेरे ने सूरापन आयो । मार-मार खुरा री भीत तोड जमी मे उतरग्यो । घोडो गिगे नी आयो जद नेबोजी पायगा में ग्या । घोडे री कनेति निजर आई । पडकर बारै काढ्या ।'

इन गाथाओं में घोडे (या घोडी) के सौन्दर्य-चित्रण से सम्बन्धित भी वर्णन मिलते हैं । उनकी साज सज्जा, उनकी चाल, उनकी देह-यष्टि सभी का उल्लेख मिलता है । कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

'घोडो चावडा री अवतार । कै तो पाबू रे केसर काळवी जेडी ही कै रामसा पीर रै लीलो घोडा हो । घोडी तो सावण री मोरणी ज्यूं नाचै । थाळी में ठमका करै । पवन सू बाता करै । तारा सू चोटा करै । बावली रै पगा मे बाजणिया नेवर । सोने री मुरताळ । केसवाळी में मोती । गळे में नौसर हार । लाख-लाख रा पागडा । हुरियो बनाती जीण । दुमची रे पाट रा फूदा घोडी खूब फूब वणी ।'

रण में खेत रहने वाले इन रणवीरों की वीर पत्नियों के सती हो जाने के अनेक प्रसंग हमें राजस्थानी लोक-गाथाओं में मिलते हैं । पति का स्वर्गवास हो जाने पर पत्नी का जीवन निःश्रेयस है । पति के सिर को गोद में रख जीते जी आग की परम शान्तिदायक गोद में बैठ जाना उसके लिए गर्व की बात होती थी और प्राणेश्वर के मरणोपरांत जीवित रहना उसके लिए अभिशाप था । पाबूजी की पत्नी सोढ़ी रानी पाबू के मरणोपरान्त सती हो गयी तो वीर तेजा की

पत्नी सतियों मे पीछे रहने वाली कैसे हो सकती है। बगडावतो की पत्नियों ने भी अपने सतीत्व धर्म का पालन सती होकर किया। पति युद्ध-क्षेत्र में ही रह जाता और पत्नी के लिए उसके सिर की 'पाग' भेज दी जाती थी। उसी को लेकर वह सती हो जाती थी। सती देवताओं की अर्चना करके सोलह शृंगार से प्रसाधित हो पति के साथ जल जाती थी। सारे गाँव के लोग वहाँ इकट्ठे होते थे। सती कई वरदान और 'परचे' देती थी। सती होने की बात को स्पष्ट करने वाला एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'सरदार मरग्या खारी रे खेत।
राणिया जोवे या सिदारा री तिवारा पे बाट
या सिरदारा री पागडिया परी मेल दो
राणिया सत कर जाही रजपूता रे साट॥'

राजस्थान प्रदेश मे प्रचलित इन वीरतापरक लोक-गाथाओ मे अनेक स्थल ऐसे मिलते हैं जिनके आधार पर प्राचीन समाज मे प्रचलित अंध-विश्वासो, राज सम्बन्धी अव्यवस्थाओ, लोक-मानस पर पूर्ण आधिपत्य रखने वाले जादू-मन्त्र-टोना-टोटका सम्बन्धी एक उदाहरण 'बगडावत' नामक गाथा से द्रष्टव्य है—

'राणा जी थारी रैण म बडो घोर अधार।
गतराडा घोडे चढे, पनाजी पाळा जाया।
सजीडा ऊडरा करे, रोझ रातवा खाय।
भलाळा भूखा भरै भगतण पेठ्या खाय।
भूखा मरै, डूम जतेबी खाय।'

मन्त्र-बल के आधार पर उन दिनो मे पुरुष का रूप परिवर्तन किया जा सकता था। 'निहालदे-सुलतान' मे मनुष्य को शुक, खरगोश, गधो आदि बनाने का उल्लेख मिलता है। 'काळा-गोरा रो भारत' नामक गाथा मे गागली तलिन गोरा को मन्त्र-बल से बैल बना देती है। इसी प्रकार बगडावत नामक गाथा मे भी अपने प्रेमी सवाई भोज से मिलने के लिए बेचैन रहने वाली रानी जैमती अपनी दासी से कहती है—

'हीरा जै रावजी ने थणादे केसर कूकडो
थू (ई) विणजा बडैच बिलाई (बिल्ली)
वटे म्हारे गळे री फास।'

इन वीरता प्रधान लोक-गाथाओ पर दृष्टिपात करने से यह भी पता चलता है कि उस समय समाज मे अति-प्राकृतिक तत्त्वो से सम्बन्धित भी अनेक भ्रान्तियाँ व्याप्त थी। राक्षस की कल्पना उस समाज का सबसे बडा भय था। 'पृथ्वीराज सुरजा' मे राक्षसो के गाँव का उल्लेख आता है। 'स्यावकरण घोडो' नामक गाथा मे भी हम देखते हैं कि अर्जुन दो बार राक्षसो के चक्कर मे पड जाता है। 'निहालदे-

सुलतान' मे भी सुलतान की मुठभेड सामुद्रिक दानव, 'धरती घवेल' या 'देही पलट' राक्षस से होनी है। नरवलगढ शहर मे भी प्रतिदिन एक मनुष्य का भक्षण लेने के लिए राक्षस आया करता था, जिसका सहार सुलतान ने किया। दानव से दुनिया कितनी भयभीत थी, यह मेदा की निम्न पक्तियो से ज्ञात होता है—

'नरवल सहर पे या पडजो बीजळी
तो जणे ढोलकँवर ने डस जो ब्रामण नाग
बुरी लाग सो अठे दाना (दानव) की लगवादई
आज आमण जायो जारियो दाना रो भेंट।'

वीरत्व-व्यजक लोक-गाथाओ के मगलाचरण मे सभी देवी-देवताओं की स्तुति का उल्लेख रहता ही है पर इन गाथाओ मे नायक अपने इष्ट देव की कृपा से सभी कार्यों को सुचारु रूप से सम्पन्न करते दिखायी देते हैं। इष्ट-बल से ही वे बडी से-बडी कठिनाई का सहर्ष सामना कर सकते हैं। अन्य पात्र भी अपने इष्ट-देव के बलबूते पर काम करते हैं। सुलतान के सारे कार्यों को सम्पन्न कराने मे गुरु गोरखनाथ का हाथ है तो सुलतान का सहयोगी जानी चोर देवी दुर्गा के भरोसे निश्चिन्त रहता है। वह दुर्गा देवी का आह्वान करता है—

'जाग जाग ज्वालामुखी, सूती सो उठ जाग
म्हारी निपट गरीबी री, तू परतिग्या राख ।।'

इन्ही गाथाओ मे दैविक पात्रो का भी वर्णन मिलता है। ये दैविक पात्र कही मानव मात्र की सहायता करते दृष्टिगोचर होते हैं तो कही उनकी भाँति-भाँति से परीक्षाएँ लेते दिखायी देते हैं और कही उनको खपाने के लिए कोई रूप धारण करते हैं। बगडावतो के नाश हेतु देवी चामुण्डा को रानी जैमती, पातू कलाळी और बूवली घोडी का रूप धारण करना पडा। जगतसिंह के समक्ष रहस्योद्घाटन करते समय 'निहालदे-सुलतान' मे भी कहा गया है—

'रावण री विळिया रे सीता या वणी
तो भई रावण रा खो दिया बीज रे नास।
पडवा री विळिया वणी थी द्रोपदी
घड् दिया है हिमाळे गाळ।
बगडावता रे आ वणी जैमती
ता जणे चाळो सू घर दिया ई सरवर पाळ।
थारी रे विळिया या वणो राणी निहालदे
भाई खप्पर रे भरेगी या खाडी रे माय ।।'

लोक-प्रचलित शकुनो को भी इन लोक-गाथाओ मे स्थान मिला है। तेजा जब ससुराल जा रहा था तो अपशकुन हुए। पाबू राठोड की बारात को गाँव से निकलते ही सिहनी मिली और अपशकुन हुए। पृथ्वीराज जब डाकुओ के पीछे

'बार' चढा तो उसे भी अपशकुन हुआ। शकुनो की राजस्थानी जीवन मे सदा से महत्ता रही है। पृथ्वीराज को होने वाले शकुना का उल्लेख निम्न पक्तियो मे बडे अच्छे ढग से हुआ है—

'वे तो चढते छतरी ने सूण होय रिया, चढते छतरी ने लिया दीनो छीन'
आगे जाता छतरी रे सिर पर बैठ्या काळो कागलो
मकडी पूरयो छतरी पे जाल
काळा बळदा छतरी ने गाडी मिल गई
जिण मे बैठो सनीसर देव
घोडे चडा री दोयड विधवा मिळगी नार
जी पर बैठो सनीसर देव ॥'

समय की महत्ता के सम्बन्ध मे इन गाथाओ मे अनेक वर्णन मिलते हैं। बुरा समय आने पर इन वीरो को 'जलमी भोम' भी छोडनी पडती है। समय इन्हे भीख मॉगने के लिए मजबूर कर देता है और समय ही इन्हे हाथी पर चढा देता है। समय ही इनसे परोपकार करवा देता है। 'तुलसी नर का क्या बडा समय बडा बलवान' उक्ति की मर्मस्पर्शी व्याख्या 'निहालदे-सुलतान' की निम्न पक्तिया मे मिलेगी—

'समय बडो है मिनख रो काई बडो
तो जणे ओ सगळो समय रो ख्याल।
ओक तो समय खिणादै कूवा बावडी
तो जणे दूजो ओ समय ई लगादे गढा रे नींव
तीजी आ समय ई चढा दे हाथी लाख रे।
तो जणे पमटी आ समय ई मगा दे घर घर भीख ॥'

इन वीर-गाथाओ मे यथावसर शृगार के सजीले चित्र भी देखने को मिल जाते हैं तो प्रेम के मादक चित्र भी मिल जाते हैं। प्रेम के बिना वीर का जीवन अधूरा माना जाता है। जितना वह कर्त्तव्यनिष्ठ होता है अवसर आने पर उतना ही सौन्दर्य पिपासु भी बन जाता है। इन गाथाओ म जैमती रानी, गोढी रानी, निहालदे आदि के नख शिख चित्रण मिल जाते हैं जो क्षण भर क लिए पाठक, श्रोता एव नायक को प्रेम के ससार की सैर करा देते हैं। कही कही तो यह प्रेम तत्व ही वीरतापूर्ण कार्यों को कराने का मूल आधार प्रतीत होता है। जैमती ही वह कारण है जिसने बगडावतो का झगडा धर्मभाई रैण के राव स करवा दिया। इस प्रकार के स्थलो पर विरह के मार्मिक चित्र भी मिल जायेंगे और प्रथमदृष्टि प्रेम के चित्र भी। इनमे अनमेल विवाह का उल्लेख भी मिलेगा तो वृद्ध विवाह का वर्णन भी मिल जायगा। इनमे गुणो पर रीझने वाली, घर की 'कामणिया' भी दिखायी देगी और 'धन दौलत' पर रीझने वाली 'मित कलाळी'

भी मिलेंगी।

वीर-गाथाओं में जीवन की क्षणभंगुरता को बताकर कहा गया है कि मानव-जीवन का उद्देश्य यश का अर्जन करना ही होना चाहिए ताकि व्यक्ति के मरणोपरान्त भी, उसकी कथा शताब्दियों तक चलती रहे। इन गाथाओं में उपदेशात्मक स्थलों की कमी नहीं है।

(३) पौराणिक लोक-गाथाएँ

राजस्थान प्रदेश में हमें पौराणिक चरित्रों से सम्बन्ध रखने वाली भी कई गाथाएँ मिलती हैं। कुछ गाथाओं का कथानक पौराणिक प्रसंगों पर आधारित है। इन पौराणिक चरित्रों और प्रसंगों को इन गाथाओं के माध्यम से उभारकर लोक के समक्ष आदर्श प्रस्तुत किये गये हैं। इन गाथाओं में हमें भारतीय संस्कृति के साथ-ही साथ राजस्थान की लोक-संस्कृति का भी जीता-जागता स्वरूप देखने को मिलेगा। लोक ने पौराणिक चरित्रों एवं तत्सम्बन्धी घटनाओं को निस्संकोच भाव से ग्रहण किया एवं उन्हें अपनी इच्छानुसार स्वरूप प्रदान किया। कई प्रसंगों को त्याग दिया और अनेक नयी घटनाओं को उनके साथ जोड़ दिया। प्राचीन भारत की सामाजिक व्यवस्था, उस समय के निवासियों की वैचारिक मान्यताओं आदि के अध्ययन की दृष्टि से इन गाथाओं की बड़ी महत्ता है। हिन्दू धर्म की धारणाओं का प्रतिफलन इन गाथाओं में हुआ है। इन गाथाओं के चरित-नायक अदम्य साहसी, अनेक असम्भवप्राय कृत्यों को सम्पन्न करने वाले, धर्म संस्थापक धीर, वीर, गम्भीर और सबके मन को हरने वाले हैं। इन पात्रों को अनेक प्रकार के प्राकृतिक और अति-प्राकृतिक तत्त्वों का सामना करना पड़ता है। इनमें कुछ दैविक पात्र भी होते हैं जो नायक के सहयोगी भी हो सकते हैं और नायक के रास्ते में बाधा डालने वाले भी होते हैं। इन गाथाओं में 'काळा-गोरा रो भारत', 'लोक भारत स्यावकरण घोड़ो' 'रामदला री पड़', 'कृष्णदला री पड़', 'भैंसासुर री पड़' आदि अत्यधिक प्रचलित गाथाएँ हैं। पौराणिक घटनाओं को राजस्थानी लोक गाथाओं में बहुत तोड़ा मरोड़ा गया है। इन गाथाओं के पात्र ईश्वरीय शक्ति से सम्पन्न होते हैं। इन पात्रों को मृत्युलोक से इतर लोक की यात्रा करते भी देखा जा सकता है। इन गाथाओं के पात्रों को भी लोक ने मानवीय दुर्बलताओं से प्रभावित बताया है। इन गाथाओं में बहु-पत्नीत्व भाव की आलोचना भी की गयी है। 'काळा गोरा रो भारत' में हम कवाली देवी एवं पार्वती के झगड़े में दो पत्नियों के पारस्परिक कलह की झाँकी देख सकते हैं—

'अरे कँवे कवाली थू सुणले पारवती म्हारी बात
सुणले म्हारी बात थारा पिव ने वस कर राख
राड थारा बावा ने जो वस कर राख जी अँ जवाला जो···'

पुन —

'या कवे पारवती थू सुणले अ वकाली जी
थू सुणले वकाली म्हारी बात
सुणले नखराली अे म्हारी बात
थे वणी पै करो सिणगार ओ राडा
थे मी की नार्‍या वाजो ओ गडा
ने कुण है थारो धणी अे जी
जै सिवजी म्हारो धणी आळया भाके जी।'

इसी प्रकार 'स्यावकरण घोडो' नामक गाथा मे श्रीकृष्ण अर्जुन के लिए बहुत अनादरसूचक शब्दो का प्रयोग करते हैं—

'म्हारे चढण रो अहर रो घोडलो
भोली रे जाये ने क्यू रे लायो घोड़ला।'

पौराणिक गाथाओ मे उपदेशात्मक प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। परोपकार ही सुखो का मूल है, यश मनुष्य को अमर बना देता है, धन-यौवन चार दिन के पाहुने हैं, घमडी का सिर नीचा होता है आदि अनेक उपदेश-कथन इन गाथाओ मे मिल जाते हैं। 'स्यावकरण घोडा' नामक गाथा मे कहा भी है—

'आज पाडव धरती पर करना अम्मर नाव
फूल कुमळाव जीवे वासना
ओ मोट्यारो मत कर जो गुमान
धन जोवन माया पावणा दिन दोय च्यार।'

इन गाथाओ मे वर्णित देवी देवताओ मे विरोध प्रकट करने वाले तत्त्वो को नही उभारा गया। इसके विपरीत इन गाथाओ मे तो बिना किसी हिचकिचाहट के देवता को दूसरे देवता के नाम से सम्बोधित कर दिया गया है। लोक का दृष्टिकोण परस्पर विभेद को मिटाकर अभेदत्व स्थापित करना रहा है। 'स्यावकरण घोडा' मे श्रीकृष्ण और सूर्य को एक ही मान लिया गया है। दुर्गा देवी द्रौपदी के रूप मे भी दर्शन देती है और जैमती रानी के रूप मे भी दिखायी देती है।

सत्य की महिमा इन गाथाओ म सर्वत्र गायी गयी है। 'स्यावकरण घोडा' अर्जुन को चेतावनी देता है कि सत्य बोलने पर ही मैं आपका पीठ पर चढने दूंगा अन्यथा नही। दानव के डेरे मे दासियाँ भी अर्जुन से कहती हैं कि 'भूठ बोले कदे ना राजवी।'

इन गाथाओ मे धर्माधर्म, पाप-पुण्य, सुख दुख, कर्मफल आदि का विवेचन भी मिलता है। 'रामदला री पड' म सासारिकता मे मिथ्या मोह को निस्सार बताया गया है। धर्म-पथ पर चलने वालो के लिए कहा गया है—'धरमी वन्दा धरम

करे, पन्द्रह पन्द्रह गऊ की पूंछ पकड़ तरे।' इसमें कलयुग का यथार्थ चित्रण भी किया गया है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'अब कळजुग का पेडा ऐसा आया। माता-पिता के धक्का देवे। तिरिया हेत लगावे। बेटी रा धन ले खावे। बेटी ने बेच-बेच बीरा रा करज चुकावे। पाच पचां में बैठ झूठी साख भरे अर झूठो गंगा उठावे। कळजुग में सास-बहू लड़े। सास बिचारी धरम करे अर बहू नीं करण दे। सासू री चुटिया बहू रे हाथ में अर बहू री चुटिया सासू रे हाथ में। आपी सापी मार लगावे। सासू कैवे म्हैं बडी अर बहू कैवे म्हैं बडी। सासू रे हाथ में सोटो अर बहू रे हाथ में मूसळ।'

युग-चित्रण के अतिरिक्त पौराणिक गाथाओं में स्थानीय रंग की छटा भी देखने योग्य ही है। 'स्यावकरण घोड़ो' नामक गाथा में एक स्थल पर हम देखते हैं कि राजस्थान प्रदेश के प्रसिद्ध शस्त्रास्त्रों का उल्लेख हुआ है। यथा—

'बोले दानी छोरिया थे सुणो मना री बात
पाचू लावो तन रा कपड़ा, पांचू लावो हथियार
रामपुरे रो छेलड़ो कांधे भंवर बदूक
कड़िया कटारो भालड़ो हाथां दे दे सोरठड़ी तरवार
भाला ला दो बीजळसार रा।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि पौराणिक गाथाओं ने प्राचीन भारतीय संस्कृति के साथ ही वर्तमान परिस्थितियों का भी उल्लेख किया है। स्थानीय रंग की छटायें भी यहाँ देखने को मिल जायेंगी। लोक-प्रचलित अन्धविश्वासों ने भी इनमें स्थान पाया है।

(४) भक्तिपरक लोक गाथाएँ

धर्म में प्रगाढ़ श्रद्धा एवं भक्ति-भावना—ये दोनों तत्व प्रत्येक भारतीय की आत्मा के साथ जुड़े हुए हैं। इस देश के प्रत्येक प्रदेश में बालक को प्रारम्भ से ही धार्मिक शिक्षा दी जाती रही है। भक्त अनेक कष्टों, विघ्न-बाधाओं को झेलता हुआ अन्ततः परमपद प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है। भक्ति के कारण उसमें दैविक गुणों का विकास होने लग जाता है। राजस्थान में लोक-प्रचलित 'ब्यावल' नाम से जाने जानी वाली लोक-गाथाओं के बारे में पहले ही बता दिया गया है। इनमें प्रमुख बात यही है कि पात्र विवाह तक सांसारिक जीवन-यापन करता है और विवाह होते ही उसके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन आ जाता है। सांसारिकता से उसका मन दिनोदिन हटता जाता है और अन्ततः उसकी परिणति वैराग्य धारण करने में होती है। इन 'ब्यावल' के अतिरिक्त 'रूपादे', 'भर्तृहरि' 'गोपीचन्द' आदि अनेक भक्तिपरक लोक गाथाएँ मिल जाती हैं। इन गाथाओं में कुछ स्थल ऐसे भी मिलते हैं जिनके आधार पर कहा जा सकता है कि किसी भी भक्त के प्रारम्भिक दिनों में सांसारिक उसका उपहास करते हैं।

उसके सम्बन्ध मे उलजलूल बातें बनायी जाती हैं। उसे भक्ति-मार्ग से विपथगामी करने के लिए अनेक प्रकार के प्रयत्न किये जाते हैं पर भक्त शान्त भाव से अपने उद्देश्य की ओर अग्रसर होते रहते हैं। फलत उसकी अभिलाषा पूरी होती है। वह नर से नारायण समझ लिया जाता है। वे ही लोग, जो कभी उसका डटकर विरोध किया करते थे उसके समक्ष वशवर्ती अनुचर की भाँति खड़े रहते हैं। अपने-आपको धिक्कारते हुए उसकी उदारता की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हैं। 'रूपादे' म उसका पति उसके चरित्र पर अनेक आरोप लगाता है पर उसकी अद्वितीय शक्ति के दर्शन कर वह हतप्रभ हो जाता है और उसके पैर पकड लेता है। भक्ति-भावना कभी तो किसी पात्र को जन्मना ही प्राप्त रहती है और कभी किसी गुरु के उपदेश स प्रभावित होने पर हृदय म उमड पडती है। जब-जब भी भक्त पर किसी प्रकार की 'भीड' (दुख) आ पडती है तब-तब स्वय ईश्वर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से उसकी सहायता करते हैं। भला भक्त का विश्वासरूपी प्रसाद धराशायी कैसे हो सकता है। इन गाथाओं मे नाम स्मरण की महिमा स्पष्ट रूप स व्यक्त की गयी है। नाम-स्मरण से बडे-से-बडे विघ्न का सामना किया जा सकता है। कभी-कभी नाम स्मरण मात्र से प्रभु स्वय आकर उपस्थित हो जाते है। नाम स्मरण को सर्वोत्कृष्ट एव सत्य स्वरूप माना गया है, यथा—

'आप तो जपे धणी रे नाव हो जी
माडे आई अलख जी रो पाट रूपादे बाई
बळस पूरावे धणी रे नाव रा हो जी
साचो अलख जी रो नाव ओ गरूजी म्हारा।'

इन गाथाओ मे भक्ति एव तपस्या के प्रभाव को भी व्यक्त किया गया है। भक्ति एक ऐसी चीज है कि उसके बलबूते पर अन्य कई प्रकार के कार्य सम्पन्न किये जा सकते हैं। यहाँ कई बार गुरु शिष्य की परीक्षा लेते है और कई बार शिष्य गुरु की सामर्थ्य के सम्बन्ध मे जानने का प्रयत्न करते है। भर्तृहरि गुरु गोरखनाथ से कहते हैं—

'गरुजी म्हारा मिरग ने जीवत कर दो, चेलो बिण जासू
दुखिया रा आधार सतगुरु चेलो बिण जासू जी।'

ऐसे-ऐसे समर्थ गुरु लोगो के शिष्य असमर्थ कैसे हो सकते हैं। रूपादे को जुमले मे आना है पर उसके पति ने मुख्य द्वार बन्द करवाकर ताले लगवा दिये हैं। पहरेदार अलग से खडा कर रखा है। पर भक्ति भाव मे बावली रहने वाली रूपादे कैसे रुक सकती थी? उसकी अगुली ही ताले की चाबी का काम कर देती है। जुमले मे बहुत आनन्द के साथ कुछ घडियाँ बितायी। पर वह ज्योंही गृह मे प्रविष्ट हुई कि उसका पति मालदे नग्न खड्ग लिए खडा था। उसने झट से पति की बात का उत्तर दिया कि मै तो फूल लाने गयी थी। और प्रमाण चाहने पर

लोग आज भी इन गाथाओ मे उल्लिखित बातो को यथावत् मानते हैं। इन गाथाओ मे ईश्वर, जगत एव माया से सम्बन्धित विचारो की भी अभिव्यक्ति हुई है। किसी जमाने मे ये गाथाएँ लोक के लिए दर्शन-ग्रन्थो एव वेदो का काम करती थी। आज भी इन गाथाओ का महत्त्व कुछ कम नही है। अन्तर केवल इतना आया है कि आज के विचारशील मनुष्य को इन गाथाओ की घटनाओ एव पात्रो के सम्बन्ध मे कुछ सशय होने लग गया है। अन्धभक्त की दृष्टि को त्याग करके यदि हम इन गाथाओ की परख करें तो विदित होगा कि आज भी इनका सन्देश हमारे जीवन को सुखी और सफल बना सकता है।

ऐतिहासिक तथ्यो, परा-प्राकृतिक तत्त्वो, जादुई शक्तियो, यथार्थ घटनाओ, मनोरजन आदि की दृष्टि के अतिरिक्त राजस्थानी लोक गाथाओ का साहित्यिक महत्त्व भी कम नही है। इन गाथाओ मे सभी रसो के श्रेष्ठ उदाहरण मिल जायेंगे। रसो के सभी पक्षो पर इन गाथाओ मे प्रकाश डाला गया है। इनमे शृगार रस के अन्तर्गत रूप चित्रण की परम्परा मिलेगी तो मान प्रसग और विरह-वर्णन के स्थलो की भी कमी नही है। 'मूमल-महेन्द्रा' म मूमल की देहयष्टि का सुन्दर चित्र देखने को मिलता है और 'बगडावत' मे रानी जैमती का नख-शिख वर्णन किया गया है। इन गाथाओ मे भी रूप-वर्णन की पूर्व-निर्मित परिपाटी का ही उपयोग किया गया है। साहित्य क्षेत्र मे प्रचलित परम्परित उपमानो का प्रयोग करते हुए लोक-गाथाकार कहता है—

'भगत रा गिरिया साखे फाबै नागर बैळ
पिंडिया बैलण बेलिया जाध देवळ रा थभ
सगती री कडिया केलू री काबडी, लाक विणी तरवार।
पेट पीपळी रो पानडो, बाहू चपलै री डाळ
छतिया नीबू धुलरिया, दत दाडम रा बीज
होठ फवारा ले रिया, जीव कमळ रो फूल
मेण गाल मुसडो बण्यो, नाक सुवे री चाच
वुवारणा भवरा भवे, आख आब री फाक
चोटी वासग नाग वण रयो, सीस बण्यो नारेळ
देवी ऊभी बादळ मैल मे घुर दिस चमकै बीच
देवी ऊभी बादळ मैल मे, कोयल टहूका देय
राणी रो सबद सुहावणो, बोले इमरत बैण
सगत रे किवराई रो गागरो श्रोम दिखण रो चोर
बाजूबद भारी घणो मेद गळा रो हार
कळि कमरै काचळी सार डोर सिणगार
नैणा मे सुरमो घुळरियो, टीकी लाल सिंदूर

तेजाजुग री ताजणो सौदाई पर भर सैल
राणी सीप भर्यो पाणी पीवे ने टके भर्यो अन खाय
दूजोडो चावळ जीमले तो फाट पेट मर जाय
ऊगूणो बाजे बायरो आथूणी लुळ जाय
आथूणो बाजे बायरो ऊगूणी लुळ जाय
चौवाया बाजे बायरो टूक टूक व्है जाय
आळया भाळे चावडा चील भपट ले जाय
अमलदार ने निगे आय जावे तो भावो कर गिट जाय।'

उपर्युक्त पद्य साहित्यिक दृष्टि से बहुत महत्त्व का है। इसमे शारीरिक अवयवो के सौन्दर्य को चित्रित करने के साथ-ही-साथ आन्तरिक सौन्दर्य (जीव कमळ री फूल) का भी विवेचन मिलता है। देवी के वस्त्राभूषणो के उल्लेख के साथ देवी के विराट् स्वरूप की कल्पना भी की गयी है। प्रकृति को भी देवी के अद्वितीय सौन्दर्य से प्रभावित बताया गया है। बिजली की कौंध मे देवी के शरीर की ही चमक है और कोयल के 'टहूको' मे देवी के शब्दो की ही प्रतिध्वनि है। रूप-वर्णन की भाँति प्रथम मिलन तथा प्रथम दृष्टि प्रेम का भी इन गाथाओ मे विवेचन मिलता है। दोनो एक-दूसरे को देखकर ठगे से रह जाते हैं। अपना आपा खो बैठते हैं। परिस्थिति और काल का ज्ञान उन्हें नही रहता। प्रथम मिलन पर ही उन्हें ऐसा आभास होने लगता है कि हम युग-युगान्तर से एक-दूसरे के चिर-परिचित हैं। प्रथम मिलन पर निहालदे और सुलतान की वही हालत होनी है जो रानी जैमती और सवाई भोज की हुई थी। इस प्रकार की कुछ पक्तियाँ दृष्टव्य हैं—

'जैमती भरी जाजम पे भोजा ने ओळखियो जाणे वाडी मे केवडो फूलियाँ। तारा रे बिचे चन्दरमा पवासया। जैमती तो चतराम व्है ज्यू जमी रेगी। आंग पग देवणी आवे न पाछे। भोजा री निजर जैमती माथे पडी। भोजा रे तो होठा रै लगायोडो प्यालो हाथ मई रेग्यो। या जमी फोड नै बारे निकळी है कै अकास फाड ने नीचे ऊतरी है। है कुण? इदर री अपछरा है कै कोई पाताळ री पदमण।'

'नागजी-नागवन्ती' मे हमे मान-प्रसग के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। प्रियतमा चील से 'पांखें' माँगती है, क्योकि ऐसा होने पर वह उडकर प्रियतम के पास जा सकेगी। आभिजात्य साहित्यिक कृतियो मे इस प्रकार के अनेक वर्णन मिल जायेंगे। तेजाजी, पाबूजी, बगडावत एव भारत नाम से जानो जाने वाली लोक-गाथाओ में वीर रस मूर्तिमत हो उठा है। निहालदे के परवाने विरह की मार्मिक उक्तियो का आगार है। उनमे कहीं पर प्रकृति के प्रति अत्यधिक क्रोध व्यक्त किया गया है' तो कहीं प्रकृति से शिक्षा ग्रहण कर टूटे दिल को सात्वना

दी गयी है। वह भ्रमवश भारवणि को अपनी सौत समझ बैठती है और उसके लिए बडी कटुक्तियों का प्रयोग करती है। एक स्थान पर वह कहती है कि नारी के हृदय मे जो विरह की ज्वाला जलती है उसे पुरुष की अपेक्षा नारी ही अच्छी तरह से समझ सकती है, क्योकि सभी चूल्हो मे एक जैसी ही अग्नि जलती है। प्राकृतिक उपादान उसके विरह को और उद्दीप्त कर देते हैं।

तथा 'भर्तृहरि' 'गोपीचन्द' की गाथाओ मे हमे करण और शान्त रस के दर्शन होते हैं। 'जोण माता' वृहत् गीत-कथा करुण रस से ओतप्रोत है। ऐसी-ऐसी कारुणिक परिस्थितियाँ प्रस्तुत की गयी हैं कि पाठक या श्रोता की आँखें नम हुए बिना नही रहती। कुछ पंक्तियाँ यहाँ उद्धृत की जाती है—

'हरसा बीरा म्हारा रे मा-बावल आवे म्हारे याद
जामण रा रे जाया नैणा चौमासो रे म्हारे लाग रह्ये।
हरसा बीरा मेरा रे कुण तो पूछे नैणा हदा नीर
जामण रा रे जाया कुण रे सिन्नावे जळतो हीवडो
हरसा वीरा म्हारा रे कुण फेरे मेरे सिर पर हाथ
मर रा रे जाया कुण चुचकारे मीठा बोलडा
हरसा बीरा म्हारा रे कुण बूझे मा बिन मन री वात
ओदर रा रे साथी कुण रे सवारे बिखर्या केसडा।'

राजस्थानी लोक-गाथाओ का सामाजिको को सदुपदेश देने की दृष्टि से भी काफी महत्त्व है। इनमे व्यवहारोपयोगी अनेक बातें भरी पडी है। नैतिक सूक्तियों की भी कमी नही है। ऐसे-ऐसे कथन हैं जो जीवन-यात्रा मे पग-पग पर हमारा पथ-प्रदर्शन करते है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'धुणियोडा देवल ढह पडे, मळे न पाछा होय।'
'मियोडो जीवन न फिरे, मर्या न जीवे कोय।'
'ऊभा नर वे आवसी, जलम्या सो मर जाय।'
'फूल्या सो कुमलासी।'
'जिणरी बैठो छावळी, कवरजी वी री काटो डाळ।'
'जिण सरवर पाणी पियो, वी री फुडावो हो पाळ।'
'कुळ री तो काळी भली, भली न फूठरी नार।'
'कुळ दिरावे बैसणा, रूप दिरावे गाळ।'
'आव फळे नीचो लुळे, मोवूडो फळै मत खोय।
ज्या रा साजण मद पिये अक्ल कठे सू होय॥'
'बड बुगला सू बीगडे बादर सू बनराय।'
'गौम सपूता आवडे, वस कपूता जाय।'

'गाव युठावर वीगडे।'

जैसा कि पहले ही स्पष्ट कर दिया गया था कि प्रत्येक राजस्थानी लोक-गाथा का (लय की दृष्टि से) अपना अलग रूप है। हर गाथा अपने लय-बन्धन का महत्व रखती है। पर छन्द-प्रयोग की दृष्टि से इन गाथाओ मे प्रमुख रूप से दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि का प्रयोग हुआ है। कई बार ऐसा भी पाया जाता है कि किसी कवि का कोई छन्द गाथा मे प्रसगानुसार जोड दिया जाता है। ये गाथाएँ प्रसाद, माधुर्य एव ओज—तीनो गुणो से विभूषित हैं। इन छन्दों को देखने से विदित होता है कि इनमे निश्चित रूपेण किसी भी प्रकार का मात्रिक या वर्णिक बन्धन नहीं स्वीकारा गया है।

राजस्थानी लोक-गाथाओ की महत्ता और साहित्यिक गरिमा को यदि अक्षुण्ण बनाये रखना है तो यह आवश्यक है कि इनके पाठ का चयन और निर्धारण कर लिया जाय। लोक-गाथा ही लोक-साहित्य की एक ऐसी विधा है जिसका दिनोदिन प्रचार कम होता जा रहा है। इनके मूल पाठ से वचित रहने का अर्थ होगा कि हमे अपनी प्राचीन सस्कृति से हाथ धाना पडेगा। अत लोक-साहित्य के प्रेमियो को चाहिए कि जो भी गाथा जिस रूप म मिल रही है उस उसी रूप मे लिख ले और यदि उसके कई रूपान्तर मिलते हो तो यथासम्भव उन्हे भी लिख लिया जाय। ऐसा होने पर इस सम्बन्ध मे आगे कोई कार्य किया जा सकेगा। क्योंकि अभी इनका भाषा वैज्ञानिक दृष्टिकोण से, समाजशास्त्रीय, नृ-विज्ञान एव मनोविज्ञान की दृष्टि से अध्ययन किया जाना बाकी है।

अध्याय : ५

राजस्थानी लोक-नाट्य

लोक-नाट्य और उसकी भारतीय परम्परा

हर प्रदेश मे साहित्य की अन्य विधाओ की अपेक्षा नाटक की विशेष महत्ता रही है। 'काव्येषु नाटक रम्य' से भी उक्त कथन की पुष्टि होती है। लोक के लिए नाटक का महत्त्व और भी बढ जाता है, क्योंकि शिक्षित वर्ग का मनोरंजन पुस्तको को पढने से भी हो सकता है, पर लोकानुरंजन के मूल साधन तो लोक-नाट्य ही हैं। लोक-नाट्य आडम्बरहीन एव ऐसी विधा है, जो विशाल जन के हर्षोल्लास का प्रमुख आधार है। प्राचीन उल्लेखो से भी विदित होता है कि ब्रह्मा ने वेद पाठ से वचित स्त्री वर्ग एव शूद्र वर्ग के मनोरजन हेतु पचम वेद (नाट्य) की सर्जना की। एक पुस्तक का एक समय म एक ही व्यक्ति लाभ उठा सकता है, जबकि नाटक को देखकर हजारो द्रष्टा लाभान्वित हो सकते है। यही कारण है कि जन साधारण म नाट्य परम्परा युगो से चली आ रही है। लोक नाट्य मिले जुले समाज (ग्रामीण एव नागरिक) का मच है। यद्यपि लोक-नाट्य नागरिको एव ग्रामीणो दोना के मनोरजन के साधन हैं पर आधुनिक परिवेश मे लोक नाट्य का अर्थ सीमित हो गया है। आज उस नाट्य को ही लोक नाट्य कहा जाता है जो सभ्यता से दूर रहने वाल ग्रामीण जनो के मनोरजन का आधार हो तथा जिसका पारम्परिक महत्त्व हो। इसके अतिरिक्त इन नाट्यो का स्थानीय प्रभावित होना भी आवश्यक है/हो गया है। इनमे प्रादेशिक सस्कृति के तत्त्व भी मिलते हैं।

लोक नाट्य के सम्बन्ध मे डॉ० श्याम परमार के शब्द उल्लेख्य हैं—

> 'लोक नाट्य से तात्पर्य नाटक के उस रूप स है जिसका सम्बन्ध विशिष्ट शिक्षित समाज से भिन्न सर्वसाधारण के जीवन स है और जो परम्परा से अपने-अपने क्षेत्र के जन-समुदाय के मनोरजन का साधन रहा है।'[1]

---

१ मालवी लोक-साहित्य एक अध्ययन डॉ० श्याम परमार, पृ० २६८

केवल लोक नाट्यो का ही लोक की दृष्टि से महत्त्व हो, ऐसी बात भी नही है। साहित्यिक नाटकों की सफलता भी लोक-रुचि पर आधारित है। नाटक मूलत लोक-स्वभाव से उत्पन्न होता है। उत्कृष्ट कोटि का साहित्यिक नाटक भी प्रसिद्धि नही पा सकता यदि उसमे लोक के हृदय को छूने की क्षमता नही है। अत नाटक के प्रयोगो म लोक ही सबसे बडा प्रमाण है। जैसा कि नाट्यशास्त्र मे भी कहा गया है—

'वेदाध्यात्मोपपन्न तु शब्दच्छद समन्वितम्
लोक-सिद्ध भवेत् सिद्ध नाट्य लोकस्वभावजम्
तस्मात् नाट्य-प्रयोगे तु प्रमाण लोक इष्यते।'[1]

इस आधार पर कहा जा सकता है कि नाटक के लिए आवश्यक है कि लोक-रुचि को आकृष्ट करने वाले तत्त्व उसमे हो। लोक-नाट्यो का प्रणयन लोक-रुचि को ध्यान मे रखकर किया जाता है। लोक-नाट्यो के निर्माण में मनोरजन और नकल करने की भावना का विशेष रूप से हाथ रहा है। लोक-नाट्य लोक-मानस प्रणीत वह विधा है जिसने लोक-परम्परा एव लोक-सस्कृति को अमूल्य निधि के रूप मे सजोकर रखा है। यह नाटक लोकानुरजन के सर्वश्रेष्ठ साधन हैं। देश की घटनाओ से ये प्रभावित होते हैं, समाज के वर्ग-विशेष (लोक) की भावनाओ द्वारा इनम रस सचार होता है और लोक-भाषाओ द्वारा इनकी अभिव्यक्ति में एक अनूठा निखार आ जाता है। ये नाटक लोक की वाचिक एव अभिनेय अभिव्यक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

नाटक के क्षेत्र मे भरतमुनि कृत 'नाट्यशास्त्र' का सर्वाधिक महत्त्व है। इसी ग्रन्थ मे नाटक की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे एक कथा[2] दी गयी है। एक बार इन्द्रादि सभी देवता जन-साधारण के मनोरजन के लिए साधन उपलब्ध कराने के विचार से ब्रह्मा के पास गये। उन्होने ब्रह्मा से प्रार्थना की कि मनोविनोद का साधन ऐसा हो जो श्रव्य भी हो और दृश्य भी। सभी वर्णों के लोग उसमे समान रूप से भाग ले सकें, इस बात को भी ध्यान मे रखा जाये। फलत. समस्त बातो को ध्यान मे रखते हुए ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ्य, सामवेद स गान, यजुर्वेद से अभिनेय और अथर्ववेद से रस लेकर पचम नाट्य-वेद की सर्जना की।

उक्त कथा से यह ज्ञात हो जाता है कि नाटक का सर्वसाधारण की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। इससे नाटक की प्राचीन परम्परा का भी पता चलता है। नाट्य विधा पर पूर्ण प्रकाश डालने वाला ग्रन्थ 'नाट्यशास्त्र' है। भरतमुनि विरचित इस ग्रन्थ को ई० पू० तीसरी शताब्दी का ग्रन्थ बताया जाता है। धनजय

---

१ नाट्यशास्त्र, भरत, (२६-११२)
२ वही, (११७)

कृत 'दशरूपक' एवं विश्वनाथ प्रणीत 'साहित्य-दर्पण' में भी नाटक के सम्बन्ध में पर्याप्त विवेचन किया गया है। नाट्य विधा की प्राचीनता जानने के लिए हमें वैदिक ऋचाओं तक जाना पड़ता है। वेदों की संवादात्मक ऋचाओं में नाटकीय संवादों की स्पष्ट झलक मिलती है। कई विद्वानों की मान्यता है कि ऋग्वेद में अनेक स्थल (इन्द्र एवं मरुत के संवादात्मक ऋग्वदीय पन्द्रह मंत्र-मंडल एवं में सूक्त संख्या १६६ से १७३ तक) ऐसे मिलते हैं, जहाँ अभिनयात्मक वार्तालाप पाये जाते हैं। ये कथोपकथन ही आगे चलकर संस्कृत के साहित्यिक नाटकों के आधार बने। इसके अतिरिक्त ऋग्वेद में कुछ प्रमाण ऐसे भी मिलते हैं, जिनसे यह विदित होता है कि वैदिक काल में अभिनय बड़े-बड़े यज्ञों के अवसर पर भी होते थे। एक छोटे से अभिनय का प्रसंग कात्यायन श्रौत सूत्र (७।८।२५) में सोमयज्ञ के अवसर पर मिलता है। वैसे तो यह याज्ञिक क्रिया है पर है अभिनय-पूर्ण। पाणिनि के नाटक खेलने वाले नटों का उल्लेख 'अष्टाध्यायी' में किया है।[1] पतंजलि ने महाभाष्य में 'कंस बध' एवं 'बलिबन्ध' नाटक के खेले जाने की भी चर्चा की है। भास, अश्वघोष और कालिदास से तो यह नाट्य परम्परा अनवरत गति से प्रभावित हुई जो अद्यावधि चल रही है। पालि ग्रन्थों में कुछ ऐसे संकेत मिलते हैं, जिनसे यह सूचित होता है कि भिक्षुओं के लिए नाटक देखना वर्ज्य था। आगे चलकर मुगल-काल में नाटक-रचना एवं रंगशाला का ह्रास हो गया। मुसलमान शासकों की विरोधी नीति और राज्याश्रय का अभाव नाटकों के पतन के प्रमुख कारण थे। इसी समय उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन का प्रवर्त्तन हुआ। वल्लभाचार्य के अनुयायियों ने भागवत के दशम् स्कंध से कृष्ण के जीवन की कथाओं का चयन किया। अभिनय के माध्यम से इन कथाओं को जन-साधारण के समक्ष प्रस्तुत किया। कृष्ण की बाल-लीलाओं का नाटकीय प्रदर्शन मन्दिरों, मठों एवं अन्य स्थानों में होने लगा। आगे चलकर श्रीकृष्ण की यह प्रारम्भिक लीला 'रास लीला' का आधार बनी। गोस्वामी तुलसीदास ने उत्तरी भारत में रामलीला का प्रचार प्रसार करने का श्लाघ्य कार्य किया। उधर बंगाल में गौरांग महाप्रभु की मंडलियाँ अपनी यात्रा के दौरान अनेक रास लीलाएँ करती रहती थीं।

लोक-नाट्य की परम्परा के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। विद्वानों का एक वर्ग मानता है कि वेदों की परम्परा ही लोक-नाट्यों का मूल स्रोत है तो दूसरा वर्ग यह मानता है कि लोक-नाट्यों के बीज रामायण और महाभारत के उन गायकों में मिलते हैं, जिन्हें 'पाठक' और 'धारक' की संज्ञा से पुकारा गया है। इन विद्वानों ने 'रामलीला' और 'रासलीला' के प्रेरक स्रोत भी इन्हीं गायकों को

---

१ भिक्षुनट सूत्रयो अष्टाध्यायी, ४।३।११०

स्वीकारा है। कुछ विद्वान यह तर्क भी प्रस्तुत करते है कि लोक-नाट्य ही संस्कृत नाटकों के प्रेरक रहे हैं। उनकी मान्यता है कि जिस प्रकार प्राकृत भाषा संस्कृत बनी उसी प्रकार लोक नाट्यों के परिष्कार से संस्कृत नाटक सामने आये और विकसित हुए। इस सन्दर्भ में डॉ० दशरथ ओझा के विचार उल्लेख्य है—

'हिन्दी नाट्य-परम्परा का मूल स्रोत यह जन नाटक ही हैं, जो 'स्वांग' आदि नाम से प्राचीन रूप में अब तक विद्यमान हैं।'[1]

एक अन्य विद्वान के विचारानुसार प्रत्येक लोक-ख्याल (नाट्य) अनुष्ठान (ritual) का ही प्रतिफलन होता है। प्रत्येक अनुष्ठान का कर्म-काण्ड से अविभाज्य सम्बन्ध है। उदाहरणार्थ, विवाह के अवसर पर दूल्हे-दुल्हिन को सुसज्जित किया जाता है। 'कांकण', 'डोरडा' बांधे जाते हैं। इस समय प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमिका अदा करता है। इस प्रकार हर व्यक्ति इस समय कुछ-न कुछ विशिष्ट प्रकार का अभिनय करता है, जो उसकी सामान्य चर्या से भिन्न होता है। फलतः प्रत्येक नाटक का मूलाधार यही कर्म-काण्ड है। कुछ विद्वानों ने मध्यकालीन धार्मिक आन्दोलनों को ही लोक नाट्यों का प्रेरक तत्त्व माना है। इस सम्बन्ध में डॉ० उपाध्याय ने लिखा है—

'लोक-नाट्यों का विकास धार्मिक आन्दोलनों से प्रेरणा प्राप्त कर चुका है।'[2]

इसी प्रसंग का उल्लेख करते हुए डॉ० श्याम परमार ने लिखा है—

'मध्यकालीन भक्ति-आन्दोलन के समय उत्कृष्ट रंगमंच के अभाव में लोक-मंच को ही विकसित होने का अवसर प्राप्त हुआ। भक्ति-आन्दोलन के प्रमुख सन्तों ने लोक-नाट्य शैली को अपनाकर गीति-नाट्य परम्परा को प्रश्रय दिया।'[3]

प्रारम्भिक अवस्था में इन लोक-नाट्यों की रचना भक्ति-भावना एवं धार्मिक-भावना को दृष्टि में रखते हुए की जाती थी। उस समय सामाजिकों के समक्ष आदर्श-प्रस्तुतीकरण का प्रश्न ही मुख्य था। इसी को ध्यान में रखते हुए मालकम नामक विद्वान ने लिखा है—

'उन लोगों के विषय प्रायः पौराणिक कथानकों पर आधारित होते थे। कथानकों का स्तर तत्कालीन नरेशों और अधिकारियों के आदर्शों के अनुसार होता था। हनुमान या 'दूंद दूंदाळे' (बड़े पेट वाले) गणेश मंच पर आते, हिन्दू देवताओं और अवतारों के स्वांग किये जाते और राजा, मन्त्री

१ हिन्दी नाटक : उद्भव और विकास, डॉ० दशरथ ओझा, पृ० ४२
२. हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास (१६वाँ भाग), प्रस्तावना, डॉ० कृष्णदेव उपाध्याय, पृ० १२७
३. मालवी लोक-साहित्य : एक अध्ययन, डॉ० श्याम परमार, पृ० २६६

तथा उनके दरबारी प्राय. परिहास के विषय बनाये जाते।"[1]

विद्वानों की यह धारणा है कि 'ख्याल' नाम से जाने जाने वाले लोक-नाट्यों का प्रारम्भ १८वीं शताब्दी के आस पास हो गया था। श्री अगरचन्द नाहटा[2] और श्री महेन्द्र मानावत[3] आदि विद्वान मानते हैं कि राजस्थान मे भी इसी समय ख्यालो का प्रचलन हुआ। इनके प्रारम्भ में प्रेरक तत्त्व कुछ भी रहे हो और इनके प्रचार की कैसी भी परिस्थितियाँ रही हो, पर इस सम्बन्ध मे निश्चित रूपेण कहा जा सकता है कि इन ख्यालों की आरम्भिक अवस्था मे इनके लिए पौराणिक, धार्मिक एव वीरता प्रधान कथाओं का ही चयन किया गया। मुस्लिम-साम्राज्य एव तत्कालीन समाज की परिस्थितियो को दृष्टिगत रखते हुए सर्व-साधारण मे चारित्रिक चेतना जाग्रत करने के लिए यही आवश्यक था। प्रेम-प्रधान ख्यालो मे भी सर्वत्र आदर्श की भावना को सामने रखा गया। पर आगे चलकर आदर्शवादिता का ठेका लेने वाले इन्ही ख्यालो मे प्रणय के घिनौने दृश्य उभर-कर आने लगे। इसे हम मुस्लिम प्रभाव ही कह सकते हैं। कालान्तर मे यह स्थिति आ गयी कि कुलीन लोग इन्हे देखना ही पसन्द नही करते थे। अपने घर की बहू-बेटियो को भी देखने नही जाने देते। और तब स इन ख्यालो मे अश्लीलतापूर्ण चित्रो की लगातार वृद्धि होती रही।

राजस्थान प्रदेश मे 'ख्यालो' के अतिरिक्त लोक नाट्यो के कुछ विशिष्ट रूप मिलते हैं। अत पहले यहाँ पर राजस्थानी लोक-नाट्यो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना प्रासगिक है।

राजस्थान के विविध लोक-नाट्य

यद्यपि राजस्थान मे अनक प्रकार के लोक नाट्यो का प्रचलन है, पर यहाँ हम कुछ प्रसिद्ध लोक-नाट्यों का ही परिचय दे पायेंगे। डॉ० महेन्द्र मानावत ने अपने लेख[4] ('परम्परा' म प्रकाशित) मे ३१ प्रकार के राजस्थानी लोक-नाट्य माने हैं, पर इस वर्गीकरण मे अलग-अलग क्षेत्र के ख्यालो को अलग अलग वर्गों (यथा—उदयपुर के ख्याल, करोली क्षेत्र के ख्याल, शेखावटी रगत के ख्याल) मे रखा गया है, जबकि 'ख्याल' के नाम से एक ही वर्ग स्थापित किया जा सकता था।

राजस्थानी लोक-नाट्यो पर विचार करने से पूर्व यह निर्देश कर देना समी-

---

१. मेमायरस ऑफ सेन्ट्रल इंडिया, भाग २, अध्याय १४, मालकम, पृ० १६६
२. देश-बन्धु, वर्ष २, अक ७ म श्री नाहटा का लेख।
३ राजस्थान के तुर्रा कलगी पृ० १ से उद्धृत।
४ परम्परा २१ २२, सन १९६६ में प्रकाशित डॉ० महेन्द्र मानावत के 'राजस्थान के लोक-नाट्य' लेख में पृ० २ से उद्धृत।

चीन है कि यहाँ कई नाट्य ऐसे भी हैं, जिनमे वाचिक-कथा प्राय नही होती। ऐसे नाट्यों मे नृत्य का प्राधान्य रहता है। कुछ 'स्वाग' भी लाये जाते हैं, जिनमे 'स्वाग' करने वाला मुख से कुछ भी नही बोलता। वह केवल आंगिक चेष्टाएँ ही करता है। इस प्रकार के नाट्यो मे नृत्य एव नकल करने की प्रवृत्ति आवश्यक तत्त्वो के रूप मे विद्यमान रहती है।

राजस्थान प्रदेश मे निम्न रूपो मे लोक-नाट्य मिलते हैं—

(१) बालकों द्वारा किये जाने वाले नाट्य

राजस्थानी लोक-नाट्य मे बालको द्वारा किये जाने वाले नाट्यो का विशेष महत्त्व है। इन नाट्यो के द्वारा बालक अपने भावी-जीवन मे प्रवेश पाने का प्रयत्न करते हैं। वे बचपन मे ही सासारिकता की अनुभूतियाँ करना चाहते हैं। अक्षय-तृतीया के अवसर पर नन्ही-मुन्नी बालिकायें वर-वधू का स्वाग लाती हैं। एक बच्ची दूल्हा बनती है और एक बच्ची दुल्हिन बनती है। वर-वधू की साज-सज्जा के प्राय. सभी उपकरणो का प्रयोग इस समय भी किया जाता है। जिज्ञासु बाल-हृदय इस प्रकार के 'स्वागो' के माध्यम से यौवन का एव सासारिकता का आनन्द उठाने हेतु बाल-प्रयास करते हैं। इसी प्रकार होली या दीपावली के दूसरे दिन (इस दिन को राजस्थान मे रामासामा के नाम से पुकारते हैं) कोई बालक (प्राय. १२ से १६ वर्ष तक की उम्र का) स्त्रियो के कपडे पहिन लेता है। फिर घूँघट निकालकर अपने परिवार की बडी-बूढी औरतो के चरण स्पर्श (पगे लागण ने) करने जाता है। बूढी-माँ, दादी, ताई, चाची आदि जब पूछती हैं तो साथ वाले लडके उसे परिवार के किसी नवविवाहित सदस्य की पत्नी बता देते हैं। वृद्धाएँ अक्षय सौभाग्यवती होने की आशीष देने के साथ कुछ रुपया-पैसा भी देती हैं। इन पैसो को वे आपस मे बाँट लेते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि अक्षय-तृतीया के अवसर पर किया जाने वाला 'स्वाग' बच्चियो द्वारा किया जाता है जबकि दूसरा स्वाग बच्चो द्वारा किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यही है कि भाई या भतीजा लगने वाले छोटे बालक को पति कैसे बनाया जाय। ये स्वाग एक ही मोहल्ले के स्वजातीय बालक ही किया करते हैं। अपने ही रिश्तेदारो को पति-पत्नी बताना धर्म के विरुद्ध जो ठहरा।

(२) स्त्रियों द्वारा निकाली जाने वाली बोलियाँ

'जवाई के आने पर गाँवो मे पास-पडोस की स्त्रियाँ इकट्ठी होती हैं। विविध प्रकार के गीत गाकर वे 'जवाई' के 'लाड-कोड' करती हैं। इसी अवसर पर वे अनेक प्रकार की बोलियाँ निकालती हैं, जिनमे हमे नाट्य के तत्त्व मिलते हैं। कभी-कभी स्त्रियाँ स्वाग भी करती हैं। ऐसा करते समय वे आवश्यकता पडने पर कागज के 'कूटे' से बने विशिष्ट प्रकार के मुखौटो का प्रयोग भी करती हैं। स्त्रियों द्वारा निकाली जाने वाली 'बोलियो' मे 'बाप की बोली', 'दादे की बोली',

'भुवा की बोली', 'धोबी-धोबिन की बोली', 'जाट-जाटणी की बोली', 'मेणे-मेणी की बोली' आदि अत्यधिक प्रचलित हैं। 'बोली' निकालने वाली स्त्री विशिष्ट स्वर में बोलती है। पुरुष-पात्रों (बाप, दादा, मेणा, जाट, धोबी) की 'बोली' बोलते समय बोलने वाली स्त्री अपने स्वर को कुछ ऊँचा कर लेती है। इस समय वे पुरुष की भाँति ही बोलने का प्रयत्न करती हैं। 'बोली' निकालते समय वे यह भी ध्यान रखती हैं कि 'बोली' में वही भाषा प्रयुक्त होनी चाहिए जो उस पात्र की भाषा है। यथा 'जाट-जाटणी की बोली' निकालते समय जाटों में व्यवहृत होने वाली भाषा का प्रयोग किया जायेगा और 'मेणे मेणी की बोली' निकालते समय मेणों की भाषा का प्रयोग होगा। 'बोली' निकालने वाली स्त्रियाँ घड़े, थाली आदि का प्रयोग भी आवश्यकतानुसार करती हैं। इन 'बोलियों' में कहीं-कहीं पर पशु-पक्षी की बोली भी निकालनी पड़ती है। अनेक बार बोली' निकालने में प्रवीण समझी जाने वाली स्त्रियाँ पात्र के अनुरूप वेश-भूषा भी पहिनकर आती हैं। इन 'बोलियों' के मूल में मनोरंजन की भावना का प्राधान्य है। इन बोलियों में जातीय-स्वभावों, जाति-विशेष के रहन-सहन के ढंग, उसके आचार-विचारों आदि के सम्बन्ध में पूरी-पूरी जानकारी मिलती है। मेणों की बोली' से पता चलता है कि मैणों का प्रमुख धन्धा चोरी करना है। 'जाट-जाटणी की बोली' से ज्ञात होता है कि इनमें पर्दा-प्रथा का प्रचलन नहीं था। 'दादे की बोली' में ठाकुरशाही एवं शोषण के चित्र को प्रस्तुत किया गया है। 'धोबी-धोबिन की बोली' में भी बताया गया है कि ठाकुर साहब (स्पष्ट रूप से तो दादे का नाम लिया जाता है) ने कपड़े तो धुलवा लिए पर अभी तक पैसे नहीं दिये। यहाँ एक 'बोली' उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

जाटणी—जे देखी आज तेरे कुण आयो ?

सभी स्त्रियाँ—पावणा पधारिया है।

जाटणी - देखी तेरे पावणा जावै जद के करो जे ?

सभी—सीरो, लापसी, लाडू, जळेबी, घेवर जैड़ा मीठा-मीठा जीमण करो। अर थारे पावणा आवै जद काई करो ?

जाटणी—मेरे ना पावणो आवे जद थैलियो भर राबडी करा। तेरे पावड़ा रे मैंळो कुण जीमैं ?

सभी—साळा। था रे कुण जीमे ?

जाटणी—मेरे तो राबडी कूंडे में भर बिचै मेला अर म्हैं, मेरे घर-धाळो, फूलकी, फूलकी को धर वाळो अर कावरियो कुत्तो सगळा ई भेळा जीमा। तेरे पावणो सगळै दिन के करे ?

सभी—कोटड़िया में विराजिया हथाया करें, चौपड़-पासा रमै। थारे पावणा काई करें ?

जाटणी—म्हारे जवाई तो हळ खड़े, नीदाण करे।

(३) 'भाडों' एवं बहुरूपियों के नाट्य

राजस्थान में भाड जाति के लोग प्रायः प्रत्येक क्षेत्र में ही मिल जाते हैं। बहुरूपिये भी यहाँ काफी संख्या में मिल जाते हैं। ये दोनों जातियाँ विभिन्न प्रकार के स्वांग लाया करती हैं। भांडों की एक यह भी विशेषता है कि ये विभिन्न प्रकार की मुख मुद्राएँ बनाकर लोगों को हँसाते रहते हैं। इन दोनों जातियों के नाट्यों में नृत्य की पूर्ण रूप से कमी रहती है। नृत्य के स्थान पर उनकी नाट्य-कृतियों में उछल कूद की मात्रा अधिक रहती है। ये विशिष्ट वेश-भूषाओं का प्रयोग भी करते हैं। ये लोग प्रायः कालिका, सती, हनुमान, शिव, कृष्ण आदि के स्वांग लाया करते हैं। ये ही इनके जीविकोपार्जन के प्रमुख साधन हैं।

(४) कठपुतली

कठपुतली-नृत्य प्राचीन काल से रंगमंच का एक महत्वपूर्ण अंग रहा है। वात्स्यायन ने चौंसठ कलाओं में काष्ठ-पुतलिका-निर्माण को भी गिनाया है। लकड़ी की बनायी हुई इन पुतलियों का संचालन धागे के माध्यम से किया जाता है। पट के पीछे सूत्रधार बैठा रहता है। आज भारत में राजस्थान ही ऐसा प्रदेश है जहाँ पर कठपुतलियों के नृत्य का सर्वाधिक प्रचलन है, परन्तु शनैः शनैः यहाँ भी इनका प्रचार कम होता जा रहा है। राजस्थान में इन पुतलियों द्वारा वीरों के चरित्र को उभारकर सर्वसाधारण के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है। इन पुतलियों के माध्यम से युद्ध के दृश्य भी प्रस्तुत किये जाते हैं। राजस्थान में कठ-पुतलियों के खेल में 'अमरसिंह का खेल' सर्वाधिक प्रसिद्ध है। इसके अतिरिक्त मुख्य रूप से कठपुतली-नृत्य में मुगल-कालीन राजपूत वीरों की अख्यान-कथाओं की झाँकियाँ देखने को मिलती हैं।

(५) तुर्रा कलगी

मध्य भारत और महाराष्ट्र में तुर्रा-कलगी का अधिक प्रचलन है। राजस्थान में तुर्रा-कलगी का प्रचार विशेष रूप से मेवाड़ क्षेत्र के घोसुंडा में है। तुर्रा और कलगी के दो दल होते हैं। कलगी का स्थान मंच के ऊपर होता है और तुर्रे का स्थान मंच के नीचे। तुर्रा और कलगी के दोनों दलों में परस्पर वाद-विवाद होता है। प्रारम्भिक अवस्था में इनके मूल में बैठकी ख्यालों की परम्परा रही है पर कालान्तर में तुर्रा-कलगी मंच पर आसीन हो गये और पश्चात् इन्हें 'माच' की संज्ञा दी जाने लगी।

तुर्रा कलगी में आध्यात्मिक विषयों का प्राधान्य रहा है। दार्शनिक दृष्टिकोण से तुर्रा और कलगी दोनों पक्षों में बुनियादी रूप से मत-वैभिन्य रहा है। कलगी वालों के विचार हैं कि कलगी आदिशक्ति का प्रतीक है और तुर्रा शिव का प्रतीक है। ये लोग तुर्रे की उत्पत्ति भी कलगी से ही मानते हैं। इसके विपरीत

तुर्रे वाले तुर्रे का अखड चैतन्य के रूप मे ॐ शब्द का प्रतीक मानते हैं। ये तुर्रे को शक्ति द्वारा उद्भूत नही स्वीकारते। इनके वाद विवाद से सम्बन्धित कुछ पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

कलगी—है आदिशक्ति अवतार हमारी कलगी
मब सृष्टि रचावनहार हमारी कलगी
तुर्रा—है ॐ शब्द ओकार हमारा तुर्रा
तेरो शक्ति का सरदार हमारा तुर्रा

कुछ लोगो ने वाद विवादो म पडकर अपनी बात को सफल बनाने के दृष्टिकोण स तुर्रे को भूमि का भार उतारने वाला कहा है। त्रेता युग मे यही तुर्रा राम बना और द्वापर म इसे कृष्ण का रूप धारण करना पडा तथा कलियुग म इसने तुर्रे के रूप मे अवतार लिया है। य लाग कलगी को सीता एव राधा आदि के रूप मे स्वीकार करते हैं। पर इधर कलगी के प्रबल समर्थक मिर्जा खाजू बेग ने यथार्थत तुर्रा कलगी को एक बाना मात्र माना है। उन्ही के शब्दो मे—

कलगी तुर्रे का वरन तू सुनले आँख खोलकर मूढमती
मैं कहता बाने का नाम तू कहता शिव पारवती।'

तुर्रा कलगी के मूल भावो का प्रमुख आधार सिद्धो और नाथो की दार्शनिक भावना को स्वीकारा गया है। पश्चाद्वर्ती सन्तो की परम्परा स भी इस क्षेत्र मे निर्धारित प्रतीको एव रूपकों वाली पदावली का समावेश हुआ। तुर्रा कलगी दार्शनिकता के वाद विवादो स ग्रसित हो गये हैं। यद्यपि आज भी भाद्रपद मे देवझूलनी एकादशी को मडफिया एव भादसोडा तथा शरदपूर्णिमा को आखरी-माता मे इन ख्यालो की दगली परम्परा उत्कृष्ट रूप म दृष्टिगत होती है पर दगल का प्राधान्य होने के कारण इसका इतना महत्व अब नही रहा है। अपने भव्य वस्थित रूप म मिलने के कारण तुर्रा कलगी समाज के लिए अब बोझ स्वरूप रह गये हैं। आज इन दलो म परस्पर किय जाने वाले सवाल-जवाब ईर्ष्या म भरे रहत हैं। इसम भी सुधार की अत्यन्त आवश्यकता है। यहाँ तुर्रा कलगी के विवाद का एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

सवाल तुर्रा—महादेव विकराळ रूप ले, जोत चन्द्रमा नजर पडी
पावती और गगा लडनी इन दोना म कौन वडी ?
जवाब कलगी—मिथ्या शायरी करते हो
बातें करते हो बडी बडी
पारवती और गगा दोनो
बतलावो किस रोज लडी ?

तुर्रा कलगी का गाना भी दो प्रकार का होता है—
(१) शर्तिया गाना—(जिसमे शर्त की प्रधानता हो),

(२) मिल्लत का गाना—(शौकिया मनोरंजन का गाना)।

तुर्रा-कलगी के सम्बन्ध में आधुनिक भारतीयों का यह परम कर्तव्य हो जाता है कि वे इसकी दंगली परम्परा समाप्त करें और उसके पूर्ण विकास के लिए नाना प्रयत्न करें।

(६) रावळों की रम्मत

रावळ एक जाति का नाम है। इस जाति के लोग अल्पसंख्यक हैं। कुछ ही ग्रामों में इनके घर पाये जाते हैं, जिनमें बिराई, नूंदड़ा आदि गांवों के रावळ अपनी रम्मत के लिए प्रसिद्ध हैं। रावळ राजस्थान में निवास करने वाली जातियों के स्वांग लाया करते हैं। ये 'स्वांग' रात-भर चलते रहते हैं। प्राय रावळ 'रम्मत' अपने यजमान चारणों के गांवों में ही 'मांडते' हैं। ऐसे गांव में, जहां चारण जाति नहीं रहती है, यदि रम्मत करवानी होती है तो चारण जाति के एक व्यक्ति का वहां उपस्थित होना आवश्यक है। यद्यपि होलिकोत्सव पर अन्य जातियों के लोग (कुम्हार, सेवग, माली आदि) भी स्वांग लाया करते हैं पर प्रदर्शन की जो कुशलता रावळों की 'रम्मत' में दिखायी देती है, वैसी अन्य जातियों के स्वांगों में नहीं दिखायी देती। नकल करने में ये पूर्ण पटु होते हैं। ये पात्रानुकूल एवं प्रसंगानुकूल भाषा का प्रयोग करने में भी दक्ष होते हैं। हास्य और कटु-व्यंग्य इनके स्वांगों के प्राण हैं। इनके स्वांगों को देख रसाप्लावित होने के लिए हजारों की संख्या में लोग उपस्थित होते हैं। यद्यपि दर्शकों की दृष्टि से राजस्थानी ख्यालों का भी कम महत्व नहीं है पर कुलीन व्यक्ति ख्यालों को देखना पसन्द नहीं करते। 'रम्मत' के स्वांगों में ख्यालों का-सा नग्न एवं भोंडा शृंगार-चित्रण नहीं मिलता। रम्मत के स्वांग दर्शक में मानसिक विकृतियां उत्पन्न नहीं करते जबकि ख्यालों को देखने से मानसिक विकार उत्पन्न हो सकते हैं। 'रम्मत' का आनन्द स्त्रियां भी ले सकती हैं पर ख्याल देखना ऊंचे घरों की स्त्रियों के लिए निषिद्ध है।

'रम्मत' के स्वांगों की लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए कुछ स्वांगों का यहां परिचय देना आवश्यक है। प्राय रम्मत के स्वांगों में निम्न प्रकार से क्रम रहता है—

अ—बोरै-बोरी रो साग (बच्चै बोरै रो साग)
आ—अधनारी रो साग (अर्द्धनारीश्वर-स्वांग)
इ—मीयँ रो साग
ई—बाणियँ रो साग
उ—दर्जी रो साग
ऊ—मेणं रो साग
ए—जोगी रो साग
ऐ—सूरदास जी रो साग

ओ—वान्ट-गूजरी रो सांग

ओ—बीकोजी रो साग

'बोरे-बोरी रो साग' नृत्य-प्रधान स्वाग है। इसमें एक व्यक्ति 'बोरा' बनता है और दूसरा 'बोरी' बनता है। 'आयो रे म्हारो चच्चो बीरा', 'आयो रे म्हारो घायल बीरा', 'आयो रे म्हारो रहनद बीरा' आदि लयात्मक वाक्यो को गा-गाकर नृत्य किया जाता है।

'अधनारी रे साग' मे व्यक्ति अर्द्धनारीश्वर का रूप धारण किये तथा हाथ मे तलवार लिए हुए दर्शक-मण्डली के समक्ष उपस्थित होता है। इस स्वाग का धार्मिक दृष्टिकोण से विशेष महत्त्व है। इस स्वाग मे 'चिरजायें' गायी जाती हैं। साथ में नृत्य भी चलता रहता है। स्वाग लाने वाला नाचते समय तलवार को भी घुमाता रहता है। उसके शरीर पर स्त्री और पुरुष दोनों के कपड़े पहिने होते हैं। घाघरा और 'कुर्ती कांचळी' स्त्री वेश का प्रतिनिधित्व करते हैं और सिर पर बाँधा जाने वाला 'साफा' पुरुष वेश का प्रतीक है। तलवार चलाने मे यह व्यक्ति पूर्ण पटु होता है। कभी-कभी तलवार सीधे सिरे की ओर से पकड़कर भी चलायी जाती है। यह व्यक्ति इष्टबली होता है। रावळो मे हर व्यक्ति इस स्वाग को नही ला सकता। इस स्वाग को देखते समय अर्द्धनारीश्वर शिव की कल्पना साकार हो उठती है।

इसके पश्चात मीयें का स्वाग आता है। बालको का मनोविनोद इसी स्वाग से ज्यादा होता है। इसकी वेश-भूषा, इसके हाव-भाव और इसके क्रिया-कलापो को देखकर दर्शक हँसते हँसते लोट-पोट होने लगता है। सफेद खड़िया-पत्थर से भी इसके मुँह पर कुछ निशान बने रहते हैं। धनुष-बाण, पुराने कपडो की एक पोटली व लोटा इसके पास होता है। 'मीयें' का हर शब्द और हर वाक्य हँसाने वाला होता है और दूसरी ओर 'चित्तको के समक्ष ये ही शब्द तथा वाक्य सामाजिक विषमताओ का उल्लेख करते है। सामाजिक व्यवस्था एव जातीय भावनाओ की इस स्वाग मे खूब हँसी उड़ायी जाती है। एक स्थान पर ब्राह्मण 'मीये' के सामने हाजिर होता है और 'मीये' के पूछने पर अपने-आपको ब्राह्मण जाति का व्यक्ति बताता है। 'मीया' ब्राह्मण की जगह उसे 'बामण' कह बैठता है, जो चमार की पत्नी का सूचक है। हँसी के कारण दर्शको के पेट म बल पडने लगते हैं। यहाँ पर मीया' ब्राह्मण जाति के बारे मे जानकारी प्राप्त करने के लिए विविध जातियो के कामो का उल्लेख करता है और पूछता है कि क्या तुम भी यही काम करते हो ? इस समय वह धोबी, भगी, सासी, भील आदि जातियो के कार्यों का उल्लेख करता है। यह बताते समय 'मीया' तज्जातीय भाषा का प्रयोग करता है। मुसलमानो एव मुस्लिम सस्कृति की इस स्वाग मे काफी हँसी उडायी गयी है और कडी आलोचना भी की गयी है। झूठे बहाने बनाना, किसी

का प्रमित करना, लालच देकर अपने चंगुल में फंसा देना, दान देकर पुल छीन लेना आदि बातों का इस स्वांग में उपहास किया गया है। घोड़ों के गुणों एवं उनकी चाल के सम्बन्ध में भी विचार व्यक्त किये गये हैं। मीया-बीबी की गृह-कलह के अच्छे उदाहरण मिल जाते हैं। परस्पर मन-मुटाव हो जाने पर मीया बीवी की मोल मांगता है और बीवी मीये की। स्वांग का अन्त तलाक के रूप में होता है। मीया और बीबी का सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। इस प्रकार इस स्वांग में हिन्दू-संस्कृति के साथ मुस्लिम संस्कृति के तत्त्व भी देखने को मिलते हैं। 'गाय धणी री गावड़ी रोन कराया साव' जैसे कथन ठाकुरों की सामन्तशाही प्रवृत्ति की ओर संकेत करती है। 'मीये' का स्वांग एक सफल व्यंग्य हास्य नाट्य है।

'सेठ रै माग' में बनियों की कृपणता का चित्रण मिलता है। मारवाड़ी सेठों के चंगुल में फंसा भोला-भाला कृषक आजीवन उसके ऋण से उऋण नहीं हो सकता, इसके भी अनेक चित्र मिलते हैं। ये सेठ लोग किस प्रकार से झूठे खाते लिखते रहते हैं इसका संकेत हमें इन शब्दों (मोठो के स्थान पर छोपो-बैल आदि) से मिलता है। ये कम तोलते हैं और ज्यादा लिख लेते हैं। सेठानी सेठ से विनती करती है 'अठै जावो कम्मण हार लावो घूघट नहीं खोलूंगी' तो सेठ प्रत्युत्तर देता है-—

'सोच करियो आया रे हाटा घणाई ऊंट आवें जकै ऊभा ऊभा मीगणा करे। मीगे री मा री सीगन आज का री हार विणाल लाऊ री।' और इस प्रकार परस्पर मतभेद होने लगता है। सेठ सारा दिन और रात धन कमाने में व्यस्त रहना चाहता है। परन्तु सेठानी को पति की ओर से कोई प्रेम नहीं। फलत सेठानी एक फकीर से प्रेम करने लग जाती है। फकीर मक्का-मदीना जाना चाहता है इसलिए सेठानी (जिसका नाम तेजू होता है) को सेठ के भरोसे छोड़ जाना चाहता है। सेठानी फकीर के साथ जाना चाहती है। इस समय सेठ, फकीर एवं सेठानी के बीच जो वार्तालाप होता है, उसका धार्मिक भावनाओं एवं सामाजिक अवस्थाओं की दृष्टि से बहुत महत्त्व है। सेठ के माध्यम से मुस्लिम धर्म का उपहास किया गया है। फकीर जब सेठ से कहता है कि मैं मक्का (मुसलमानों का धार्मिक स्थान) जा रहा हूं तो सेठ उसकी मजाक करता हुआ कहता है कि इतना खर्चा करके वहाँ क्यों जा रहा है ? 'मक्का' के दर्शन करने हैं तो तू मेजड़ी (खमीवृक्ष) में पल्ली क्यों नहीं देता, थोड़ी ही देर में सुर्ख 'मक्के ही-मक्के' (मकोड़े) नजर आयेंगे। इस वाक्य से पता चलता है कि तीर्थाटन करने में पुण्य-लाभ होगा, ऐसी मान्यता लोक में प्रचलित रही है। पर बनिये के द्वारा इसकी मजाक करवाकर इस वृत्ति को बेबुनियाद बताया गया है। इसी प्रकार बनिये के ये शब्द मुसलमानों की धार्मिक भावना पर गहरी चोट करते हैं—

'थे को फरेस्ता न म्है को जरख
थारी म्हारी बोली मे इतो ई फरक ।'

दर्जी के स्वाग की प्रमुख समस्या अनमेल विवाह है। वृद्धावस्था मे दर्जी नवयुवती से विवाह करता है। यौवन का तूफान युवती की मति को भ्रमित कर देता है। वह 'बागजी सतोत' (एक अन्य पात्र) से प्रेम करने लग जाती है। वह उसका बचपन से साथी रहा है। इसीलिए तो दर्जी की स्त्री के ये शब्द (प्रीतडी पुराणी बाला नैन पणरी) सार्थक प्रतीत होते है। इसमे कुछ विरह-वर्णन भी मिल जाते हैं। प्रियतम की प्रतीक्षा मे खडी दर्जिन के शब्द कितने स्वाभाविक हैं—

'म्है तो ऊभी जोवू बाट, बागा यू तो आया रेजे रे।'

'मेणे रे साग' मे मेणा जाति के सम्बन्ध में बताया गया है कि यह जाति चोरी करने की कला मे निष्णात है। रहट मे चलते बैल को चुरा लेना इनके बायें हाथ का खेल है। इस जाति का रण-कौशल भी इस स्वाग में वर्णित है। जोगी का स्वाग मध्यकालीन समाज का यथार्थ चित्रण करने वाला है। 'ढाई काकरी' फेंकने वाली योगिनी के रूप मे मन्त्र-सिद्धि प्राप्त उस स्त्री का वर्णन है जो अपनी मन्त्र-शक्ति के आधार पर पुरुष को अन्य रूप मे परिवर्तित कर देती थी। इस स्वाग मे भी वर्णन आते हैं कि योगिनी अपने मन्त्रो से जोगी को कभी मयूर बना देती है तो कभी कबूतर और कभी खरगोश। इन सभी बातो से मध्यकालीन समाज की अवस्थाओ का ज्ञान होता है। सूरदासजी के माध्यम से भी मध्यकालीन भोगी साधुओं का चित्रण किया गया है। ये साधु 'अभिमन्त्रित' चरणामृत का प्रसाद देकर औरतो को वश मे कर लेते थे। इनके वशीकरण मन्त्र अचूक होते थे। स्वाग मे एक स्थान पर यह भी बताया गया है कि लम्पट साधु ने एक नव-परिणीता को मन्त्रित प्रसाद दिया। उस समझदार वधू ने वह प्रसाद भैस के 'बाँटे' मे डाल दिया। रात्रि के समय भैस अपना 'पेंखडा' तुडवाकर रामद्वारे गयी तो सन्तजी को कहना पडा—'बुलाई लाडी नै आई पाडी।' इस प्रकार इन लोगो की अश्लील शृगारी वृत्ति के अनेक चित्र उभरकर हमारे सामने आते है। 'रावडी' के स्थान पर 'डावडी' सुन लेना भी इनकी भोग लिप्सु प्रवृत्ति का सूचक है। कान्ह-गूजरी के स्वाग मे भी कृष्ण की बाल लीलाओ का प्रदर्शन किया जाता है। कृष्ण द्वारा गोपिकाओ के वस्त्र छिपा देना, उनकी दूध, दही एव छाछ-भरी मटकियाँ फोडना, गोपिकाओ का यशोदा के पास शिकायत लेकर आना आदि सबकुछ इस स्वाग मे दर्शाया जाता है। प्रेम और शृगार से सम्बन्धित कवित्त भी यथावसर सस्वर पढे जाते हैं।

रावळो की रम्मत में सबसे बाद मे बीकोजी का स्वाग आता है। इस स्वाग के सम्बन्ध मे श्री रघजी रावळ बिराई वालो ने यह कथा सुनायी—बीका उदयपुर राणा के 'छुट-भाइयो' म था। महाराणा की सेवा मे रहने वाली एक दासी का

नाम रतना था। यह दासी महाराणा की खास दासी थी। महाराणा ने इसे पथ से विचलित देखकर इसको बीका सहित देश निकाला दे दिया। रतना रात्रि के समय बड़े कड़ाव में 'कपासिये' (बिनौले) डालकर उन्हें जलाया करती। बिनौलों के जलने से रोशनी होती और उस रोशनी में बीका गाँव लूटा करता था। लूट के माल के बँटवारे को लेकर एक बार रतना एवं बीका में विवाद हो गया। बीका गाँव लूटने गया पर पीछे रतना ने प्रकाश नहीं किया, फलतः बीका पकड़ा गया और मारा गया। इधर पीछे उदयपुर में अच्छे-अच्छे घोड़े विक्रयार्थ आये। बीका घोड़ों के बारे में बहुत अच्छी जानकारी रखता था। इस समय महाराणा को बीके की अनुपस्थिति खलने लगी। उन्होंने लोगों को इधर-उधर भेजा कि वे जहाँ कहीं भी बीका हो तो उसे बुला लायें। बीका तो मर गया था अतः कहीं से मिलता! अन्ततः खोजने वाले हार खाकर रावळों के पास गये एवं उन्हें बीके का रूप धारण करने को कहा। एक रावळ ने वैसा ही स्वांग कर लिया। इस प्रकार रावळों ने बीके का स्वांग लाकर महाराणा को पागल होने से बचा लिया। तब से रावळों की रम्मत में इस स्वांग को जोड़ दिया गया है। इस स्वांग में आजकल यह दिखाया जाता है कि बीका अपनी चाकरी पर जाने को तैयार है पर उसकी पत्नी उसे रोके रखना चाहती है। इसमें उसकी सहायता रतना दासी भी करती है। इस स्वांग में शृंगार रस के पदों की बहुलता है। विरह-दशा का उल्लेख भी मिल जाता है। कुछ सम्वादात्मक पद उद्धृत किये जा रहे हैं, जिनमें बीके एवं बीके की पत्नी द्वारा अपने कथन की पुष्टि में दिये गये तर्कों का उल्लेख है—

बीका—'थू क्यू बरजे कामणी, आ काई मन में आए।
लटे पटा पर चाकरा, जबे जवत पटा होय आए॥'

बीके की पत्नी—'परदेसा जावण करो, जावण करो घरां।
कुए उदासिया कुभ ज्यू, किसो भरोसो नरां॥'

बीका—'चांद सूरज साखी घग, कोस पीया कांय।
जीवतड़ा बिरचा नहीं, मुवा न दीजो दोस।'

रावळों की रम्मत के बारे में यह उल्लेख्य है कि ये लोग चारण जाति का स्वांग नहीं लाया करते हैं। इस सम्बन्ध में भी एक किवदन्ती प्रचलित है। बताया जाता है कि अकबर ने रावळों की 'रम्मत' देखकर उनसे पूछा कि आप लोग चारणों का स्वांग क्यों नहीं लाते? इस पर उन्होंने उत्तर दिया कि चारणों का स्वांग लाना बहुत ही कठिन है। पर बादशाह ने उन्हें हुक्म दिया कि कल चारणों का स्वांग अवश्य बनाया जाना चाहिए। दूसरे दिन नौ रावळ एक भाले में अपने आपको पिरोकर बादशाह के सम्मुख प्रस्तुत हुए। उनके शरीर से रक्त की धाराएँ प्रवाहित हो रही थी। पूछने पर पता चला कि चारण जाति का स्वांग लाया गया है। इस स्वांग के माध्यम से रावळों ने चारणों की आत्म-बलिदान एवं सर्वस्व

न्योछावर करने की भावना को प्रकट किया। इस पर अकबर ने कहा कि तुम लोग अपने इतने व्यक्तियों को समाप्त करके इस स्वांग को कैसे लाते रहोगे। तभी से चारणों का स्वांग लाना बन्द कर दिया गया।

रावळो की 'रम्मत' में गीत, संगीत एवं नृत्य का मंजुल मेल दिखायी देता है। बीच-बीच में गद्य में भी बातचीत चलती है। इनका वाद्य-वादन भी विशिष्ट प्रकार से होता है। इसके आयोजन के लिए किसी भी प्रकार के मंच की आवश्यकता नहीं होती। जमीन पर ही दरी बिछा दी जाती है। स्वांग की साज-सज्जा किसी कमरे में की जाती है। स्त्रियों का स्वांग भी पुरुष ही लाते हैं। यहाँ यह ज्ञातव्य है कि रावळो की स्त्रियों के लिए रावळो की 'रम्मत' देखना वर्ज्य है।

(७) जसनाथी सिद्धों का अग्नि-नृत्य

भारतीय सिद्धों के अग्नि-नृत्य की पृष्ठभूमि में सिद्धाचार्य जसनाथजी एवं रुस्तम की कथा का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जसनाथी सिद्धों में ऐसी दन्तकथा प्रचलित है कि एक बार सिद्धाचार्य जसनाथजी अंगीठी पर बैठ गये। उस समय उनकी उम्र एक वर्ष की ही थी। अंगीठी पर बैठने पर भी आपका कुछ न बिगड़ा। इसी भावना से प्रेरित होकर उनके शिष्यों ने भी अपने गुरु की अपारशक्ति के आधार पर अग्नि-नृत्य प्रारम्भ कर दिया। रुस्तम सिद्ध के बारे में यह कहा जाता है कि एक बार औरंगजेब ने सिद्ध रुस्तम को अपने पास बुलाया। रास्ते में उसने अग्नि का एक कुंड बना रखा था। इस कुंड पर हल्का-सा आवरण भी था। पर ज्योंही सिद्ध रुस्तम का उस स्थान पर (जहाँ नीचे अग्नि का कुंड था) पैर पड़ा तो वे उस कुंड में गिर गये। अपनी तपस्या के बल से सिद्ध रुस्तम सुरक्षित पुन लौट आये। आते समय निम्नलिखित वस्तुएँ भी साथ लेते आये जिन्हें देखकर बादशाह दंग रह गया—

'जामो छसरी साल छतीसो, सावण हो तो आगे।
मर करळी सिरटा री लायो, हाँरयो मतीरो सागे॥'

इन कथाओं में सत्य का अंश कितना है, कुछ भी नहीं कहा जा सकता। पर इनसे नृत्य-कर्त्ताओं का मनोबल ऊँचा अवश्य होता है। इस नृत्य में ७ फुट लम्बा, ४ फुट चौड़ा एवं ३-४ फुट ऊँचे माप का अंगारों का ढेर लगाया जाता है। इन अंगारों पर नाचते समय नर्तक ओंकार की ध्वनि का ऊँचे स्वर में आलाप करते रहते हैं और इधर पास में नगाड़े बजते रहते हैं। नृत्य करते समय नगाड़ों का बजते रहना अत्यावश्यक है। यह नृत्य एक विशेष लय व ताल के साथ होता है। इस नृत्य के द्वारा जसनाथी सम्प्रदाय के लोग पूर्वोक्त घटनाओं की नकल उतारते हैं। यह नृत्य जाट एवं सिद्ध लोगों द्वारा किया जाता है। बीकानेर क्षेत्र में इसका विशेष प्रचलन है।

(८) कामड़ों का तेराताळी नृत्य

इसका प्रदर्शन पुरुषों द्वारा न किया जाकर कामड जाति की औरतों द्वारा किया जाता है। स्त्रियाँ मंजीरों को अपने शरीर पर अलग-अलग स्थानों पर बांधकर एक-सी धुन में बजाती हुई अनेक प्रकार की कठिन मुद्राएँ, नाना हाव-भावों का प्रदर्शन और कई आंगिक चेष्टाएँ करती रहती हैं। १३ मंजीरों में से ६ मंजीरें तो औरत के दायें पाँव पर बंधी रहती हैं और शेष चार में से दो पसलियों के नीचे साथ की जगह तथा अन्य दो हाथों में रहती हैं। अपने हाथों की मंजीरों से अन्य मंजीरों को बजाते हुए नृत्य प्रस्तुत करने वाली स्त्री तेरह प्रकार के भाव-नाट्य प्रस्तुत करती है। प्रदर्शन के समय कामड पुरुष तानपूरे पर भजन गाते रहते हैं। इस खेल में कभी तो एक ही औरत नृत्य करती है और कभी कभी चार-पाँच औरतें सामूहिक नृत्य प्रस्तुत करती हैं। खेल के आरम्भ में गणेश की वन्दना की जाती है जिसके शब्द इस प्रकार से हैं—

'दो नारी रे गजानद दो नारी
आपने सोवे (छाजे) रे गजानद दो नारी
एक तो नारी रे भारी भर लावे दूजी सिनान करावे ओ देवा
एक तो नारी रे चदण ई घसे आ तो दूजी तिलक लगावे ओ देवा
एक तो नारी रे सेज बिछावे आ तो दूजी चवर डुलावे ओ देवा।'

इस समय मुख्य रूप से रामदेव से सम्बन्धित भजन या मीरा, गोरख, कबीर आदि के भजन गाये जाते हैं। ये कामड लोग रामदेव के ही उपासक हैं। नृत्य की समाप्ति पर दोनों हाथों में काँसे की थालियाँ लेकर उन थालियों को नचाया जाता है। इस नृत्य में निम्न मुद्राएँ प्रस्तुत की जाती हैं—

(१) अनाज बाटना, (२) अनाज साफ करना, (३) अनाज कूटना, (४) अनाज पीसना, (५) आटा छानना, (६) आटा गूंदना, (७) रोटी बनाना, (८) सूत लपेटना, (९) चरखा चलाना, (१०) सिर पर कलश रखना, (११) दही बिलोना, (१२) मक्खन निकालना, (१३) घी तैयार करना।

(९) ख्याल

राजस्थान में लोक-नाट्यों के रूप में सर्वाधिक प्रचार ख्यालों का ही है। पिछले ४००-५०० वर्षों में बहुत-से ख्यालों का प्रणयन हुआ है। इनमें प्रमुख रूप से किसी आदर्श चरित्र का जीवन चित्रित रहता है। पर कई ख्याल ऐसे भी मिलते हैं जिनमें प्रेमी व्यक्तियों और डाकुओं का चरित्रांकन किया गया है। यह एक विशिष्ट शैली में लिखा लोक-नाट्य होता है। आगे इस पर (ख्याल पर) पूर्ण प्रकाश डाला जायेगा।

उक्त नाट्य-प्रकारों के अतिरिक्त और भी कई प्रकार के छोटे-बड़े नाट्यों का प्रचार राजस्थान प्रदेश में हैं। जोधपुर में होलिकोत्सव पर आयोजित होने

वाली डयोढ़ि की गेर का भी विशेष महत्त्व है। इस गेर में विविध प्रकार के स्वांग लाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा धारण करके 'गेरिये' वृत्ताकार घूमते रहते हैं और अपने हाथ में थामी 'डंडियों' को आगे तथा पीछे वाले साथी की 'डंडियों' से मिलाते रहते हैं। सभी 'गेरियों' द्वारा एक साथ 'डंडियों' को मिलाने से एक विशिष्ट प्रकार की कर्ण-प्रिय ध्वनि उत्पन्न होती है। इस क्षेत्र के कुछ गाँवों में भी इसी प्रकार के गेरों का आयोजन होता है। 'गेरिये' एक विशिष्ट प्रकार का वस्त्र धारण किये रहते हैं जिसे 'आंगी' कहते हैं। यह वस्त्र श्वेत रंग का होता है तथा गले से लेकर पाँवों तक लम्बा होता है। कमर तक का भाग शरीर पर पूर्णरूप से फिट रहता है और नीचे का भाग घेरदार व ढीला-ढाला होता है। 'गेरियों' के वृत्ताकार नृत्य करते समय उनका अधोवस्त्र सुन्दर 'घेर' बनाता है। जोधपुर शहर में होने वाले इस नृत्य में तो पुरुषों के साथ स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं पर गाँवों में ऐसा रिवाज नहीं है।

गाँवों में उत्सवों के आधार पर कुछ ग्रामीणों द्वारा 'पट्टेदाव' भी किया जाता है। इस नृत्य-नाट्य में केवल दो ही पात्र होते हैं। इन दोनों पात्रों के हाथ में लाठी रहती है। एक पात्र दूसरे पर लाठी से प्रहार करने की चेष्टा करता है व दूसरा उन प्रहारों से बचने का प्रयत्न करता है। इसे 'लाठी की कलाबाजी' भी कहा जा सकता है। गाँव की बोली में यह 'पट्टेदाव खेलवा' कहलाता है। स्फूर्ति रखने वाले व्यक्ति ही इसका अभिनय सफलता से कर सकते हैं।

कई बार वैवाहिक अवसरों पर घोड़ी-नृत्य भी किया जाता है। कागज के 'कूटे' से बनी घोड़ी को नृत्य करने वाला अपनी कमर पर बाँध लेता है। कागज से बनी इन घोड़ियों पर कपड़ा डाल दिया जाता है जो पहिनने वाले के पैरों तक रहता है। इनके माध्यम से घोड़े-घोड़िया के युद्ध-कौशल एवं नृत्य-कौशल के दृश्य प्रस्तुत किये जाते हैं। राजस्थान में कई स्थानों पर इसे 'कच्छी घोड़ी' का नृत्य-नाट्य कहा जाता है। नटों की कलाबाजियाँ भी राजस्थानी लोक नाट्य का अभिन्न अंग हैं। ये लोग अन्य जातियों की नकल निकालने के साथ अनेक पशु-पक्षियों की बोलियों की नकल भी कर लेते हैं। राजस्थानी लोक नाट्यों के प्रसंग में भीली समाज के गवरी-नृत्य को कदापि नहीं भुलाया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी लोक नाट्यों में वैविध्य एवं वैचित्र्य है। वर्ण-विषय की दृष्टि से भी ये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी लोकप्रियता का इसमें ही आभास मिल जाता है कि आज भी हजारों की संख्या में लोग चाव से इन्हें देखने जाया करते हैं।

इन नाट्यों के माध्यम से उभरकर हमारे सामने आने वाला समाज राजस्थानी समाज का ही परिचायक है। राजस्थान प्रदेश की संस्कृति के तत्त्व भी इन नाट्यों में न्यूनाधिक रूप में मिल जाते हैं।

लोक-नाट्यों की सामान्य प्रवृत्तियाँ और राजस्थानी लोक-नाट्य

यद्यपि अपने विवेच्य विषय के अनुसार तो हमें राजस्थानी लोक-ख्यालों की ही बात करनी चाहिए, परन्तु लोक-नाट्यों के क्षेत्र में ख्यालों को अलग नहीं किया जा सकता। 'ख्याल' लोक-नाट्यों का एक प्रकार-विशेष होता है। ऊपर जिन नाट्य-प्रकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है उनका लोक-नाट्यों की दृष्टि से संक्षेप में विवेचन करना उचित प्रतीत होता है। क्योंकि लोक-नाट्यों का विवेचन किये बिना ख्यालों का विवेचन अधूरा-सा लगेगा।

संसार-भर के लोक-नाट्यों के प्रारम्भिक रूप-निर्माण में धार्मिक भावना का बोलबाला रहा है। धार्मिक भावना प्रायः प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में रहती ही है और यही भावना शनैः-शनैः नाटक का रूप धारण कर लेती है। 'गवरी-नृत्य', जसनाथी सम्प्रदाय वालों के अग्नि-नृत्य, अर्द्धनारीश्वर के स्वांग आदि की पृष्ठभूमि में धार्मिक भावना का ही सर्वाधिक योगदान रहा है। धर्म के उदात्त आदर्श इन नाटकों में विशेष रूप से पाये जाते हैं।

लोक-नाट्य का लोकधर्मी होना सर्वश्रेष्ठ गुण है। लोक-जीवन से उसका अंग-अंगी का नाता होता है। लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का उल्लेख स्वतन्त्र रूप से इन नाट्यों में होता है। राजस्थान प्रदेश में पाये जाने वाले ऐसे अनेक नाट्य हैं जिनमें राजस्थानी जीवन की स्पष्ट झलक मिलती है। इन नाट्यों के पात्रों की वेश-भूषा एवं प्रदर्शन कला प्रादेशिकता के तत्वों से पूर्ण-रूपेण प्रभावित है। 'रम्मत' के स्वांगों में उल्लिखित खान-पान एवं रीति-रिवाज राजस्थान प्रदेश की अपनी धरोहर है।

लोक-नाट्यों में कथानक के बन्धन को नहीं स्वीकारा जाता। प्रस्तोता कथानक को तोड़ते-मरोड़ते रहते हैं। कथा-प्रवाह को लोक-भावनाओं के अनुरूप मोड़ दे दिया जाता है। रसोद्रेक के उद्देश्य से यथावसर इनको घटाया-बढ़ाया जाता है। हास्य के प्रसंग में पात्र यदि दो-चार नयी हास्यास्पद बातें और जोड़ दे तो उसे कोई रोकने वाला नहीं। मींदें के स्वांग में कई बार कुछ प्रसंग परिस्थिति के अनुकूल जोड़ दिये जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पात्र दर्शकों की किसी बात को लेकर उन्हें ही हँसा देता है। तात्पर्य यह है कि लोक-नाट्य में कथ्य के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट नियम नहीं हैं।

लोक-नाट्यों के पात्र सामाजिक प्रवृत्ति-विशेष के प्रतिनिधि होते हैं। उनके माध्यम से हमारे समक्ष व्यक्ति-विशेष का परिज्ञापन नहीं होता। ये पात्र वर्ग का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त इन पात्रों में स्थानीय विशेषताओं के भी दर्शन होते हैं। सेठ के स्वांग से हम सम्पूर्ण बनिया जाति के कार्यों और विचारों से परिचित हो जाते हैं। इन स्वांगों में चित्रित दुर्गुणपति किसी व्यक्ति-विशेष की ओर इंगित नहीं करता अपितु अयोग्य पति की समस्त दुर्बलताओं को

वालो डयोढि की गेर का भी विशेष महत्त्व है। इस गेर मे विविध प्रकार के स्वाग लाये जाते हैं। विभिन्न प्रकार की वेश-भूषा धारण करके 'गेरिये' वृत्ताकार घूमते रहते हैं और अपने हाथ मे थामी 'डडियो' को आगे तथा पीछे वाले साथी की 'डडियो' से मिलाते रहते हैं। सभी 'गेरियो' द्वारा एक साथ 'डडियो' को मिलाने से एक विशिष्ट प्रकार की कर्ण-प्रिय ध्वनि उत्पन्न होती है। इस क्षेत्र के कुछ गाँवो मे भी इसी प्रकार के गेरो का आयोजन होता है। 'गेरिये' एक विशिष्ट प्रकार का वस्त्र धारण किये रहते हैं जिसे 'आगी' कहते हैं। यह वस्त्र श्वेत रग का होता है तथा गले से लेकर पाँवो तक लम्बा होता है। कमर तक का भाग शरीर पर पूर्णरूप से फिट रहता है और नीचे का भाग घेरदार व ढीला-ढाला होता है। 'गेरियो' के वृत्ताकार नृत्य करते समय उनका अधोवस्त्र सुन्दर 'घेर' बनाता है। जोधपुर शहर मे होने वाले इस नृत्य मे तो पुरुषो के साथ स्त्रियाँ भी भाग लेती हैं पर गाँवो मे ऐसा रिवाज नही है।

गाँवो मे उत्सवो के आधार पर कुछ ग्रामीणो द्वारा 'पट्टेदाव' भी किया जाता है। इस नृत्य-नाट्य मे केवल दो ही पात्र होते हैं। इन दोनों पात्रो के हाथ मे लाठी रहती है। एक पात्र दूसरे पर लाठी से प्रहार करने की चेष्टा करता है व दूसरा उन प्रहारो से बचने का प्रयत्न करता है। इसे 'लाठी की कलाबाजी' भी कहा जा सकता है। गाँव की बोली मे यह 'पट्टेदाव खेलवा' कहलाता है। स्फूर्ति रखने वाले व्यक्ति ही इसका अभिनय सफलता से कर सकते हैं।

कई बार वैवाहिक अवसरो पर घोडी-नृत्य भी किया जाता है। कागज के 'कूटे' से बनी घोडी को नृत्य करने वाला अपनी कमर पर बाँध लेता है। कागज से बनी इन घोडियो पर कपडा डाल दिया जाता है जो पहिनने वाले के पैरो तक रहता है। इनके माध्यम से घोडे-घोडियो के युद्ध कौशल एव नृत्य-कौशल के दृश्य प्रस्तुत किये जाते है। राजस्थान मे कई स्थानो पर इसे 'कच्छी घोडी' का नृत्य-नाट्य कहा जाता है। नटो की कलाबाजियाँ भी राजस्थानी लोक-नाट्य का अभिन्न अग हैं। ये लोग अन्य जातियो की नकल निकालने के साथ अनेक पशु-पक्षियो की बोलियो की नकल भी कर लेते है। राजस्थानी लोक नाट्यो के प्रसग मे भीली समाज के गवरी-नृत्य को कदापि नही भुलाया जा सकता।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी लोक नाट्यो मे वैविध्य एव वैचित्र्य है। वर्ण-विषय की दृष्टि से भी ये अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनकी लोकप्रियता का इससे ही आभास मिल जाता है कि आज भी हजारो की सख्या मे लोग चाव से इन्हे देखने जाया करते हैं।

इन नाट्यों के माध्यम से उभरकर हमारे सामने आने वाला समाज राजस्थानी समाज का ही परिचायक है। राजस्थान प्रदेश की सस्कृति के तत्त्व भी इन नाटयो मे न्यूनाधिक रूप मे मिल जाते हैं।

लोक-नाट्यों की सामान्य प्रवृत्तियाँ और राजस्थानी लोक-नाट्य

यद्यपि अपने विवेच्य विषय के अनुसार तो हमें राजस्थानी लोक-ख्यालों की
ही बात करनी चाहिए, परन्तु लोक-नाट्यों के क्षेत्र से ख्यालों को अलग नहीं
किया जा सकता। 'ख्याल' लोक-नाट्यों का एक प्रकार-विशेष होता है। ऊपर
जिन नाट्य-प्रकारों का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया गया है उनका लोक-
नाट्यों की दृष्टि से संक्षेप में विवेचन करना उचित प्रतीत होता है। ख्यालेतर
लोक नाट्यों का विवेचन किये बिना ख्यालों का विवेचन अधूरा-सा लगेगा।
संसार भर के लोक-नाट्यों के प्रारम्भिक रूप-निर्माण में धार्मिक भावना का
बोलबाला रहा है। धार्मिक भावना अज्ञात प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में रहती ही
है और यही भावना शनैः-शनैः नाटक का रूप धारण कर लेती है। 'गवरी-
नृत्य', जसनाथी सम्प्रदाय वालों के अग्नि-नृत्य, अर्द्धनारीश्वर के स्वांग आदि की
पृष्ठभूमि में धार्मिक भावना का ही सर्वाधिक योगदान रहा है। धर्म के उदात्त
आदर्श इन नाटकों में विशेष रूप से पाये जाते हैं।
लोक नाट्य का लोकधर्मी होना सर्वश्रेष्ठ गुण है। लोक-जीवन से उसका
अंग-अंगी का नाता होता है। लोक के मनोभावों और प्रतिक्रियाओं का उल्लेख
स्वतन्त्र रूप से इन नाट्यों में होता है। राजस्थान प्रदेश में पाये जाने वाले ऐसे
अनेक नाट्य हैं जिनमें राजस्थानी जीवन की स्पष्ट झलक मिलती है। इन
नाट्यों के पात्रों की वेश भूषा एवं प्रदर्शन कला प्रादेशिकता के तत्त्वों से पूर्ण-
रूपेण प्रभावित है। 'रम्मत' के स्वांगों में उल्लिखित खान पान एवं रीति-रिवाज
राजस्थान प्रदेश की अपनी धरोहर है।
लोक-नाट्यों में कथानक के बन्धन को नहीं स्वीकारा जाता। प्रस्तोता
कथानक को तोड़ते मरोड़ते रहते हैं। कथा-प्रवाह को लोक भावनाओं के अनुरूप
मोड़ दे दिया जाता है। रसोद्रेक के उद्देश्य से यथावसर इनको घटाया-बढ़ाया
जाता है। हास्य के प्रसंग में पात्र यदि दो-चार नयी हास्यास्पद बातें और जोड़ दे
तो उसे कोई रोकने वाला नहीं। मींये के स्वांग में कई बार कुछ प्रसंग परिस्थिति
के अनुकूल जोड़ दिये जाते हैं। कभी-कभी ऐसा भी होता है कि पात्र दर्शकों की
सी बात को लेकर उन्हें ही हँसा देता है। तात्पर्य यह है कि लोक-नाट्य में
ध्य के सम्बन्ध में कोई विशिष्ट नियम नहीं हैं।
लोक नाट्यों के पात्र सामाजिक प्रवृत्ति-विशेष के प्रतिनिधि होते हैं। उनके
माध्यम से हमारे समक्ष व्यक्ति-विशेष का चरित्रांकन नहीं होता। ये पात्र वर्ग
का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसके अतिरिक्त इन पात्रों में स्थानीय विशेषताओं के
भी दर्शन होते हैं। सेठ के स्वांग से हम सम्पूर्ण बनिया जाति के कार्यों और
विचारों से परिचित हो जाते हैं। इन स्वांगों में चित्रित दुर्गुणपति किसी व्यक्ति-
विशेष की ओर इंगित नहीं करता अपितु अयोग्य पति की समस्त दुर्बलताओं को

ग्रहण किये हुए हाने के कारण सामान्यत अयोग्य पति का परिचायक होता है। यही स्थिति ढोंगी साधु एव कर्कशा नारी के सम्बन्ध मे कही जा सकती है, जिसका उल्लेख हमे 'जोगी रे साग' और 'सूरदास रे साग' मे मिलता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इन नाट्यो के चरित्र सामाजिक धरोहर होते हैं।

लोक-नाट्यो मे कौशल-त्रय पर अत्यधिक बल दिया जाता है।

(१) अभिनय-कौशल

(२) नृत्य-कौशल

(३) गीत सगीत कौशल

कौशल-त्रय के समन्वय के कारण ही लोक-नाट्य सर्वाधिक मनोहारी माना जाता है। राजस्थान प्रदेश के लोक-नाट्यो मे तो यह कौशल-त्रय मिल जाता है और कई म नही भी मिलता है। रावळो की 'रम्मत' के सभी स्वागो मे अभिनय, नृत्य एव गीत सगीत की अनूठी छटा देखने को मिलती है। जसनाथी सिद्धो के अग्नि-नृत्य मे हमे गीत तत्त्व की कमी खलती है। बाल नाट्य एव स्त्रियो द्वारा निकाली जाने वाली बोलियाँ सगीत एव नृत्य रहित होती हैं। सगीत के लिए इन नाट्यो म विविध वाद्य-यन्त्रो का उपयोग किया जाता है। रावळ ढोलक और 'जीभा' बजाया करते हैं सिद्धो के नृत्य के समय ढोल का अनवरत वादन किया जाता है और 'तेंरावाळी' नृत्य म तानपूरे को काम मे लाया जाता है।

लोक नाट्य व्यक्तित्व की छाप से रहित होते हैं। आज हमे इस सम्बन्ध मे कुछ भी ज्ञान नही है कि रम्मत क स्वागो का प्रारम्भ किसने किया ? औरतो द्वारा निकाली जाने वाली बोलिया का निर्माण कब, कैसे और किसके द्वारा हुआ ? पर यहाँ यह ज्ञातव्य है कि राजस्थान मे लोक नाट्य के रूप मे प्रचलित ख्याल विशिष्ट व्यक्तियो की देन हैं। ये ख्याल किसी कर्त्ता की कृति होते हैं।

लोक-नाट्यो का स्थानीय प्रभावा से प्रभावित होना आवश्यक है। जा लोक-नाट्य प्रादेशिक सस्कृति के तत्त्वा का जितनी अधिक मात्रा म वर्णन करेगा वह उतना ही सफल नाटक माना जायेगा। स्थानीय रग लोक-नाट्य की प्रभावात्मक शक्ति को द्विगुणित कर देता है। इस सम्बन्ध मे डॉ० नगेन्द्र ने निम्न शब्दो मे अपनी विचाराभिव्यक्ति की है—

"लोक नाटक सामूहिक आवश्यकताओ और प्रेरणाओ के कारण निर्मित होने से लोक-कथानको, लोक-विश्वासो और लोक-तत्त्वो को समेटे चलता है और जीवन का प्रतिनिधित्व करता है।"[1]

लोक-नाट्या मे स्थानीयता की दृष्टि स लोक-वेश-भूषा का भी महत्त्व है। राजस्थानी लोक-नाट्यो म तो वेश-भूषा का और भी अधिक ध्यान रखा जाता

---

१ भारतीय नाट्य साहित्य, स० डॉ० नगेन्द्र, पृ० ८४

है, क्योंकि इस प्रदेश मे जातीय स्तर पर भी वेश-भूषा मे अन्तर आ जाता है। रम्मत के सभी स्वांगो मे जातीय वेश-भूषा का ही उपयोग किया जाता है। सेठ की वेश-भूषा अलग प्रकार की होगी तो दर्जी की वेश-भूषा और ढग की होगी और बीवे के कपडे राजशाही के परिचायक होंगे। मैणा एक ऊँची-ऊँची धोती पहिने ही हमारे सामने आयेगा और फकीर अपने वर्ग की वेश-भूषा को धारण किये रहता है। अपने प्रदेश की वेश-भूषा के अतिरिक्त इतर प्रदेशों या इतर जातियों की वेश-भूषा का भी सर्वत्र ध्यान रखा जाता है। (यथा—फकीर के स्वांग मे।)

लोक-नाट्यो के कथोपकथन प्राय पद्यात्मक होते हैं। इन पद्यो के बीच-बीच मे गद्यावतरण भी मिलते हैं जो कथा को एक क्रम प्रदान करते हैं। इन गद्यावतरणों की महत्ता कथा को मोड देने, चरित्रों की विशेषताओं को प्रकट करने, हास्य-प्रसगो को उपस्थित करने की दृष्टि से है। कई राजस्थानी लोक-नाट्यों में गद्यावतरण की समाप्ति पर कुछ इस प्रकार के वाक्यांश (तो आगे कोई कहै सावळ सुणजो सा, ध्यान राखजो सा) कहे जाते हैं, जो दर्शक की चेतना को जाग्रत करते रहते हैं।

लोक-नाट्यो मे दर्शकों की भी महत्ता है। अनेक स्थलों पर योग के कौशल पर दर्शकगण 'वाह ! वाह !', वाई के दियौ, मार दियौ पापड वडिया वाळे नें' आदि वाक्य कह दिया करते हैं। इस प्रकार से दर्शक पात्रो को प्रोत्साहित करते रहते हैं।

केवल मनोरजन करना ही राजस्थानी लोक-नाट्यों का उद्देश्य नही रहा है। इनमें राजनैतिक पहलुओं पर भी प्रकाश पडता है। सामाजिक उत्तरदायित्वों का ज्ञान इन नाट्यों से होता है। सर्वसाधारण का नैतिक-उत्थान भी इन नाट्यो का उद्देश्य रहा है। इनके कथानको की अनेकरूपता (पौराणिक, धार्मिक, ऐतिहासिक, राजनैतिक आदि) दर्शकों के समक्ष विविध रूप प्रस्तुत करती है, जिससे सर्वसाधारण की ज्ञान-वृद्धि होती है।

इन नाट्यो का रगमच साधारण और खुला होता है। इनमे अक-विभाजन नही होता है। बहुत सारी बातें सकेतों एव उल्लेखो से ही प्रकट की जाती हैं। (यथा—सेना का वर्णन, नगर का वर्णन, वैभव का वर्णन) इन नाट्यो के कथानक बहुत शिथिल होते हैं। बीच बीच मे हास्य प्रसगो की अवतारणा की जाती है। कुछ कमियों के होते हुए भी राजस्थान मे लोक-नाट्यो की एक समृद्ध परम्परा रही है।

राजस्थानी ख्यालो की सामान्य विशेषताएँ

यद्यपि राजस्थानी लोक-नाट्यो की उक्त सभी प्रवृत्तियाँ ख्यालो मे भी

मिल जाती हैं परन्तु ख्यालों की कुछ और भी विशेषताएँ हैं जिनका विवेचन करना अभी शेष है। राजस्थानी लोक में बहुप्रचलित एवं अपेक्षाकृत अल्प प्रचलित इन ख्यालों की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) ख्यालों का रचयिता प्रायः ज्ञात होता है

ख्याल इतर राजस्थानी लोक नाट्यों के रचयिता के अज्ञात होने के सम्बन्ध में यथावसर कहा जा चुका है। ये ख्याल रचयिता विशेष की देन होते हैं। ख्याल किसी कवि विशेष की रचना कृति होता है जिसका अभिनय की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व होता है। इन ख्यालों का अभिनय करने वाले कई दल होते हैं। कई बार दल का मुखिया ही किसी कथा का आधार लेकर ख्याल का निर्माण कर देता है और लोग उसका अभिनय करते रहते हैं। राजस्थान में आज भी ऐसे कई दल मिल जाते हैं जिनकी जीविकोपार्जन के साधन ये ख्याल ही हैं। ख्याल मूलतः ऐसे कलाकारों एवं संस्थाओं की ओर ही संकेत करता है जिनमें लोक-ख्याल रम गये। पर इतना परिणाम लोक का ही नाटक के अनुरूप ढाल कर रहता है। यही कारण है कि ख्याल एक ही कवि द्वारा कृत होने पर भी लोक की सम्पत्ति मान जाते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र ने भी कहा है—

> लोक-नाट्य विरचित होते हैं किसी विशेष व्यक्ति कवि द्वारा। पर वह रचना अभी लोक तत्त्वों के उपादानों से बनी होती है।[1]

राजस्थानी लोक ख्यालों के प्रणेताओं में इन व्यक्तियों के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—गोपीलाल भाट, नानूराम राणा, नान्या गाई, प्रह्लादीराम बागू लाली, राज कवि उजीरा तेली, फागूराम, मुरलीधरराम गडुवाल, अक्षयलाल, लच्छीराम, बंशीधर शर्मा, दौलतराम गिलवा, पाण्डे कल्याण राय शर्मा। ये ख्याल परम्परा में भी अभिनय करने वालों के रूप में प्रसिद्ध रहते थे। जो निर्माता दल रखते थे उनका दल उनके नाम से ही जाना जाता था। (यथा—अक्षयलाल री पार्टी, बंशीधर री पार्टी, लच्छीराम री पार्टी। यहाँ पार्टी शब्द अंग्रेजी के पार्टी शब्द का विकृत रूप है।) ये दल अखाड़ा निर्माता (अभिनय दल) के नाम से भी जाने जाते हैं। आजकल उगमिया री पार्टी का राजस्थान भर में बोल बाला है। उक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि—ख्याल और ख्याल के दल—दोनों पर व्यक्ति विशेष की स्पष्ट छाप रहती है।

(२) ख्यालों में कथा क्रम बँधी बँधाई परिपाटी के अनुसार होता है

राजस्थानी लोक ख्यालों में कथा का क्रम पूर्व निश्चित पद्धति के अनुरूप

---

१ लोक साहित्य विज्ञान डॉ० सत्येन्द्र पृ० ५०१

चलता है। सर्वप्रथम मगलाचरण का विधान रहता है। इन ख्यालो मे नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक तथा घटना-प्रधान तीन प्रकार के मगलाचरण मिलते हैं। मंगलाचरण गान समवेत स्वर मे भी हो सकता है और अकेले पात्र द्वारा भी गाया जा सकता है। मगलाचरण के सम्बन्ध मे यह ज्ञातव्य है कि इसमे प्रसिद्ध देवी-देवताओ की वन्दना की जाती है। सभी की शक्ति को सम्यक् रूप से पहिचानना और इन सभी को समान भाव से आदर देना ही लोक दृष्टि की विशेषता रही है। इन मगलाचरणो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यहाँ शिव, शक्ति, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, हनुमान, रामदेव आदि सभी देवताओ और अन्य लोक-देवताओ का समान महत्त्व है। सभी के चरणो मे श्रद्धा के फूल चढाये जाते हैं और किसी भी देवता की निन्दा नहीं की जाती। यहाँ उदाहरण स्वरूप एक मगलाचरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

'थानै मनाऊ गोरी शारदा दयो बुद्धि ईश्वरी।
गजानन्द गुरुदेव मनाऊ धर चरणां म ध्यान।
सदा भवानी दाहिनी स जो पूरँ मनका कोड।
मवासुकन भगवानदास जी लोज्यो मुजरो मान।
पहली सिवरू शारदा र बा है मोटी मम्याय।
विघ्न हरो मगल करो स ए करो हमारी साय।
म्हारी बुद्धि सुध करो म कोई भूल्या हरफ बताय।
तुम हो दीन दयाल गजानन्द मगलीक महाराज।
रिध मीध लारे लेय पधारी सिद्ध करो सब काज।
करमावसी करू तमासो, रखो हमारी लाज।
रूप नगर मे रूपसेन जी करामात भरपूर।
मालीवाडे हनुमान जी लीला थ्यो है दूर।
सिल्ने मे सुलतान पीर है नापत कुरे जरूर।
तन मन सेती करू अरदाी सब ही दव मनाऊ।
इन्द्र पधारो ऐरावत चढ फिर निराव हो जाऊ।
राव खीमजी आभलद की नयो तमशो नाऊ।
मैं सबा का दास हूँ स जी कोप करो मत कोय।
अज हमारी है देवाँ स सबके आनन्द होय।
रिद्धि सिद्धि अरु सुक्त सम्पती देवो विधाता मोय।[1]

उक्त मगलाचरण नमस्कारात्मक है। इसमे सर्वजनहित सन्देश भी अन्तर्निहित है। 'धोरों' का नामोल्लेख कर सांस्कृतिक समन्वय की बात कही गयी है। मगलाचरण के पश्चात कुछ ख्यालो मे गुरु-वन्दना भी की जाती है। ख्यालकारो

१ खीमजी बालेचा व रानी आभलदे का ख्याल, पृ० २ ३

मिल जाती हैं परन्तु ख्यालों की कुछ और भी विशेषताएँ हैं, जिनका विवेचन करना समीचीन है। राजस्थानी लोक में बहुचर्चित एव अत्यधिक प्रचलित इन ख्यालों की सामान्य विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

(१) ख्यालों का रचयिता अज्ञात नहीं होता है

ख्यालेतर राजस्थानी लोक नाट्यों के रचयिता के अज्ञात होने के सम्बन्ध में यथावसर बता दिया गया है। ये ख्याल व्यक्ति-विशेष की देन होते हैं। ख्याल किसी कवि-विरचित काव्य-कृति होती है जिसका अभिनय की दृष्टि से सर्वाधिक महत्त्व होता है। इन ख्यालों का अभिनय करने वाले कई दल होते हैं। कई बार दल का मुखिया ही किसी कथा को लेकर ख्याल का निर्माण कर देता है और लोग उसका अभिनय करते रहते हैं। राजस्थान में आज भी ऐसे कई दल मिल जाते हैं जिनकी जीविकोपार्जन के साधन ये ख्याल ही हैं। ख्याल-सृष्टा ऐसे वर्णनों, चरित्रों एव घटनाओं की ओर ही ज्यादा ध्यान देता है जिनमें लोक-मानस रम सके। वह अपने चरित्रों को लोक की भावना के अनुरूप मोड़ देता रहता है। यही कारण है कि ख्याल एक ही कृति होते हुए भी लोक की सम्पत्ति माने जाते हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र ने भी कहा है—

> 'लोक नाट्य विरचित होते हैं, किसी विशेष व्यक्ति, कवि द्वारा। पर यह रचना सभी लोक क्षेत्रों के उपादानों से बनी होती है।'[1]

राजस्थानी लोक ख्यालों के प्रणेताओं में इन व्यक्तियों के नाम विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—मोतीलाल सैन, नानूलाल राणा, नान्दया सांई, प्रहलादीराम, बाजू तेली, तेज कवि, उजीरा तेली, कालूराम मुरारकराम गढ़वाल, अम्बालाल, लच्छीराम, बंशीधर शर्मा, *दौलतराम मिसवाल, पंडित कल्याण राय शर्मा।* ये ख्याल करने वाले भी अभिनय करने वालों के दल रखा करते थे। जो निर्माता दल रखते थे, उनका दल उनके नाम से ही जाना जाता था। (यथा—अम्बालाल री पाल्टी, बंशीधर री पाल्टी, लच्छीराम री पाल्टी—यहाँ पाल्टी शब्द अंग्रेजी के पार्टी शब्द का विकृत रूप है।) ये दल अच्छे खिलाड़ी (अभिनय कर्ता) के नाम से भी जाने जाते हैं। आजकल 'उगमिय री पाल्टी' का राजस्थान भर में बोल बाला है। *उक्त विवेचन के आधार पर यह सिद्ध होता है कि—ख्याल और ख्याल के* दल—दोनों पर व्यक्ति-विशेष की स्पष्ट छाप रहती है।

(२) *ख्यालों में कथा-क्रम बँधी-बँधाई परिपाटी के अनुसार होता है*

राजस्थानी लोक ख्यालों में कथा का क्रम पूर्व-निर्मित पद्धति के अनुरूप

---

१ लोक साहित्य विज्ञान, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ५०१

चलता है। सर्वप्रथम मगलाचरण का विधान रहता है। इन ख्यालो मे नमस्कारात्मक, आशीर्वादात्मक तथा घटना-प्रधान तीन प्रकार के मगलाचरण मिलते हैं। मंगलाचरण गान समवेत स्वर मे भी हो सकता है और अकेले पात्र द्वारा भी गाया जा सकता है। मगलाचरण के सम्बन्ध मे यह ज्ञातव्य है कि इसमे प्रसिद्ध देवी-देवताओ की वन्दना की जाती है। सभी की शक्ति को सम्यक् रूप से पहिचानना और उन सभी को समान भाव स आदर देना ही लोक दृष्टि की विशेषता रही है। इन मगलाचरणो पर दृष्टिपात करने से ज्ञात होता है कि यहाँ शिव, शक्ति, राम, कृष्ण, ब्रह्मा, विष्णु, लक्ष्मी, सरस्वती, हनुमान, रामदेव आदि सभी देवताओ और अन्य लोक-देवताओ का समान महत्त्व है। सभी के चरणो मे श्रद्धा के फूल चढाये जाते हैं और किसी भी देवता की निन्दा नही की जाती। यहाँ उदाहरण स्वरूप एक मगलाचरण प्रस्तुत किया जा रहा है—

'थाने मनाऊ गौरी शारदा दयो बुद्धि ईश्वरी।
गजानन्द गुरुदेव मनाऊ धर चरणा मे ध्यान।
सदा भवानी दाहिनी म जो पूरे मनका काम।
सवासुकख भगवानदास जी लीज्यो मुजरो मान।
पहली सिवरू शारदा र वा है मोटी मय्याय।
विघ्न हरी मगल करो स ए करो हमारी साय।
म्हारी बुद्धि सुध करो स कोई भूल्या हरफ बताय।
तुम हो दीन दयाल गजानन्द मगलीक महाराज।
रिध सीप लारे लैय मयारी सिद्ध करो सब काज।
करमाबसी कहू तमामो, रखो हमारी लाज।
रूप नगर मे रूपसेन जी करामात भरपूर।
मालीवाडे हनुमान जी लीला थयो है दूर।
किले मे सुलतान पीर है तोपत चुरे जहर।
तन मन सेती कर अन्दगी सब ही देव मनाऊ।
इन्द्र पधारो ऐरावत चढ फिर निशक हो जाऊ।
राव खीमजी आभलद की नयो तमशो नाऊ।
मैं सवा को दास हूँ स जो कोप करा मत काय।
अज हमारी है देवो मे सबके आनन्द होय।
रिद्धि सिद्धि अरु सुकन सम्पती देवी विधाता मोय।'[1]

उक्त मगलाचरण नमस्कारात्मक है। इसम सर्वजनहित सन्देश भी अन्तर्निहित है। 'धीरों' का नामोल्लेख कर सास्कृतिक समन्वय की बात कही गयी है। ख्यालका मगलाचरण के पश्चात कुछ ख्यालो मे गुरु-वन्दना भी की जाती है।

1 खीमजी कासेचा व रानी, आभलदे का ख्याल, पृ० २३

की दृष्टि में गुरु का बहुत ऊँचा स्थान है। इन लोगों की मान्यता है कि गुरु-कृपा से ही हमें अखाड़े में सफलता मिलती है। गुरु-महिमा गान से सम्बन्धित कुछ पद्यावतरण विभिन्न ख्यालों से प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'गुरु देवन का देव है सरे धरो उसी का ध्यान।
आप तिरे अरु शिष्य तिरावें, गावें वेद पुरान।।'[1]
बिन गुरु बिन विद्या नही समझो चतुर सुजान।
बिन पिंगल के छन्द जोडते, सो नर पशु समान।'[2]
गुरु गोविन्द की महर होय जद, फतै अखाडे पावू।'

कुछ ख्यालों में गुरु स्तवन के पश्चात उन लोगों का उल्लेख रहता है जो ख्याल में गड़बड़ी करने की नीति से आते हैं। इन्हें ख्यालकार अपात्र मानता है। इस समय किये गये वर्णन में सज्जन महिमा एवं दुर्जन निन्दा का विवेचन भी मिलता है। खेल में बाधा डालने वाले लोगों के प्रति अनादर सूचक शब्दों के प्रयोग मिलते हैं। रावळों की 'रम्मत' में भी 'रम्मत मडाने' में 'आडी' देने वालों की ओर सकेत करता हुआ 'मीया' कहता है—'रम्मत म आडी दे वा री है नाक बाढ़ूं।' इसी प्रकार का विवेचन पाबूजी के ख्याल में मिलता है—

'लुच्चे लम्पट और कुकर्मी अथवा हुल्लडबाज
चोर चकार चुटीले निंदक, जाय सभा में भाज
झूठी चुगली करें खेल की व्यर्थ दिखावें नाज
उनकी कुमति हरो शारदे ! गोरीपति गणराज
सज्जन आओ मत शर्माओ शोभा यहा बढावो
हमदर्दी तुम रक्खो सुयश चौगनो पावो
शिक्षा पूर्ण दैन है मेरो, शिक्षा कुछ ले जावो
गलती कुछ इसमे देखो तो प्रेम सहित दर्शाजो।।'[3]

मगलाचरण गुरु स्तवन एवं सज्जन महिमा तथा दुर्जन निन्दा सम्बन्धी पद्यावतरणों की समाप्ति पर मच की सफाई करने के लिए भगी आता है। तदनन्तर भिश्ती जल छिड़काव हेतु आता है। उन दोनों पात्रों के आगमन के पश्चात 'हलकारा' आता है जो प्रमुख पात्र के आने की सूचना देता है। हलकारा नायक के शौर्य एवं वैभव के बारे में भी कुछ न-कुछ कहता है। 'हलकारे' के बाद में कथावस्तु का प्रारम्भ होता है और बारी बारी से उपयुक्त समय पर सभी पात्र आते और जाते रहते हैं। यहाँ यह उल्लेख्य है कि ख्यालों के सभी पात्र (भगी से लेकर नायक तक) अपना परिचय स्वयं ही देते हैं। प्रत्येक पात्र प्रविष्ट होते ही

१ गोपीचन्द का ख्याल, पृ० ११
२ रिसालू नोपदे, पृ० २
३ राठोड पाबूजी का ख्याल, पृ० ४

कुछ वन्दनात्मक पंक्तियों का उच्चारण करता है। नया पात्र जब भी प्रवेश करेगा वह नमस्कारात्मक पंक्तियों का पाठ अवश्य करेगा। पात्र अपने इष्ट देवों का स्मरण किये बिना प्रवेश कैसे पा ले। कई ख्यालकार इस समय भी पात्र के माध्यम से अपने गुरु की वन्दना भी कर लेते हैं। उदाहरणार्थ—श्रवणकुमार के ख्याल में नरेश दशरथ ख्याल की समाप्ति के कुछ पूर्व ही प्रवेश पाते हैं, पर वहाँ भी वे इन पंक्तियों को उच्चारित करते हैं—

'खेलन मधु वन में आज शिकार जी नृप दशरथ आये।
सुमरन माता बुध की दाता हिरदे करो प्रकाश
हंसवाहिनी आवे मैया पूरी मन की आशा
नंदरामजी गुरु हमारा नगर मेड़ता वास।'[1]

यहाँ नृप दशरथ ने सरस्वती की वन्दना की है और ख्यालकार ने अपने गुरु नन्दरामजी की वन्दना की है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि राजस्थानी लोक-ख्यालों में प्रायः यही क्रम (ईश-वन्दना, गुरु-महिमा, मिलनी, हलकारा एवं पात्र) चलता है।

(३) राजस्थानी ख्यालों में पात्रों का चित्रण प्रायः एक-सा मिलता है

(१) पुरुष-पात्र—राजस्थानी लोक ख्यालों में हमें लौकिक और अलौकिक दोनों प्रकार के पात्र मिलते हैं। लौकिक पात्र भी इष्ट बली होते हैं। प्रायः नायक के माध्यम से वीरता के क्षेत्र में या प्रेमियों के जगत में आदर्श व्यक्तित्व की स्थापना की जाती है। वीर-पात्र आगणित कष्टों को सहर्ष झेलता हुआ एक के बाद दूसरी विजय को प्राप्त करता जाता है। उसे अपने बाहु-बल एवं इष्ट-बल पर पूर्ण विश्वास है। पृथ्वीराज की यह मान्यता 'म्हारा म्हारे हाथ पीठ पर मात भवानी' सामान्य वीर की मान्यता है। प्रेमी भी अपनी प्रेमिका को प्राप्त करने के लिए अनेकानेक मुसीबतों का सामना करता हुआ अन्ततः सफलता प्राप्त करता है। वीर नायकों और प्रेम करने वाले नायकों के लिए भाभी के व्यंग्य-वाक्य प्रेरक तत्त्व का काम करते हैं। भाभी द्वारा कहा गया हास्य मिश्रित व्यंग्य वाक्य इन चरित्रों के मर्म को छू जाता है। वीरमसिंह, केसरसिंह, तेजा, गोगा आदि कटु वाक्यों को सह नहीं सके और अपने मन्तव्य की ओर बढ़ चले। यहाँ कुछ व्यंग्य-वाक्य उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत किये जा रहे हैं—

'मानव रा सुत चैन चैन नहिं कैन कार ने मैं जाऊं।
यही जची है परी नोटकी ल्याकर दिखलाऊं।।'[2]

---

१ श्रवणकुमार का ख्याल, पृ० ४८
२ ख्याल वीरमसिंह नोटकी का, पृ० १३

सूरां तणी जिरारां ताई, सीर्स मांगवा आया।
फूलादे रांणी का म्हांने मोसा वचन सुनाया।।'[1]
सेवा पूजा करो भलाई, नही होमी उद्धार।
भाग उडावे कामणी र थारी पीहर बैठी नार।
छकी जवाणी जोसता र वीनें ब्यावो क्यो नी जार।।'[2]

ये व्यंग्य-वाक्य नायक के जीवन को नया मोड देने वाले होते हैं। ये वाक्य नायक के पराक्रम को चुनौती देने वाले होते हैं। चुभन वाली बात व्यक्ति को तिलमिला देती है। गोग चौहान की पत्नी का यह वाक्य 'तू बन्नी क्यांरो गिया वृथा बजावे गाल जी' उसके वीररस को झकझोर देता है।

नायक को अनेक स्थानों पर अलौकिक शक्तियों से सहायता मिलती है और कई स्थानो पर उसका सामना अति-प्राकृतिक शक्तियों से हो जाता है। निहालदे-सुलतान में सुलतान की टक्कर राक्षसों से होती ही रहती है। गुरु गोरखनाथ और शिव-पार्वती सहायक शक्तियों के रूप में वर्णित हैं।

नायक के चरित्र को सदा आदर्श-प्रधान रखा गया है। उसके साथ ऐसी कोई भी बात नहीं जोडी जाती जिससे उसके चरित्र पर लांछन लगे। प्रेम करने वाला नायक येन-केन प्रकारेण अपनी प्रेमिका से मिल तो जाता है पर विवाह से पूर्व वह उसके साथ रति-क्रीडा नही करता। यहां आकर वह हमारे समक्ष एक आदर्श चरित्र के रूप में उभर आता है। पृथ्वीराज संयोगिता के महल तक पहुँच गया है पर संयोगिता द्वारा प्रणय निवेदन किये जाने पर वह कहता है—

'आयो मैं मिलबा के काज, सेज रम्या म्हारी बिगडे जात
साची मानो नार बात, आखिर पवारी आप जी
क्षत्रीपन के दाग लागे, रम्या नार तेरे सागे
रमस्या संग फेरा खा के, मत ना बढावे पाप जी
मेरी तू प्यारी जान बात ले तो मेरी मान
धर्म की मत तोडे आन, कहता तुझ साफ जी।'[3]

चारित्र्य की यह उदात्तता, धर्म भावना की सर्वोपरिता एवं आदर्शवादिता ही लोक के लिए अनुकरणीय है। यदि नायक नायिका को 'सज रमादे' तो उसके कुल की शोभा घट जायेगी। सम्भाव से उसका विश्वास उठ जायेगा। यही बात सोचकर कवि सुन्दर भी कहता है—

---

१ ख्याल राजा केसरसिंह फूलादे, पृ० ४
२ तेजाजी का मारवाडी खेल, पृ० ७
३ पृथ्वीराज का ख्याल, पृ० ४१

'भोग करने का नही है जोग तू अबी है नार कंवारी
म्हे तो छत्री परम केहावा कवारी नार अग नहीं लावा ।'[1]

कुछ ख्यालो का कथानक डाकुओ के जीवन-चरित पर आधारित है। उसमे भी यही दर्शाया गया है कि डाकू सेठो के पास से चाहे कितना ही धन क्यो नही लूट जाये पर वे उस धन का स्वय उपभोग नही करेंगे। वह धन उनके द्वारा गरीबो मे बाँट दिया जाता है। ऐसा चरित्र भी समाज के समक्ष एव अनूठा आदर्श उपस्थित करता है। भूरजी बलजी धाडवी और दयाराम धाडवी ऐसे ही लोको-पकारी चरित्र हैं। स्त्री पर हाथ उठाना इनके लिए लज्जाजनक बात है। भी तो हरिपी को भर्तृहरि कहता है 'तिरिया पै बाहू नही र म्हारी लाजै क्षत्री जात।'

राजस्थानी ख्यालो मे चरित-नायक तक को नशेबाज के रूप मे भी कही-कही चित्रित किया गया है। अमरसिह की हाडी रानी भी इसी दुख से दुखी है और भर्तृहरि की पिंगला रानी को भी इसी के कारण असह्य वेदना उठानी पडती है। सेज सवादी सायबा' प्याले भर-भर मदिरा पीकर अचेत हो गया और 'जीवन मदमाती' प्रिया सेज पर इधर-उधर 'लुट' रही है। ज्यादा नशा करने से अधिक द आ जाने के कारण प्रिया की मनोभिलाषा पूरी नही होती।

ख्यालो मे वर्णित कुछ पात्र अपनी दुर्नीति के कारण द्रष्टा की नजर मे गिर जाते हैं। ऐसे पात्र प्राय नायक एव नायिका के बीच व्यवधान पैदा करने वाले होते हैं। इन पात्रो का व्यवहार कपटपूर्ण होता है। अमरसिह के साथ घात करने वाला सलावत खाँ ऐसा ही पात्र है। 'निहालदे-सुलतान' मे वर्णित दुष्ट दानव भी ऐसा ही है। जिदराव खीची का चित्रण भी दुष्टात्मा के रूप मे हुआ है।

(२) स्त्री-पात्र—स्त्री-पात्रो मे पातिव्रत्य धर्म की अद्वितीय प्रवृत्ति पायी जाती है। प्रिय के सिवा स्त्री का कोई नही है। उसका जी तो हरदम पति मे ही तन्मय रहता है, जिस प्रकार कि कृपण व्यक्ति का चित्त धन मे लगा रहता है। जैसे बादलो की उपस्थिति मे ही बिजली की सार्थकता है एव महत्त्व है इसी प्रकार स्त्री-जीवन की सार्थकता भी प्रियतम के कारण ही है। बिना प्रियतम के वह निरस्तित्व है।[2] फूलवन्ती को अनादर कर घर से निकाल दिया गया था पर उसने सदैव

---

१ कवि गुन्दर घोर विद्यापति का ख्याल, पृ० ३३ (उजीरा तेलो कृत)

२ प्रीतम बिन तिरिया तणो घोर न दूजो कोय
कामण को चित्त वसे कत में ज्यू किरपण को धन मे
नारी सजे पीव के सग ज्यू बिजली चमके घन में
बिजली सोभा दे तभी हो घन की सग सार
सज्जन सजे नैन के सग मे ज्यू प्रीतम सग नार।
—ख्याल दयाराम धाडवी का

पातिव्रत्य धर्म का पालन किया। तभी अन्तत सुलतान को भी कहना पड़ा है कि हे फूलवन्ती ! तू धन्य है। तेरी सर्वत्र सराहना हो रही है जबकि सवतिया डाह मे जलती रहने वाली निहालदे की चर्चा चलते ही लज्जा के कारण सिर नीचा हो जाता है।

'स्याबास देवा आपने, रणधीर राजा की लली।
दुख सकट बनवास भोग्यो, नार तू निवसी भली।
कुण सरावै निहालदे न, लगे शरम चरचा चली।
फूलवती भाग थारा, जीवती घर आ मिली॥'[1]

स्त्रियो के सतीत्व की जहाँ भूरि भूरि प्रशसा की गयी है वहाँ दूसरी ओर दुराचारिणी औरतो के दुष्कृत्यो का भडाफोड भी किया गया है। आदर्श जीवन व्यतीत करने वाली नारी को देवी के समान बताया गया है और अपने प्रेम पाश मे फाँसकर मनुष्य को कर्त्तव्य पथ से विचलित करने वाली के ओछे प्रेम की खिल्ली भी उडायी गयी है। यथा—

'नारी नेह जगत मे भूडो नरका तथा निमाण।'[2]

नारी चरित्र को चतुर व्यक्ति ही जान सकता है। मूर्ख तो उसके वाग्जाल मे इस भाँति फँसता है कि अपने आपको भी भूल जाता है। 'ममम मारकर सील दिरावै' ऐसी नारी की चारित्रिक सूक्ष्मताओ को ससार किस प्रकार 'लख' सकता है। दयाराम धाड़वी क ख्याल मे भी कहा गया है कि स्त्री कपट की खान है (मेरा वचन खरो दिल माही त्रिया कपट की खान), इन स्त्री पात्रो मे कुछ ऐसे स्त्री-पात्र भी उभरकर हमारे सामने आते हैं जिसके आधार पर सिद्ध हो जाता है कि स्त्री कितनी मतलब सिद्ध करने वाली होती है। यह विष-लता स्वय की स्वार्थ-सिद्धि के लिए ही प्रेम बढाती है। पूरनमल की सौतेली माँ के विचारो को जानकर तो द्रष्टा भी लज्जित हो जाता है अत पूरनमल की उक्ति 'बोले साथळ चाले काबळ, त्रिया कपट की खान' किसी भी परिस्थिति मे गलत प्रतीत नही होती।

यद्यपि इन ख्यालो मे स्त्रियो के चरित्र के विविध पक्षो को उभारकर सामने लाया गया है फिर भी यह सम्पूर्ण का चतुर्थांश भी नही है। तभी तो भर्तृहरि को भी कहना पड़ा कि स्त्री पर अन्ध विश्वास रखना अपनी जीवन-नैया को भव सागर मे मँझधार डुबोना है।

'त्रिया चरित्र कौत सा देख्या, पूरी करी पिछाण।
म्हनै भरोसो नही तिरिया को, लीनी मन म जाण।'[3]

---

१ निहालदे-सुलतान का ख्याल
२ नोटकी बीरमसिह का ख्याल
३. भरतरी का ख्याल

इस प्रकार इन ख्यालो मे स्त्री और पुरुष पात्रो के माध्यम से इन दोनो वर्गों की विविध चारित्रिक विशिष्टताओ का निरूपण किया गया है। इन पात्रो के साथ मानवीय दुर्बलताओ और दुर्गुणो का भी उल्लेख हुआ है।

(४) राजस्थानी ख्यालो मे वर्णनात्मकता की अधिकता

जहाँ-जहाँ भी ख्यालकार को उचित अवसर मिला है वहाँ वहाँ सर्वत्र वर्णनो की भरमार पायी जाती है। ये वर्णन पूर्व निर्मित पद्धति के अनुरूप चलते हैं। इस प्रकार के वर्णनो के लिए ख्यालकारो ने आभिजात्य साहित्य मे मिलने वाले तत्सम्बन्धी वर्णनो से पूरी पूरी सहायता ली है। इनमे ख्यालकर्त्ता का विशिष्ट कौशल प्रदर्शित नही किया गया है। प्राय यथावसर सभी ख्यालो मे सामान्य से वर्णन मिलते हैं। विविध ख्यालो म मिलने वाले इन वर्णनो म व्यक्तिगत नामो एव स्थान-सूचक सज्ञा शब्दो के अतिरिक्त कोई असमानता दिखायी नही देती। कहीं कही शास्त्रीय बातो (साहित्यशास्त्र की बातो) का भी सहारा लिया गया है। इन वर्णनो मे नायिका वर्णन, रूप वर्णन (नख शिख वर्णन), प्रेम-वर्णन (मिलन एव विरह), नगर-वर्णन, काल-वर्णन, प्रकृति वर्णन (उद्यान वर्णन भी), मृगया-वर्णन, महल-वर्णन, सैन्य-वर्णन आदि प्रमुख है। यहाँ इनका एक-एक उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। इस सम्बन्ध मे पहले ही बता दिया गया है कि ये वर्णन अत्यल्प परिवर्तन के अतिरिक्त उसी रूप मे किसी भी ख्याल मे मिल सकते हैं।

(अ) नायिका-वर्णन

'प्रथम पदमणी, दूजी हस्तणी तीजी चात्रक नारी
चौथी नार सखीणी जिसकी सुनो हकीगत सारी
फूला तुलै पदमणी तिरिया या सुणनै मे आवै
नाजक बदन नरम रेगम री धूप लाग्या कुमलावै
सेजा मे प्रीतम चित हरणी मीठी राग सुणावै
घूमत चालै नार हस्तणी कामदेव की खान
छोटा नैन पुष्ट तन गरदन ओछी मृदु मुसकान
मीठा वचन चद सी मुखडी, सायर करै सिनान
चात्रक नार बदन पर यारो, ओढे भीणा चीर
चगा मरद देख नैना का, तक तक मारै तीर
इस्कबाज उण तीरिया ऊपर, हो जाते कई फकीर
खुल्ला भैम ऊघडया चोली, फिरै सखीणी नार
बांका पैर बात विड्या पर महलै मे हुसियार
वाला होठ मूछ्डो जिमके लेखावद कू मार।'[1]

---

१ नैनै खशम को ख्याल

(आ) रूप-वर्णन

रूप-वर्णन मे दो उदाहरण प्रस्तुत किये जा रहे हैं जिनमे पहला वर्णन स्त्री-सौन्दर्य का और दूसरा वर्णन पुरुष-सौन्दर्य का है—

'आभा की सी बीजळी स जी दिया विधाता रूप
बाल-बाल गज मोती सारे दन्त जडाऊ चूप
शोभा उसकी क्या मैं वरणू सूरज की सी धूप
नैन उसका बिदाम है सा हाठ बना है दाख
दात दाडम रा बीज है र यो सुवा को सो नाक
हाथी जैसी चाल है स जी खजन जैसी आख
देखे ऐडो रूप तुम्हारो इन्दर आप सरमावे
उडता तो पक्षी देखे, नीचा आण गिर जावै
देखे अवलिया पीर मुरछा खाय मर जावे।'

'सावला सलोनो गात उपमान एव आत
तन को गठीलो जाको भीम के समान है।
सुन्दरता देख जाकी काम भी लगत फीको,
नही इस भूमि पर जाको उपमान है।
स्वप्न मे न देख्यो ऐसो सुरनर मुनि कोई,
तन को प्रकाश जाको सूर्य के समान है।
कौन है युवक यह चोर्‌यो चित मेरो आली
इन्द्र है विष्णु है कि राम है कि श्याम है।'

(इ) प्रेम-वर्णन

प्रेम-वर्णन मे जहाँ भी ख्यालकारो को मौका हाथ लगा है तो वहाँ पर नारी के मादक प्रेम एव अतिरजित विरहोक्तियो की सर्जना कर दी गयी है। यौवन की उन्मत्तता के चित्र भी कही कही मिल जाते हैं। यहाँ तक कि श्रवणकुमार और भर्तृहरि के ख्यालो तक मे यौवन के उन्मादक वर्णन कर दिये गये हैं। इन ख्यालो मे प्रेम को 'खाडे' की धार बताया गया है। कही कही पर प्रेम मे पायी जाने वाली उत्सर्ग की भावना का उल्लेख मिल जाता है। प्रेम मार्ग मे उपस्थित होने वाली लौकिक एव अलौकिक शक्तियो की बाधाओ का चित्रण भी किया गया है। सन्देश-प्रेषण के प्रसग भी यहाँ पर मिल जायेंगे। यहाँ कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

मादक यौवन की छटा—

'भरी जवानी भई दीवानी, जोबन लहरा लेवे जी
रैन रगीली छैल छबीली, नही पिया बिन रेवे जी।'[1]

---

1 श्रवणकुमार का ख्याल

—प्रेम-मार्ग की बाधाओं का उल्लेख—

'प्रीत करो तो सुणो काकीजी इतनो करो करार।
करना तो डरना नही स रे है खाडा की धार।
इस्त्र मायने केई डूबग्या करलो खूब विचार।'[1]

—प्रेम की सर्वोच्चता—

'प्रेम सिर रो सेवरो स म्हे प्रीतम की जान।'[2]

—सदेश-प्रेषण—

'सूवा सूवड हाथ मेरे पर बैठो पख पसार।
लिखू सदेसो तोय पखा पर, रहजे तू हुसियार॥'[3]

—विरहोक्तियाँ—

'मन मे उठे हवडका पिडन विना अब व्याकुल नारी।'[4]
'खारा जैर लागे मोह सब ही, झाल अग मे उठे।
खाली सब ही महल माळिया, देख भिडकणी छूटे।'[5]

(ई) नगर-वर्णन

'घूमत द्वार मतग अनेको रही मोपरया बाज
मेरे पुर की सोभा भारी अमरपुरी लख लाजे
सुन्दर खाई कोट द्वार है चोपड अति छबि छाजे
जती-सती पुर के नर-नारी, सुर तेतीसो लाजे
मकराने के महल स्फटिक की सडकें पुर की सारी
द्वार-द्वार पर नीलम हीरो की है पच्चीकारी
बिल्लोरी छाजो पर झालर मोतिन की मनहारी॥'[6]

(उ) सैन्य-वर्णन

'चढी फौज सग गोपीचद के घणा वीर बल बका
सत्तर लाख फौज को मालिक चल्या बजाकर डका
सात लाख हाथी के हादे, घोडा अन्त अपार
बीस लाख नेजा के आगे, बारह लाख तलवार
पाच लाख खाडा के ऊपर, भडा बीण का सच्चा
तीन लाख पर पडी जजीरा, बरछी तीर तमचा

---

१ ख्याल काको जेठूवा
२ झामलदे छिवजी का ख्याल
३ ख्याल रिसालू-नोपदे
४ पृथ्वीराज का ख्याल
५ भर्तृहरि का ख्याल
६ ख्याल पाबूजी का

बारे ताख तोपो मे ऊपर, एक हि नाम निशानी
पाच लास पर पडे चवूरा, लाल ताप असमानी
सवालास वदूक दुनाली, जाही वाल सवाल
कमर कटारा हाथ सिरोही पीठ लटक रही ढाल
चवदासा अडबीले सावत, चाले सब वगाली
अस्तर वस्तर जिनको सोट, सिर पर चमके लाली। [1]

(ऊ) प्रकृति-चित्रण—(परिगणन शैली मे)

'खिली चमेली केतकी ओ बाई फूल्या हार सिंगार।
खिले मोगरा सवती ओ बाई कदम और कचनार॥'

(५) राजस्थानी ख्यालो मे अति-प्राकृतिक और दैविक शक्तियाँ

लोक-मानस की दृष्टि से अति-प्राकृतिक और दैविक शक्तियो का बहुत महत्त्व है। तब फिर ख्यालकार इस वस्तुस्थिति की ओर स आँखें कैसे मूँद सकता है ? कुछ दैविक शक्तियाँ पात्रो के साहाय्य के लिए चित्रित हैं तो कुछ अति-प्राकृतिक शक्तियाँ नायक के कार्य म बाधा डालने के लिए उपस्थित हैं। इन ख्यालो म आकाशवाणी का भी महत्त्व कम नही है। अपने मनोभिलषित कार्य की निर्विघ्न समाप्ति के लिए नायक तपस्या करता है। कठोर तपस्या के कारण उसका आराध्य उस पर प्रसन्न होता है और उसे अभीप्सित फल-प्राप्ति का वरदान देता है। यह काम कभी तो आराध्य आराधक के समक्ष समुपस्थित होकर करता है और कभी आकाशवाणी स ही आराधक को उसकी मनोभिलाषा पूरी होने की सूचना दे दी जाती है। रूपि सुन्दर और विद्यावती रानी के ख्याल मे आकाशवाणी का उल्लेख मिलता है। इक्कीस दिन देवी की उपासना करने पर आकाशवाणी होती है। शिव-पार्वती के द्वारा मृत नायक को पुनर्जीवित करने के अनेक उदाहरण मिल जाते हैं। आभल खिवजी के ख्याल मे दर्शाया गया है कि खिवजी के मरणोपरान्त जब आभल भी सती हो जाने लगती है तो शिव द्वारा खिवजी को पुन जीवन दान दिया जाता है।

रिसालू नोपदे के ख्याल म राक्षस और उसकी पुत्री सालमदे का वर्णन मिलता है। भक्त पूरनमल की माता उसे डाइन आदि की नजर से बचने का निर्देश देती है पर वीर बालक के सामने डाइन क्या वकत रखती है ? निडर पूरन-मल का प्रत्युत्तर द्रष्टा मे भी साहस का सचार करने वाला है—

'डाकण स्यारी देखता स रे कवल फाट मर जाय।
डाकण स्यारी सब हट जावे भूत प्रेत नेडा नही आवे॥ [2]

१ राजा गोपीचन्द का ख्याल
२ पूरनमल का ख्याल

इन तत्त्वों के अतिरिक्त कहीं-कहीं नायक-चरित्र की कठोर परीक्षा लेने के लिए ब्राह्मण या योगी के रूप में भगवान स्वयं पधारते हैं। राजा मोरध्वज की परीक्षा लेने हेतु श्रीकृष्ण एवं अर्जुन योगी साधु का रूप बनाकर आते हैं। और राजा से उसका कुंवर अपने शार्दूल के खाद्यार्थ माँगते हैं। इसी प्रकार चन्द राजा की रानी, जिसने कुछ समय पूर्व ही दो बच्चों (सायर और नीर) को जन्म दिया था, को बाग में बुलाने का हठ करने वाले साधु वेशधारी कोढी के रूप में स्वयं भगवान होते हैं। कोढी साधु की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'और किसो की राव हमारे परवाह नाईं।
राणी यावे दौड मुझे लि जावा ताईं॥'[1]

(६) राजस्थानी ख्यालों में भाग्यवाद का प्राधान्य

'भाग्य फलति सर्वत्र न बुद्धि च पौरुषम्' के आधार पर कहा जा सकता है कि हिन्दू-धर्म में भाग्यवाद की बात को सर्वोपरि बताया गया है। पिछले जन्म में हमने जैसे कर्म किये थे उनका फल हमें अब भुगतना पड़ रहा है। सुख और दुख भाग्य के अनुसार ही मिलते हैं। भाग्य-लेख सबसे बलवान होता है, इसे पराक्रमी पाबू इन शब्दों में 'मत सोच करो थे मागी है लेख बडा बलकारी' स्वीकारते हैं। केसरसिंह भी भाग्य की बात करके ही ठग-पुत्री के चंगुल से बच पाता है। यथा—

'करणी भोगे आपणी र मत देखे हानोहात।
चार दिना की चादणी है, फेर अन्धारी रात॥'[2]

यश-अपयश की प्राप्ति भी भाग्य के अधीन है। कर्म (भाग्य) ही मनुष्य को आदर दिला देते हैं और कर्म ही उस बेइज्जत भी करवा देते हैं। चन्द राजा की यह उक्ति 'कर्म करे सो करे न कोई कर्म बडा बलवान रे' सार्थक है। भाग्य ही श्रवण को दशरथ के हाथों मरवा देता है और भाग्य ही तेजा को साँप की बाबी तक पहुँचा देता है। तभी तो तेजा कहता है—

'राई घटे ना तिल बढ़े जो लिख्या लेख किरतार।
रची विधाता की होवे, नही मानस को अखत्यार॥'[3]

जो लेख विधाता ने लिख दिये, वे अपना प्रभाव दिखाकर रहेंगे। मनुष्य का उन पर कोई जोर नहीं चलता।

(७) राजस्थानी ख्यालों में स्थानीय रंग

ख्यालों में प्रादेशिक विचारों, विश्वासों, प्रथाओं, रीति-रिवाजों, रूढियों,

---

१ चन्द्रमलयागिर का ख्याल
२ केसरसिंह का ख्याल
३ तेजा का ख्याल

मान्यताओ, शकुन सम्बन्धी धारणाओ एव जीवन-दर्शन का यत्र-तत्र उल्लेख मिल जाता है। यद्यपि नाटकी पजाव प्रदेश की नायिका थी परन्तु ख्यालकार ने उसके मुंह स ऊँट पर बैठने की बात कहलाकर प्रादेशिकता की छाप लगा दी है।[1] राजा चन्द के घर कुँवरो का जन्म हुआ। कुँवरो के ननिहाल वाले इस सुखद समाचार से वचित है, उन्हे शुभ समाचार देने के लिए नाई एक पत्र लेकर जाता है, जिस पत्र म नवजात शिशु के कुमकुम-रजित 'पगलिये' अकित रहते हैं। यह राजस्थान की एक प्रथा है। इसी बात के सम्बन्ध मे चन्द की रानी मलयागिर अपने पति से कहती है—

> 'लेवगो के हाथ भेजो कू कू का पगल्या पोर।
> आवेगो सहोडियो वीर जगत को रवीनो है।"[2]

इन ख्यालो मे शकुन सम्बन्धी विचार भी अभिव्यक्त हुए हैं जो कि स्थानीय प्रभावो से प्रभावित हैं। अमरसिंह जब दिल्ली जाने को उद्यत हुआ तो शकुन खराब हो गये थे, तभी तो हाडी रानी ने उसे मना किया था—

> 'सन्मुख छीके छोकरी कोई टाई मृगा की डार।
> जोशी वाचे टीपणो राजा देखे वार-सुवार।।"[3]

जब भर्तृहरि मृगयार्थ जान लगे तो उन्हे भी ऐसे ही शकुन हुए थे, पर उन्होने जिस सहज भाव से इन शकुनो का अर्थ बताया है, वह निम्न पक्तियो मे द्रष्टव्य हैं—

> 'वर माग छे छोकरी, चारो माग डार।
> जोशी मांगे दक्षिणा, दे दो नवसरहार।।"[4]

(८) राजस्थानी लोक-ख्यालो का सन्देश

राजस्थानी ख्यालो मे हमे दो प्रकार के सन्देश मिलते हैं। एक सन्देश जागतिक सौन्दर्य को सर्वोत्कृष्ट बताकर उसका उपभोग करने की राय देता है। इसके अनुसार सासारिक सुख ही सब-कुछ है। ऐसे ख्यालो मे 'खाओ, पीओ और मौज करो' यही सन्देश दिया गया है। इस प्रकार का सन्देश देने वाले ख्यालो का मूल मन्त्र यह रहा है—

> 'खाना पीना खेलना स कोई है दो दिन की बात।
> आखर कू मर जाना बदे, कछू न चाले साथ।।"[5]

---

१ *'एके करसले बैठ ककारो म्हे प्यारी के खास' नोटकी का ख्याल*
२ चन्द्रमलयागिर का ख्याल
३ अमरसिंह का ख्याल
४ भर्तृहरि का ख्याल
५ व्रजमुकुट पद्मावती का ख्याल

इसके विपरीत दूसरा सन्देश ससार को क्षणभगुर बताता है, इस शरीर का कोई भरोसा नहीं। न जाने कब प्राण-पखेरू महाप्रयाण कर जांय। अत हमे अपना अधिक-से-अधिक समय सत्कृत्यो एव ईश्वरोपासना मे लगाना चाहिए। क्योकि 'काया थोडी काच की स रे जतना नही विणास।' ऐसे ख्यालो मे जीवन को स्वप्नवत् माना गया है। पारिवारिक सम्बन्धो को निराधार एव ईश्वर को सर्वशक्तिशाली तथा सर्वोत्कृष्ट बताया गया है। यथा—

'यह सपने रूपी ख्याल समझ नर की जिंदगानी
है अलख निरजन आप रहे घट घट के माही
जळ थळ मे सब ठोर मूरख समझे कोई नही
सारी लीला देखता भीतर बैठा आप
किणका है ससार मे तिरिया माई बाप।'[१]

उक्त विवेचन से ज्ञात होता है कि इस ख्यालो मे प्रवृत्ति-मार्गी एव निवृत्ति-मार्गी दोनो प्रकार के लोगो के लिए सन्देश भरा पडा है।

राजस्थानी लोक ख्यालो मे उपर्युक्त विशेषताओ के अतिरिक्त और कई विशेषताएँ मिलती हैं। प्रेम-प्रधान ख्यालो मे हमे बारहमासा वर्णन भी मिलते हैं। भर्तृहरि के ख्याल मे बारहमासा वर्णन और आभल-खिवजी के ख्याल मे 'चोमासा' (पावस-काल) वर्णन मिलता है। ऋतु वर्णन के माध्यम से विरहिणी की मनोदशा को अभिव्यक्त किया गया है। कुछ ख्याल ऐसे भी हैं जिनकी समाप्ति के बाद बारहमासा वर्णन अलग से दिया गया है। यह पहले ही बता दिया गया है कि इन ख्यालो के सभी पात्र अपना-अपना परिचय स्वय देते हैं। इन ख्यालो मे विदूषक का प्राकट्य भी कहीं-कही हो जाता है। पर्दों के अभाव मे दृश्य-योजना का आभास सवादो द्वारा ही करवाया जाता है। द्रष्टा की रुचि के दृष्टिकोण से, स्वाग-परिवर्तन के समय शान्ति-स्थापना के लिए बीच मे हास्यपूर्ण प्रसगो की योजना की जाती है या कोई लोक-प्रसिद्ध गीत गाया जाता है। कई ख्याल ऐसे भी हैं जिनमे घोर अश्लील एव नग्न शृगारी चित्र मिलते हैं जो द्रष्टा के मस्तिष्क मे अनेक प्रकार के विकार पैदा कर देते हैं। यह रीतिकालीन मनोवृत्तियो एव परिस्थितियो का प्रभाव है। कई ख्यालो पर तो इतना नग्न वर्णन मिलता है कि लज्जा भी लज्जित होने लगती है। इन ख्यालो मे पद्यात्मक सवादो के बीच मे प्रयुक्त होने वाले गद्य-खडो को 'वाता' के नाम से अभिहित किया जाता है। प्राय सवादो मे दर्पोक्तियों का बाहुल्य और प्रेम-प्रसगो का आधिक्य पाया जाता है।

ख्यालो मे प्रयुक्त होने वाली भाषा को हम विशुद्ध राजस्थानी नही कह सकते, जबकि राजस्थान के अन्य लोक-नाट्यो मे पूर्णरूपेण राजस्थानी का ही प्रयोग

---

१ रिसालू-नोपदे

वश की बात नही है। तभी तो तारामती रानी हरिश्चन्द्र के साथ और मलयागिर रानी चन्द के साथ 'राज-पाट' छोड़कर चली गयी थी। पति के साथ रहना उनके लिए स्वर्ग से भी अधिक सुखदायक था। राजा मारध्वज की रानी ने भी पति के कहने से ही अपने कलेजे के टुकड़े इकलौते पुत्र पर करवत चलाई। भर्तृहरि एव पिंगला की कथा कुछ भी रही हो पर राजस्थानी ख्याल मे चित्रित पिंगला भी पातिव्रत्य का पालन करने वाली है। मन्त्री के मुख से ज्योंही वह यह सुनती है कि सिंह के घात से महाराज भर्तृहरि का प्राणात हो गया, त्योंही उसके प्राण-पखेरू भी उड़ जाते हैं।

पौराणिक ख्यालो मे करुणाजनक दृश्यो की अवतारणा विशेष रूप से हुई है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इन करुण-चित्रों को देखने से द्रष्टा के मन मे इन आदर्श पात्रों के प्रति आदर का भाव जाग्रत होता है। उनकी विकट परिस्थितियो का सहर्ष सामना करते देखकर हमारे मन मे भी साहस का सचार होता है। ऐसे चित्रो को उभारकर नागरिको मे कर्तव्य-बोध की भावना भी भरी गयी है। तारामती मृत राजकुमार को लेकर जाती है। वह मर्मान्तक रुदन-क्रन्दन करती है पर कर्त्तव्य-निष्ठ नृप हरिश्चन्द्र 'लाग' लिये बिना दाह-सस्कार नही करने देते। तारामती की कारुणिक स्थिति इन शब्दो में स्पष्ट है—

'आज म्हारी नाव समद बिच अटकी कुण पल्ली लावे
हरीचन्द राजा की आप तारादे रानी पिसतावे
कुण सुण विमकू मेरो अन्दर सू जिगर जल्यावे
रवीदास लाल तरी देखकर म्हास हिया उजल्यो आवे
माता सू लडी देख लाल सू एक बर भी नही मुसकावे
तेरी जननी पापण मुम्मा मुक्का छाती पर बैठी खावे।"[1]

इसी प्रकार पूरनमल का फाँसी हो जाने पर उसकी माता भी विलाप करती है। पूरनमल की स्मृति रह-रहकर उसके कलेजे पर आघात करती है। जिस पलग पर पूरन सोया करता था वही पलग आज माता के हृदय को तीक्ष्ण धार की भाँति सालता है। आँसू हृदय की 'पाज' को फाड़कर बाहर आ ही जाते हैं। उनकी स्थिति पख रहित पक्षी की तरह, 'चन्द्रविहूनी रजनी पत,' पत्र रहित द्रुम की भाँति और बिना पानी की नदी के समान हो गयी है। उसकी यथार्थ स्थिति का चित्रण उसी के शब्दो म—

'महल आवे दौड खावा सज कोमल सारसी
घन लगे मोय धूल ज्यू बिञ्जन रसोई गार सी

---

१ हरीचन्द तारामती का ख्याल

लाडला जिन जगत मे अब कौन पार उतारसी
आज सुत बिन मैं लगू ज्यू अंधेरी आरसी।"[1]

'चन्द-मलयागिर' के ख्याल मे भी सायर नीर से विलग हो जाने पर उनकी माता की स्थिति भी ऐसी ही होती है। श्रवण के मरणोपरान्त उसके माता-पिता की स्थिति और भी अधिक चिन्ताजनक हो जाती है। उनके मुख मे निकला यह वाक्यांश (बुढापो आछो बिगाड्यो श्रवण राजकुमार तू) ही उनकी सही मनो-व्यथा को प्रकट करने वाला है। राजा मोरध्वज की रानी को भी लगता है कि कुँवर की स्मृति आते ही उनका हृदय भर जाता है, तभी तो वह राजा मोरध्वज से कहती है 'कँवर चित आवता हो पिवजी भर-भर हियडो जाय।' भर्तृहरि के वैराग्य धारण कर लेने पर पिंगला की स्थिति भी बडी करुणाजनक हो जाती है। इस प्रकार हम पाते हैं कि पौराणिक ख्यालो मे करुण रस की अजस्र धारा प्रवाहित हुई है।

इन ख्यालो के नायकों को कठिन परीक्षाओं का सामना करना पडता है पर अन्तत उनकी विजय प्रदर्शित की गयी है। भारतीयों की धार्मिक भावनाओं को ध्यान मे रखते हुए ऐसा करना आवश्यक भी था। आग मे तपने से ही तो सोने का रंग और अधिक निखरता है। हरिश्चन्द्र एवं राजा चन्द को राज्य त्याग-कर कठिन परीक्षा उत्तीर्ण करनी पडी तो मोरध्वज को अपने आत्मज पर करवत चलाकर। भर्तृहरि के समक्ष कठोर परीक्षा थी, पिंगला रानी को माता कहकर उससे भिक्षा प्राप्त करनी। ईश्वर स्वयं ही कठोर परीक्षायें लेने वाले परीक्षक हैं। चन्द-मलयागिर के ख्याल मे एक स्थान पर कृष्ण भगवान स्वयं कहते हैं—

'प्रथम सत्यवादी हरिचन्द का देख्या बनकर विश्वामित्र
ब्राह्मन रूप धर्या बली कारण मांगी भोम अनन्त
मोरध्वज के द्वार सिंह पर बैठ चर बण सन्त।'[2]

आदर्शवाद की स्थापना पौराणिक ख्यालों की आधारशिला है। अपने चरित्र को एक आदर्श चरित्र बनाने की दृष्टि से इन ख्यालों के नायक-नायिकाएँ बडे-से बडा त्याग करते रहे हैं। हमें जो हानि हो चुकी है, उसकी क्षति पूर्ति दूसरे को नुकसान पहुँचाने से कदापि नहीं हो सकती, फिर किसी को कष्ट क्यो दिया जाय? इसी विचार का ध्यान करके सुलोचना रावण को उत्तर देती है—

'ला दो सभी दुनिया के चाहे कोटि सिर उतार करके
मैं तो विधवा से अब तो नहीं कहवाती महाराज कभी होने की सार करके।'

---

१ पूरणमल का ख्याल
२ चन्दमलयागिर का ख्याल

ईश्वर की शक्ति मे अटल विश्वास रखने वाला पूरनमल भी अपने आदर्शों के लिए अपनी जान गँवा बैठता है—

'ईकप्यारी ईश्वर री राखा पर ' पर' नहिं ताका ।।'

इन आदर्शवादियो के लिए सासारिक माया-मोह कुछ भी महत्व नही रखते। ईश्वर मे इनका मन पूर्णत अनुरक्त होता है। इसी बात का विचार करके राजा मोरध्वज अपनी रानी से कहता है कि ईश्वर से प्रेम करो। यही सार की बात है।

'मोह माया ने छोडके हे राणी, कर भगवत से प्रीत।
पुत्र नही अब आयगा हे राणी कौल गिया है बीत ।।'

राजस्थान के पौराणिक ख्यालो मे हमे प्राय सगुणोपासना के ही वर्णन मिलते हैं। राजा गोपीचन्द के ख्याल और भर्तृहरि के ख्याल मे निर्गुण-निराकार ईश्वर के सम्बन्ध मे भी कुछ चर्चा हुई है। इन ख्यालो मे हठयोगिक क्रियाओ के चित्र भी मिल जाते हैं। एक ऐसा ही वर्णन यहाँ उद्धृत है—

'त्रिकोण आसन पर पद्मासन मन रोको भीतर काया।
एक चित्त स ध्यान लगाओ, छोड राज की मोहमाया।
रोको दसोद्वार श्वासा को ब्रह्माण्ड मे ले जावो।
एक चित्त से ध्यान लगावो, परम पदारथ पल मे पावे ।।'[1]

निष्कर्षत कहा जा सकता है कि पौराणिक ख्यालो मे प्रसिद्ध चरित्रो का आदर्शवादी जीवन अभिव्यजित है, भारत की धर्म भावना वर्णित है, सर्वस्व त्याग की बलवती अभिलाषा उल्लिखित है, अन्याय एव अधर्म का विरोध करने के लिए कहा गया है।

(२) वीरता-प्रधान ख्याल

महाकवि सूर्यमल मिश्रण के मानस से नि सृत ये शब्द 'पूत सिखावे पालणे मरण बडाई माय' राजस्थान की प्रत्येक माता और प्रत्येक पुत्र पर लागू होते हैं। यहाँ के लोग वीरो के अद्भुत कृत्यो का श्रवण करत-करत थकते ही नही। इन ख्यालो मे वर्णित वीर प्रजा रक्षक एव लोक-हितैषी व्यक्ति होता है। उनका जन्म दुष्टो के दलन के लिए ही हुआ है। राठौड पाबू जिन्दराव का सबक सिखाने के लिए ही जन्मा था तो तेजा भी अपने प्राणो को हथली पर रखकर गूजरो लाछा की गायो को छुडान के लिए डाकू-दल स जा भिडता है। ये नरपुगव अन्याय सहन नही कर सकते। सलावत खाँ अमरसिंह क विरुद्ध षड्यन्त्र करने की ताक मे था पर अमरसिंह इस बात स पूर्णत अभिज्ञ था, अत वह कहता है—

'सलावतियो करे ढेकरी दिन मे सौ-सौ वार।
धके पडे हमारे स रे डालू जीव सू मार ।।'

---

१ गोपीचन्द का ख्याल

ऐसे वीर किसी से भी नहीं डरते। अमरसिंह को बिलकुल भी चिन्ता नहीं है कि सलावत खाँ बादशाह का साला है और बादशाह के यहाँ लाखों की संख्या में सैनिक हैं। विजयश्री भी ऐसे वीरों का ही वरण करती है। उनके पैर 'धरने' से धरती भी 'धूजने' लगती है। इन वीरों का अद्वितीय शौर्य निम्नलिखित पंक्तियों में देखते ही बनता है—

'खाडे मारे तेज है म जी सदा पागडे जीत
मोटा मुगली फौज की स म्हे कदे न छोडा रीत
धरती धूजे पग धर्‌या स रे खाडे आग झडन्त
मदमाता गज घूमता स रे ज्यारा तुरत उखाडा दंत।
बिगटी सू चूरा करा ॥ जी रूपया रा सब अंक।
केहरि मारा माकरी स कोई गामा पगा निसंक ॥'

पाबूजी, गोगाजी, तेजाजी आदि सभी वीर ऐसे ही पराक्रमशाली हैं। इन सभी वीरों में परोपकार की भावना कूट-कूटकर भरी हुई है।

वीरता-प्रधान ख्यालों में युद्ध-भूमि, शस्त्रास्त्रों एवं युद्धों की भयानकता भी चित्रित है। युद्ध-भूमि का यह हाल है कि लाश-पर-लाश पड़ी है। चारों ओर रुंड और मुंड बिखरे पड़े हैं। रण-भेरी का तूर्य-नाद और नगाड़ों की ध्वनि वीरों में उत्साह का संचार करती है। युद्ध के निम्नलिखित वर्णन को पढ़ने से ऐसा प्रतीत होता है कि मानो हम स्वयं युद्ध-स्थल पर उपस्थित हैं—

'बजे तलवार खटाखट, गिरे खोपडिया कटाकट
वीर निकले कच भटपट, मरे कितने ही चटपट
मची लडाई विकट भयंकर, नदी खून की चाली
जोगणिया खप्पर ले आई, नाच करे कंकाळी।'

'बजी नगारा ठोर मच्या दन सोर
इकट्ठा हो'र कटक पर चाला
कर हनुमान ज्यू हाक लंक पर धाव पड़ा छिन माही
ज्यू गज पर कर्‌यो चढाव इन्द्र की नाई
केई लिया संग कुरगाण धनुष करलाण बाण फटकारे
केई तवक तेग त्रिशूल वज्र के मार
केई गुप्ती गुर्ज चलावे केई छुरी कटारा खावे
केई ले ले चक्र चढावे केई जादू सा अजमावे।'

युद्ध-वर्णन की भाँति ही अमरसिंह की कटार और कटार चलाने का नैपु इन पंक्तियों में स्पष्ट है—

....गगन चले ज्यू नीर गिरे ज्यू माछली
हाथळिया कटार करे मूठ पसो भर गाय

दुसमण देखे दूर सू दौड सामने जाय
आभे चमके बीज फोड पताळ मे
कट के मिस री काळका अरिदळ भेजणहार
नागण ज्यो नसरो करे बिछवण डक कटार।'

वीरता-प्रधान ख्यालो मे नायको का अन्त भी बहुत विचित्र ढग से दर्शाया गया है। कही तो उनको खपाने का उत्तरदायित्व दैविक शक्तियाँ अपने पर लेती हैं, जैसा कि बगडावतो के ख्याल मे वर्णित है। चामुण्डा देवी ने बगडावतो को खपाने का बीडा उठाया था। प्रणवीर तेजा की इहलौकिक लीला सर्प-दशन से समाप्त होती है। गोगा को पृथ्वी माता अपनी गोद मे छिपा लेती है। पाबू के सम्बन्ध मे मान्यता है कि खीचियो के साथ लडता-लडता कालभी घोडी का असवार व्योम महल मे जा पहुँचा, सो अभी तक लौटकर नही आया। कई बार तो इन नायको को धोखे मे डालकर मारा जाता है। अर्जुन गौड ने अमरसिंह को इसी प्रकार मारा था। डाकुओ के अन्त का प्रमुख कारण धोखा ही है। इन ख्यालो मे चुगलखोर भी मिल जाते हैं। इन ख्यालो मे तत्कालीन राजनैतिक परिस्थितयो पर भी प्रकाश डाला गया है। इस दृष्टि से निम्नलिखित पक्तियाँ पर्याप्त महत्त्व रखती है—

'रोज कचेरी भरे बादशा करे अदल का न्याव
चुगलखोर चुगली करेस और दुसमण खेले दाव॥'[1]

डाकुओ के जीवन-चरित को लेकर भी अनेक वीरता-प्रधान ख्यालो का प्रणयन किया गया। सामाजिक असन्तोष के कारण, पारिवारिक मन मुटावो के कारण या आर्थिक विषमताओ से सत्रस्त होकर कई लोग डाकू बन जाते हैं। इनके जीवन मे भी उच्च कोटि के आदर्श होते है। ये लोग धनिक वर्ग से लूट लूटकर धन इकट्ठा करते हैं और उस सारे धन को गरीबो अपाहिजो आदि मे बाँट देते हैं। इन लोगों को यदि दान वीर कह दिया जाय तो कोई अत्युक्ति नही होगी। इनका रण कौशल भी प्रशस्य है। अन्य पात्र इनके समान प्रत्युत्पन्नमति वाले नही होते हैं। ये तो स्पष्ट घोषणा करते हैं कि अपने शीश की बलि दिये बिना दूसरो के धन को हडपकर नही खाया जाता। एक डाकू मे कौन-कौन से गुण हुआ करते थे, इसका *विवेचन निम्न पक्तियो मे सुन्दर ढग से किया गया है—*

'धन धाडी रो लिख्यो करम मे लूट लूट कर खावा
झूठा वचन कबूयन बोला साचा हरि को प्यारा
विसवास दगो कर मारे जिसका नरक जमारा
" मोहब्बत का साचा काम पडे नहिं न्यारा

---

१ अमरसिंह का ख्याल

मुलक-मुलक की दौलत ल्यावा जिस्मे करा गुजारा
पर घन लाणा जगत मे स है सिर साटे का माल
घोडो पर घरबार कहीजै बादस्या के नही सारे।"[1]

युद्ध से मुँह मोडकर चले जाने की बात भले आदमी के हृदय मे जँचती ही नही। तभी तो बलजी भूरजी धाडवी कहते हैं—

'भाग्या लागे सूरापन के दाग।'

वीरता-प्रधान ख्यालो मे हिम्मत को सर्वोपरि बताया गया है। हिम्मत के बिना मानव के जीवन का कोई मूल्य नही है। हिम्मत ही उसे सासारिक सघर्षों से जूझने का बल प्रदान करती है। बलजी भूरजी के ख्याल मे हिम्मत के सम्बन्ध मे इस प्रकार भावाभिव्यक्ति की गयी है—

'हिम्मत वही बलवान नर हीमत को जग मे मोल जी
हीमत से ही कीमत बढै, हीमत बडो अणतोल जी
हार हीमत मर्द की पलमाय निकसे पोल जी
ना होय कछु हीमत बिना ये सायरू का बोल जी।"[2]

वीरता-प्रधान ख्यालो के माध्यम से मुख्यत राजस्थान के नर-रत्नो के उज्ज्वल चरित्र को प्रकाशित किया गया है। पर इन ख्यालो मे चाटुकारों का कही-कही उल्लेख मिल जाता है। ये चाटुकार सर्वत्र वीर-पुरुष के मार्ग मे बाधक के रूप मे उपस्थित होते हैं। इन चापलूसो के चगुल मे कभी-कभी वीर-नायक भी फँस जाते हैं। ऐसे चापलूसो पर यह उक्ति 'मुख ऊपर मिठियास घट माही खोटा घडे' पूर्णरूपेण चरितार्थ होती है। दयाराम धाडवी को चगुल मे फाँसने के लिए जाफर को उसका मित्र बनना पडा और अपने लडके के विवाह मे चलने का झूठा बहाना बनाना पडा। शुद्ध-हृदय दयाराम इस षड्यन्त्र को कैसे जान सकते थे।

इन ख्यालो मे वीरो की कथाएँ वर्णित हैं। इनके द्वारा आदर्शमय वीर-चरित्र उभरकर हमारे सामने आता है। इनके पढने या देखने से समाज-हित एव देश-प्रेम की भावना जाग्रत होती है।

(३) प्रेम-प्रधान ख्याल

राजस्थान मे हमें दो प्रकार के प्रेम-प्रधान ख्याल मिलते हैं—

(१) कुछ ख्याल तो ऐसे होते हैं जिनमे इस प्रदेश मे या अन्य प्रदेशो मे हुए दो प्रेमियों की कथा होती है। इन प्रेमी पात्रों के बारे मे हमें कुछ ऐतिहासिक तथ्य भी मिल जाते हैं। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि इन पात्रो का कभी-न-कभी अस्तित्व रहा है। सोरठ-बनजारे का ख्याल, जलाल बूबना का ख्याल, निहालदे-

---

१ दयाराम धाडवी का ख्याल
२ बलजी भूरजी धाडवी का ख्याल

मुलतान का ख्याल, फूलकुँवर-फूलमती का ख्याल, आभल खिवजी का ख्याल, पृथ्वीराज-सयोगिता का ख्याल, रिसालू-नोपदे का ख्याल, राजा केसरसिंह फूलादे का ख्याल, ख्याल बीरमसिंह-नोटकी का, ढोला-मरवण का ख्याल, कवि सुन्दर-विद्यावती राणी का ख्याल, सुदबुद सबलग्या का ख्याल, राजा चन्द्रकँवर का ख्याल, ब्रजमुकुट पद्मावती का ख्याल, पन्ना बीरमदे का ख्याल, हीर-राझा का ख्याल, राजा मलग का ख्याल, लैला-मजनू का ख्याल आदि ख्याल इसी श्रेणी में परिगणित किये जायेंगे।

(२) दूसरे प्रकार के ख्याल ऐसे है जिनमें वर्णित प्रेमी पात्र वर्ग विशेष और सामान्य स्त्री पुरुष का प्रतिनिधित्व करते है। इनमें व्यक्ति विशेष का नाम प्राय नही मिलता और यदि मिलता भी है तो वह महत्वहीन होता है। ऐसे ख्यालों का सामाजिक सामान्य प्रवृत्तियों की दृष्टि से अधिक महत्त्व है। ये ख्याल सामाजिक विचारधाराओ, भावनाओ और समाज मे फैली विकृतियो का प्रतिनिधित्व करते हैं। समाज के अध्ययन की दृष्टि स पहले प्रकार के ख्यालो की अपेक्षा इन ख्यालों की विशेष महत्ता है। पतिव्रत रखने वाली सती नारियो के चरित्र से सम्बन्ध रखने वाले और पथभ्रष्टाओ या पुश्चली ओरतों के चरित्र को उद्‌घाटित करने वाले ख्याल इसी कोटि म आयेंगे। इन ख्यालो मे ये ख्याल विशेष रूप से उल्लेख्य हैं—ख्याल छोटे कथ का, ख्याल छैला दिलजान, ख्याल पतिव्रता और शाहजादे का, ख्याल छैला पनिहारी, ख्याल नारी जेठूता, नैने खशम का ख्याल, ख्याल सुन्दर नाजू का, जवरी का ख्याल, पटवा का ख्याल, सेठ-सेठाणी का ख्याल, बजाज का ख्याल, इसकबाज का ख्याल, ख्याल चितारे का, सुनार का ख्याल, बका सिपाही का ख्याल, वैद (वैद्य) का ख्याल, वालम का ख्याल, आसक-मासक का ख्याल, कँवर-कलाळी का ख्याल, नणद-भौजाई का ख्याल आदि।

आगे की पक्तियो म इन दोनो प्रकार के प्रेम-प्रधान ख्यालो का विवेचन किया जा रहा है। प्रेम-प्रधान ख्यालों के कथानक म प्राय निम्नलिखित घटनाओं का लेखा-जोखा मिल जाता है। इन ख्यालो मे नारी के सौन्दर्य का वर्णन अवश्य मिलता है। नायक नायिका के अपूर्व सौन्दर्य के बारे मे सुनता है या किसी अद्वितीय सुन्दरी को देखता है और तत्क्षण ही उसे जी-जान से चाहने लग जाता है। नोटकी का अग अग रेशम के समान मुलायम था। उसमें मखमल की-सी कोमलता थी। ख्यालकार के शब्दो म 'चिमक देख दसनहू की बीजली सरमाई जी' नोटकी के दाँतो की शुभ्र आभा विशेष रूप से द्रष्टव्य है। प्राय सौन्दर्य-चित्रण मे ख्यालकारो ने परम्परित परिपाटी को ही काम मे लिया है। क्या पद्मावती क्या आभल, क्या नोपदे और क्या निहालदे—सभी की सुन्दरता एक जैसी ही है। यहाँ हम एक उदाहरण प्रस्तुत कर रह हैं, जिसके आधार पर ज्ञात हो जायेगा कि इन ख्यालकारो ने किस प्रकार का सौन्दर्य-चित्रण किया है—

'ऐसो है मुखारविंद को लग बयान करूं
अंधेरी सी रैन माह जानु हुयो भोर है।
जाणू कोई परी आई इन्द्र के अखाड़े सैंती
जाणू ईश्वर के पास बैठी गिणगोर है
चचल चित चोर है क जीवन को जोर है
क नाही कोई ओर है तू मेरी चित चोर है ?

यद्यपि इस पद्यावतरण में आंगिक-सौन्दर्य का ब्यौरेवार वर्णन नही है पर अप्रत्यक्ष रूप मे सौन्दर्य का चित्रण ही किया गया है। स्थूल सौन्दर्य-चित्रण से सम्बन्धित एक उदाहरण पहले दे दिया गया था अत. यहां ऐसा ही उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। सौन्दर्य-वर्णन के साथ ही सौन्दर्य से पड़ने वाले प्रभावों का इन ख्यालो मे उल्लेख मिलता है। इन अतीव सौन्दर्यवती रमणियो को देखकर प्राय: नायक अचेत हो जाते हैं। यह सौन्दर्य की अद्वितीय आभा का ही परिणाम है"। पद्मावती को देखते ही ब्रजमुकुट की क्या स्थिति हुई, यह उसी के शब्दो मे द्रष्टव्य है—

'मुरछा मे खा करके पड्यो देख भूमि मोकू निझर आई, जाने बिजली की कोर है।' सोरठ के तीखे नेत्रो ने भी बनजारे के कलेजे पर मरम की चोट लगायी, जिससे वह 'दरद का मार्‌या' पड़ा रहा।

सौन्दर्यलिप्सु नायक बड़ा अधीर होकर इस सौन्दर्य को पाने के लिए अनेकानेक उपाय साधता है। पर प्रेम के मार्ग मे अनेक बाधाएँ जो ठहरी। बनजारे को उचित सलाह दी जाती है कि 'कठिन काम सोरठ मिलनें को है खाडे की धार' क्योंकि उस तक पहुँचने के लिए बावन ड्योढियाँ पार करनी होगी। चन्दकँवर से प्रेम करने वाली सेठानी को भी अपनी सास और जेठानी का डर लगता है। लोक-लज्जा का भाव भी प्रेम मे बाधा उपस्थित करने वाला तत्त्व है। निन्दरागारी दुनियादारी' से प्रेमी सदा डरते रहे हैं।

प्रेम-भाव को लेकर भी इन ख्यालों मे पर्याप्त चर्चा हुई है। कही प्रेम को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण और जगत का आधारभूत तत्त्व स्वीकारा गया है तो कही 'बुरा इशक का करना' कहकर प्रेम की निन्दा की गयी है। इन ख्यालो मे परदेशी से प्रेम न करने की बात कही गयी है और परनारी को काली नागिन, विष-भरी कहा गया है। जिससे 'नजर मिळाया जखमी' होना पड़ता है और फिर 'बचणे का उपाय' नही रहता। कही-कही नारी-नेह को अविश्वसनीय बताते हुए कहा गया है—'किस्यो भरोसो नार को स ने ठेट गया नट जाय।' इसके अतिरिक्त परनारी के चगुल मे फँसने वाले को (परनारी के फँदै जाळ मे यो ही मूरख नर जाणो) मूर्ख बताया गया है। प्रेम वर्णन मे हमे श्रोतानुराग के उदाहरण भी मिल जाते हैं। इस दृष्टि से पृथ्वीराज, वीरमसिंह, आभल-खिवजी, सोरठ-बनजारा

आदि ख्यालो के नाम उल्लेख्य हैं। इस सम्बन्ध मे पृथ्वीराज एव सोरठ बनजारे के ख्याल मे एक-सी ही भावाभिव्यक्ति हुई है। यथा—

'सुणी मैं शोभा जद थांकी, तमन्ना बढ गई मिळवा की।'

—(पृथ्वीराज)

'सोम्या सुणी दूर मे तेरी, आया मोटे ठाण।' —(सोरठ-बनजारा)

प्रेम का पक्ष प्रबल करने के लिए इन प्रेमियो ने अपने से पहले हुए प्रेमियो के उदाहरण प्रस्तुत किये हैं, जिनमे से एक उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

'इश्क किया लालाँ फूलाणी बीझा सोरठ नार
मुदबुद ढोवे चीतरया तू ले बँजारागार
ले बँजारागार इश्क भरपूर है, लग्या नैन का बाणक चकनाचूर है।
इश्क किया लैला अर मजनू सुदबुद कहे पुकार
सिर पर ढावे चीतर्या तू ले बँजारागार
इश्क किया कीचक कमलापत मे बँजारागार
इश्क किया लकापति रावण, इन्द्र हरी पर नार।'

अत कहा जा सकता है कि इन ख्यालो मे प्रेम के सभी पक्षो का चित्रण किया गया है। कही प्रेम को सर्वश्रेष्ठ बताया है तो कही प्रेम को प्रताडित एव अपमानित किया गया है।

प्रेम-प्रधान ख्यालो मे मृगया का वर्णन एव भाभी के व्यग्य-वाक्यो से कथा को मोड देने का उपक्रम किया गया है। नायक भाभी के पास शिकार जाने की अनुमति लेने आता है और भाभी उस पर कोई न-कोई ताना कस देती है। प्राय यह ताना किसी सुन्दरी या उसकी (नायक की) परिणीता को लाने के सम्बन्ध मे होता है। केसरसिंह की ये पक्तियाँ द्रष्टव्य हैं—

'सूरा तणी शिकारा ताई सीख मागवा आया।
फूलादे रानी का म्हाने मौसा वचन सुनाया॥'

भाभी यहाँ तक कह देती है कि 'ल्यायें बिन प्यारी म्हानैं मुखडो दिखलायो मत।' ऐसे व्यग्य बोल रूपी बाण कलेजे पर झेलकर प्रेमी तिलमिला जाते हैं। वे उसी दिन से उस अद्वितीय सुन्दरी को प्राप्त करने की पक्की ठान लेते है। गुरु गोरखनाथ उनके मनोरथ को पूरा करते हैं। प्रिया की प्राप्ति के लिए ये अपना सर्वस्व न्योछावर करने मे तत्पर रहते हैं। सभी प्रेमियो के मन का यह मजुल भाव सुदबुद के मुँह से प्रकट हुआ है—

'हस्ती चढणो छोड दयो स म्हें छोडा वाग की चाव।
अन पाणी सब छोड्या, स प्यारी तुझ बिन रह्यो न जाय।'

सबलग्या जिस शाला मे पढती थी, सुदबुद भी अपनी राजकीय शानोशौकत छोडकर उसी शाला मे पहुँचा। कहने का तात्पर्य यह है कि इन प्रेमी-पात्रो म

सर्वस्व न्यौछावर करने की भावना बहुत पायी जाती है।

प्रेम करने वालो को सदैव दास दासियो, चतुर मन्त्रियो या मालिन के भरोसे रहना पड़ा है। प्रेम मे मध्यस्थता करने वाले ये लोग प्रेमियो को मिलाने का काम भी करते हैं और उन पर अपना अकुश भी रखते हैं। फूलमती के वियोग में फूलकँवर तड़प रहा है और अपने चाकर से कहता है कि 'सुण चाकरका वातडी स अब, चलणौ किस विध होय' तो इसका उपाय चाकर ही निकालता है। फूलकँवर के इन शब्दों 'इसी अकल दे मोय' से स्पष्ट हो जाता है कि प्रेमियो को दासो पर कितना आश्रित रहना पड़ता था। प्रेमी हृदयों को परस्पर मिलाने के लिए ये दास काफी प्रयत्न करते थे और फलस्वरूप मूल्यवान वस्तुएँ ईनाम स्वरूप पाते थे। प्रेमिका की ओर से अपनी दासी या बाग की मालिन को प्राय 'नवसरहार' ही प्रदान किया जाता है। जैसा कि निम्न पक्तियो से ज्ञात होता है—

'हार गळै को बगसदू स तू कवर मिळादे आण।
जीवत जस भूलू नही म्हानें महादेव री आण।'

इसी बात को सवलग्या की मालिन अपनी ओर से ही कह देती है, जिससे ऐसे दास-दासियो की लालची प्रवृत्ति का भी अच्छा-खासा परिचय मिल जाता है—

'मुववुद कुवर मिळाव सू स थें बगसो नवसर हार।'

प्रेमी लोगों को मिलाने म मालिन का पर्याप्त योगदान रहता है, क्योकि अधिकाशत प्रेमियो का मिलन स्थल बाग ही होता है। अपने माता पिता की आज्ञा के बिना यौवनारूढा रानी अपने प्रियतम स रात्रि-काल म बगीचे म आकर मिलती है। बाग मे ठहरा हुआ कवि सुन्दर अपनी प्रेमिका विद्यावती से मिलने के लिए इस प्रकार का उपाय सोचता है—'मालण कू लालच दे के चुगे पर चोट चलावूगा।' दूसरी ओर 'पन्ना वीरमदे' के ख्याल मे वर्णित है कि नायिका नायक को बाग म पधारने हेतु निमन्त्रण दे रही है। वह तो यह भी चाहती है कि प्रिय उसे द्रुम-वृत पर झूला डलवा दे—

'वेग पधारो बाग म स म्हार लगी लगन दिल माय।
उस चपा की डार मे स म्हनें हिंडो देवो बधाय॥'

इन ख्यालो म जितना महत्व बगीचे का दिया गया है उतना ही महत्व मेले को भी दिया गया है। प्रोषित पतिका को प्राय इन्ही मेलो मे ही कोई छैला मिलता है जो उनके 'उफनते' यौवन का अपने प्रेम की बूँदो से शान्त करता है। मेले मे जाने की उत्कठा व्यक्त करती हुई दासी कहती है—

'वगा चाला बाईजी आ आज मिल्यो है जोग।
आज मिल्यो है जोग छैल कोई आवसी
मिळसी आसम ज्हान जीव सुख उपजावसी।'

इसी भाँति इन ख्यालों में शुक का वर्णन भी मिल जाता है। इस शुक की विशेषताएँ ये है—

'तिरिया-चरित्र पढियो सब शास्तर सूवटियो सुरग्यान
सूवटियो सुरग्यान किसी स ना डरै
या छळै बिराणी नार काम ये ही करे।'[1]

शुक के माध्यम से सन्देश भी भेजे जाने के वर्णन मिल जाते हैं। 'सुदबुद-सब लग्या' के ख्याल में सबलग्या के समाचार तोता ही सुदबुद को देता है, क्योंकि जिस समय सबलग्या सुदबुद से मिलने के लिए बगीचे में आयी थी उस समय वह निद्राग्रस्त था। सबलग्या ने उसे जगाने के लिए अनेक प्रयत्न किये पर वह जागा नहीं तो उसने तोते से कहा—

'सूवा सूवा सूवटास धारे पगा ज नेवर
घण सू पिव जाग्या नही स म्हारी साख भरीजे देवर
साख भरीजे देवर सुख कर जीव नै
मैं सदेसो कहू क म्हारा पीव नै।'

प्रेमी और प्रेमिका का सुखद मिलन हुआ। दोनों ने एक-दूसरे को 'डोढी मनवारें' करके मतवाली मदिरा पिलायी। प्रियतम को अधिक नशा आ गया और वह सो गया। यौवनो-मत्ता यह कैसे सहन कर सकती है। वह 'कलाळी' को कोस रही है कि उसने इतनी 'आकरी' (तेज) शराब क्यों दी? यथा—

'बाबा भूप तपधारी जी दारू पीकर पोढग्या जगावै प्यारी जी
काई नशा में पोढग्या जी मदछकिया महाराण
जोवन म्हारो जागियो स थे सूता खूटी ताण।
म्हारी सौत कलाळकी जी, काढ्यो मा सू बैर।
दारू दे दी आकरी जी, जाग्यो नाही सर।'[2]

प्राय सभी ख्यालों में नशे का उल्लेख इसी रूप में मिलता है पर कुछ ख्यालो में इससे कुछ अलग प्रकार का वर्णन मिलता है। इन ख्यालों में 'सेठाणी' नायिका होती है अत जब प्रेमी उसे मनुहार करता है तो वह शराब पीने से इन्कार कर देती है। काफी समय बाद मुश्किल से शराब पीने के लिए हाँ भरती है और पीने के पश्चात् जो उसे अनुभूति होती है तब उसे अपनी भूल (शराब नहीं पीना) का ज्ञान होता है। इस सम्बन्ध में एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'दिल ख्याली पन्ना प्यालो पीलो जी म्हारे हाथ रो
प्याला री काई मनवार हो म्हे माजन छा जी

---

१ रिसालू नोपदे का ख्याल
२ पृथ्वीराज-सयोगिता का ख्याल

अरज करू सू कवरजी स रे थँ प्यालो मत पावो
न्यात जात के मायने स म्हारी गणछो सरम गुमावो
दारू माह दूसरी ॥ रे पीकर देख सवाद
पन्ना बोली पीवता स रे व्रथा कियो म्हँ वाद
छाकया मद री छाक रो स म्हँ समझी नही सवाद।"[1]

प्रेम-प्रधान ख्याला मे प्रेमी और प्रेमिका द्वारा 'नशा-पत्ता' किया जाने के बाद प्रेमिका प्रणय प्रार्थना करती है। परन्तु यौवनान्ध नायिका को नायक यह बताता है कि तू कँवारी है अत तेरे साथ भोग करने से मेरी इज्जत पर कलक लग जायेगा। भोग विवाह के बाद का विषय है। ऐसे अवसर पर प्राय. नायक यही कहते 'कन्या कवारी सग भोग म्हारो छत्रीपण घट जाय' पाया जाता है। नायिका अनेक अकाट्य तर्क (यथा—मन मिळिया को व्याव अन्नाता यो वेदो मे गाया, मन मिळियो सो हो गई राणी कुण कुण फेरा खाया) देते हुए उससे प्रार्थना करती है पर नायक का निश्चय दृढ है।

कुछ ख्याल ऐसे भी हैं जिनमे पाया जाता है कि राजा शिकार पर गया और वहाँ किसी सुन्दरी पर मोहित होकर उसी के प्रेम-पाश मे बँध गया। कई दिन बाद इधर रानी को विरह सताने लगा तो उसने अपने भरोसे के आदमियो को भेजकर राजा को पुन बुलवाया। प्रेमिका के पास स जब प्रेमी जाने की अनुमति माँगने जाता है तो वह मृदु उपालम्भ देती है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'प्यारा म्हान दासी कर ले चाला जी गढपतिया राव नरेश
जँ थाने ईसो भरोसो था तो क्यू थे प्रीत लगाई
म्हारे से तो राव जी स थे करी कपट चतुराई
रूप रग को रस कम लार फिर पीछे छिटकाई
कै तो सग ल चालो स कै रैवो म्हेल के माई॥'

प्रियतम प्रिया से विलग हो गया। वह उसके विरह म व्यथित हो रही है। वह प्रिय के वियोग म यही पुकारती रहती है—

'बिन अगनी बिन काठ, रात दिन म्ह जळा।'

उसके तन म यौवन का तेज उसी भाँति समाया हुआ है जिस भाँति पथरी में आग समाई रहती है। ऐसे यौवन को वह काबू मे कैसे रखे? प्रियतम के वियोग मे उसे कुछ भी नही सुहाता, तभी तो वह सखी म कहती है—

'दिण ने मेलो सूजे ये सायण लहर लहर जिव जाय।
खाणो पीणो पैरणो स कोई म्हानै नही सुहाय॥'

पच्चीस वर्ष की भरी जवानी मे वह अकेली कैसे पोढ सकती है? उसे प्रतीति

---

१ पन्ना-वीरमदे का ख्याल

हो गयी है कि उसका यौवन व्यर्थ ही चला जायेगा । मदान्मत्त करने वाला यौवन उसके विरह को और भी बढ़ा देता है। निम्नलिखित पंक्तियों में भाव की गहराई और औपम्य-विधान की उत्कृष्टता दृष्टव्य है—

'जीवण काळा नाग ज्यू स काई मवर रह्या बळ खाय ।
छिलक्यो छोलर ताल ज्यू स काई पाजा लोप्या जाय ।।'

नायिका की देह मे 'जीवन नाग' गया है कामदेव उसे डस रहा है और फिर प्रकृति के उपादान भी उसे कष्ट प्रदान करने लग गये हैं। इन सभी का अनूठा चित्रण मरवण के शब्दो में देखते ही बनता है—

'पौन शीतल सज म नित खून चूस डालती
तीर की ज्यो लगे तन म, पीर विरह की चालती
कूक कर कोयल हत्यारी और बळी को बाळती (जली हुई को जलाती है)
अब सवर लेस वक मेरे मवर सज दी सालती ।।'

इन ख्यालो म प्रेमिका के विरह म जलने वाले प्रेमी का वर्णन भी मिल जाता है। पर अधिकाशत स्त्री वियोग का वर्णन ही हुआ है । पुरुष वियोग वर्णन का एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'दिन की सब भूख नीद रैन की गई सारी
नारी हतियारी माम मजनू का सुवाया है।'

प्रेम प्रधान ख्यालो म सपतिया-डाह के भी अनूठे उदाहरण मिलते है । कोई दूसरी नारी उसके प्रिय के प्रम की अधिकारिणी बने, यह एक पत्नी को क्योंकर सह्य होगा । निहालदे सुलतान' मे इस सम्बन्ध म अनेक स्थलो पर विवेचन हुआ है। और अन्तत यही सन्देश प्रेषित किया गया है—

'मत कोई जुग म बात करज्यो सौक का बेहार की ।
सौक केकयी कौसल्या ने करा दी लाचार की।
सौक फूलगडी दुख दे, सौक मूडी गार की।
सौक कूड विचार काडी, रखी ना घर बार की।

इन ख्यालो म अनमेल विवाह की हँसी उडायी गयी है। विवाहार्थ आये वृद्धा की विद्रूपता और शारीरिक शिथिलता की ओर इंगित करके उसका उपहास किया गया है। ऐसे वर के साथ वधू 'निसासा न्हाख' कर और फीकेमन से 'फेरे' लेती है। एक ऐसे ही दूल्हे का रूप देखने योग्य है—

'नाक भरै लाळा पडै स काई बीद ज हीरालाल ।
मूढा मे मारया बडै स काई मूखा पडग्या गात ।।'

विवाह के समय पहली पूछने का प्रचलन राजस्थान म सदैव म रहा है। इन ख्यालो मे भी पहेलियो को स्थान मिला है। राजा रिसालू और नोपदे के

ख्याल में वर्णित पहेलियों में से एक पहेली यहाँ उद्धृत की जा रही है—

'कुण जो तपसी तप करै, सुवा कुण जो नित उठ न्हाय।
कुण जो सब रस ऊगळै, सुवा कुण जो सब रस खाय ?'
'सूरज तपसी तप करै, त्रिया नित उठ न्हाय।
इन्द्र जो सब रस ऊगळै, धरती सब रस खाय॥'

प्रतीकों के माध्यम से किसी बात का आभास करा देना या पता बता देना आदि का विवेचन भी इन ख्यालों में हुआ है। पद्मावती ने पहले पुष्प को कान से लगाया फिर उसे दाँत से काट दिया। तत्पश्चात उस पुष्प को पैर तले कुचलकर छाती से लगा लिया। इन प्रतीकों के सहारे व्रजमुकुट को उसके मन्त्री द्वारा बताया गया कि—

'पुष्प लगायो कान सू स कह्यो नग्र मेरा करनाल।
कतर दात सू पुष्प पिता कयौ दतावर भोपाल।
पुष्प दबाय पग तळै कह्यो म्हें हू पदमावत बाळ।
फिर पुष्प लगा छाती सू कह्यो थे दिलदार जी।'

पत्र लेखन की विशिष्ट पद्धतियाँ भी इन ख्यालों में मिलती हैं। शकुन शास्त्र सम्बन्धी धारणाओं का उल्लेख इन ख्यालों में हुआ है। स्त्री-स्वभाव की अनेकानेक बातें इनमें विवेचित हैं और स्थानीयता का प्रभाव भी सर्वत्र पाया जाता है।

जैसा कि पहले ही बता दिया गया है कि दूसरे प्रकार के प्रेम प्रधान ख्याल समाज-अध्ययन की दृष्टि से अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनमें नारी का घिनौना रूप प्रस्तुत किया गया है। उसकी उच्छृंखल सम्भोग प्रवृत्ति का सभी ख्यालों में प्राधान्य है। इन ख्यालों की नायिकाओं में स कोई बनजारे से प्रेम करती दृष्टिगोचर होती है तो कोई जवाहरात बेचने वाले को अपना प्रेमी बताती है और कोई भवन-निर्माण करने वाले को अपने पति से भी बढ़कर मानती है। इन ख्यालों में अधिकांश ख्यालों की नायिका सेठानी होती है। सेठ विवाह करते ही प्राण-प्रिया को छोड़कर दूर देशों में व्यापार करने के लिए चला जाता है। इधर सेठानी अपने यौवन के दिन बड़ी मुश्किल से काटती है। इसी बीच कोई छैला उसके जीवन में आता है और यौवन के भीषण तूफान में अव्यवस्थित वह लता उस पुरुष का सहारा ले लेती है। कुछ ख्यालों में रसोइये को यौवन की प्यास बुझाने वाले प्रेमी के रूप में चित्रित किया गया है। इसके अतिरिक्त कुछ ख्याल ऐसे हैं जिनकी कथा का मूल आधार सामाजिक विकृतियाँ हैं। अनमेल विवाह (वृद्ध-विवाह और बाल-विवाह) इन ख्यालों की प्रमुख समस्या है। छोटे वय के ख्यालकार ने इन शब्दों में अपने भावों की अभिव्यक्ति की है—

'ओ अधेर म्हाजना में है ना कोई बात बिचारै।
बूढ़ो ब्यावै ज्वान लुगाई रात्यू निसासा मारै।

छोटे वय की नार दुख्यारी, वर्षा पर वाजळ सारे ।
जोडी बिना चलै नही गाडी, काटो पग नै माय ।
जोडी बिना अेकलो मोती, मूगे मोल विकाय ।
जोडी बिना मरद तिरिया को जीवन ऐलो जाय ॥'

इन ख्यालों मे नारी को आदर्श पत्नी, त्यागशीला माता एव शुभकामना करने वाली बहिन के रूप मे चित्रित न करके भोग्या के रूप मे चित्रित किया गया है। कई बार तो पुरुष किसी-न-किसी प्रकार का लालच देकर उसे पथ-भ्रष्ट कर देता है और कई बार परिस्थितियाँ उसे भ्रष्ट कर देती हैं। सुनार को कार्य से ही छुटकारा नही मिलता, सेठ को व्यापार-धन्धे से ही समय नही मिलता फलत. सुनारी और सेठानी असामाजिक कृत्यो की ओर कदम बढा लेती हैं। कई बार ऐसा पौरुष हीन पुरुष के कारण भी हो जाता है। इसी दुख से दुखी चाची अपने जेठूते से प्रणय-निवेदन करती है। कुछ लोग मन्त्रादि के बल पर स्त्री को पथ-विचलित कर देते हैं। शाहजादे ने पतिव्रता को अपने धर्म से डिगाने के लिए इसी प्रकार का असफल प्रयास किया था। पनिहारी का पति पाँच वर्ष का ही था फलत उसे किसी और छैल से आँखें लडानी पडी। नारी के एक बार पथ भ्रष्ट हो जाने पर वह किसी की सीख नही मानती। अनेक औरतो के भ्रष्ट होने का मुख्य कारण है—बूढा पति या छोटा कथ। यथा—

'छोटे बूढे खसम की औरत माडै कूकरम सीखे।'

इन ख्यालो म एक और सामाजिक तत्त्व की ओर इगित किया गया है, वह है—पुत्री की शादी उसी घर मे करना जिस घर से पुत्र वधू को लाये हैं। ऐसे विवाह का राजस्थानी म 'आमी-सामी व्याव करणो' (आमने-सामने शादी करना) कहते हैं। और ऐसा प्राय पिता के पास पैसे की कमी होने पर किया जाता है। इससे कई बार लडकी को हम उम्र वर नही मिलता। ऐसे भी अनेक उदाहरण इन ख्यालों मे मिल जायेंगे कि पिता पैसे लेकर पुत्री का विवाह ऐसे-वैसे पुरुष के साथ ही कर देता है। इन ख्यालो मे विरह-वर्णन भी पर्याप्त मात्रा मे मिलते हैं। एक ख्याल की नायिका बडे ही चिन्तित भाव से कहती है—

'परण्यो परण'र बात नही पूछी, गयो नार नै भूल।
जोबनियो कुमलायग्यो, ज्यो जगळ रो फूल ॥'

इनमे 'इश्क की दवा नही दुनिया मे, इश्क बुरा ल्यो मान' कहकर ओछे प्रेम की भर्त्सना भी की गयी है। केवल पथ-भ्रष्टा नारी के ही चित्र नही मिलते हैं कही-कही पतिव्रता के पावन चित्र भी उभरकर हमारे सामने आते हैं और पाठक या द्रष्टा को आदर्शवाद की ओर ले जाते है। 'सतवन्ती सती ने अपने प्राणो का त्याग उचित समझा पर शाहजादे के चगुल मे फँसना अनुचित जाना। यद्यपि उसने द्वार पर बैठकर जान देने वाले शाहजादे को यही कहलवा कर बुलाया था कि तुम

मरने पर उतारू क्यों होते हो, मैं तुम्हारे साथ सम्भोग कर लूंगी। पर जब शाहजादे ने अन्दर आकर आसन मे बनी चिता के बारे मे दासी से पूछा और दासी ने बताया कि तुझे सुधारने के लिए मेरी बाईजी अपने-आपको समाप्त करने जा रही है तो शाहजादे का हृदय परिवर्तित हो गया। दासी के निम्न शब्द प्रशस्य हैं—

'म्हारी बाई जी है सतवती परदुख भजणहार
तेरी जान बचाई अपनी हुई देन तैयार ।।'

'नैने बराम' के ख्याल की नायिका का भी अन्ततः हृदय परिवर्तित हो जाता है और वह रसोइये के साथ सम्भोग न करके प्रभु स्मरण मे अपना मन लगा लेती है तथा सभी नगर-वधुओ को आशीष एव सदुपदेश देती है—

'नगरी कू आसीस हमारी सदा रहो हरियाळी।
पतिविरत सब धारो औरता राम करै रखवाळी ।।'

अन्त मे हम यही कहना चाहते हैं कि इस प्रकार के प्रेम-प्रधान ख्यालो के पात्रो का कभी भी अस्तित्व नही रहा है। ये सभी पात्र काल्पनिक जगत के हैं। ख्यालकारो ने केवल असामाजिक तत्त्वो का प्रकट करने के लिए इन पात्रो की अवतारणा की और इनसे मनोवाछित सहायता ली। इसी बात को ध्यान मे रखते हुए एक ख्यालकार ने ख्याल के अन्त म कहा है—

'नही है छैला नही है दिल जानी, झूठा है तोफान।'

इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रेम-प्रधान ख्यालो मे नारी के हेय और श्रेय—दोनो रूपो को उजागर किया गया है। असामाजिक तत्त्वो की कटु आलोचना करते हुए अन्ततः धर्म की एव सद् की विजय दिखलायी गयी है।

राजस्थानी ख्यालो मे प्रयुक्त छन्द

अध्याय के अन्त मे राजस्थानी ख्यालो मे प्रमुख रूप स मिलने वाले विविध छन्दो का सक्षेप मे विवेचन करना समीचीन है। छन्दो की ही भाँति इन ख्यालों मे विविध रगतो और अनेक तर्जो का प्रयोग हुआ है। रगतो मे इन रगतो के नाम बहुतायत स मिलत हैं—रगत इकहरी, रगत मारवाडी, रगत दौवडी, रगत खडी, रगत झूला की, रगत छोटी चलत, रगत ताल ठेका की, रगत कलिगडा, रगत बडी चलत, रगत उठाय टूकग, रगत बदावा आदि। यद्यपि इन ख्यालो मे अनेक छन्दो का प्रयोग हुआ है पर उन सबको छन्द शास्त्रीय कसौटी पर कसने पर ज्ञात होता है कि इनम छन्द-शास्त्र के नियमों का पूर्णरूपेण पालन नहीं किया गया है। इन ख्यालो मे प्रयुक्त विभिन्न छन्दो को देखने से ज्ञात होता है कि इन छन्दो का रूप विशिष्ट प्रकार का ही है, जिनके आधार पर राजस्थानी ख्याल-साहित्य के छन्द-शास्त्र का निर्माण किया जा सकता है। यहाँ हम

उन्दात्मक स्वरूप के बारे में चर्चा करने से पूर्व यह बता देना आवश्यक समझते हैं कि इनके नाम हमने वे ही रखे हैं जो ख्यालों में उल्लिखित हैं। इनके अतिरिक्त हम इनका सोदाहरण विवेचन नहीं कर सकेंगे। यहाँ केवल उनका नामोल्लेख एवं वर्णिक या मात्रिक विशेषता का उल्लेख किया जायेगा। कुछ छन्द तो ऐसे मिलते हैं जिनका नाम तो एक ही रखा गया है पर उनमें भी भेदोपभेद पाया जाता है। ऐसी स्थिति में हम प्रमुख रूप का नाम देकर उसके अन्य भेदों का उल्लेख कर देंगे। इन ख्यालों में हमें कुछ ऐसे भी छन्द मिल जाते हैं जिनका कोई नामकरण नहीं हुआ है।

(१) कवित्त

छन्द-शास्त्र में इस वर्णिक छन्द माना गया है और इसमें १६,१५ की यति से ३१ वर्णों का होना माना गया है। पर इन ख्यालों में मिलने वाले कवित्त में ३१ से लेकर ३६ तक वर्ण मिल जाते है। यति प्रायः १७,१८ वर्णों के बाद पायी जाती है। ये कवित्त भी गुर्वन्त हैं।

(२) तिलाणी (रगत)

इसके निम्नलिखित सम्भावित रूप मिलते हैं—

अ—टेर के अतिरिक्त प्रत्येक चरण में १६,१२ मात्राओं पर यति मिलती है।

ब—टेर के अतिरिक्त तीन चरणों वाली तिलाणी।

स—टेर का लोप। १६,१२ की यति से कुल २८ मात्रायें।

द—मात्रा-बन्धन रहित तीनों तुकान्त चरणों वाली तिलाणी।

य—टेर एवं चरण में भिन्न तुकान्तता।

र—टेर के लिए पुनरावर्तन में टेर पाद का अगला अंश प्रयोग में आता है।

ल—प्रथम पाद में १६,१६ मात्रा पर यति के हिसाब से ३२ मात्राओं का होना।

(३) लावणी

क—टेर के दो पूर्ण पाद २२ मात्राओं के होते हैं।

ख—टेर के अतिरिक्त चार पाद होना।

ग—प्रत्येक पाद में २२ मात्राओं का होना। १३ और ९ के अनुसार यति।

घ—प्रथम-द्वितीय एवं तृतीय-चतुर्थ में तुक का मिलना।

ङ—टेर के पुनरावर्तन में पूर्व २२ मात्रा के एक पूर्ण पाद का होना।

च—टेर से लेकर छन्द की सपूर्ति तक कुल ७ पाद होना पर पुनरावर्तन में टेर की एक पंक्ति का ही प्रयोग करना।

(४) दोर

प्रत्येक चरण में कम-से-कम १६ और अधिक-से-अधिक २० वर्ण मिलते है।

तीन चरणो के पश्चात टेर का प्रयोग होता है। कभी पूरी टेर-पंक्ति का प्रयोग और कभी आधी टेर पंक्ति का प्रयोग किया जाता है। कभी कभी केवल चारो चरण ही मिलते हैं, टेर नही मिलती।

(५) गजल

हर चरण मे २९ से लेकर ३३ तक वर्ण मिलते हैं और प्राय टेर-चरण का प्रत्येक चरण के बाद पुनरावर्तन होता है।

(६) दोहा

एक चरण म २४ से लेकर ३० तक मात्रायें पायी जाती हैं। प्राय १४,१२ पर यति पायी जाती है।

(७) सेला

प्रथम पंक्ति टेर पंक्ति होती है जिसकी हर चौथे चरण के पश्चात आवृत्ति होती है। इन चारो चरणो मे प्रमुख रूप से क्रमश १७,१५,१४,१३ वर्ण मिलते हैं।

(८) काण झडाका छन्द

यह भी चार चरणो का छन्द है। टेर पंक्ति की इसम पुनरावृत्ति नही होती। प्रत्येक चरण मे २७ से लेकर ३४ तक वर्ण मिल जाते है। उक्त छन्दो के अतिरिक्त चौपाई और कुडलियाँ जैसे छन्दो का भी इन ख्यालो मे प्रयोग हुआ है। पर निश्चित रूप से कुछ भी नही कहा जा सकता कि इन शास्त्रीय छन्दो मे छन्द-शास्त्र के नियमो का पालन कहाँ तक किया गया है। पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन ख्यालो के छन्दो पर उर्दू की शेरो शायरी और गजल आदि का तथा हिन्दी के छन्दो का बहुत कुछ प्रभाव है। इन ख्यालकारो ने जिस स्वतन्त्रता के साथ दोनो भाषाओ के छन्दो को ग्रहण किया है उस भाँति छन्दो की नियमबद्धता की ओर स भी वे स्वतन्त्र रहे हैं। वैस इनमे से अधिकाश लोगो को विशेष शास्त्रीय ज्ञान भी नही था।

निष्कर्ष कहा जा सकता है कि लोक ख्याल सामूहिक सम्पत्ति होते हुए भी व्यक्ति-विशेष की स्पष्ट छाप का लिए हुए हैं। इनकी विषय विविधता ने लोक के समक्ष विभिन्न दृष्टिकोण रखे हैं। लोक चाहे जिसका चयन कर ले। सिनेमा के प्रचार के कारण लोक की यह अमूल्य निधि मिटती जा रही है। इस बात की आज महती आवश्यकता है कि इन सभी ख्यालो को पारगत अभिनेताओ के माध्यम से रिकॉर्ड कर लिया जाय, अन्यथा इनकी सभी तर्जे कालकवलित हो जायेंगी। इनमे स अधिकाश ख्याल तो छप चुके हैं पर जो अभी तक नही छपे हैं और कुशल अभिनेताओ की जिह्वा पर ही अवलम्बित हैं, उन्हे शीघ्र ही छपा देना चाहिए। सर्वसाधारण की यथार्थ स्थिति का बोध इन ख्यालो के माध्यम से ही सम्भव है। ख्याल रूपी मनु के माध्यम से ही हम अपने जीवन को दो सौ चार-सौ

र्ये पूर्व के जीवन से जोड़ सकते हैं। इसी आधार पर तत्कालीन समाज व अद्यतन समाज का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। राजस्थानी लोक-ख्यालों में कहीं-कहीं घोर शृंगारी चित्र मिलते हैं, जो मध्यकालीन सामाजिकों की विलासिता के द्योतक हैं। ये चित्र इतने अश्लील हैं कि भला आदमी इन्हें पढ़ते हुए शर्माता है। पर समाज में फैली बुराइयों और मानसिक दुष्प्रवृत्तियों के चित्रण की दृष्टि से ऐसे ख्यालों का भी महत्त्व है। सारतः कहा जा सकता है कि ये लोक-ख्याल राजस्थानी समाज का पूर्णरूपेण प्रतिनिधित्व करने वाले हैं। इनमें सभी प्रकार के वर्णन मिल जाते हैं। इनमें आदर्श और यथार्थ का मंजुल मेल हुआ है।

अध्याय : ६

राजस्थानी लोकोक्ति-साहित्य

कुछ विद्वानों ने लोकोक्ति और कहावत के अर्थ-भिन्नत्व की ओर दृष्टिपात किये बिना ही कहावत को ही लोकोक्ति के रूप में स्वीकार कर लिया पर वस्तुस्थिति कुछ और ही है। लोकोक्ति अपेक्षाकृत विस्तारार्थक शब्द है। उसके व्यापक क्षेत्र में कहावतें, पहेलियाँ, सुभाषितें, लौकिक न्याय, ऐतिहासिक प्रवाद, मुहावरे और लोक की अनेक प्रकार की विशिष्ट उक्तियाँ आदि सभी परिगणित किये जा सकते हैं। सारतः कहा जा सकता है कि समग्र लोक में प्रचलित उक्तियाँ, जो लोक को सहर्ष स्वीकार्य हों, लोकोक्तियाँ ही हैं। इस सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र के विचार द्रष्टव्य हैं—

'लोकोक्ति केवल कहावत ही नहीं है, प्रत्येक प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है। इस विस्तृत अर्थ को दृष्टि में रखकर लोकोक्ति के दो प्रकार माने जा सकते हैं एक पहेली, दूसरा कहावतें।'[1]

'गढ़वाली पखाणा' की भूमिका में डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ने 'साधारणतः सभी प्रकार की उक्ति लोकोक्ति है' लिखकर लोकोक्ति-साहित्य के विशद् क्षेत्र एवं विषय-व्यापकता की ओर ही इंगित किया है।

अतः इस अध्याय में हम भी लोकोक्ति-साहित्य का कहावत और पहेली के रूप में अध्ययन करेंगे—

(अ) राजस्थानी कहावतें,
(आ) राजस्थानी पहेलियाँ।

(अ) राजस्थानी कहावत

सर्वजयी काल प्रत्येक वस्तु में परिवर्तन करता रहा है। हमारे पूर्वज भी काल के साथ में समय समय पर जीवन के संघर्ष में उन्हें जो अनुभूतियाँ हुईं, जो

---

१ ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन, डॉ० सत्येन्द्र, पृ० ४२२

निष्कर्ष उन्होंने निकाले, वे आज हमारे लिए बहुत ही महत्त्व की बातें हैं। ये अनुभव-कथन ही कहावतें है। ये कहावतें ही जीवन की अनेकानेक समस्याओ और जटिल प्रश्नो का समाधान प्रस्तुत करती है। इन नुकीले और चटपटे वाक्यो मे अनुभव गाभीर्य का निचोड है। कल्पना और व्यर्थ का आडम्बर इन्हे छू भी नही सका है। *कहावतो के प्रचलन के परिपार्श्व मे सामाजिक अनुभव की अचेतन* सत्ता कार्य करती है। कोई भी अनुभव-कथन तब तक कहावत नही कहा जा सकता जब तक कि उसमे जन-मानस को प्रभावित करने की शक्ति न हो। यही कारण है कि कई विद्वानो ने स्वनिर्मित कहावतो के सग्रह प्रकाशित करवाये पर वे सूक्ति-कथन जन साधारण के कठ का हार न बन सके, प्रशोक्ति मात्र बनकर रह गये।

मानव के विभिन्न भू खडो मे वास करने पर भी मानवीय प्रकृति सर्वत्र एक- सी है। यह तथ्य कहावतो की जांच से पूर्णत सत्य प्रतीत होता है। ससार के किसी भी कोने म मिलने वाली कहावतें यद्यपि वाच्यार्थ मे भिन्न हैं तथापि भावार्थ मे अभिन्न हैं। कहावतो मे विशाल जन-समुदाय के अनुभव है। न जाने कब किसने कैसी अनुभूति की ? पर कहावत ने दूसरो को भी उस परिस्थिति स अवगत करा दिया। कहावतो के प्रचलन का भी प्रमुख कारण जन-समूह की स्वीकृति है।

कहावत की निर्मिति के लिए अनुभूति के साथ-साथ उक्ति वैचित्र्य का होना भी अत्यावश्यक है। यह वाक् चातुर्य ही उस अनुभव कथन को चिरस्थायी बनाने मे सक्षम है। इसी से कहावत मे चटपटापन आता है जो सर्वसाधारण के मन को आकृष्ट करता है। वाग्वैदग्ध्य के अतिरिक्त तुकान्तता भी कहावत को मनमोहक बनाती है।

कहावतो को यदि जनता का नीतिशास्त्र और समाज का अलिखित कानून *कहा जाय तो कोई अत्युक्ति नहीं होगी। इनम मानवीय बुद्धि और अनुभव का* मणिकाचन योग हुआ है। इन्हे ससार के नीति साहित्य (wisdom literature) का प्रमुख अग माना जाता है। इनके आधार पर जातीय एव राष्ट्रीय विचारधारा का हजारो वर्ष पुराना इतिहास निर्मित किया जा सकता है। गीतो और कथाओ का प्राकट्य तो समय विशेष पर ही सम्भव होता है पर कहावतें पग पग पर पथ प्रदर्शन करती रहती हैं। वाक्य-वाक्य म मुख की शोभा बढाती रहती है, *क्षण-प्रतिक्षण ज्ञान का आलोक करती रहती है। इनका जीवन मे स्थायी स्थान* है। ये जन-जीवन की सम्पत्ति हैं। इनमे ज्ञान, नीति और मनोरजन की त्रिवेणी प्रवाहमान है।

कहावत शब्द की व्युत्पत्ति

कहावत शब्द के निर्माण के सम्बन्ध मे विद्वानो ने अनेक कल्पनाएँ की हैं।

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल प्राकृत 'कहाप्' धातु से भाववाचक संज्ञा बनाने के लिये 'त' प्रत्यय जोडकर 'कहापत' से 'कहावत' होना सिद्ध करते हैं। रामदहिन मिश्र ने 'कथावत' से 'कहावत' शब्द को व्युत्पन्न बताया है। कुछ विद्वान 'कह' धातु के आगे अरबी का 'आवत' प्रत्यय लगाकर 'कहावत' शब्द बनने की धारणा रखते हैं। अन्य कुछ विद्वानों ने 'कथापत्य', 'कथापुत्र', 'कहाउत' आदि अनुमानिक शब्दों से कहावत की व्युत्पत्ति मानी है। कह+आवत से 'कहावत' शब्द बनने की सम्भावना भी कुछ विद्वानों ने की है। हिन्दी शब्द सागर के प्रथम भाग में कहना+आवत से 'कहावत' शब्द का निर्मित होना बताया गया है। ठाकुर कवि ने भी 'कहावत' के लिए 'कहनावति' शब्द का प्रयोग किया है। आधुनिक काल में भारतेन्दु युग के कवि श्री हरिऔध ने अपनी बोलचाल रचना में 'कहनावति' शब्द को अपनाया है। डॉ० महल ने 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में दो विकल्प रखे हैं—(१) यदि 'कहावत' शब्द संस्कृत के किसी शब्द से आया है तो 'कथावत' शब्द से ही इसका घनिष्ठ सम्बन्ध बैठता है और (२) यदि कहावत' शब्द सादृश्य के आधार पर प्रचलित हुआ है तो 'लिखावट', 'सजावट' आदि के सादृश्य पर 'कहावट' °(कहावत) शब्द का बन सकना असम्भव नहीं है।'

राजस्थानी भाषा में 'कहावत' के लिए 'कँवत', 'केहावत', 'कुहावट', 'कुवावट', 'कुहावत', 'कुवावत' आदि शब्दों का प्रयोग किया जाता है। इसके अतिरिक्त अपने कथन की पुष्टि हेतु तर्क स्वरूप जब किसी कहावत को व्यवहार में लाया जाता है तो कभी-कभी कहावत के उच्चारण से पूर्व निम्न दो वाक्यांशों का प्रयोग प्रायः सुनने में आता है—

(१) कँवत ई कँईजे...

(२) कँताई कँईजे ..

उक्त दोनों वाक्यांशों पर विचार करने से स्पष्ट हो जाता है कि अधिवादा-तया कहावत का अपने कथन के ठोस प्रमाण के रूप में उद्धृत किया जाता है। इन वाक्यांशों से यह भी ध्वनित होता है कि कहावत को परम्परा पुष्ट होने के कारण ही तर्क स्वरूप उद्धृत किया जाता है। सर्वसाधारण में अपने पूर्वजों के सारगर्भित कथनों का बड़ा आदर है। अतः लोक में उन्हें उद्धृत करते समय उक्त वाक्यांशों का प्रयोग किया जाता है। इस आधार पर 'कहावत' शब्द का अर्थ 'परम्परा से कही जाती रही है' मानना युक्तिसंगत ही है। 'कहावत' शब्द की पारम्परिक महत्ता को दृष्टि में रखते हुए यह भी कह देना उचित है कि 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति 'कहा+उत' से हुई है। राजस्थानी में 'उत' का अर्थ पुत्र होता है तथा यह 'उत' शब्द पिता के नाम के साथ जुड़कर उसके वंश

---

१ राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन, पृ० ४ से ६ तक

का द्योतक (विशेषण) बन जाता है। दोनों शब्दों की सन्धि होने पर 'उ' 'व' में परिवर्तित हो जाता है यथा—अमरा + उत = अमरावत, सगत + उत = सगतावत, दुर्गा + उत = दुर्गावत। इन शब्दों की कसौटी पर 'कहावत' शब्द भी खरा उतरता है। निष्कर्षत कहा जा सकता है कि 'कहावत' वह परम्परित वाक्य है जिसमें पिता का अनुभव अन्तर्निहित है एव वह अनुभव-कथन पुत्र का मार्ग-दर्शन करता रहता है। (यहाँ पिता और पुत्र का तात्पर्य प्राचीन पीढी एव वर्तमान तथा भविष्य की पीढी से है।) इस प्रकार प्रत्येक पीढी अपने अनुभवों को कहावतों के माध्यम से भावी पीढ़ी को हस्तातरित करती रहती है। व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विचार कर लेने के पश्चात 'कहावत की परिभाषा के सम्बन्ध में विचार कर लेना भी समीचीन है।

ससार की प्रत्येक भाषा के विद्वानों ने 'कहावत' को नानाविध परिभाषित करने की चेष्टा की है। विस्तारभय से हम कुछेक विद्वानों की परिभाषाओं का सार रूप ही प्रस्तुत कर सकेंगे। यूनान के प्रसिद्ध दार्शनिक अरस्तू ने कहावतों को 'तत्व ज्ञान के खण्डहरों में से चुनकर निकाले हुए टुकडे/बचा लिये अश' कहा है। हावेल ने कहावतों को 'जनता की वाणी' बताया है। कौस्ते इन्हें 'व्यवहारिक जीवन के मार्ग-दर्शन वचन' स्वीकारता है। रिवागेल कहावतों को 'जनता के अनुभवों का फल, एक वाक्य में बन्द किया हुआ अनेक युगों का चातुर्य' मानता है। जॉन रसल ने इस सम्बन्ध में एक ऐसा वाक्य कहा है जो आज कहावत के रूप में ही प्रचलित हो गया है। कहावत अनेकों का चातुर्य और एक का बुद्धि चमत्कार है।[1] रिजले ने कहावतों को "भौतिकवाद का बीजगणित"[2] का नाम दिया है। डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इनको 'मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र' कहा है। डॉ० सहल ने कहावत की परिभाषा इस प्रकार दी है—'अपने कथन की पुष्टि में किसी को शिक्षा या चेतावनी देने के उद्देश्य से, किसी बात को किसी की आड में कहने के अभिप्राय से अथवा किसी को उपालम्भ देने व किसी पर व्यग्य करने आदि के लिए अपने में स्वतन्त्र अर्थ रखने वाली जिस लोक-प्रचलित तथा सामान्यत सारगर्भित, सक्षिप्त एव चटपटी उक्ति का लोग प्रयोग करते हैं उसे लोकोक्ति अथवा कहावत का नाम दिया जा सकता है।'[3]

वस्तुत कहावत परम्परा-पोषित उक्ति-वैचित्र्य युक्त सर्वजन स्वीकार्य वह वाक्य है जिसे कोई भी अपने कथन की पुष्टि हेतु उद्धृत करने में प्रसन्नता की अनुभूति करता है। यह किसी के द्वारा थोपा जाने वाला राज-नियम नहीं है।

1 A Proverb is the wit of one and the wisdom of many

2 Algebra of materialism (people of India-Lord Russel-Risley, p 125)

३. राज कहावत, पृ० २०

यह तो जन-साधारण का अपने लिए अपने द्वारा निर्मित नियम है, जिसका महत्त्व सर्वकालिक और सार्वदेशिक है।

कहावतों की प्रयोग-प्राचीनता

कहावतों के प्रारम्भ के सम्बन्ध में निश्चित रूपेण कुछ भी कहना नितान्त असम्भव है। पर जब भी मानव ने अपनी बात को कमजोर पड़ते देखा होगा तो निश्चयतः किसी न किसी कहावती वाक्य को पुष्टि हेतु प्रस्तुत किया होगा। उस सर्वमान्य नियम ने अकाट्य तर्क का काम किया होगा। फिर क्या था! एक के बाद एक परिस्थिति के अनुरूप वाक्य गठित होते रहे और जन-साधारण उन्हें ग्रहण करता रहा। मानव मात्र की यह इच्छा रहती है कि प्रत्येक व्यक्ति उसकी बात को स्वीकार कर ले। बात को मनवाने की जैसी अमोघ शक्ति कहावतों में है वैसी अन्य किसी में नहीं। बड़े-बड़े भूपति अपने दंड के सहारे भले ही किसी को अपने अधिकार में लेने में सफल हुए हों पर वे उनके मुँह को कदापि बन्द नहीं कर सके और न ही उनमें शारीरिक बल-प्रयोग से वैचारिक परिवर्तन हुआ। पर दूसरी ओर छोटे-से कहावती वाक्य ने सदैव प्रतिवादी के मुँह पर ताला लगाये रखा है। छोटी पर सर्वशक्तिमान कहावत के समक्ष बड़ों-बड़ों को नतमस्तक होना पड़ता है। कहावतें हमारे देश की अमूल्य निधि हैं जो हमारी प्राचीनता की परिचायक हैं।

वैदिक कालीन साहित्य पर दृष्टिपात करने से हमें अनेकानेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे, जिनमें कहावतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग हुआ है। वैदिक कालीन अति-प्रसिद्ध कहावतों में 'कण्वो के वैभूरवा पर्जन्यो वर्षति', और 'चतुर्वे सायम्' आदि प्रमुख हैं। कहावतों का सत्य एवं कहावतों का सन्देश काल और क्षेत्र की सीमा में बँध नहीं सकता। अतः उक्त दोनों कहावतें राजस्थान प्रदेश में 'काळी-कळायण विरखा करे' और 'आखिया दीठी परसराम कदै न कूड़ी होय' के रूप में आज भी प्रचलित हैं। पुराणों में भी 'आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज सदा भवेत्' जैसी कहावतें राजस्थान में 'आहारे व्यवहारे लज्जा क्यों करे' प्रसिद्ध हैं। रामायण और महाभारत में भी प्रभूत मात्रा में कहावतें मिलती हैं। रामायण की इस कहावत ने 'गर्जन्ति न वृथा शूरा निर्जला इव तोयदा' राजस्थान में यह रूप धारण कर लिया है—

'गरजणा बादळ वरसणा नी, भुसणा कुत्ता डसणा नी।'

स्मृति ग्रन्थों में भी कहावतों का प्राचुर्य है। महाकवि कालिदास के ग्रन्थों में भी कहावतों की बहुलता पायी जाती है। 'प्रियेषु सौभाग्यफला हि चारुता' और 'रिक्त सर्वो भवन्ति हि लघु पूर्णता गौरवाय' आदि कहावतों को कालिदास के ग्रन्थों में उचित स्थान मिला है। 'हृदे गभीरे हृदि चावगाढे-शंसन्ति कार्यावत र

हि सन्त' कहावत का 'नैषध चरित' में प्रयोग हुआ है। प्राकृत भाषा में राजशेखर विरचित 'कर्पूरमंजरी' में 'हत्थ कंकण किं दप्पणेण' प्रसिद्ध कहावत को स्थान मिला है। पाली भाषा में जातक कथाओं में भी कहावतें मिलती हैं। भगवान बुद्ध तो अपने उपदेशों में कहावतों का प्रचुर मात्रा में प्रयोग करते थे। चाणक्य की नीति में भी कहावतों का प्राचुर्य है। 'सुभाषितरत्नभांडागार' में तो कहावतों, सूक्तियों आदि का ही संग्रह है। अपभ्रंश के जैन कवियों ने भी अपने काव्यों में कहावतों का पर्याप्त प्रयोग किया है। आधुनिक काल में भी हम देखते हैं कि जिस कवि या लेखक ने कहावतों का अधिक प्रयोग किया है उन्हें ख्याति प्राप्त हुई है। वे उच्च कोटि के साहित्यकार माने गये हैं। उपन्यास सम्राट मुंशी प्रेमचन्द की प्रसिद्धि में यह भी एक कारण रहा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतवर्ष में कहावतों के प्रयोग की परम्परा अत्यन्त प्राचीन काल से रही है। इस परम्परा का एक छोर पुरावैदिक कालीन समाज से जुड़ा हुआ है और दूसरा छोर आधुनिक समाज तक है। आज भी समाज में जो व्यक्ति वार्तालाप, भाषण आदि के समय अधिकाधिक कहावतों का प्रयोग करता है तो वह सभासदों एवं श्रोताओं में आदर भी अधिक पाता है।

कहावतों का महत्त्व

एक व्यक्ति को कहावत से जितना व्यावहारिक ज्ञान प्राप्त हो सकता है उतना अन्य किसी स्रोत से नहीं। किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करें? इसके सम्बन्ध में किसी भी प्रदेश में अनेकों कहावतें मिल जायेंगी। 'जैड़ो बाजे बायरो ऊडी लीजे ओट' राजस्थानी कहावत में परिस्थिति के अनुकूल कार्य करने का सन्देश दिया गया है। परिवार और समाज में हमें सम्बन्ध को देखते हुए कैसा व्यवहार करना चाहिए यह भी हमें कहावतें ही सिखलाती हैं। 'बडो बीरो बाप बिरोबिर' यह बात कहावत ने ही तो हमें बतायी।

सद् और असद् के मेल से ही मानव-प्रकृति का निर्माण हुआ है अतः यदि कहावतें केवल सद् पक्ष को ही व्यक्त करती तो समाज में कहावतों का उतना आदर नहीं हो पाता। ऐसी परिस्थिति में कहावतों का आदर धर्म के बराबर ही होता। इस बात को हम नहीं नकार सकते कि पृथ्वी पर सदैव कोई-न कोई (चाहे अल्पसंख्यक ही क्यों न हो) धर्म विरोधी व्यक्ति हुए ही हैं। यदि कहावतें मानव की दोनों प्रवृत्तियों को उभारकर सामने नहीं लातीं तो उनका क्षेत्र भी संकुचित ही रह जाता। पर कहावतों ने तो दोनों ही पक्षों को उजागर किया है। यह तो व्यवहारकर्त्ता पर निर्भर है कि वह किस पक्ष को चुनता है। यहाँ परस्पर दो विरोधी तत्वों को प्रकट करने वाली कहावतें उद्धृत की जा रही हैं।

(१) 'नर्मं जका ने नारायण मिळे' अर्थात नम्रता रखने वाले को भगवान

मिलते हैं।

'जाता ई जरवाय दो हाथा अलग हिसाब।

(२) लाठा ई लटवा वरै (ओ) कुतवो वडी विताव।।'

इस कहावती दोहे का सन्देश ही यह है कि नम्रता से कुछ आना-जाना नही। मारपीट के आधार पर सब-कुछ किया जा सकता है। यही कारण है कि कहावतो का आदर सद् एव असद् दोनो प्रकार की वृत्ति वाले सामाजिको मे समान रूप से है।

धर्म, अर्थ, समाज, राज आदि समस्त पहलुओ से सम्बधित नीति इन कहावतो मे भरी पडी है। भारत की नीति सम्बन्धी कहावतो की समता किसी भी प्रदेश की नीति सम्बन्धी कहावतें नहीं कर सकती। भारत की नीति ससार के लिए अनुकरणीय रही है और रहेगी। विलियम्स शब्दकोश म लिखा भी गया है— 'नीतिशास्त्र के चातुर्य मे भारतवासी ससार मे अद्वितीय हैं।'[1] 'साचे रा बोल-वाला अर झूठे रा मुंह काळा', 'ऍंठवाडो खाय लेणो पर ऍंठवाडी बात नी करणी', 'धान रो काई मूगो, मिनख धण मूगो है' आदि कहावतें राजस्थान प्रदेश के वासियो की नैतिक भावना को प्रकट करने वाली कहावतें हैं।

कहावतो म कल्पना और अतिरजना नही होती। इनमे वर्णित घटनाएँ या विषय यथार्थ के पूर्णत निकट होते हैं। अत इन म धोखाधडी या छल-प्रपच होने का प्रश्न ही नही है। ये भलाई की बात भी बतायेंगी तो स्पष्टत और सभी को। इनका काम केवल निर्देशन देने का है। आगे की बात कर्त्ता पर निर्भर करती है कि वह उस बात का निर्वाह किस प्रकार से करता है। इन्हें अनुभव की दुहितायें कहा गया है। इनम वर्णित अनुभव घटित सत्य पर आधारित होते हैं। इनमे जो भी बात कही जाती है वह पूर्णत ईमानदारी के साथ कही जाती है। उस बात मे किसी भी प्रकार का घटाव-बढाव सम्भव नही होता है। इसी कारण गीता-कथाओ आदि की अपेक्षा ये अधिक विश्वसनीय और महत्वपूर्ण हैं।

सरलता, सूक्ष्म निरीक्षण की शक्ति, सारगर्भितता की दृष्टि स भी कहावतो का अक्षुण्ण महत्व है। इनका कलेवर बहुत ही छोटा होता है। समास शैली मे रचित होने के कारण सहज ही म याद हो जाती हैं। इनके पठन-पाठन एव कथन-श्रवण से पाठक, वक्ता एव श्रोता के ज्ञान मे वृद्धि भी होती है, अत इस दृष्टि से भी कहावतो का महत्व है। जीवन के प्रत्येक पहलू स सम्बन्धित होना एव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे प्रचलित होना इनकी जीवन्त शक्ति एव महत्ता को प्रकट करते हैं। इनकी भाषा घरेलू वातावरण की भाषा है। फलत ये किसी भी व्यक्ति के हृदय को आकर्षित करने की पूर्ण क्षमता अपने म रखती हैं। सक्षेप मे

---

1 Williams Dictionary, p 31

इसकी महत्ता के सम्बन्ध में यही कहा जा सकता है—

'मितं च सारं च वचो हि वाग्मिता'

'स्वल्पा च मात्रा बहुलो गुणश्च'

ग्रीक भाषा में भी इस सम्बन्ध में कहा गया है (muttun in purvo) अर्थात् कम में अधिक (*much in little*)।

कहावतों का वर्गीकरण

कहावतों के वैज्ञानिक एवं सार्वदेशीय वर्गीकरण की जटिल समस्या है। इसका प्रमुख कारण यह है कि एक ही कहावत विभिन्न प्रदेशों में अलग श्रेणी में परिगणित की जाती है। इसके अतिरिक्त कहावत का रूप सदा एक-सा नहीं रहता। इनमें प्रयोक्ता द्वारा न्यूनाधिक हेर-फेर कर ही दिया जाता है। यह हेर-फेर प्राय. शब्दों के स्थान में होता है। इसकी पुष्टि एक ही कहावत को दस व्यक्तियों द्वारा दस प्रकार से सुनने पर स्वत ही हो जाती है। फिर भी विद्वानों ने कहावतों को अनेक प्रकार से वर्गीकृत किया है। किसी के वर्गीकरण का प्रमुख आधार वर्ण्य-विषय रहा है तो किसी के वर्गीकरण का आधार कहावत का गठन रहा है। किसी ने भाषायी आधार पर वर्गीकरण किया तो अन्य किसी के वर्गीकरण में जाति का आधार प्रमुख रूप से रहा है। परन्तु यहाँ मुझे यही कहना है कि किसी जाति या राष्ट्र का कहावतों पर एकाधिकार नितान्त असम्भव है। थोड़े बहुत वैषम्य के अतिरिक्त प्राय सभी भाषाओं की कहावतें परस्पर साम्य रखती हैं। देश-भेद से कहावतों में रूप-भेद या शब्द-भेद अवश्य आ गया है पर भाव-भेद तो नहीं ही है। और यदि है भी तो अत्यल्प। इस सम्बन्ध में पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है कि इसका प्रमुख कारण मानवीय प्रकृति की एकता है। अत कहावतों के वर्गीकरण का प्रमुख आधार वर्ण्य विषय या उनका गठन—इन दोनों में से एक ही होना चाहिए। इन पर प्रयोक्ता और समय का भी बन्धन नहीं हुआ करता। फलत. वर्गीकरण के लिए इन्हें आधार रूप में व्यवहृत किया जा सकता है।

हमारी दृष्टि से वर्ण्य-विषय को ध्यान में रखते हुए कहावतों के निम्नलिखित वर्ग किये जाने चाहिए।

(१) मानव एवं मानवीय जीवन से सम्बन्धित कहावतें,

(२) ईश्वर एवं प्रकृति से सम्बन्धित कहावतें।

राजस्थान प्रदेश की कहावतों को स्थूल रूप से उक्त दो वर्गों में विभक्त करने के पश्चात् हमें राजस्थानी कहावतों को अन्य उपवर्गों में विभाजित करते हुए विवेचित करना उचित प्रतीत होता है।

(१) मानव एवं मानवीय जीवन से सम्बन्धित कहावतें

मनुष्य को सृष्टि का सर्वश्रेष्ठ प्राणी स्वीकारा गया है। साहित्य और विज्ञान के माध्यम से मानव ने अपनी भावनायें और विचार व्यक्त किये हैं। उसके क्रियाकलापों और उस द्वारा प्रणीत कृतियों के आधार पर मनुष्य के सही रूप को आंका जा सकता है। कहावतें भी मानव निर्मित एक ऐसा साधन हैं जिससे मनुष्य का ही मूल्यांकन किया जा सकता है। राजस्थान में हमें मानव और तत्सम्बन्धी नाना विषयों, तथ्यों और पक्षों को उजागर करने वाली अनेकानेक कहावतें मिलती हैं। क्या गात और क्या बात, क्या जीवन और जगत, क्या खानपान और क्या वेशभूषा, क्या सौन्दर्य और क्या औदार्य, क्या धर्म और क्या कर्म, क्या नीति और क्या प्रतीति, क्या व्यवहार और क्या दुराचार, क्या भाव और क्या दाव (पेच), क्या व्यवसाय और क्या उपाय (परिस्थिति-सापेक्ष), क्या घर और क्या बाहर, क्या स्वार्थ और क्या परमार्थ आदि अनेकानेक विषयों और जटिल प्रश्नों का स्पष्टीकरण इन कहावतों में हुआ है। इस वर्ग में हम मानव एवं मानव-जीवन से सम्बन्ध रखने वाली कहावतों का, विभिन्न उपशीर्षकों में रखते हुए, अध्ययन करेंगे।

(अ) मनुष्य से सम्बन्धित कहावतें

इस वर्ग में परिगणित की जाने वाली कहावतों में मनुष्य की महत्ता को प्रकट किया गया है। कुछ कहावतें ऐसी भी मिल जाती हैं जिनमें नर-नारी की देह-यष्टि का चित्रण मिलेगा।

नारी की महानता और उसकी बुराई व्यक्त करने वाली भी अनेकानेक कहावतें मिल जायेंगी, इस प्रकार की कहावतों में पुरुष की अपेक्षा स्त्री से सम्बन्ध रखने वाली कहावतें अधिक मिल जायेंगी, इन कहावतों में नारी-जीवन की असहायावस्था, नारी-मनोविज्ञान एवं नारी की उच्छृंखल कामभावना का चित्रण मिलता है, उसके वैधव्य जीवन की निरुपायता भी इन कहावतों में रुदन करती मिलेगी। ऐसी कहावतों से सिद्ध किया जा सकता है कि नारी पर कितने अत्याचार किये जाते थे। मनुष्य ने सदैव से नारी को भोग की वस्तु ही समझा है। इन कहावतों से पुरुष की तुच्छ वृत्तियों का आभास होता है। उदाहरणार्थ कुछ कहावतें प्रस्तुत की जा रही हैं—

'मिनख जोई जै रुवाळो, लुगाई जोई जै सूंवाळी।'
'मरद तो मूछाळ वको, नैण वको गोरिया।'
'मिनखा री माया, रुखां री छाया।'
'लुगाई में अक्कल हुवती तो जान में नी ले जावता।'
'लुगाई री अकल अंडी में व्है।'
'छोटी-मोटी कामणी, सगळी विसरी बैल।'

'गाडी रौ फाचरौ अर लुगाई रौ टाचरौ कूटीया इज काम दै।'
'बेटी रहे आप से नी तौ नी रहे सगे बाप सो।'
'बैल बैरागी वाकडो, चोथो विधवा नार।'
'ऐता तो भूखा भला, धाया करै बिगाड।'

इसी वर्ग की कहावतो मे कुछ ऐसी मिलती है, जिनसे मानव की मानसिक वृत्तियो का ज्ञान होता है। इन कहावतो मे मानव की सुप्रवृत्तियाँ एव दुष्प्रवृत्तियाँ देखने को मिलती है। 'आप मरता बाप किणनै याद आवै', 'म्हारी म्हारी छाळिया नै दूधो दहियो पावू' कहावती वाक्य स्वार्थी व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है। मनुष्य बहुत ही आलसी वृत्ति का है, उसे तो केवल बहाना चाहिए। तभी तो ऐसे व्यक्तियो को दृष्टि मे रखकर ही कहा गया है कि 'आख मे पडियो तुस, औ इज लाघौ मिस।' 'खीरा आई खीचडी टीलो आयो टप्प।' इस वाक्य के माध्यम से अवसरवादी को मृदु उपालभ दिया गया है। स्वादप्रिय और कामुक अपनी आदत को छोड नही सकता।[1] जिसका स्वभाव प्रारम्भ से जैसा होता है, मृत्युपर्यन्त वैसा ही बना रहता है। तभी तो कहा गया है कि—

'ज्या रा पडिया सुभाव, जासी जीव सू।
नीब न मीठी होय, सीचौ गुळ घी सू॥'

मनुष्य के जीवन को तीन अवस्थाओं मे—बचपन, यौवन एव वृद्धावस्था, विभक्त किया गया है। इन तीनो अवस्थाओं के सम्बन्ध मे भी अनेकानेक कहावतें प्रचलित है। कुछ द्रष्टव्य हैं—

'टाबरिया घर बसतौ व्है तौ बाबो बूढी बयू लावे' मे बालपन की नासमझी की ओर सकेत है, तो 'टाबरिया राम रा रूप व्है' मे बालपन को श्रेष्ठ ठहराया गया है। यौवन चला जाय तो कुछ नही पर यौवन का प्राण (नखरा) नही मिटना चाहिए, 'जोबनिया थू भलाई जाजे, पण थू मत जाजे टहरका।' इसीलिए तो कहा गया है कि 'एक रूप रूप, दस रूप कपडो, सौ रूप गेणो अर हजार रूप नखरौ।' यद्यपि वृद्धावस्था को अनुभवो का निचय कहा गया है फिर भी प्रत्येक व्यक्ति उससे छुटकारा पाकर पुनः यौवन को प्राप्त करना चाहता है, जैसा कि निम्न संवादात्मक कहावत से सिद्ध होता है—

'कूडी चाले डोकरी, कांय रा काडै खोज?
काई थारो गम गियो, पूछै राजा भोज?'
'म्हारे सू थारै गई, जिणरा काडू खोज।
थारे सू ई जायगी, मत गरबावै भोज॥'

मनुष्य के लिए समाज के समान परिवार भी कम महत्त्वपूर्ण नही है। जन्म

---

१ दाढ़ रस अर काड (काम) रस छूटै कोयनीं।

से मरण-पर्यंत उसका पारिवारिक सदस्यों एवं विचित्र सगे-सम्बन्धियों से अटूट सम्बन्ध रहता है। इन सम्बन्धों में माँ-बाप, भाई-बहिन, देवर-जेठ, पति-पत्नी, पुत्र-पुत्री, सास-ससुर आदि प्रमुखतम हैं। इन सम्बन्धों के बारे में भी अनेक कहावतें प्रचलित हैं, जहर खाना स्वीकार्य है, पर खायेंगे तो माँ के हाथ का ही। वैमनस्य भले ही हो, भाइयों के साथ बैठना ही हितकारी है।[1] माता-पिता तो मीठे मेवे के समान है। 'भाईह तो मीठा मेवा हैं', इनकी 'गाळियां' भी 'घी री नाळियां' का काम देती हैं। बहिन की स्वार्थी प्रवृत्ति एवं भाई की निस्वार्थ भावना को दृष्टि में रखते हुए ही कहा गया है—'होत री बैंन, अणहोत री भाई।' पुत्री-जन्म के सम्बन्ध में यह माना गया है कि 'बेटी भली न एक', क्योंकि 'बेटी जाई रे जगनाथ ज्यारा हेठे आया हाथ' आज पति घर पर नहीं है तो पत्नी को किसी का भी डर नहीं।[2] बात भी सही है, उस पर आज पति का अंकुश जो नहीं है। 'जमीं जोरू जोर की' और यदि यह 'जोर' (अंकुश) हट जाय तो वह और की हो जाती है। मुंहसामने वह पत्नी हो सकती है, पीठपीछे की कौन जाने! तभी तो कहा ही है 'मूंडे आगे नार, पीठ पीछे पराई।' वह निरंकुश 'डूवळे जेठ' को 'देवर बरोबर' ही मानती है। पर सारे कामों के बिगड़ जाने का उत्तरदायित्व बहू पर ही होता है, 'अड़ो दड़ो नै बहू माथे पड़ो', लेकिन परिवार में जहां तक मतैक्य है तो कोई कुछ भी नहीं बिगाड़ सकता और ज्योंही मत-विभिन्नता पनपी नहीं और शांति वहां से खिसकी नहीं—'अेक घर में दो मता, कुसळ काय सू होय।'

(आ) विभिन्न जातियों से सम्बन्धित कहावतें

आज की बात और है, पर बहुत वर्षों पहिले इस प्रदेश में केवल दो धर्माव-लम्बी लोग (हिन्दू और मुसलमान) ही निवास करते थे। अतः आज भी हमें इन धर्मों से सम्बन्धित कहावतें ही मिलती है। हिन्दू धर्म की तुलना में मुसलमानों के बारे में अधिक कहावतें मिलती हैं। इसका प्रमुख कारण यही है कि यहाँ पर वास करने वाले हिन्दू विभिन्न जातियों और उपजातियों में वर्गीकृत हैं। अतः अधिकांशतः कहावतों का सर्जन जातियों और उपजातियों के आधार पर ही हुआ और दूसरी ओर यहां के लोगों ने मुस्लिम धर्म के लोगों का एक वृहद् जाति के रूप में ही ग्रहण किया और उससे सम्बन्धित विचित्र पहलुओं पर अनेकानेक कहावतें रच डाली। इसके अतिरिक्त एक बात और भी है कि यहां के लोगों ने हिन्दू धर्म की बुराई को व्यक्त करने वाली कहावतें नहीं बनायी, जबकि मुसलमानों की बुराइयों को लेकर अत्यधिक मात्रा में कहावतों का प्रचलन इस प्रदेश में पाया

१ खावणो मां रै हाथ रो व्हो भलाई वैर ई
  बैठणो भायां में व्हो भलाई वैर ई।

२ म्हारो मोयो घरै कोनी, म्हनै किणी रो डर कोनी।

जाता है। यह बात दूसरी है कि यहाँ पर वास करने वाली विभिन्न हिन्दू जातियो की बुराइयो के बारे म काफी कहावतें प्रचलित हैं। 'हिन्दू मरे जठै है हद है' कहकर प्रकारांतर से प्रत्येक हिन्दू को पृथ्वी माता का पुत्र ही साबित किया गया है। पचभूत-विनिर्मित शरीर की बात भी उक्त कहावत म स्पष्ट हो जाती है। मुसलमानो की सस्कृति, उनके रीति रिवाज, उनकी विचारधारा आदि को व्यक्त करने वाली कुछ कहावतें उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

'काके री धी, खीचडी माथे घी' चचेरी बहिन स शादी के सम्बन्ध मे।

'असल मियँ री आ इज जाण, भीतर बीबी आदी भाण।'

'आधै आगण सासरा नैं आधै आगण पीर।'

'मीयाजी रोवो क्यू ? कै वदे री सक्ल इज अैडी है।'

'मीयाजी मर ग्या पण टाग ऊची री।'

अब हम विभिन्न जातियो के सम्बन्ध मे प्रचलित कहावतो पर आते हैं। जाति सम्बन्धी कहावतो मे हम दो प्रकार की कहावतें मिलती हैं। एक प्रकार की कहावतें वे हैं जिनके आधार पर कहावत मे वर्णित जाति के गुण-दोषो का ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। और दूसरे प्रकार की कहावतें वे हैं जिनसे तज्जातीय गुण-दोष का ज्ञान नही होता। ऐसी कहावतो से प्रत्यक्षत उस जाति का नाम या उस जाति का कर्म या उस जाति से सम्बन्धित कोई बात प्रकट की जाती है पर परोक्षत उससे कोई अन्य भाव, विचार या धारणा ध्वनित होती है। यथा— 'तैली सू खळ ऊतरी, हुई बळीते जोग' और 'माळी सीचैं सौ घडा रुत आयां फळ होय।' ये दो कहावतें ऐसी हैं जिनमे प्रत्यक्षत 'तेली' और 'माली' विशिष्ट जातियो तथा 'खळ ऊतरी' और 'सीचै सौ घडा' तज्जातीय कृत्य की बात कही गयी है, पर आवश्यक नही है कि ऐसी कहावतो का प्रयोग केवल उक्त जातियो के लिए ही किया जाय। बिना महत्त्व को वस्तु एव धैर्य धारण करने की भावना को व्यक्त करने के लिए भी उक्त कहावतो का प्रयोग किया जा सकता है। पर इसके विपरीत 'अग्गम बुद्धि बाणियो, पिच्छम बुद्धि जाट' ऐसी कहावतो का प्रयोग किसी अन्य अर्थ म हो ही नही सकता। कुछ विद्वानो ने इस सम्बन्ध मे भारी भूल की है कि केवल जाति का नाम देखकर ही उस कहावत को उस जाति की कहावत बता दिया है। इसके अतिरिक्त एक सज्जन ने तो जाति विशेष मे प्रचलित समस्त कहावतो को ही तज्जातीय कहावतें स्वीकार कर लिया है। 'मा पर पूत, पिता पर घोडो, घणो नही तो थोडमथोडो' यद्यपि यह कहावत भाबी-जाति की कहावत है पर इस कहावत का प्रचलन अन्य जातियो मे भी तो हो सकता है। ऐसी सामान्य कहावतें किसी जाति विशेष की सम्पत्ति नही हो सकती। जातीय कहावतो मे तो उन कहावतो को ही स्थान मिलना चाहिए, जिनके आधार पर जातीय चरित्र का निर्माण किया जा सके। जाति-विशेष म प्रचलित असख्य

कहावतें उस जाति की बौद्धिक गरिमा की परिचायक होती हैं जबकि जाति-विशेष से सम्बन्धित कहावतें उस जाति के चरित्र को निर्मित करने वाली होती हैं। अतः जाति में प्रचलित कहावतों को जातीय चरित्र (सद्-असद् वृत्तियों के सम्बन्ध में जो बातें कही गयी हैं) निर्णायक कहावतों की कोटि में परिगणित करने की भूल करना जातीय चरित्र की कहावतों के साथ भारी अन्याय करना है। इसके अतिरिक्त कुछ कहावतें ऐसी भी मिलती हैं जिनमें एकाधिक जातियों का तुलनात्मक चित्रण पाया जाता है। जाति सम्बन्धी कहावतों से हमें जाति-विशेष के गुण-दोषों एवं पैतृक व्यवसायों का ज्ञान होता है। इन कहावतों को यदि जातीय मनोविज्ञान के विचित्र अध्याय कहा जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी। अब हम इन कहावतों के उदाहरण प्रस्तुत कर रहे हैं—

ब्राह्मण

'बामण हाथी चढ़ियो है मागे।'
'बाळ बागड सू नीपजै बुरी बामण सू होय।'
'बीद मरो बीदणी मरो बामण रै टक्को त्यार।'
'गाया बाया बामणा मागियां है भला।'
'काळ कुसम्मै नी मरै, बामण बकरी ऊट।'
'बो मागे, वा फिर चरै, वो सूखा चावै ठूठ।'

राजपूत

'राजपूत री जात जमी।'
'रजपूती मौरा में रळगी ऊपर रळगी रेत।'
'ठाकर म्हा ठग रिया, रिया मुलक रा चोर।'
'रयड कदैयन छोडिये, जद तद करै बिगाड।'
'रयड रीझै गीता सू।'

बनिया

'वाणियो आट में दें कै खाट में।'
'बिणजी लाग्यो बाणियो कूट लागी गाय।
बावडै तो बावडे, नी तो अळगा नीकळ जाय॥'
'बाणिया मित न वेस्या सती, कागा हस न गधा जती।'
'कूरा करसा खाय, गहू अरोगे बाणिया।'
'बाणिया थारी बाण, कोई नर जाणै नहीं।'
'पाणी पिये छांण, लोही अण छाण्यो पिये।'

जाट

'जाट न जायो गुण करै।'
'नट बुध आय जावै पण जट बुध को आवै नी।'

'जाटा री छोरी अर बामोसा री आण।'
'जाटा रो छोरो अर फाफरे बिना दोरो।'
'धायो जाट गाडी रो वट काढ़ै।'

नाई

'नाई वात गमाई।'
'नाया री जान में सगळा ई ठाकरै।'
'नाई दाई वैद कसाई, इतरां रो सूतक कदै न जाई।'
'आख आवण घर सिळगावण, सोवड वहनड नाव।
नाई ठाकर भाट राजा, पाचू नाव कुनाव।।'
'जगतन को भगतण कहै, कहै चोर को साहू।
नाई को ठाकर कहै, तीनों उलटी राह।।'

डोली

'उरतो डूम सुमराज करै।'
'गाम लाइणै चढियो अर डूमणी तिवारी मागे।'
'कारीगरां कमनीगरां भळें वजारां हट्ट।
जो प्रेता मे ना मिलू, डूमा मे अलबत्त।'

दरोगा

'सौ गोला घर सूनो।'
'गोला फिरै गुण करै ओगणगारा आप।
माता जिणा री लावली, सोळे ज्यारे बाप।।'
'गोली राडपराया धोवती फिरे अर आपरा धोवता लाजा मरै।'

ढेढ (भांबी)

'ढेढ नै सुरग में ई बेगार।'
'ढेढां री दुरासीस सू ढाव थोडाई भरे।'
'ढेढणी ही अर ठाकर सा वतळायनी।'

भील

'अणमणिया भील मन जाणिया पलाणे।'
'भील रे काई ढील।'

हिजड़ा

'हिजड़े री कमाई मूछ मूडाई मे भी।'

विभिन्न जातियो की तुलनात्मक कहावतें—

'अगम बुद्धि बाणियो, पिच्छम बुद्धि जाट।
तुरत बुद्धि तुरकडो, बामण सम्पट पाट।।'
'वाता रीझै बाणियो, रागा (गीतां) सू रजपूत।

बामण रीझै लाडवा, बावळ रीझै भूत ।।'
'जगळ आट न छोडिये, हाटा विचै किराड ।
रघड कदेयन छोडिय, जद तद करै बिगाड ।।'

(३) ऐतिहासिक और स्थानीय कहावतें

विशिष्ट चरित्रों, मानव-जीवन (वैयक्तिक और सामूहिक) की उल्लेख्य विविध घटनाओं को प्रकाश म लाने का कार्य इतिहास द्वारा ही सम्पन्न होता है। यद्यपि इन कहावतो का सम्बन्ध भी मनुष्य स ही है, तथापि ऐतिहावृत्त को प्रकाशित करने वाली होन के कारण ही इन कहावतो को ऐतिहासिक कहावतो का नाम दिया गया है। कुछ मनुष्यो की महत्ता के कारण उनसे सम्बन्धित स्थान भी महत्ता पा जाते हैं। ऐस स्थानो का भी ऐतिहासिक महत्व होता है। यहाँ पर हम ऐसी कहावतो का ही विवेचन करेंग। यहाँ यह उल्लेख्य है कि इन कहावतो का इतिहास कल्पना रहित इतिहास नही है। इन वृत्ता के साथ कई अद्वितीय घटनाएँ भी जुड गयी हैं। कुछ ऐसे चरित्र और घटनाएँ भी मिलेंगी, जिनका समय निर्धारण आज असम्भवप्राय ही है। इतिहास के साथ कल्पना के सम्मिश्रण का प्रमुख कारण यही है कि यहाँ के लोग उदार चरित्रो के कृत्यो का यथार्थ चित्रण न करके अतिरंजित चित्रण करने मे सिद्धहस्त रहे हैं। चरित्र को ऊँचा उठाने के सामने वे वास्तविकता को विस्मृत कर जात हैं। इसीलिए अलबरूनी ने लिखा है—

'The Hindus do not pay much attention to the historical order of things'[1]

इतना होत हुए भी हम देखते है कि ऐतिहासिक कहावतो के रूप मे यहाँ का इतिहास विश्रृंखलित रूप मे पडा है। आज इन सभी को सुश्रृंखलित करने की महती आवश्यकता है। इन कहावतो म एतिहासिक चरित्र झाँकते हुए दिखायी देते हैं। कुछ कहावतो म ऐतिहासिक घटनाएँ बिखरी पडी हैं तो कुछ कहावती सूत्रो में ऐतिहासिक चरित्रो के अनुभव पिरोय हुए है। इन ऐतिहासिक कहावतो मे कुछ कहावतें तो ऐसी हैं जो सम्पूर्ण राजस्थान प्रदेश म प्रचलित हैं और कुछ कहावतें ऐसी हैं जो अचल-विशेष म ही प्रचलित हैं। इसका प्रमुख कारण चरित्र या घटना का प्रसिद्धि प्रसार ही है। एतिहासिक घटना एव चरित्रो को मुखरित करने वाला एक कहावती दोहा दृष्टव्य है—

'भीमा थू माटो मोटे मगरे मायला ।
कर राख काठो, हाकर ज्यू सवा करू ।।'

कुछ ऐतिहासिक कहावतें ऐसी भी है जो प्रेमियो के प्रेम का पावन सन्देश

---

1 Albrune's Indıs

देती रही हैं। उनके प्रेम पर आधारित अनेक कहावती पद्य इस प्रदेश मे प्रचलित हैं। आज आवश्यकता इस बात की है कि इतिहासकार इन प्रेमियो के ऐतिहासिक महत्त्व को सिद्ध करने के लिए लोक-प्रचलित इन दोहो का भी सहारा लें। एक ऐसा ही दोहा उद्धृत किया जा रहा है—

'तरवर जा ही मोरिया, सरवर जा ही हस।
श्राधा जा ही मारमली, दारु जा ही मस॥'

जेठवे और ऊजळी के दोहो मे से भी अनेक दोहे कहावती पद्यो के रूप मे व्यवहृत किये जाते हैं, 'मान रखे तो पीव तज, पीव रखे तज मान' दोहा भी ऐतिहासिक घटना एव ऊमादे भटियाणी के चरित्र को उजागर करता है। एक कहावती दोहा यहाँ ऐसा प्रस्तुत किया जा रहा है जिसमे घटना-वर्णन के साथ ही परिस्थिति-सापेक्ष नीति वर्णन भी हुआ है, यथा—

'सोटा रा सटीड वाजे, रीठ वाजै माटा री।
अजो कहे जगमाल रा, मान रेव म्हाटा री॥'

अब हम स्थान सम्बन्धी कहावतो पर आ जाते हैं। इस प्रकार की कहावतो मे स्थान का गुण-वैशिष्ट्य या बुराई का वर्णन मिलता है। कुछ कहावतो मे स्थान-विशेष की प्रसिद्ध वस्तु का उल्लेख किया गया है—

'बैगढ लेसी के बिलाडी ? बिलाडी माथे पटकी सिलाडी, म्हे तो बैगढ लेसा।'

'जेपर नगर भिरवा छाजा, लाग मजूर लुगाई राजा।'

'कळकते री घारो बाप सू बेटो न्यारो।'

(ई) स्वास्थ्य एवं भोज्य-पदार्थ सम्बन्धी कहावतें

राजस्थान मे सात सुख[१] माने गये हैं जिनमे सबसे पहला सुख 'नीरोगी काया' का स्वीकारा गया है। पर काया को 'नीरोगी' रखने के लिए जन-साधारण मे इन कहावती-औषधियो का ही प्रयोग किया जाता है। आज भी ऐसे अनेक व्यक्ति मिल जायेंगे, जो दवाखानो और चिकित्सको मे विश्वास नही रखते। उनके लिए तो अपने पूर्वजो के अनुभव-सिद्ध कथन ही अचूक दवा सिद्ध होते हैं। इस सम्बन्ध मे प० रामनरेश त्रिपाठी के विचार उल्लेख्य हैं—'गाँव के लोगो ने हजारो वर्षों के पुराने स्वास्थ्य सम्बन्धी अनुभवो को कहावतो की छोटी-छोटी डिब्बियो मे भरकर रखा है, जो गाँव के गले-गले मे लटकती मिलेंगी। उनके अनुभव बडे सच्चे

---

१ पैलो सुख नीरोगी काया, दूजो सुख घर म माया।
तीजो सुख पुतर हुयाकारी, चोथो सुख पतिवरता नारी।
पाचवो सुख राज म पासा, छठो सुख सुरथाने वासा।
सातवो सुख विद्या फळदाता, सातू सुख रच्या विधाता।

और लाभदायक साबित हुए हैं।"

लोक ने प्रत्येक व्यक्ति को स्वस्थ रखने के लिए उसके खान-पान के सम्बन्ध में कुछ नियम बनाये हैं। यदि कोई इन नियमों का पालन करता रहे तो बीमारी नजदीक ही नहीं फटक सकती। कुछ नियम इस प्रकार हैं—

(१) पाणी पीजे छाण, गुरु कीजे जाण।
(२) मूळा मूळा कदेय न खाइये, जे खाइये परभात।
(३) जीम जीम दौड़े वं रे लारे मौत दौड़े।

किस समय कौन सी वस्तु नहीं खानी चाहिए, इस सम्बन्ध में भी अनेक कहावतें प्रचलित हैं—

'चैतं गुळ वेसाखं तेळ, जेठे पथ असाढे वल।
सावण साग, भादवें दही, क्वार करेला कातो मही।
अगहन जीरो, पूस धाणा, माहे मिसरी फागण विणा।'

हमारे दैनिक भाजन एवं भोजन के निर्माण में काम आने वाली समस्त वस्तुओं को लेकर भी अनेकानेक कहावतें पायी जाती हैं। यथा—

'लूण विना पूण।'
'खाड विना मोठो राड रसोई।'
'सीरो मता ने सुखदाई जिणमें दूणी खाड मिळाई।'
'म्हाने मीठी लागे राबड़ी, जिणमें दात लागे न जावडी।'

भोजन का हमारे विचारों पर भी प्रभाव पड़ता है। देखिये ठीक ही तो कहा है—

'जैसा खावै अन्न वैसा चाले मन्न।'

(ज) धन माया से सम्बन्धित कहावतें

स्वार्थी संसार में मनुष्य की पूछ नहीं होती पर पैसे की पूजा की जाती है। इस परिस्थिति में इनसे सम्बन्धित सैकड़ों कहावतों का मिल जाना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। पैसा मनुष्य का हरण कर लेता है अर्थात निर्धन व्यक्ति महत्त्वहीन होता है और पैसा ही मनुष्य को आदरणीय बना देता है।[2] जहाँ पैसा होता है वहीं और अधिक पैसा आता है।[3] जो निर्धन है उसकी समाज में इज्जत नहीं होती। पैसा चला जाता है, मनुष्य का ईमान भी चला जाता है।[4] पैसे वालों से सभी प्यार करते हैं। सभी उससे अपना सम्बन्ध जोड़ते हैं।[5] वैरागी बुद्धि भी

---

१ हमारा ग्राम-साहित्य, पृ० २४८
२ टको हरता कर टको ई करता।
३ धन धन धन धावे।
४ धन जावे जणांरा ईमान जावे।
५. धन वाले रा से है साथू।

पैसे बिना पगु हो जाती है।[1] परन्तु इसी समाज मे कई लोग ऐसे भी मिलते हैं जो पैसे को धूल के समान गिनते हैं। उनकी दृष्टि मे मानव का आदर है, पैसे का नही। वे व्यक्ति ही सच्चे अर्थों मे मानव हैं। वे पैसो को हाथ का मैल समझते हैं।[2] कुछ शान्त प्रकृति वालो ने पैसा प्राप्ति का स्रोत धर्म बताया है—'धरम करिया धन बधै।'

आभूषण सम्बन्धी कहावतें भी इसी श्रेणी मे रखी जायेंगी। राजस्थान मे आभूषण के प्रति लोगो के मन मे अधिक प्रेम पाया जाता है। यहाँ तक कि यहाँ पर आभूषण की अधिकता ही धनवान होने की सूचक है। जिसके घर मे जितने अधिक गहने, वह उतना ही अधिक धनी कहलायेगा। इसका प्रमुख कारण है कि यदि व्यक्ति के पास रोकड धन-राशि हो तो उसे किसी भी समय खर्च किया जा सकता है, इसके विपरीत आभूषणो का तो व्यय होने न रहा। बहुत बुरा समय आने पर आभूषण ही तो मनुष्य की इज्जत बचा लेते हैं। किसी के यहाँ गिरवी रखे और धन प्राप्त कर लिया और ज्योही पुन पैसा पास मे आया कि उन्हे छुडा लिया। तभी तो गहने को सम्बन्धी के समकोटि का माना है—'गैणो नै गिनायत अबखी मे आडा आवै।' गहने की सार्थकता निम्न कहावत स और भी अधिक स्पष्ट हो जाती है— गैणो घाया रो सिणगार, भूखा रो आधारा।'

(ऊ) व्यवसाय सम्बन्धी कहावतें

मनुष्य को अपने एव अपने परिवार के भरण पोषण के लिए कुछ-न-कुछ उद्यम करना ही पडता है। राजस्थान मे प्रमुख रूप स तीन व्यवसाय—खेती, व्यापार एव नौकरी—अपनाये गये। इन तीनो के सम्बन्ध मे कई कहावतें प्रचलित हैं।

कहावतो से ध्वनित होता है कि व्यापार सभी प्रकार के व्यवसायो मे सर्वश्रेष्ठ है। 'नौकरी रै अर नकारे रै बैर है' मे बताया गया है कि नौकर को कितना सहनशील एव सब्र करने वाला बनना पडता है।

(ए) राज सम्बन्धी कहावतें

राजा का कार्य प्रजापालन था। पर कई राजा अपन कर्त्तव्य को भूल बैठे। उनकी लूट-प्रवृत्ति से प्रजा की नाक मे दम आ गया। तभी तो बेचारी जनता ने इन शब्दो मे प्रार्थना की है—'ईसवर रै घर री बुलावो आय आजो, राज रै घर री बुलावो मत आजो।' निर्बुद्धि राजा लोगो को केवल अपने राज्य-विस्तार एव राजत्व के स्थायित्व से मतलब था। प्रजा के हिस्से रोना-कलपना ही था। 'ठाकर ने ठकराई सू मतलब, रया री भलाई रायतौ व्हो' कहावत इसी सच्चाई को प्रकट करती है। इन लोगो की वडी पहुँच होती थी। किसी भी छिपे या भागे

---

१ पईसे बिना बुध बावडो।
२ पईसो तो हाथ रो मैल है।

व्यक्ति को ये प्राप्त कर सकते थे। इसीलिए कहा गया है—'जमींदार रै हाकम हाथ व्है।' राजा, ठाकुर और जमींदार की समान प्रवृत्ति को ध्यान में रखते हुए हमने इन सभी को एक श्रेणी में ही विवेचित किया है।

(ऐ) लोक विश्वास एवं शकुन सम्बन्धी कहावतें

यद्यपि आज के युग में प्रत्येक व्यक्ति के अपने विश्वास हैं तथापि आज भी लोक-प्रचलित विश्वासों की सत्यता असंदिग्ध है। देहयष्टि के आधार पर लोक किस प्रकार व्यक्ति के मानस के सम्बन्ध में विचार व्यक्त कर देते थे, यह आश्चर्यान्वित कर देने वाली बात है। 'सिर मोटो सपूत रौ अर पग मोटो कपूत रौ' कहकर स्पष्ट कर दिया कि जिस व्यक्ति का सिर बड़ा होगा वह सपूत होगा और जिसका पैर बड़ा होगा वह कपूत होगा। कितना सच्चा तथ्य है। जिसका मस्तिष्क विकसित होगा वह निश्चित रूप से सपूत ही तो होगा। आज लोग कहावत में प्रयुक्त शकुनों के आधार पर ही उसका मूल्यांकन करते हैं और कहावत के सत्य को निर्मूल करने का बाल प्रयास करते हैं। आज आवश्यकता है कहावत की अन्तरात्मा को पहिचानने की। और इसके लिए हमें ग्रामीणजनों का सहारा लेना होगा, जिनका कहावतों से पर का रिश्ता है, वे ही इनकी रग-रग को पहिचानते हैं। कब किस कार्य को प्रारम्भ करना चाहिए, इस सम्बन्ध में भी हमें लोक विश्वासों का सम्बल ग्रहण करना चाहिए।

शकुन सम्बन्धी धारणाओं का प्रकटीकरण भी लोक-विश्वासों के रूप में हुआ है। विस्तारभय से कुछ ही शकुन सम्बन्धी कहावती वाक्य उद्धृत किये जा रहे हैं—

'....आटो काटो घी घड़ो, खुल्ला केसा नार
डावो भलो न जीवणो।'
'छींकत खावे छींकत पीवे, छींकत रहिये सोय।
छींकत पर घर कदेय न जाय, ताटो याजी होय॥'

(ओ) भाग्य एवं कर्मवाद सम्बन्धी कहावतें

जब भी मानव के किसी कार्य में बाधा या व्यवधान उपस्थित हो जाता है तो वह भाग्य एवं कर्म की बात करने लग जाता है। यह मानव द्वारा निर्मित मानव को ही हतोत्साहित करने का महामन्त्र है। भावना-प्रधान लोक ने तो भाग्य एवं कर्मवाद के सिद्धान्त को अपने गले का ही हार बना लिया है। वैज्ञानिक उन्नति के परिणामस्वरूप धीरे-धीरे इसका प्रभाव कम तो अवश्य हो रहा है पर अभी इसमें समय लगेगा। लोक के लिए भाग्य बुद्धि से भी बढ़कर है।[1] जो होना है वह होकर ही रहेगा, उसे कोई भी नहीं टाल सकता।[2] सभी अपने-अपने भाग्य का

१ अक्ल बड़ी क भाग।
२ अनहोणी होवे नहीं होणी होय सो होय।

खाते हैं।[1] कर्म-रेखा को भगवान भी नहीं मिटा सकते।[2]

इसी सन्दर्भ मे नीति और व्यवहार की बात करना भी समीचीन है। लोक मे कुछ कहावतें तो ऐसी प्रचलित हैं, जिनमे नैतिकता की बातें ही कही गयी हैं और कुछ कहावतें ऐसी हैं जिनमे व्यावहारिक ज्ञान और परिस्थिति-सापेक्ष (जिसे दूसरे शब्दो मे स्वार्थ-भावना सापेक्ष) नीति की बातें कही गयी हैं। पहले हम कोरी नीति सम्बन्धी कहावतें ही उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत कर रहे हैं और तदन्तर परिस्थिति सापेक्ष नीति की कहावतो का उल्लेख कर रहे हैं और तदनन्तर परिस्थिति सापेक्ष नीति की कहावतो का उल्लेख करेंगे।

'साचँ रा बोलबाला, झूठँ रा मूडा काळा।'
'साच नैं आच कोनी।'
'उधार दीजै, दुसमण कीजै।'
'जैं धन दीसैं जावतो आधो लीजैं बाट।'
'करो पाप, खावो धाप।'

(ग्रो) ध्वन्यात्मक कहावतें

लोक के अन्तस्तल को अखरने वाली अस्वाभाविक बातो के सम्बन्ध मे लोक ने करारी फब्तियाँ कसी हैं। इन कहावतो के व्याज से लोक ने वस्तुस्थिति का दिग्दर्शन कराया है। धन लिप्सु अन्याय से उपार्जित असीमित धन-राशि मे से थोडा धन दान स्वरूप भी निकाल दे, पर उसका यह कृत्य लोक को उचित प्रतीत नही होता। ऐसे लोगो के सम्बन्ध मे ही तो लोक ने यह चुटकी ली है—

'बारण री चोरी करैं, करैं सूई रो दान।
चढ चौबारैं देखसी, (कै) कद आवै वीमाण॥'

'आप गुरुजी कादा खावैं, लोगा ने उपदेश बतावैं' मे परोपदेश प्रवीण को आडे हाथो लिया गया है। ज्यादा 'ऊल फेल' करने वाले को तो गधे की श्रेणी मे ला बिठाया—'देस री गधी अर पूरब री चाल।' अपने अवगुणो की तरफ से अष्ट-प्रहर आँखें मूँदे रहने वाले और पर-दोषान्वेषक के सम्बन्ध मे भी इगित किया गया है। एक उदाहरण पेश करते हुए अपनी सीमा का उल्लघन करने वाले को सम्बोधित किया है— देखो रे! गूगलिया ई फूण करे।' यद्यपि बहुत वर्षों पहले ही मुस्लिम सस्कृति इस देश का अभिन्न अग बन चुकी थी, तथापि कुछ लोगो को मुसलमानो के रीति रिवाज और उनकी भाषा अखरती रहती थी। मियाजी वाळी फारसी' कहकर आज भी बेतुकी और अस्पष्ट भाषा बोलने वालो का उपहास किया जाता है। 'पढै फारसी, बेचे याट' से भी यही ज्ञात होता है कि

---

१ खावे आपरे भाग रो, काई बेटो काई बाप। करणी मार्गं आपरी, काई बेटो काई बाप।
२. करम में लिखिया कवर, काई करें मिनसकर।

जन-साधारण के हृदय में विदेशी भाषा के प्रति कितना आक्रोश एवं विरोध था।

(२) ईश्वर एवं प्रकृति से सम्बन्धित कहावतें

इस सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में मानवेतर विषयों के रूप में हमारे समक्ष ईश्वर और प्रकृति ही आते हैं। ईश्वर को विश्व-नियन्ता एवं प्रकृति को उसकी वशवर्तिनी माना गया है। भारतीय वाङ्मय में ईश्वर को पुरुष कहा गया है, और पुरुष व प्रकृति का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध बताया गया है। मनुष्य का जीवन भी ईश्वर एवं प्रकृति पर ही आधारित स्वीकारा गया है। राजस्थान प्रदेश में भी ईश्वर एवं प्राकृतिक उपादानों के सम्बन्ध में अनेक कहावतें मिलती हैं।

(अ) ईश्वर सम्बन्धी कहावतें

धर्मभीरु जन-मानस सभी कार्यों का मूल कारण ईश्वर को ही मानता है। उसके सामने किसी की भी नहीं चलती।[1] वह सर्वशक्तिमान एवं सर्वव्यापी है। जैसा कि इस कहावत में कहा भी गया है—'कण-कण मांय राम रो बासो, ज्यूं चकमक में आग।' इस प्रदेश में प्रचलित 'रांम' शब्द उस परमशक्ति का ही वाचक है। यहाँ का व्यक्ति अनेक प्रकार के अन्याय सहर्ष सहन कर लेता है, क्योंकि वह जानता है कि 'रामजी रै घरे न्याय है।' ईश्वर ही सभी का भरण-पोषण करता है।[2] ऐसी कहावतों के आधार पर कई आलसी तो क्रिया-कलाप तक नहीं करते। वे इस बात से सुपरिचित हैं कि 'चूंच दी जको चुग्गो तो देवैला इज' अर्थात जिसने चोंच (मुंह) दी है वह चुग्गा (खाद्य-सामग्री) भी देगा। इसके साथ लोग यह भी भली-भाँति जानते हैं कि ईश्वर भोले-भाले एवं निष्कपट लोगों का ही पक्ष लेता है, चालाक आदि का नहीं।[3] लोक के समक्ष ईश्वर एवं खुदा में कोई अन्तर नहीं। किसी भी धर्म का देवता लोक की दृष्टि में पूज्य ही होता है। खुदा की कृपा ही जनता की प्रसन्नता का कारण है।[4]

हिन्दू धर्म में तैंतीस कोटि देवता माने गये हैं। इनके अतिरिक्त अनेक लोक-देवता भी प्रसिद्ध हैं। इन देवताओं के सम्बन्ध में भी कहावतें प्रचलित हैं। कुछ कहावतें द्रष्टव्य हैं—

'अन्दर (इन्द्र) हरखी (सरीखा) मेरौ अर धरती हरखी मारी नीं।'

'आधे रो तदूरो वाबो रामदेव बजासी।'

'देवता तो वासना रा भूखा व्है, परसाद रा थोड़ाई व्है।'

इसी वर्ग में हम कुछ ऐसी कहावतों को उद्धृत करना चाहते हैं जिनमें

---

१ राम भागें किणरो जोर हालें।
२ कीड़ी ने कण अर हाथी ने मण।
३ भोळां रा भगवान व्है।
४ खुदा री मेंर तो लोकां लेर।

शाश्वत सत्य प्रकट किये गये हैं। वे सत्य सार्वदेशिक एवं सार्वकालिक हैं।

'ऊगसी जको आयमसी।'

'अमराई रा बीज खा'र कोई नी वाथो है।'

उक्त कहावत को इस आंग्ल कहावत से मिलाइये—

'Man is Mortal'

(आ) प्रकृति सम्बन्धी कहावतें

सुरम्य प्रकृति ने मानव को आकृष्ट भी किया है और अपना विध्वंसक रूप प्रकट कर उसे आतंकित एवं भयभीत भी किया है। सब-कुछ होते हुए भी मानव और प्रकृति का सदैव से अविभाज्य सम्बन्ध रहा है। कभी कभी प्राकृतिक उपादानों ने मानव को उपदेश भी दिये हैं। पेड पौधों और पशु पक्षियों की गणना प्राकृतिक उपादानों में ही की जाती रही है। नदी नाले झरने और पर्वत-मालायें भी प्रकृति के ही अंग हैं। कभी कभी मनुष्य अपने अन्तर्मन की करुण-कथा पेड-पौधों का कहावत में नाम लेकर व्यक्त करता है। यथा—'खेजड थू क्यू सूखी थारै सारे ई काई सनाणी है।' इस कहावत में खेजडी (शमी वृक्ष) के सूखने का कारण जानने के लिए एक व्यक्ति ने पूछा है कि क्या उस पेड की पत्नी भी 'सन्नाणी' (सनी जाति की औरत) है। प्रश्नकर्त्ता व्यक्ति की पत्नी सन्नाणी होने के कारण उसका जीवन नीरस हो गया था अतः उसने खेजडी की अपने समान स्थिति देख-कर पूछ ही लिया। पेड पौधों सम्बन्धी ऐसी कहावतें भी मिल जायेंगी, जिनमें केवल प्राकृतिक उपादानों का आकृति-परक चित्रण ही किया गया है। उनके रंग का वर्णन भी पाया जाता है। यथा—

'रूप रा रूडा रोहीडै रा फूल।'

पशु पक्षियों के सम्बन्ध में मिलने वाली कहावतों में पशु-पक्षियों की शारी-रिक-संरचना, उनके गुण-अवगुणों उनकी आदतों आदि का चित्रण मिलता है। उनकी प्रवृत्तियों का उल्लेख भी इन कहावतों में मिलता है। दिखने में भोले-भाले पर घातक पशु-पक्षियों के चित्र भी इन कहावतों में मिल जायेंगे। उनकी उप-योगिता के सम्बन्ध में भी विचार व्यक्त किये गये हैं। इनके माध्यम से मानव-मन की वृत्तियों (संकीर्णता, औदार्य, सहयोग असहयोग की भावना) की भी अभि-व्यक्ति हुई है। यहाँ कुछ उदाहरण पेश किये जा रहे हैं, जिनसे उक्त सारे तथ्य स्पष्ट हो जायेंगे।

'बैठताई ऊट नै दाण नी करणो।'

'घोडी मरद मकोडी, पकडिया पछे छोडै थोडी।'

'धीणो भैंस रो क्हो मलाई सेर ई।'

'कुत्ता रै सप व्है तो गगाजी न्हाय आवै।'

'कागो किणरो धन खासै, कायल किणनै देय।

जीभडल्या रै कारणै, जग अपणो कर लेय ॥'
'मीठी वालै मोरियो, आसां नै मिट जाय।'
'मोरियो पासिया नै देस नै राजी व्है पण पगां नै देख'र झूरै।'
'कमेडी बाज नै कठे पूग आवै।'

प्रकृति और ऋतुओं का शाश्वत साहचर्य है। ऋतुओं का आवर्तन-प्रत्यावर्तन प्रकृति से ही सूचित होता है। प्राकृतिक उपादानों के विविध रूप ऋतु परिवर्तन के परिचायक होते हैं। भारतीय कृषि, आज के वैज्ञानिक उपकरणों के वर्तमान होते हुए भी, प्रकृति पर अधिक निर्भर करती है। इसलिए कृषि सम्बन्धी एवं ऋतु सम्बन्धी कहावतों को हम इसी वर्ग में परिगणित करेंगे। प्राचीन ग्रन्थों में तो कृषि-धर्म के समकक्ष अन्य किसी भी धर्म को नहीं स्वीकार किया गया है। इस धर्म की महत्ता को प्रतिपादित करने के लिए राजस्थानी कहावतें भी प्रचलित हैं। धान की अधिक उपज के लिए वायु की अनुकूलता अत्यन्त आवश्यक है। निम्न कहावती दोहे में इसी बात को प्रकट किया गया है—

'सावण मास सूरियो वाजै, भादरवै परवाई।
आसोजा समदरियो वाजै, (तो) साती सारु सवाई ॥'

हवा के अतिरिक्त फसल के लिए खाद-पानी की आवश्यकता रहती है।'[1] कृषक के लिए गाडी रखना अत्यावश्यक है।[2] धान कब बोना चाहिए और कब घर लाना चाहिए ? इसका भी निर्देश कहावतों में दिया गया है। 'बुध वावणी अर सुक्कर लावणी' में यही लोक विश्वास व्यक्त हुआ है कि बुधवार को बीज-वपन करना एवं शुक्रवार को धान घर लाना हितकारी होता है। 'साती सब साथी' में कृषकों की सहकारिता की भावना व्यक्त हुई है। अच्छी उपज के लिए यह आवश्यक है कि मालिक स्वयं कृषि-कार्य करे। दूसरों के भरोसे पर छोड़ी हुई खेती लाभ-दायक सिद्ध नहीं होती—

'खेती पाती बीनती, घोरा तणी खुजाळ।
जे सुख चावै जीव रो, (तो) हाथोहाथ सभाळ ॥'

यद्यपि आज अनेक गाँवों में फसल की सिंचाई कुआ या नहरों से होती है, फिर भी अधिकांश गाँव ऐसे हैं, जहाँ कृषि पूर्णतः बरसे हुए जल पर निर्भर करती है। विशेषकर राजस्थान में तो वर्षा का महत्त्व अधिक ही है। जिस प्रकार से क्षुधार्थ ही रोटी की महत्ता को आँक सकता है, उसी प्रकार मरु-वासी ही वर्षा की सच्ची महत्ता को जानते हैं। राजस्थान में वर्षा का महत्त्व एक अतिथि से कदापि कम नहीं है, तभी तो यहाँ के बाल-गोपाल बादल को देखकर गा उठते हैं—

---

१ खात अर पाणी, काँई करै बिनाणी।
२ राड करै सो बोनै गाडो, खेती करै सो राखै गाडो।

'मे बाबा आयजा, घी ने रोटी खायजा।' यहाँ के निवासी के लिए मेह 'बाबा' (वृद्ध या सन्त) की भाँति पूज्य है।

वर्षा सम्बन्धी कहावतों में यहाँ के लोगों की वर्षा सम्बन्धी धारणाएँ व्यक्त हुई हैं। किन परिस्थितियों में वर्षा का होना सम्भव है, यह निम्न कहावतों को देखने से स्पष्ट हो जायेगा।

'आगम सूर्जे साढ़णी, दौड़ै थळा अपार।
पग पटकै...जद मेह आवणहार॥'
'कीड़ी मुख मे अड ले, दर तज भूमि भमत।
बिरखा रितू विसेस यो, जळ थळ ठेल भरत॥'
'सवार री गाजियोड़ी अर बचन नी जावै।'

ऐसा प्रवाद सुनने में आता है कि मारवाड़ प्रदेश में हर तीसरे वर्ष अकाल (एक तपस्वी सिद्धियानाथ के शाप के कारण) पड़ता है। इधर पिछले कुछ वर्षों से तो प्रायः अकाल ही पड़ता रहा है। राजस्थान के निवासियों में अकाल सम्बन्धी भी पूर्व-धारणाएँ प्रचलित हैं। कुछ द्रष्टव्य हैं—

'पग पूगळ धड कोटडे,[1] उदर ज बीकानेर[2]।
फिरतौ घिरतौ जोधपुर[3] ठावो जैसलमेर॥'
'दो सावण दो भादवा दो काती दो माह।
ढांडा ढोरी वेचने, नाज बिसावण जाह॥'
'दिन मे स्याळ जो शबद करै, निस्चै है काळ हळाहळ पड़ै।'

(ड) अति-प्राकृतिक शक्तियों से सम्बन्धित कहावतें

लोक-मानस के लिए अति-प्राकृतिक तत्त्व बहुत अस्तित्व रखते हैं। इस प्रकार की कहावतों में भूत-प्रेत, डायन-चुडैल-स्यारी आदि परा प्राकृतिक शक्तियों के सम्बन्ध में विचाराभिव्यक्ति हुई है। लोक में इन शक्तियों को हानिकारक बतलाया गया है। लोक में तो यहाँ तक धारणाएँ प्रचलित हैं कि जिन लोगों ने मन्त्र-सिद्धि कर ली है, वे भी अनर्थकारी ही सिद्ध होते हैं। छोटी-सी बात पर क्रोधित होकर ये निर्बुद्धि मन्त्रबाज समाज का घोर अनर्थ कर सकते हैं। इन शक्तियों को भी मनुष्य अपने बुद्धि बल से या निडर व्यक्ति अपने शारीरिक बल से वशीभूत कर सकते हैं और तदनन्तर उनसे अभीप्सित कार्य करवा सकते हैं। कई ऐसी कहानियाँ और कहावतें मिल जायेंगी जिनमे भूत-प्रेतों द्वारा वापिका खोदने या नगर की चहारदीवारी निर्मित करने या कृषि-कार्य में सहायता देने के वर्णन मिलते हैं। इस प्रकार की कुछ कहावतें द्रष्टव्य हैं—

'डाकण ही अर भळे जरखड़ै चढगी।'

---

१ पाठान्तर—(१) सिर मेड़ते (२) बायड़मेर (३) बीकपुर।

'डावणिया रै विसा गना ।'
'हारण बेटा लै न दे ।'
'भूता मू माई बन्दो मे जीव री जोखम ।'
'मार आगे भूत ई न्हावै ।'

राजस्थानी कहावतो मे हमे कहावतो के कुछ विशिष्ट प्रकार के रूप मिलते है। इस प्रकार की कहावतो मे प्राय चार चरण पाये जाते है। ऐसी कहावतो के मय रूप की दृष्टि मे रखते हुए डॉ० सहल ने उन कहावतों को चन्द्रायण-छन्द मे निबद्ध बताया है।[1] डॉ० सत्येन्द्र ने इस प्रकार की कहावती पदो को 'ओलना' बताया है। इस प्रकार की कहावतो के अन्तिम चरण मे प्राय अत्यल्प परिवर्तन पाया जाता है। यह अन्तिम चरण अधिकांशत इस रूप मे (जेता दे करतार फेर नह बोलणा, जेता दे करतार फेर क्या चावणा, जेता दे करतार फेर क्या बोलणा) मिलता है। एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

'उणी गाव मे पीर सासरो, आधमणो दिस खेत कुवै नही आसरो।
नाडी खेत नजीक जठै हल खोलणा, जेता दे करतार फेर नह बोलणा।'

ऐसी कहावतो मे प्राय यहाँ के निवासियों की अभिलाषाएँ व्यक्त हुई है। इन विशिष्ट प्रकार की कहावतो मे प्रमुखता अन्तिम चरण की रहती है। 'खाता साण न पीता पाणी', 'थोयी चिडी कपूरी नांव', 'दई न दीजै दोस', 'तैसा ही परदेस', 'हुई सो जाणै मन्न', 'जद माचे गहगट्ट' आदि चरण ऐसे है जिनका प्रयोग अनेक कहावतो मे पदान्त मे होता है। इन सभी का एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

'प्याग मितरा ने वगस साणी, खाता साण न पीता पाणी।'
'पाव खाड मर जणा पचास, किण-किण री पूरीजे आस।
ठाकर माहे के-के ठांव, थोथी चिडी कपूरी नाव ॥'
'बादर जात अचपळी घणो, खोसी सोनी खास।
हाथे कमाया कामडा, दई न दीजै दोस ॥'
'कबहु न हरगर घर गहे, रिस कर गहे न केस।
जैसा कया घर भला तैसा ही परदेस ॥'
'कर घाल्यो नर कावळो, आण बिलूंबी तन्न।
जळ ऊंडो थळ है नही, हुई सो जाणै मन्न ॥'
'हरियो फूल गुलाब रो, डोडो वणियो सुपट्ट।
घाल कचोळै दळमळे, जद माचै गहगट्ट ॥'

उक्त कहावतो मे परिस्थितियो एव उनसे सम्बन्धित चरित्रों तथा घटनाओ का बड़ा ही व्यंग्यात्मक उल्लेख किया गया है।

---

१. राजस्थानी कहावतें एक अध्ययन, डॉ० सहल, पृ० ६७

वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप दिनोदिन कहावतो का प्रचलन कम होता जा रहा है। आज के युग मे कहावतो का सत्य भी उतना खरा सिद्ध नही होता। पूर्वजो के इन अनुभवो के पीछे तत्कालीन परिस्थितियो का बहुत बडा हाथ रहा है। पर आज की परिस्थितियाँ बदल चुकी है। जीवन के प्रतिमान और विचार-धारा म द्रुतगति से परिवर्तन होता जा रहा है। वैचारिक दृष्टि से सक्रमण-काल म भले ही इन कहावतो का सत्य एव सन्देश हम उतना आकृष्ट न कर सके पर इनके महत्त्व को कदापि कम नही किया जा सकता। आज तो मूल आवश्यकता यह है कि सग्राहक निरपेक्ष भाव स जिस रूप मे कहावतें मिल रही है, उसी रूप मे सग्रहित कर ले। आज के युग मे कहावतों के प्रति जो उपेक्षा का भाव दिखायी देता है वह प्रभूत मात्रा मे मिलने वाले हमारे अमूल्य मौखिक साहित्य के लिए घातक प्रतीत होता है। इन कहावतो की उपादेयता के बारे मे हमे वर्तमान सभ्यता से हजारो कोस दूर रहने वाले किसी वृद्ध ग्रामीण से पूछना चाहिए। इसका गम्भीर अध्ययन करने पर हम निश्चिततः ज्ञात हो जायेगा कि इन कहावतो का शाश्वत सन्देश आधुनिक जीवन के परिप्रेक्ष्य मे भी कितना लाभदायक मार्ग-दर्शक सिद्ध हो सकता है।

(आ) राजस्थानी पहेलिया

पहेली के सम्बन्ध म सामान्य विचार—आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओ मे एव उनकी कई बोलियो मे मिलने वाला 'पहेली' शब्द सस्कृत शब्द 'प्रहेलिका' का विकसित रूप है। इस शब्द स 'अभिप्राय सूचन' की अर्थ प्रतीति होती है। इसे 'दुर्विज्ञानार्थ प्रश्न' और 'कूटार्थभाषा कथा' जैसी सज्ञाओ से भी अभिहित किया गया है। इसमे व्यक्त अर्थ कुछ और ही होता है और मुख्यार्थ का स्वरूप गोप्य होता है।[1] बृहत् हिन्दी कोश मे पहेली का किसी की बुद्धि या समझ की परीक्षा लेने के काम का एक प्रकार का प्रश्न, वाक्य या वर्णन बताया गया है, जिसमे किसी वस्तु का भ्रामक या टेढा-मेढा लक्षण देकर उसे बूझने या अभिप्रेत वस्तु का नाम बताने को कहा जाता है।[2] पडित रामनरेश त्रिपाठी ने बुझौवल को पहेली पर्याय स्वीकारा है। उनके मतानुसार—"बच्चो की बुद्धि पर शान चढाने के लिए गाँवों मे बहुत-सी पहेलियाँ, जिन्हे बुझौवल कहते हैं, प्रचलित है। बुझौवल बडे गूढार्थक होते हैं।"[3] इससे ज्ञात होता है कि पहेली मे बुद्धि-चातुर्य एव गूढार्थ—इन दो तत्त्वो का होना आवश्यक है। सस्कृत साहित्य मे इसे चित्र

---

१ हलायुध कोश, पृ० ४७८
२ बृहत् हिन्दी कोश पृ० ७८८
३ हिन्दी ग्राम साहित्य, भाग ५, ग्राम-साहित्य की रूपरेखा।

की जाति का शब्दालंकार माना गया है। महाकवि केशव ने प्रहेलिका अलंकार का निरूपण इस प्रकार किया है—

'बरनिय वस्तु दुराय जह, कीनहु एक प्रकार।
तासों कहत प्रहेलिका, कवि-कुल बुद्धि उदार॥'[1]

भारतीय वाङ्मय में प्रहेलिका मात्र अलंकार के रूप में ही प्रतिष्ठित नहीं है, प्रत्युत 'प्रहेलिका साहित्य' के रूप में हमें इस विधा की एक समृद्ध परम्परा मिलती है। लोक एवं शुद्ध प्रबुद्ध सुसंस्कृत जनों ने भी 'पहेली' के माध्यम से अपनी वैचारिक अभिव्यक्ति की है। इस साहित्यिक विधा का जीवन में विविध अवसरों पर उपयोग होता था, जैसा कि भोजराज की इस पंक्ति से स्पष्ट है—'क्रीडा गोष्ठी विनोदेषु तज्ज्ञैराकीर्ण मन्त्रणे।'[2] (प्रहेलिका)

समृद्ध परम्परा में मिलने वाली पहेली विधा को विद्वानों ने बुद्धि-परीक्षा का साधन भी बताया है। पहेली में प्रकृत को गोपनीय रखने की चेष्टा रहती है। पहेली एक प्रकार का अस्पष्ट भाव वाला शब्द-चित्र हुआ करती है। इसमें समस्या को गम्भीर बनाकर प्रस्तुत किया जाता है। प्रस्तुत शब्द-चित्र विस्मयकारी होता है, पर अपने बुद्धि-बल से वक्ता के इष्टार्थ को ज्ञात किया जाता है। पहेली के सम्बन्ध में डॉ० सत्येन्द्र के विचार द्रष्टव्य हैं—'पहेलियाँ यथार्थ में किसी वस्तु का वर्णन करती हैं—ऐसा वर्णन, जिसमें अप्रस्तुत के द्वारा प्रकट का संकेत होता है। अप्रकट इन पहेलियों में बहुधा वस्तु उपमान के रूप में आता है।'[3] पहेलियाँ वस्तु ज्ञान हेतु उपमानों के आधार पर निर्मित शब्द-चित्रावली हैं। उपमानों के द्वारा निर्मित चित्र से अभिप्रेत वस्तु का संकेत मात्र मिलता है। इस संकेत से ही हम अर्थ तक पहुँचना होता है। इसीलिए पहेलियों को मनोविलास की वस्तु माना गया है।

वस्तुतः पहेली अभिव्यक्ति का वह प्रकार है जिसमें अर्थज्ञान के लिए लक्षणा या व्यंजना का सहारा लेना पड़ता है। पहेली में बहुत-से ऐसे शब्दों की योजना रहती है जिनका अर्थ प्रस्तुत में कुछ नहीं होता, और होता भी है तो भ्रामक या अस्पष्ट, परन्तु प्रकरण में आकर उन्हीं शब्दों में अर्थ-द्योतकता आ जाती है। पहेली के प्रस्तुत और अप्रस्तुत में रूप, रंग, गुण अथवा आकृति से सम्बन्धित कोई-न-कोई एक साम्य अवश्य पाया जाता है। यह साम्य सार्वतिक रूप में ही व्यक्त रहता है। पहेलियों में वस्तु को गोप्य रखने के परिप्रेक्ष्य में मानव-प्रवृत्ति की रहस्यात्मक भावना का हाथ है।

---

१. कवि प्रिया, ११।३०
२. विश्वनाथ, साहित्य-दर्पण, दशम परिच्छेद, पृ० ४६६ पर पाद टिप्पणी।
३. हिन्दी साहित्य-कोष, भाग १, पृ० ४८५

अनेक विद्वानों की यह मान्यता है कि पहेलियाँ बौद्धिक-व्यायाम का साधन मात्र हैं, इनसे रस निष्पत्ति नहीं होती। इनकी दुर्बोधिता रस-चर्वणा में बाधा उपस्थित करती है। कई प्राचीन आलंकारिक पहेलियों को अलंकार की कोटि में परिगणित नहीं करते। कवि राजा बाँकीदास ने भी निम्न दोहे में पहेलियों की क्लिष्टता की ओर इंगित किया है—

'वादे दोसण कायवा, बाता दिये विगोय।
पूछें अरथ पहेलिया, सम्य मजाको सोय॥'

यहाँ मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि पहली पूछने पर निश्चित रूप से आनन्द की प्राप्ति होती है। यदि पहेलियाँ मनोरंजन का अन्यतम साधन नहीं होतीं तो बहुत सम्भव है कि आज हमें समाज में इनका कोई चिह्न भी नहीं मिल पाता। बालक पहेलियाँ पूछते समय फूले नहीं समाते। उनके आनन्द और उत्साह का तो अनुमान भी नहीं लगाया जा सकता। और तो और कई बार ऐसे दृश्य भी सामने आते हैं कि रात्रि के समय वृद्ध एक स्थान पर एकत्रित होकर परस्पर पहेलियाँ पूछते हैं। प्रतिपक्ष की ओर से उत्तर न बताने पर अथवा गलत उत्तर बता देने पर हँसी के कारण प्रश्नकर्त्ता पक्ष वालों के पेट में बल पड़ने लगते हैं। इस आनन्द को हम साहित्य से मिलने वाले अलौकिक आनन्द से कदापि भिन्न नहीं मान सकते।

पहेलियों में हमें आदिम मानस की विकास परम्परा दिखायी देती है। मानव-दृष्टि ने दो वस्तुओं या घटनाओं में साम्य और वैषम्य को परिलक्षित करके ही इस प्रकार की अभिव्यक्ति की है। पहेलियों में मानव के दृष्टि-सौन्दर्य एवं चातुर्य तथा उसकी रहस्य भावना का सुन्दर समन्वय हुआ है। कुछ ऐसी भी उपलब्ध होती हैं जिनमें वस्तुस्थिति का साधारण तार्किक विवेचन हुआ है। बालक या बालक के समान जिज्ञासु आदिम नर मानव को प्रकृति एवं जीवन ने कई प्रकार से प्रभावित किया। इनके सम्बन्ध में जितने भी रहस्य आदिम मानस के समक्ष प्रस्तुत हुए उसने उन्हें पहेलियों में निरूपित कर दिया। पहली पूछने की पृष्ठभूमि में मुख्य भावना यही रही है कि इस प्रकार की छोटी छोटी कठिनाइयों को प्रस्तुत करके मनुष्य को जीवन की कठिनाइयों से संघर्ष करने हेतु प्रोत्साहित किया जाय।

पहेलियों की प्राचीनता

पहेलियों के आरम्भ एवं प्रयोग के पीछे मानव की रहस्यात्मक भावना का पूर्ण सहयोग रहा है। इसके अतिरिक्त उसकी जिज्ञासा-वृत्ति ने भी इस सम्बन्ध में पूरा पूरा लाभ पहुँचाया है। किसी बात को छुपाने की भावना ही पहेलियों का प्राकट्य है। फ्रेजर महोदय ने भी बताया है कि पहेलियों की रचना अथवा उदय उस समय हुआ होगा जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को

रहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ी होगी।[1]

हमारे देश में पहेलियों की परम्परा हमें वैदिक काल से ही मिलने लग जाती है। वेदों में कई पहेलियाँ मिलती हैं। इस आधार पर यह धारणा निर्मित होती है कि पूर्व-वैदिक युग में भी पहेलियों का प्रचलन लोक में रहा है। वैदिक काल में पहेलियों के लिए 'ब्रह्मोदय' शब्द का प्रयोग होता था। ऋग्वेद में प्रयुक्त ब्रह्मोदयों से ज्ञात होता है कि पहेलियाँ जन की विकासोन्मुख अवस्था के साथ ही क्रमशः विकसित हुई। वैदिक काल में पहेलियों का आनुष्ठानिक महत्त्व था। अश्वमेध यज्ञ के समय कई प्रकार की पहेलियाँ पूछी जाती थीं। वैदिक ऋषियों ने रूपकालंकार का आश्रय लेकर ऐसी अनेक ऋचाओं की रचना की है जो अर्थ की दुर्बोधता के कारण रहस्यात्मक बन गयी। यद्यपि इन ऋचाओं को पहेलियाँ मानने में विद्वानों को आपत्ति हो सकती है पर इतना निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि इन ऋचाओं में पहेलियों की-सी रहस्यात्मकता मिलती है। इनमें मिलने वाली रहस्यवादी भावना पहेलियों की प्रमुख विशेषता है। उदाहरणार्थ ऋग्वेद का प्रसिद्ध मन्त्र प्रस्तुत है—

'चत्वारि शृंगात्रयो अस्य पदा
द्वे शीर्षे सप्तहस्ता सो अस्य
त्रिधा बद्धो वृषभो रोरवीति
महादेवो मर्त्यो आविवेश।'

उपनिषदों की भाषा भी कम रहस्यात्मक नहीं है। गीता में भी रहस्यात्मक चित्रण भरे पड़े हैं। गीता से भी एक उदाहरण दिया जा रहा है—

'ऊर्ध्वमूलमधः शाखमश्वत्थ प्राहुर व्ययम्।
छन्दांसि यस्य पर्णानि यस्त वेद स वेदवित्।'

जैन साहित्य में मिलने वाली 'हीयाली' जैसी रचनाएँ पहेलियों के अनुरूप ही हैं। १२वीं एवं १३वीं शती में इनका पर्याप्त प्रचलन था। आगे चलकर सिद्धों और नाथों की रचनाओं में मिलने वाली उलटवासियाँ और रहस्यात्मक उक्तियाँ भी पहेलियों के ही समान हैं। हिन्दी साहित्य में पहेलियों और मुकरियों के रचनाकार के रूप में अमीर खुसरो बहुचर्चित हैं। कबीर की उलटवासियाँ भी इसी वर्ग में परिगणित की जाने योग्य हैं। भक्तकवि सूर के दृष्टिकूट पद निश्चित रूपेण पहेलियों के वर्ग में ही हैं।

इसके अतिरिक्त जन-साधारण में सदैव से पहेलियों का प्रचलन रहा है। जनता के मनोरंजन और बुद्धि विकास का यही तो साधन था। सर्व-साधारण में प्रचलित पहेलियों में कई तो सीधी-सादी पहेलियाँ हैं, कई गूढार्थक पहेलियाँ हैं,

---

१ द गोल्डन, भाग ६, पृ० १२१

कई दृष्टिकूट पद हैं, कई कवित्त और छप्पय भी पहेलियों के रूप में मिलते हैं। इससे जनता के बुद्धि विस्तार का ज्ञान होता है। ये पहेलियाँ कुछ गद्यात्मक रूप में, कुछ पद्यात्मक रूप में और कुछ गद्य-पद्य मिश्रित रूप में प्रचलित हैं।

राजस्थानी पहेलियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें

उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत प्रमुख रूप से राजस्थानी पहेलियों के गठनात्मक स्वरूप के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये जायेंगे। यद्यपि हमें राजस्थान प्रदेश में नाना विषयों से सम्बन्धित पहेलियाँ मिलती हैं, पर उन सबके सम्यक् विवेचन में वर्ण्य-विषय के आधार पर कुछ कहेंगे। राजस्थानी में पहेली के लिए 'आडी', 'फाली', 'प्याली', 'हीयाली' आदि अनेक शब्द मिलते हैं। पहेली पूछने के भाव का बोध कराने के लिए यहाँ 'आडी पूछणी', 'आडी घालणी', 'आडी खोलणी' आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रदेश में रात्रि-काल में जब दो बच्चे दो दल बनाकर परस्पर पहेलियाँ पूछते हैं तब प्रारम्भ करने वाले दल का एक बालक इस पद्यांश का उच्चारण करता है। प्रतियोगिता का प्रारम्भ यहीं से माना जाता है।

'आडी घालू पाडी घालू पेट में कटारी घालू।'

उक्त पद्यांश में प्रयुक्त 'पेट में कटारी घालू' वाक्यांश में पहेली (आडी) की दुरूहता को व्यंजित किया गया है। पहेली को सुलझाने के लिए चिन्तन सागर में गहरे पैठना पड़ता है।

मुख्य रूप से हमें राजस्थान में दो चरणों में समाप्त होने वाली तुकान्त पहेलियाँ ही मिलती हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी भी हैं जो दो चरणों में तो समाप्त होती है पर वे तुकान्त नहीं है। दोनों प्रकार की पहेलियों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) तुकान्त

'नर रे आखज अेक है, नारी री आखज अेक।
नैण तो नारी री भलो, (पण) नर रो नैण विसेस॥'
(सूर्य-चन्द्र, दिन-रात)

(२) अतुकान्त

'धरा बिन तरु ऊग्यो अेक, अेक घडी में बध्यो बिसेक।
हजार सख्या आसू जास, तीन पहर में जिणरो नास।' (सूर्य)

यहाँ यह उल्लेख्य है कि जिन पहेलियों के अन्त में तुक का प्रयोग नहीं हुआ है, उन पहेलियों की प्रथम पंक्ति में अपनी तुक है और दूसरी पंक्ति की अपनी तुक है। इस प्रकार ऐसी पहेलियों में प्रत्येक चरण की अर्द्धालियाँ तुकान्त हुआ करती हैं। इस प्रकार से गठित पहेलियों के प्रत्येक चरण में २४ से लेकर ३२ तक मात्राएँ मिल जाती हैं।

कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं जिनका उच्चारण तो पद्य की ही भाँति होता है पर उनके चरण निश्चित नहीं होते हैं। कुछ पहेलियाँ तो केवल एक चरण की ही होती हैं। यथा—'अवारे घर में लोही री टपकी' (गुजा)। इस प्रकार की अन्य पहेलियों में एक चरण में भी यति के अनुकूल तुक मिलती है। कुछ पहेलियाँ एक चरण की भी मिलती हैं और दो चरणों की भी मिलती हैं। कुछ लय के अनुरूप तुकान्त मिल जाती है और कुछ अतुकान्त। इनका भी एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

(१) हरग जितरी हेलडी, कोडी जितरी छाह, बताओ काई हुई ? (वर्षा की बूंद)

(२) अठै कानी उठै कोनी, दिल्ली रै दरवाजै कोनी।
खायो है पण तोड्यो कोनी, बताओ काई हुयो ? (ओला)

कुछ पहेलियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनके चरणों में तुकान्तता तो नहीं पायी जाती पर वर्ण या शब्द का ध्वनि-साम्य पाया जाता है जिससे श्रोता एवं वक्ता को उसकी अतुकान्तता अखरती नहीं। यथा—

'जन जतरी या कोटडी, तिल जितरा किवाड़।
जिणमे सुन्दर सापडे, आसव हुआ मोटियार ॥' (आँख)

राजस्थान मे तीन चरणो वाली पहेलियाँ भी मिलती हैं। ऐसी पहेलियों के दो चरण तुकान्त होते हैं और तीसरा चरण अतुकान्त होता है। प्राय पहले दो चरणों का उच्चारण पद्य की भाँति किया जाता है और अन्तिम तीसरे चरण का उच्चारण गद्य रूप में होता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

'गळे जनोई बामण नही, मुडै सीलो अरट नही।
फिरतो तो देखियो पण चालण साहू चरण नही।
गुरुजी मू मू करतो मवरो होगो।' (पोला)

तीन चरणों की भी कुछ तुकान्त पहेलियाँ मिलती हैं। एक पहेली उद्धृत की जा रही है—

'पली हा मरद, मन्द सू नार कहाया।
रण खेता म जाय, घाव घरूही रा खाया।
मूद समदर माय, नार सू मरद कहाया ॥' (बड़ा और पकोड़ा)

कुछ पहेलियों में पहला चरण तो पूरा होता है, पर दूसरा चरण पूरा नहीं होता। उस चरण मे एक अर्द्धाली ही होती है। इनका उच्चारण भी लयात्मक होता है। यथा—

'म मू करतो मवरो हू, गळे जिनाई बामण हू।
काना मे मन्दरा माभी हू' ॥' (चरखा)

इस प्रदेश की पहेलियों में हम कुछ ऐसी पहेलियाँ भी मिलती हैं जो छन्दबद्ध

कई दृष्टिकूट पद हैं, कई कवित्त और छप्पय भी पहेलियों के रूप में मिलते हैं। इससे जनता के बुद्धि विस्तार का ज्ञान होता है। ये पहेलियाँ कुछ गद्यात्मक रूप में, कुछ पद्यात्मक रूप में और कुछ गद्य-पद्य मिश्रित रूप में प्रचलित हैं।

राजस्थानी पहेलियों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञातव्य बातें

उपर्युक्त शीर्षक के अन्तर्गत प्रमुख रूप से राजस्थानी पहेलियों के गठनात्मक स्वरूप के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किये जायेंगे। यद्यपि हमें राजस्थान प्रदेश में नाना विषयों से सम्बन्धित पहेलियाँ मिलती हैं, पर उन सबके सम्यक् विवेचन में वर्ण्य-विषय के आधार पर कुछ कहेंगे। राजस्थानी में पहेली के लिए 'आडी', 'फाली', 'प्याली', 'हीयाली' आदि अनेक शब्द मिलते हैं। पहेली पूछने के भाव का बोध कराने के लिए यहाँ 'आडी पूछणी', 'आडी घालणी', 'आडी खोलणी' आदि का प्रयोग किया जाता है। इस प्रदेश में रात्रि-काल में जब दो बच्चे दो दल बनाकर परस्पर पहेलियाँ पूछते हैं तब प्रारम्भ करने वाले दल का एक बालक इस पद्यांश का उच्चारण करता है। प्रतियोगिता का प्रारम्भ यहीं से माना जाता है।

'आडी घालू पाडी घालू पेट में कटारी घालू।'

उक्त पद्यांश में प्रयुक्त 'पेट में कटारी घालू' वाक्यांश में पहेली (आडी) की दुरूहता को व्यंजित किया गया है। पहेली को सुलझाने के लिए चिन्तन सागर में गहरे पैठना पड़ता है।

मुख्य रूप से हमें राजस्थान में दो चरणों में समाप्त होने वाली तुकान्त पहेलियाँ ही मिलती हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी भी हैं जो दो चरणों में तो समाप्त होती हैं पर वे तुकान्त नहीं हैं। दोनों प्रकार की पहेलियों के उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) तुकान्त

'नर रे आसज अेक है, नारी री आसज अेक।
नैण तो नारी री भलो, (पण) नर रो नैण विसेस ॥'
(सूर्य-चन्द्र, दिन-रात)

(२) अतुकान्त

'धरा बिन तरु ऊग्यो अेक, अेक घडी में वध्यो विसव।
हजार सख्या आसू जास, तीन पहर म जिणरो नास।' (सूर्य)

यहाँ यह उल्लेख्य है कि जिन पहेलियों के अन्त में तुक का प्रयोग नहीं हुआ है, उन पहेलियों की प्रथम पंक्ति में अपनी तुक है और दूसरी पंक्ति की अपनी तुक है। इस प्रकार ऐसी पहेलियों में प्रत्येक चरण की अर्द्धालियाँ तुकान्त हुआ करती हैं। इस प्रकार से गठित पहेलियों के प्रत्येक चरण में २४ से लेकर ३२ तक मात्राएँ मिल जाती हैं।

कुछ पहेलियाँ ऐसी हैं जिनका उच्चारण तो पद्य की ही भाँति होता है पर उनके चरण निश्चित नही होते हैं। कुछ पहेलियाँ तो केवल एक चरण की ही होती हैं। यथा—'म्हारे घर मे लाही री टपको' (गुजा)। इस प्रकार की अन्य पहेलिया मे एक चरण मे भी यति के अनुकूल तुक मिलती है। कुछ पहेलियाँ एक चरण की भी मिलती हैं और दो चरणो की भी मिलती हैं। कुछ लय के अनुरूप तुकान्त मिल जाती हैं और कुछ अतुकान्त। इनका भी एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य है—

(१) हरण जितरी हेलडी, कीडी जितरी छाह, बताओ काई हुई ? (वर्षा की बूंद)

(२) अठै कोनी उठै कोनी, दिल्ली रै दरवाजै कोनी।
लायो है पण तोड्यो कोनी, बताओ काई हुयो ? (ओला)

कुछ पहेलियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनके चरणों में तुकान्तता तो नही पायी जाती पर वर्ण या शब्द या ध्वनि-साम्य पाया जाता है जिससे श्रोता एव वक्ता को उसकी अतुकान्तता अखरती नही। यथा—

'जन जतरी या कोटडी, तिल जितरा किवाड।
जिणमे सुन्दर सांपडे, आसय हुआ मोटियार॥' (आँख)

राजस्थान मे तीन चरणो वाली पहेलियाँ भी मिलती हैं। ऐसी पहेलियों के दो चरण तुकान्त होते हैं और तीसरा चरण अतुकान्त होता है। प्राय पहले दो चरणो का उच्चारण पद्य की भाँति किया जाता है और अन्तिम तीसरे चरण का उच्चारण गद्य रूप मे होता है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

'गळे जनोई बामण नही, मुडै सीलो अरट नहीं।
फिरतो तो देखियो पण चालण सारू चरण नही।
गुरुजी मू मू करतो मवगे हागी।' (चेला)

तीन चरणों की भी कुछ तुकान्त पहेलियाँ मिलती है। एक पहेली उद्धृत की जा रही है—

'पली हा मरद, मरद सू नार कहाया।
रण मेता मे जाय, भात घरही रा लाया।
कूद समदर मांय, नार सू मरद कहाया॥' (बडा और पकौडा)

कुछ पहेलियों म पहला चरण तो पूरा होता है, पर दूसरा चरण पूरा नही होता। उस चरण के एक अर्द्धाली ही होती है। इनका उच्चारण भी लयात्मक होता है। यथा—

'मू मू करतो मकरो हू, गळे जिनाई बायण हू।
कानो मे मन्दरा राखी हू' '॥' (चरखा)

इस प्रदेश की पहेलियों म हमे कुछ ऐसी पहेलियाँ भी मिलती है जो छन्दबद्ध

हैं। ये छन्द पूर्ण रूपेण शास्त्रीय छन्द हैं। ऐसी पहेलियाँ दोहा, कवित्त, सवैया और छप्पय छन्द में ही मिलती हैं। इनका निर्माण व्यक्ति-विशेष से हुआ है, पर आज इन पहेलियों को सर्वसाधारण की सम्पत्ति स्वीकार कर लिया गया है। इस प्रकार की कुछ पहेलियों के योग में राजस्थानी पहेली साहित्य को समृद्ध करने वाले कवि हैं—सोढी नाथी, प्रेमदास, जोधपुर के राजा मानसिंह, किसना आढा, बाँकीदास, बछराज, भोपाल भाट, खेमचन्द, कवि गंग, सांईदान रतनू, देपाळ कवि, सागर, उदयराज, आईदान और जमाल आदि।

राजस्थानी पहेलियों के स्वरूप के सम्बन्ध में और भी कई तथ्य हमारे समक्ष उभरते हैं जिनका उल्लेख करना भी आवश्यक है। कुछ पहेलियों में तो बिलकुल सीधे सादे ढंग से ही प्रश्न पूछे गये हैं। अन्य कुछ पहेलियाँ भी मिलती हैं जिनमें विरोधी तत्वों को प्रस्तुत करके प्रश्न पूछा जाता है कि यह वस्तु ऐसी भी नहीं है, वैसी भी नहीं तो फिर कैसी है? यथा—

'सिर केसर मुर्गो नहीं, नीलकंठ नहीं मोर।
लाँबी पूछ माकड़ नहीं, च्यार पाव नहीं ढोर।।' (गिरगिट)

कुछ पहेलियों में शर्त रखी जाती है कि यदि आप इसका उचित अर्थ बता देंगे तो आपको यह पारिश्रमिक मिलेगा। ऐसी पहेलियों में पहली पंक्ति या प्रथम अर्द्धाली का महत्त्व शर्त में निहित रहता है। 'आटी टूटी खेजडी, सी भीणे भीणे दस। हण आडी रो अरथ बताय (तो) रिपिया दे दू दस।' ऐसी ही एक पहेली है। इसके अतिरिक्त कुछ पहेलियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें अर्थ न बताने पर अर्थ न बता सकने वाले के सम्बन्धी के सम्बन्ध में अनुपयुक्त शब्दों का प्रयोग किया जाता है। यथा—'थारो बाप ढोली', 'थारो मामो गोली', 'नी तो थारो बाप जाणी' ऐसे ही अनादरसूचक वाक्यांश हैं जिनका प्रयोग पहेली के अन्त में किया जाता है। कई पहेलियों में सम्बन्धी के लिए अनादरसूचक वाक्यांशों का प्रयोग न करके प्रश्नकर्त्ता एवं श्रोता दोनों में ही सम्बन्ध स्थापित करने की बात कही जाती है। 'थे भाभी म्हे देवर', 'म्हैं मामी थू भाणजो' ऐसे ही वाक्यांश हैं। कई पहेलियों के अन्त में 'सुगता करो विचार' वाक्यांश को भी जोडा जाता है। अन्य कुछ में 'कुण कैये आ आडी (प्याली) कोनी' वाक्यांश जोडकर उसके पहेली होने की बात को और भी अधिक दृढ किया जाता है। कई राजस्थानी पहेलियों में 'सखी' शब्द का संबोधन वाचक शब्द के रूप में प्रयोग हुआ है। राजस्थानी पहेलियों में रस, गुण, आकृति और स्वाद साम्य रखने वाले प्रतीकों का अधिक प्रयोग किया गया है। कुछ पहेलियों के अन्त में प्रश्न का उत्तर भी प्रस्तुत कर दिया गया है। ऐसी पहेलियों में 'क्यू सखी साजन ना सखी' वाक्यांश का प्रयोग पाया जाता है। कुछ पहेलियों में वैयक्तिक नामों का भी प्रयोग हुआ है। यथा—'छोटो सो गोपालदास कपड़ा पैरे सो पचास।' कई-कई पहेलियाँ ऐसी मिलती हैं, जिनके

प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षर के योग से उत्तर मिल जाता है। गद्य रूप मे प्रश्न पूछे जाने वाली और पद्य रूप मे उनका उत्तर प्रस्तुत करने वाली भी अनेक पहेलियाँ मिल जाती हैं। उदाहरण स्वरूप एक ऐसी पहेली प्रस्तुत की जाती है—'रिपियँ नै खेत पौचावो ?'

उत्तर—'आळे में पडी रैत, रिपियो ग्यो खेत।'

राजस्थान प्रदेश मे रात्रि के समय बालक एक स्थान पर इकट्ठे होकर दो दल बना लेते हैं, और तब परस्पर पहेलियाँ पूछते हैं। जवाई के आने पर घर एव पास पडोस की स्त्रियाँ इकट्ठी हो जाती है और रात्रि के समय जवाई से पहेलियाँ पूछा करती हैं। गाँव के युवा तथा वृद्ध भी रात मे चौपाल आदि मे एकत्रित हो जाते हैं और तब पहेलियाँ पूछी जाती है। स्त्रियो द्वारा पूछी जाने वाली पहेलियो के सम्बन्ध मे यह ज्ञातव्य है कि स्त्रियाँ दो चरणो वाली पहेलियो को ही लोक गीत के कलेवर मे ढाल देती हैं। स्त्रियो द्वारा विविध उत्सवो पर भी पहेलियाँ पूछी जाती हैं। ऐसे अवसरो पर प्राय. सामने भोजन रख दिया जाता है और पहेली का उत्तर न देने तक भोजन करने नही दिया जाता। सावण की तीज को झूले पर बैठते समय भी पहेलियाँ पूछी जाती हैं।

गूढार्थक और दृष्टिकूट पदो वाली पहेलियाँ भी हमे राजस्थान मे मिलती हैं।

पहेलियो का वर्गीकरण

लोक-साहित्य की अन्य विधाओ की भाँति पहेलियो को भी विद्वानो ने भाँति-भाँति से वर्गीकृत किया है। परन्तु विस्तारभय से उन्हे प्रस्तुत किये बिना हम आगे की पक्तियो मे राजस्थानी पहेलियो का वर्गीकरण-परक अध्ययन कर रहे हैं। राजस्थानी पहेलियो को निम्नलिखित वर्गों मे रखा जा सकता है—

(१) मनुष्य और उसके जीवन से सम्बन्धित पहेलियाँ,
(२) प्रकृति से सम्बन्धित पहेलियाँ,
(३) व्यवसायो से सम्बन्धित पहेलियाँ,
(४) शस्त्रास्त्रो से सम्बन्धित पहेलियाँ,
(५) पौराणिक चरित्रो एव देवी देवताओ से सम्बन्धित पहेलियाँ।

(१) मनुष्य और उसके जीवन से सम्बन्धित पहेलियाँ

मनुष्य ईश्वर की सृष्टि का महत्त्वपूर्ण प्राणी है और जीवन मनुष्य के लिए अत्यन्त महत्त्व की वस्तु है। मानव एव उसके जीवन से सम्बन्धित अनेकानेक रहस्यात्मक उक्तियाँ पहेलियो मे पायी जाती हैं। मनुष्य से सम्बन्ध रखने वाले सभी विषय इस प्रकार की पहेलियो मे समाविष्ट हैं। उसके स्थूल शारीरिक अवयवो एव सूक्ष्म मानसिक विचारो के सम्बन्ध मे भी पहेलियाँ मिलती हैं। देहयष्टि की बनावट और उसके सौन्दर्य के सम्बन्ध मे भी पहेलियाँ मिलती हैं। इस

प्रकार की पहेलियो मे अधिकाशत आँख, नाक, कान, मुँह, दाँत, हाथ, पैर, ओष्ठ, नाडी, अगुली-अगुष्ठ, स्तन, जीभ आदि का वर्णन हुआ है। मानव की छाया, दृष्टि, वाणी आदि के सम्बन्ध मे भी काफी पहेलियाँ प्रचलित है। ललना के लावण्यमय अगो का चित्रण भी इस प्रकार की पहेलियो म हुआ है। इस सम्बन्ध मे कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) तरवर पहलौ जाणिये जन दूजौ तिण लार।
सो तुम हमको दीजिये, रावा रा रिझवार ॥ (तन)

(२) नर भीतर नारी बसैं, नर भीतर नार।
नर गोरौ नारी सावळी, राजा भोज करौ विचार ॥ (दाँत)

(३) अेक नार हण भात, नार का नाव धरीजे।
हेक हेक हुकम कहे, नार सू न्याय करीजे।
नर मे बसै नार, तिका नर नारी लेडे।
दुनी राज री दाण, नार सबं न्याय निवेडै।
हण भांत नार दीठी हसी, पुरस विगुचे पातरी।
आईदान कहै कीजै अरथ, अैक नार हण भात री ॥ (जीभ)

इस सम्बन्ध मे पहले ही उल्लेख कर दिया है कि राजस्थान मे प्रचलित कुछ पहेलियाँ छन्दबद्ध रूप मे मिलती हैं और ऐसी पहेलियाँ विशिष्ट कवियो द्वारा रचित हैं। यद्यपि जीभ से सम्बन्धित नाना पहेलियाँ लोक म प्रचलित हैं पर हमने जान-बूझकर उक्त उदाहरण ही उद्धृत किया है।

(४) च्यार नार चिटकली मिटकली, अैक नार जगी।
हण आडी रौ अरथ बता, भीतर थारौ बाप मगी ॥ (हाथ का पजा)

(५) पितळक नाडियो पितळक पाळ, पाच रूख अैक तळाव। (हथेली)

(६) लाग कह्या लागे नही, बरजत लागे धाय।
कही पहेली अैक म्है, दीजो चतुर बताय ॥ (ओष्ठ)

कई पहेलियो मे शरीर के एकाधिक अवयवो का चित्रण पाया जाता है। नीचे एक ऐसी ही पहेली प्रस्तुत की जा रही है। इस पहेली मे वर्णित है कि राह चलते दो व्यक्तियो ने दो आम देखे। जिनके द्वारा (नेत्रो के द्वारा) आम देखे गये थे उनके द्वारा उठाये नही गये। जिनके द्वारा (हाथो के द्वारा) उठाये गये थे उनके द्वारा चखे नही गये। जिसने (जीभ ने) उन्हे चखा उसने खाया नही, ये आम तो और किसी के द्वारा (दांतो के द्वारा) ही खाये गये।

(७) मारग मारग जावता पड्या दोय आबा देख्या दोय जिणा।
देख्या ज्या लीना नही, लीना दाय और जिणा।
लीया ज्या चाख्या नही, खाया कोई और जिणा ॥
(नेत्र, हाथ, जीभ और दांत)

अब हम नारी की देह-यष्टि से सम्बन्धित पहेलियो को उद्धृत करना चाहते हैं। इस प्रकार की पहेलियो मे ललना का आंगिक सौन्दर्य निखर आया है। स्त्री के मासिक-धर्म के बारे मे भी पहेलियाँ मिल जाती हैं।

(८)
आडै याडै कीडी नगरी, बिच मे रैवे जोगी।
हण प्याली (आडो) री अरथ बता नही थारो वाप जोगी॥
(चोटी— स्त्री की वेणी)

(६)
तन गोरी मुख सावळी, बसे सरोवर तीर।
पैली चढाई ये लडे, अंब नाव द्यो॰।
वाला पीलण पिद रमण, नियाज मडन सोय।
(१०) सुण सुन्दर मेहतो भणै, ओये तेरा दोय।
बन बिन मोर बबी बिन यासग, कोयल देखी बाग बिना।
सरवर बिन अंब हसो देख्यो, सूवो देख्यो आम बिना।
मिरगो चीतो दोनू देख्या, वंठा देख्या डार बिना।
(११) सोनो और सुहागो देख्यो, होळो की झळ फाग बिना।
इन्द्रावाहण नासिका, तास तणै अणिहार।
तस मल म्हारै पावणो, आवागमण निवार॥
(स्त्री ऋतु धर्म मे है)

जिण दीठे सूरा भिड़ै, कायर कधे जैण।
जाय सखी समभाय तू, हूं रूपी हूं तेण॥ (लाह मासिक धर्म)

उक्त पहेली मे ललना की देह यष्टि के लावण्य का, अगो का, देह-कांति का एव उसकी मतवाली धीमी एव मनोहारी गति का वर्णन किया गया है। सौन्दर्य-चित्रण मे परम्परित उपमानो का सहारा लिया गया है। इसमे प्रयुक्त शब्द (मोर ग्रीवा के लिए, वासुकि वेणी के लिए, कोयल वाणी के लिए, हस गति के लिए, सुक नासिका के लिए, मृग नेत्रो के लिए, चीता कटि के लिए, सोना सुहागा और होली की ज्वाला देह की आभा के लिए) इन सभी अगो को अभिव्यक्त करते हैं।

मनुष्य के जीवन मे वाणी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। श्वास, छाया उसके अभिन्न अग हैं। नाडी के चलने से ही उसकी जीवितावस्था का बोध होता है। इनके दृष्टि के बिना उसका जीवन सूना है, अधूरा है। राजस्थानी पहेलियो म इनके चित्र भी चित्रित हैं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१२)
थारी घर ने यू कहै, मुत बोलण री आण।
(१३) थारी घर सं ना कढै तो ऊजड होय जिहान॥ (नाडी)
गाय ही आवे गाय ही जावे
(गुद) सुने नही पण सुवावे। (वाणी)

(१४) मर-मर आवे ने मर मर जावे
सिद्ध पुरस ने घणो सुहावे। (दरास)
(१५) बैठे जणे सेंगा सूं पैनी कांई टिके ? (दृष्टि)
(१६) पुरस न नारी नावर नाहीं, हाजर है वे सगळे ठांये
पढत पहेली सिइन पूछे, करो अरथ मन जो सूजे। (छाया)

सौन्दर्य-प्रसाधन में वस्त्राभूषणों का सर्वाधिक महत्त्व है। वस्त्रों को मनुष्य की 'लाज' कहा गया है। साज सज्जा में प्रयुक्त होने वाले समस्त उपकरण भी इन पहेलियों में व्यक्त किये गये हैं। इन पहेलियों को देखने पर विदित होता है कि नारी के सौन्दर्य को अपेक्षाकृत अधिक महत्ता मिलती है।

वैवाहिक अवसरों पर धारण किये जाने वाले विशिष्ट वस्त्राभूषणों का वर्णन करने वाली पहेलियाँ भी इसी श्रेणी में परिगणित की जायेंगी। नारी के सौभाग्य को सूचित करने वाले उपादानों से सम्बन्धित भी अनेकानेक पहेलियाँ प्रचलित हैं। कुछ पहेलियाँ दृष्टव्य हैं—

(१) महाराणे सूं बेल चाली, जटियाणे में छाई।
हथाणे में फूलन फली, वाही नार सुहाई॥ (आंगी)
(२) अंक नर रे दोय नारी, दोनू लागे जीव सूं प्यारी
अंक गीली अंक सूखी आवे, चतुर व्है सो अरथ बतावे। (धोती)
(३) काळी पीळी रंग मजीठी, सब ही करता देखी
पग पकड़ जिरवायो नाहीं, कुण केवे आ प्यासी नाहीं। (जूती)
(४) भुजंग उतारे बाड़ में उणनामे उण नाम।
रमती भूली सेज में, खोवळ दीज्यो स्याम॥ (कंचुकी)
(५) इन्दर वाहण अहिडसण, तो सघला करि होइ।
जिण दिहूह (दीण) वचन गळह कता दीजो सोइ॥ (सौभाग्य)
(६) (अ) तुंगी मंडण तास रिप, तिस रिप घालव मुज्झ।
इन्दर वाहण अहि डसण, सो पहिराज॥ (चूड़ा)
(ब) केसर भरियो बाट को, फूला भरी परात।
हूण गोरी रो सायबो, दिन छोडे न रात॥ (चूड़ा)
(७) दो नर सरवर बिलूबिया, मज्झ बिलूधी नार।
उण नारी नर मोहिया, नरों ने मोही नार॥ (नथ)
(८) देव दवारे मांडियो, सीकर मांगू कंत।
सुरपत वाहण मुख मडण, तास तणो भी दंत॥
(हाथी दांत का चूड़ा)
(९) जळ में उपजे जळ में रहे, आख्या दीठे सुरमो कहे। (काजल)

(१०) डूगर ऊपर चढ्यो विराजे, देखत जो सबको मुख साजे
आप विदाई दरद भी पावे, पढ़ो पहेली गुण सो पावे। (हार)

(११) मुख वारण सायर तज्यो सह्यो हिये विच साळ।
लटकत पण पोचत नही, कारण कौण जमाळ ॥ (मोती)

(१२) जळ भरी मारी म्हारे सिरहाणे धरी।
सारी सारी रात म्हें तो तिरसाया मरी ॥ (इत्र की शीशी)

(१३) हरी पन्नी रो गागरो, गळ मोरया रो हार।
नारी रे सिर नर चढै, ऊपर में अँव बार ॥ (सेवरा, मोर)

राजस्थानी पहेलियों को पढने पर हमारे समक्ष कई ऐसे चित्र उभरकर आते हैं जिनके द्वारा मानसिक-वृत्तियाँ एवं मनोभावों के सकेत मिलते है। इस प्रकार पहेलियों में कही मानव की स्थायी प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराया गया है तो कहीं मानव की विनयशीलता की अभिव्यक्ति मिली है। कुछ पहेलियों में तो केवल मानव-मन का ही चित्रण किया गया है। इस सम्बन्ध में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

(१) सिणगारा मार्रा सिरे, मेळे मह बार।
नाहु पास लेगी नही, लेगी बळती लार ॥ (लज्जा)

(२) दरजी रे घर नित बसे, आखर उपरा दोय।
जा बिचे र रो धरे, मीठी लागे सह कोय ॥ (गरज)

(३) खेत में निपजे तो सह कोई खाते।
घर में निपजे तो घर ने खाय जावे। (फूट)

(४) दोय अखर पद गाय को, मीन बतावत रास ॥ (दयाल्याद)

(५) विराज रमण रो दूसरो, रतन तीसरी सार।
सो म्हे था ने दे दियो, कागद कोरा चार ॥ (मन)
घरि घरि आवे उडि उडि जाए, चबन सुनना पीजरे समाये। (मन)

मनुष्य का जीवन खाद्य और पेय पदार्थों पर आधारित रहता है। मानव ने अपने परिश्रम से विविध प्रकार के धान, फल, मिष्ठान आदि बनाये। इन सभी का उपभोग भी आज मनुष्य ही करता है। इन विभिन्न प्रकार के पदार्थों के सम्बन्ध में भी कई पहेलियाँ प्रचलित हैं। इन सभी पदार्थों से सम्बन्धित पहेलियों का उल्लेख करना इस वर्ग को अनावश्यक विस्तार देना है, अत यहां कुछेक पहेलियाँ उदाहरणार्थ प्रस्तुत की जा रही हैं—

(१) कड जाडी पट पातळो, वडिया कनकता केस।
बडे राज री डीकरी, धाप्यो सारो ई देस ॥ (बाजरी)

(२) इतेक जनावरियो पेट माने रू
राजा जी बुजावे (तो) टुग टुग जावे। (गेहू)

(३) अे सखी थनै कुण चखी कुण लगाया दंत ।
सात सखी मेळी व्हेला, बतावेला कंत ॥ (ज्वार)

(४) दसे मारी पाछे पाडी, गई बत्तीसा बार ।
कर विण हियाळी पटूवे, राजा भाज विचार ॥ (रोटी)

(५) मामा मामा बजार जा, अैक टाग री मुरगी ला । (बैंगन)

(६) छोटो सो गोपाळदास, कपडा पैरे सौ पचास । (प्याज)

(७) भीणी गोरी पातळी, ऊभी खेजड हेट
हत्यारे देवर फिर गिया, बारमा लेग्यो जेठ । (सागरी)

(८) पेलीपोत म्हैं जलमिया, पाछे बडो भाई ।
धूम धडाके बाबो जलम्यौ, पडे म्हारी माई ॥ (दूध, दही, घी, छाछ)

(९) आज ई आई आज ई ब्याई, आज ई करियो मुक्लावो
दीयारा पछे बैरी आयो, छोरी रे छोरो जायो । (बडा और पकौडी)

(१०) नव गज बेल सवा राज डाडी, बिना कुमार घडीजे हांडी । (मतीरा)

(११) काची नार मचकची भर जोवनिय खारी ।
म्हैं थने पूछू बालमा, भोजन मे बूढी लागे प्यारी ॥ (काकडी)

(१२) रातो रातो देख सखी, थार जिणी म्है चुगवा जाती
थारे रातो माय कठोर, क्यू सखी साजन ना सखी वीर । (बेर)

(१३) एक फळी मोत्या सू भरी खाया जीव म्है जाय तरी । (अनार)

(१४) बाप बेटी अैक नाव, बेटो फिर गाव गाव ।
बेटे रे जाई बेटी, डाढी मूछा सती ।
बेटी ने आया उदमादो, बेटी जायो दादो । (आम)

(१५) भडौ हो जद बोळतो, बच्चो बोले नाय ।
हाडी तो गळिया रळे खाल दिसावर जाय ॥ (नारियल)

(१६) डील निवायो जीभ चरपरी, पाणी मे घर वास ।
रे परदसी-ढलडा, थारी आव सौरम वास ॥ (लौंग)

(१७) सोवणी मी बाई, लाग घणी सुप्यारी ।
मेला मे जायने लोढी री मारी ॥ (सुपारी)

(१८) आटे सरीखी गिलगिली, खरबूजे जेडी मीठी ।
इण आडी रो अरथ बतावो, सवा लाख री वीटी ॥ (दाख)

(१९) लाल छडी मैदान मे खडी, जद उखडे तद मुख मे पडी । (शक्कर)

(२०) *बिन पाणी बिन बादळी, बिन सक्कर बिन खाड ।*
बिना मंडा है कुडछनी, सीरो वणियो सवाद ॥ (मधु)

(२१) आंटी-टूटी खेजडी, गाठ गाठ मे रस ।
इण आडी रो अरथ बतावो (तो) रिपिया दे दू दस ॥ (जलेबी)

(२२) घी मे गर स्वाद मे मीठा, त्रिन वेलन रा वेला है।
साय सचवड़ा ऊठे मचवड़ा, उसका नाम पहला है ॥ (घेवर)

खाद्य पेय पदार्थों के अतिरिक्त मनुष्य के दैनन्दिन प्रयोग मे आने वाली अनेक वस्तुएँ हैं। रोजमर्रा की इन वस्तुओ में से काफी वस्तुएँ तो उसकी आवश्यकताएँ हो गयी हैं। इनकी अनिवार्यता उसके जीवन के साथ जुड़ गयी हैं। प्राथमिक आवश्यकताओं की वस्तुओ के अतिरिक्त कुछ वस्तुएँ ऐसी भी हैं जिनका उपभोग मानव अपने जीवन को सुखी और आरामदायक बनाने के लिए करता है। प्राय. इस श्रेणी म परिगणित की जाने वाली सभी वस्तुएँ साधारण और सम्पन्न गृहस्थी दोनों के लिए महत्त्व की हैं। अब हम ऐसी पहेलियो के उदाहरण प्रस्तुत करते हैं जिनमें गृहस्थी के लिए आवश्यक एव गृहस्थी को सुखी बनाने के लिए उपभोग में आने वाली वस्तुओ के चित्र खींचे गये हैं। यद्यपि सभी घरेलू चीजों के सम्बन्ध मे पहेलियाँ मिलती हैं, पर हम यहाँ कुछ पहेलियो के उदाहरण ही प्रस्तुत करेंगे।

(१) भूरी भैंस भूराळा पाडा, भैंरो सीग करे अरड़ाटा। (चकरी)

(२) नारी पर ऊपर नर चढ्यो नर नारी रे हाथ।
नर ने नारी ले चली, सहेलिया रे साथ ॥ (पानी का घड़ा)

(३) आडी चालू टेडी चालू चालू कम्मर कस्स।
इण आडी रो अरथ बतावै, (तो) रिपिया दे दूं दस्स ॥
(बुहारी, भाड़ू)

(४) च्यार खूंट री बावडी, ऊपर इन्दर आळी।
इण आडी रो अरथ बतावे, म्हारी चतुर साळी ॥ (पलग)

(५) जीमियाँ पछे सापड़े, भसम लगावे अग।
ऊ भैलो घर नद रे, ऊ जाणेसा भग ॥ (थाल या थाली)

(६) अेक जिनावर अैसो, वो पीळो वाधे पीसो।
पूछड़ी सूं पाणी पीवे, वा जिनावर किसी ॥ (दीपक)

(७) रैण तलाई रैण जळ रैण रैण विहाय।
अेक अचम्भा है सखी, फून वेल ने साय ॥ (दीपक)

(८) आगे चाली चोदणी, लारे चाले डोढ। (सुई धागा)

(९) दोय पासा चाले सो हाथ, दया होण मारे अेन साथ
• नी पग्रेरू चित्त म आणों, पछो पहेली अर्थ पिछाणो। (कतरनी)

(१०) सूखी सरवर बोहत जळ, कमळा अन्त नीं पार।
करण हियाळी परखळी, करो राजा भोज विचार ॥ (दर्पण)

समाज मे मनुष्य के पश्चात की इकाई परिवार है। मनुष्य के विकास मे परिवार एव पारिवारिक सम्बन्धियो का योगदान विशिष्ट रूप मे सहायता पहुँचाता है। विविध सम्बन्धो मे विभक्त परिवार मनुष्य की प्रथम पाठशाला माना

गया है। पहेलियो मे मनुष्य के पारिवारिक सम्बन्धो के बारे मे भी कई प्रश्न पूछे गये हैं। इस प्रकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है—

(१) झाडकी र चोर वधियो, देख पिणयारी रोई।
काई थारे लागे भाई भतीजो, काई सगो सोई॥
नी म्हारे लागे भाई भतीजो, नी कोई सगो सोई।
इण रे बाप रो बेनोई, म्हारे लागतो नणदोई॥ (माँ और बेटी)

(२) दो मा बेटी दो मा वेटी, चली बाग मे जाय।
तीन नीबू तोडियो, साबतो साबतो खाय॥ (माँ, बेटी, धेवती)

(३) वा रे म्हारे आणो जाणो, सीर सई व्यो खेती।
या री सासू म्हारी सासू, आपस मे मा बेटी॥ (ससुर-बहू)

(४) ऊट चढी सजवन्ती आय, मोरी पकड्या काहू जाय।
आगे म्हारे स्हासू म्हासू, इणरी म्हारी अैक ई सासू॥
(ननदोही और साले की बहू)

धन माया के बिना मनुष्य के जीवन को सूना और अपूर्ण बताया गया है आज के समाज मे तो मनुष्य का आदर भी धन के कारण ही होता है। राज स्थानी पहेलियो में भी रुपये पैसे के अर्थ को अभिव्यक्त करने वाली पहेलिय मिलती हैं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) अधारे ओरे मे दही रो बाटको। (रुपया)

(२) च्यार पगा रो गोळमटोळ, कूट पीट बणियो, बणियो मोल
राखे जीव ज्यू सब ससार पढो पहेली करो विचार। (रुपया)

(३) रिपिये ने खेत मेलो ? (प्रश्न)
आळे म पडी रेत रिपिया म्यो खेत। (उत्तर)

मादक पदार्थों का सेवन करने की आदत प्राचीन काल स रही है। ऐसे कुछ पदार्थों का प्रयोग तो मनुष्य के सामाजिक समारोहो पर भी वाछनीय है। अफीम से तो गृहस्थ जीवन का मूलाधार विवाह-सम्बन्ध तय माना जाता है। जो लोग नशा करत हैं वे अन्य लोगो का नशे के गुणो से प्रभावित करके उन्हे भी नशा करने के लिए प्रेरित करते हैं। नीचे कुछ पहेलियाँ ऐसी दी जा रही हैं, जिनमे विविध प्रकार के नशो एव तत्सम्बन्धी सामग्री का उल्लेख हुआ है।

(१) बालापणे बुगलो गयो, भर जोबन मे सूणो
म्हैं थने पूछू हे सखी, अब कागो केम हुओ। (अफीम)

(२) अेवड छेवड जळ भरयो, बीच खडो है ठूट।
बीठी रा थण पावस्या, चूषण लागो ऊट॥ (हुक्का)

(३) धोती बाधी फिरे कामणी, सिर पर आग धरावे।
ठोकर मे वा रुळती डोले, पण सगळा रे मन भावे॥ (चिलम)

(४) डागळ पान बटक फळ, मस्तक ऊपर दत।
इण आडी री अरथ बतायने, क्यो निरावो वत ॥ (तोजारे के डोडे)

(५) घेरदार गागरो घुमाणदार बूटी।
रावळे में जावता वामदार कूटी ॥ (तवाकू की जूडी)

(६) साधी नाड़ री भुरजडी मा ढोला बैठो जाजम ढाळ ओ राज।
मरदा सू मुजरो करे जी ढोला समझो राजकुमार
समझो नी म्हारा चुतर सुजाण, समझ ग्यान दो नी ओ राज।
ग्यानी व्हो तो ग्यान दो, नी तो आपरा बाभोस ने पूछो म्हारा राज।
(मदिरा की बोतल)

उक्त पहेली लाव-गीत के रूप में है और ऐसी पहेलियाँ ससुराल में दामाद से पूछी जाती हैं।

वर्ष भर में आने वाले विविध पर्व-उत्सव एवं मंगलमय अनुष्ठान मानव की समृद्धि एवं उद्‌बुद्ध चेतना के परिचायक है। यो तो इन सभी का अपना महत्त्व है पर वैवाहिक अनुष्ठान की सर्वाधिक महत्ता है। इन अनुष्ठानों एवं तत्सम्बन्धी कार्यों तथा कार्यों में प्रयुक्त होने वाले उपकरणों के सम्बन्ध में कई पहेलियाँ मिलती हैं। विस्तारभय से यहाँ हम केवल वैवाहिक अनुष्ठान से सम्बन्धित पहेलियों को ही उद्धृत कर रहे हैं।

(१) नर छूनर पैदा करयो नर है वाको नाम।
अवर लोग माने नही, राजा करे सिलाम ॥ (तोरण)

(२) नर ऊपर नारी चढी, नारी ऊपर नर।
च्यार आंगळ रो टेक दियो, काटा करे फर ॥ (तुर्रा)

मनुष्य ने अपने मनोरजन के साधनो को जुटाने हेतु यथाशक्ति प्रयत्न किया है। जीवन के दुसद क्षणो की विस्मृति आमोद प्रमोद में खो जाने पर ही सम्भव है। यदि मनोरजन के साधन न हो तो सम्भवत आज तक चिन्ता मनुष्य को खा गयी होती, दुखो के भार से मनुष्य दब गया होता। इन साधनों में सगीत और खेलों का अपना स्थान है। राजस्थान प्रदेश में हमे ऐसी कई पहेलियाँ मिलती हैं जिनमे इन दोनों—सगीत व खेल—साधना एव इनसे सम्बन्धित अन्य उपकरणों का उल्लेख मिलता है। यहाँ कुछ ऐसी ही पहेलियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। पहले सगीत एव वाद्य-यन्त्रो से सम्बन्धित और तदनन्तर खेल से सम्बन्धित पहेलियाँ उद्धृत की जा रही हैं।

सगीत-सम्बन्धी .

(१) सिर सारस रे नीपजे, उर जोगी रे होय।
सातों सबद सह को सुणे, (ना) आंण पोचावत सोय ॥ (नाद)

(२) गळे जिनोई पूठ थण, मस्तक ऊपर दात ।
ई हियाळी रो अरथ दो, सुरता करने ख्यांत ।। (तानपूरा)

(३) छ पगा री छतरडी, घोडे कधी नार ।
गळिया मे गहक्का करें, पातलडी पिणिहार ।। (सारगी)

(४) मारे तो बोले घणो, बिन मार्‌यो मर जाय ।
कही म्हाली सालायळी, मुड्दो आटो खाय ।। (तबला)

(५) पुरख अेक पागळा, जीभ बिण कीरत जपे ।
जल चख स्रवण न होय, तास बोल्या अरि कपें ।
रहे सुथिर दरबार वध गज वध छोडावे ।
मया करे महिपत, दाम थी सोभा पावे ।
अरि थाट अडण सूरा भिडण, पर दलहैं कज पल्लणो ।
उदेराज कहै सो कवण नर, जीभ बिना रम जपणो ।। (नगाडा)

खेल सम्बन्धी

(६) धरती पसरी वल, वेल पण फळ नही ।
मार दियो बजार, नगर म खबर नही ।। (चौसर का खेल)

(७) अेक नार नद रगी चगी, बा ही नार कहावै ।
मरदा साथे रमती डोले, टाट ही टाट कुटावे ।। (गेंद)

(८) पटक पछाड्यो चौक म, लाबो बधयो बलो ।
इण आडी रो अरथ बता, नी म्हे गुरु यू चेलो ।। (लट्टू)

(९) अकासा मे उड रही, झुक झुक झोला खाय ।
हाड तो व्हे पण मास नी, चतर अरथ बताय ।। (पतग)

पत्र एव लेखनी मनुष्य जीवन की आवश्यकताएँ हो गयी हैं। यद्यपि प्राचीन काल मे इनका सम्बन्ध व्यवसाय विशेष (वाणिज्य) स अधिक रहा है, पर आज परिस्थितियो मे परिवतन आ गया है। इसलिए हम इनका विवेचन इसी प्रकरण म कर रहे हैं। दो पहेलियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

(१) हळ हवळो घर पहळो वाहणहार सुजाण ।
मुख सू लाटो लाटियो, नणा कियो नीदाण ।। (कागज-पत्र)

(२) थळ जळ ऊपनी, आई नगर मझार ।
बामन वेटे मोगवी, सुरता करो विचार ।। (लेखनी)

विस्तारभय से अब हम इस प्रकरण को यहीं समाप्त कर देना चाहते हैं। वैसे मनुष्य एव उसके जीवन के सभी पहलुओं पर प्राय थोडा बहुत प्रकाश डाल ही दिया है।

(२) **प्रकृति से सम्बन्धित पहेलियाँ**

प्रकृति मानव जीवन को अनेक प्रकार से प्रभावित करती है। प्राकृतिक

उपकरणो के उपभोग के बिना मनुष्य के जीवन मे अनेक प्रकार की कमियाँ दृष्टिगोचर होती हैं। प्राकृतिक परिवर्तन मानव के जीवन मे भी परिवर्तन लाते हैं। पशु-पक्षी, मानवेतर प्राणी, पेड-पौधे, ऋतु-नक्षत्र आदि सभी प्रकृति के अभिन्न अग हैं। मानवेतर प्राणियो का तो आवास-स्थल भी प्रकृति का प्रसूत प्रागण ही है। यहाँ हम इन प्राकृतिक उपादानो का राजस्थानी पहेलियो के सन्दर्भ मे विवेचन करेंगे।

सर्वप्रथम हम मानवेतर प्राणियो को ही लेते हैं। इस वर्ग मे पशु-पक्षी, जीव-जन्तु एव कीडे-मकोडे परिगणित किये जा सकते हैं। इन प्राणियो मे से कुछ प्राणी तो मनुष्य के लिए लाभदायक प्राणी हैं। और कुछ हानिकारक। इन्हें घरेलू जगली प्राणी के रूप मे भी वर्गीकृत किया जा सकता है। रेंगने वाले जीव भी इसी श्रेणी मे आते हैं। यहाँ हम क्रमश पशु, पक्षी एव अन्य जीव-जन्तु सम्बन्धी पहेलियो को उद्धृत कर रहे हैं।

पशु-सम्बन्धी

(१) दस ब्याई दस वाछडी, दस धीणे री गाय।
घिरत मोलावै मोल रो, छाछ माग ने खाय ॥
(रबारी के टोले के सांडें-ऊँटनियाँ)

(२) तीन कौन की रग रचावे, को देखे ताही कोस चलि आवे

(३) ऊचो मस्तक करो विचार, पढो पहेली सब सिरदार। (ऊँट)
पाणी नी पीवे खड चरैं, बन मे फिरती जाय।

(४) ब्यावे पण दूधे नही, लोग कहैं आ गाय ॥ (रोज-रामगाय)
प्रश्न—हिरणा ने घोरे लावो ?
उत्तर—तीर मारू तब मारू चढू लील के घोडे।

(५) ऊची सी फदाक मारू हिरण लजाऊ धारे।
लोभ लटाळी काळा रू, अइवी नारी कद न काढे जू

(६) अइवी नारी बसै उजाड, बसै बसती तो करे बिगाड। (रीछ)
वडी नाक पर तिलक सुहावत, तापर मद के कलस चुवावत।
ताको हाथ जोरि सिर नावत, रची पहेली भले भनावत ॥ (हाथी)

पक्षी सम्बन्धी

(७) तळै सूको ऊपर हरियो, पान पान कही रग।
दस सखी असूकरी, वादळ बादळ चन्द ॥ (मयूर)

(८) अेक जिनावर अैसो, जिणरी पाख माथे पैसो। (मयूर)

(९) बन रिप तस रिप तास रिप, तस रिप तास रिपेण।
सूती ही चित्रसाळ मे, कुहक जगाई तेण ॥ (मुर्गा)

अन्य जीव-जन्तु-सम्बन्धी :

(१०) करै नही साहा सग बात,
याथ भुके, मुह मारे लात। (मक्खी)

(११) छोटी छोटी कोटडियाँ मे, सौ सौ गाया जाय।
म्हे थने पूछू हे सखी, वो गोबर कुण ले जाय॥ (मधुमक्खी)

(१२) छोटो सो जिनावारियो, पीळो रग पायो।
चालते रे चटको चिपग्यो, जीव घणो दुख पायो॥ (ततैया)

(१३) हाथी खायग्यो घोडा खायग्यो, सिंघ खायग्यो डूगर मे
कहे बीरबल सुणो बादसा, किसो जिनावर मढळ मे। (मच्छर)

(१४) सिरसोली मे चोर चाल्यो, आखोली मे देख्यो राज।
चूटीली को आगर पकड्यो, नूवलो को मार्‌यो राज॥ (जू)

(१५) तिल जोड माळियो, मोती जोड बजार,
उडता पखेरू रम गिया, सुरता करो विचार॥ (घुन)

(१६) काळी है पण काग नही, बिल मे बैठे नाग नही। (चींटी)

(१७) हाथ हलावे मू चीचावे, पगा बजावे नेवर।
इण आडी रौ अतावो, थे भाभी म्हें देवर॥ (टिटहरी)

(१८) अेक जिनावर अैसो, जिणरी पाख ऊपर पैसो।
जिणरो रति भर्‌यो पेट, वो खा जावे सारो खेत॥ (टिड्डी)

(१९) पखी रे अण पखो जाय, हाले आपरे ढग।
आगे पाछे एक सो, लाल मजीठो रग॥ (कातरो)

(२०) टेढो मेढो हाले, पर वडता सीधो हुय जाय। (साँप)

(२१) छोटी सी लकडी तामय तैया,
हाथ लगावता हो हो मैया। (बिच्छू)

(२२) हम फूल जिता तुम ढाल चिता,
हम हसा किया तुम रोय दिया। (बिच्छू)

इस प्रकरण मे रखी जाने वाली पहेलियो मे कही तो पशु पक्षी या जीव की आकृति का वर्णन हुआ है। कही उसके अग-विशेष का ही उल्लेख पाया जाता है। कही उसकी गति की ओर पहेली रचयिता की दृष्टि गयी है और कही पर उसके कार्य-व्यापार को अभिव्यक्ति मिली है। कई पहेलियो मे प्राणी के क्रिया-व्यापार से होने वाले प्रभावो का चित्रण भी किया गया है। इस प्रकार की पहेलियो मे एकाधिक प्राणियो एव तत्सम्बन्धी तत्त्वो का उल्लेख भी पाया जाता है। एक उदाहरण प्रस्तुत है—

हरी हरी ने देख के, गयो हरी रे पास।
हरी हरी मे मिळ गयो, हरी भयो उदास॥ (साँप, दादुर और जल)

प्रकृति का रमणीय रूप नव-किसलय-प्रसूनो से अलकृत द्रुमावलियो एव पवित्र पुष्पित लतिकाओ से और भी अधिक निखर आता है। ये पत्र-पुष्प ही प्रकृति देवी के सौन्दर्य-प्रसाधान के उपकरण हैं। मानव की रहस्यात्मक वृत्ति मे इनसे सम्बन्धित भी कई पहेलियाँ प्रचलित हैं—

(१) लीली टोपली लाल झुगला, अळगी माय सू आया सगा।
(मिर्च का पौधा)

(२) कर मडण सोभा घणी, नाम पिया रे पास।
घाल ताकडी तोल है, मागत है म्हारी सास।
सावण रा सत रे गिया, आई नवेली तीज।
तो ई नो समझियो वाणियो, (तो) ऊपर पडजो बीज। (मेंहदी)

(३) नव जाया नव पेट मे नव नानेरे जाय।
मतो करू तो भळे जिणू, काळ पड्या काई खाय॥
(काचर की वेल)

(४) नीली डाडी फूल सपेत, राया ऊपर राय।
नाव केवू ठाव केवू, जाय रे नर जाय॥ (जाय का फूल)

(५) डीगी गोरी पातळी, हळदी जेडो रग।
इणियारे देवर फिर गिया, गी का जेठ रे सग॥
(शमी वृक्ष का फल—सागरी)

प्रकृति की सुन्दरता एव विद्रूपता प्रमुख रूप से ऋतुओ पर निर्भर करती है। राजस्थान मे वर्षा ऋतु को सर्वाधिक महत्ता प्राप्त है। यही कारण है कि इस प्रदेश मे मिलने वाली पहलियो मे वर्षा ऋतु मे होने वाले क्रिया व्यापारो का वर्णन मिलता है। मेघ के गरजने, चपला के चमकने एव वर्षा की झडी लगने के सम्बन्ध मे काफी पहेलियाँ मिलती हैं। इसी ऋतु मे प्रकृति भी नूतन-शृगार करती है। इस प्रकार की कुछ पहेलियाँ द्रष्टव्य हैं—

(१) बिन पाख्या जळ मे बसे, उडे गगन मे क्षेम।
सब देखत जाणत नही, गाथ कहत कवि खेम॥ (बिजली)

(२) अठ पक्खवाडा धरती फेरे, नीर पसीनो साथे गेरे।
भरे परायो पेट अपार, खाली पेट करे निजनार॥ (मेघ)

(३) हरग जितरी हलडी, कीडी जितरी छाह।
बताओ काई हुई,…? (वर्षा की बूंद)

(४) अठे कोनी उठे कोनी, दिल्ली रे दरवाजे कोनी।
खायो तो है पण तोड्यो कोनी, बतावो काई हुयो ? (ओले)

(५) बिरखा बरसी रात ने, भीजी से वणराय।
घडो न डूबे लोटियो, पछी तिरसा जाय॥ (ओस की बूंद)

लोक की यह सुनिश्चित धारणा है कि सभी ऋतुएँ नक्षत्रों पर निर्भर करती हैं। नक्षत्र के उदय व अस्त होने मात्र से ही ऋतु-विशेष का आगमन-निगमन मान लिया जाता है। लोक विश्वासानुसार मानव का जीवन भी प्रत्यक्षत व परोक्षत नक्षत्रों से प्रभावित रहता है। यद्यपि नक्षत्रों की सख्या सत्ताईस स्वीकारी गयी है पर राजस्थानी पहेलियों मे प्रमुख रूप से सूर्य चन्द्रादि नक्षत्रों का ही वर्णन पाया जाता है। कुछ पहेलियाँ उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत है—

(१) धरा बिन तरु ऊग्यो अेक, अेक घडी मे बध्यो बिमक।
हजार सख्या आमू जाम, तीन पहर मे जिण रो नास। (सूर्य)

(२) नेण अठारा खट चरण, तीन जीव भुज च्यार।
म्हे थने पूछू हू सखी, जिण बिन चार अधार॥
(सूर्य एव उसका सारथी)

(३) नर रे आलज अेक है, नारी री आलज अेक।
नैण तो नारी रो भलो, (पण) नर रो नैण बिमेक॥
(सूर्य-चन्द्र, दिन-रात)

(४) जाजम रा तबू तण्या, हार लटके अण माये।
सिरे बजार सूजा पडिया, हाथ न किणी रे आवे॥ (तारे, नक्षत्र)

(५) प्रश्न—तारा ने तेल पावो ?
उत्तर—डेगाणे री डीगी लुगाया, डीगा बाध्या भारा।
घोट कागरे पाणी आयो, पी पी म्हाटा तारा॥

काल सर्वोपरि एव सर्वशक्तिमान है। महाकवि तुलसी ने भी 'समय बडा बलवान' कहकर इस बात को स्वीकार किया है। मनुष्य ने अपनी सुविधा के लिए समय को वर्ष, मास, सप्ताह और दिन आदि कई वर्गों मे वर्गीकृत किया। राजस्थानी पहेलियों म भी इस प्रकार के कई वर्णन मिलते हैं, जिनमे समय और समय के इन खडो का आभास होता है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) *च्यार तीता च्यार सीळा, च्यार नेण भरन्त।*
बारे पगा रो मिरगलो, च्यारा भूने फिरन्त॥ (एक वर्ष)

(२) अेक नर रे तीन घड, घड घड र भुज च्यार।
अेक अेक भुज रे तीस आगळी, आगळिया नख च्यार॥
(एक वर्ष, तीन ऋतु, चार मास, तीस दिन, चार सप्ताह)

(३) तीन तिलू रो लाकडो, आळयो सुथारो रे हाथ
तीन सो साठ घड्या रे ठीया, बारे घाणी ने एक लाठ
बधे तो म्हारे पाछो आळ। (बारह मास तथा एक अधिक मास)

(३) **व्यवसायों से सम्बन्धित पहेलियाँ**

मनुष्य को जीविकोपार्जन के लिए किसी न-किसी व्यवसाय की आवश्यकता

पड़नी है। ज्यों-ज्यों सभ्यता का विकास होता गया त्यों त्यों नये नये व्यवसाय एवं व्यावसायिक तरीके मनुष्य के समक्ष आते गये। व्यावसायिक पहेलियों में कहीं कर्मरत व्यक्ति का चित्र प्रस्तुत किया गया है तो कहीं व्यावसायिक जाति की ओर इंगित मात्र कर दिया गया है। किसी उद्योग धन्धे को सम्पन्न करने के लिए जिन उपकरणों की आवश्यकता रहती है, उन उपकरणों के सम्बन्ध में भी कई पहेलियाँ बना दी गयीं।

सर्वप्रथम हम कृषि की बात को ही लेते हैं। भारत प्राचीन काल से कृषि-प्रधान देश रहा है। खेती में कितनी वस्तुओं की आवश्यकता होती है, कितने कितने और किस प्रकार कार्य किये जाते हैं, इन सभी से सम्बन्धित पर्याप्त मात्रा में पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं। फसल से सम्बन्धित भी अनेक पहेलियाँ मिलती हैं। कूप, वापिका और रेंहट के चित्र भी इन पहेलियों में चित्रित हैं। कृषि-कार्य में प्रमुख रूप से काम आने वाले औजारों और कृषि की मुख्य क्रियाओं के कुछ चित्र द्रष्टव्य हैं—

(१) लाख टका नर ऊग्यो, गळिया माथ्यो कीच।
(२) रात न नर अेकली, दिन में सैंच्या बीच॥ (कूप)
ऊडा कूवो जल घणा, चोडी में पिणियार।
(३) ऊभी बतळावण करे, सुरता करो विचार॥ (वापिका)
वाहण जाको बळद है, रूडमाळ गळ माय।
(४) जटा बीच गगा वहे, महादव पण नाय॥ (रेंहट)
(५) मरड आम सरड जाय, खेत सूदे ने फळी खाय॥ (लाव और चड़स)
काठ री कटपूतळी, लोहे री बिलाई।
जा थारे बाप न बेटे, छाड़ दे लुगाई॥
(६) (कील खोलना—चड़स में रस्से की कील खोलना)
कुरजण सिरखी पातळी, पेटे घास चरह।
(७) थारे व्हे तो दो सगीजी, सासू साग करेह॥ (दतीमो)
क्यार आगळ री लाकड़ी, आठ आगळ रो पूठो।
(८) इण आडी री अरथ बतावो (नी) नाक कटायन ऊठो। (गडासा)
(९) रगो हाले रमझम, तीन माथा दस पग। (हल, बैल, हाळी)
नर ऊपर नारी खडी, नर नारी र हाथ।
नारी नर ने बावळा, गयो पखेरू साथ॥
(डूचा/मचान, उस पर खडी स्त्री और उसके हाथ की गोफण)

भारत में कृषि के पश्चात व्यापार का स्थान रहा है। पर व्यापार को सर्वश्रेष्ठ व्यवसाय बताया गया है। वाणिज्य कर्म में माप और तोल की इकाइयों की पूरी-पूरी आवश्यकता रहती है। तराजू और तोल की इकाइयों के सम्बन्ध में

अनेक पहेलियाँ मिलती हैं जिनमे से कुछ यहाँ उदधृत हैं—

(१) अेक जोगण जटाधारी, नीच दोय घड ऊपर पिणिहारी।
इण आडी री अवळी वळा, नीचे छान ऊपर बळा ।। (तराजू)

(२) साट टाळ पीडी टाळ, टाळ जीया जूण ।
मितर थू पछे बताय, च्यार पगा री कूण ।। (सेर-तोल की इकाई)

(३) अेक नार पीहर सू आई, पाच खसम दस देवर लाई।
अस्सी चीयड पेट म लाई, दस गीगणा गोदी लाई ।। (पसेरी)

(४) पचाली रो पुरख, भीव अरजण नही होई।
दस सिर जाको नाव, कहो मत रावण कोई।
पाव तात चाळीस चरण, चालतो न दीठे ।
हाट वजारा मज्झ फिर, पुरख कध चढ वैठे।
बौपार हुवे वहा मानजे, पचा मे चरचा घणी ।
चतर पुरख कोई अरथ करो, मत जाणो लका धणी ।
(दससेरा—दस सेर का तोल)

उक्त दो व्यवसायो के अतिरिक्त यहाँ और भी अनेक व्यवसाय हैं, जिनसे मनुष्य अर्थोपार्जन करता है। प्राय ये सभी व्यवसाय परस्पर सम्बन्धित हैं। इन विविध व्यवसायो मे लुहार-कुम्हार, बुनकर, तेली आदि के व्यवसाय विशेष रूप से महत्त्व रखते हैं। कुछ व्यवसाय तो ऐसे हैं जो जाति विशेष से जुडे हुए हैं और कुछ व्यवसाय ऐसे भी हैं जिनका सम्बन्ध जाति-विशेष से नही है। परवाल द्वारा पानी लाने का कार्य स्वतन्त्र व्यवसाय है। इस किसी भी जाति का व्यक्ति कर सकता है। राजस्थान म हमे दोनो प्रकार के व्यवसायो से सम्बन्धित पहेलियाँ मिलती हैं। इन पहेलियो मे व्यवसायो के चित्र चित्रित है, व्यावसायिक जातियो का उल्लेख भी है और तत्सम्बन्धी उपकरणो का भी वर्णन हुआ है। अबला स्त्रियो के अर्थोपार्जन एव जीविका प्राप्त करने का एक मात्र साधन चरखा ही रहा है, अत हम इसस सम्बन्धित पहेलियो को भी इसी वर्ग मे ले रहे हैं। अब उक्त विवरण से सम्बन्ध रखने वाली पहेलियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं—

(१) घण घमके बीजळ खिवे, जाळ्या फेर जळेह ।
उण घर थू जाने सखी, मुड्दाई सास मरेह ।। (लुहार का आरण)

(२) तळे बिछाई गूदडी, टागा बीच घरेह।
माय घाल्यो पपीयो, ऊपर फटाफट देह ।।
(वर्तन बनाता हुआ कुम्हार)

(३) मूळी की मानकी, साज भर डाढी ।
इण आडी रो अरथ बतावो (नी) हुय जावो डाढी ।।
(बुनकर का यत्र)

(४) सूठी लकडी वन मे खडी, तू ही तू ही पुकारे।
म्हे मीया रा कारजगारू, मीयो म्हने मारे॥ (धुनिये का तांत-यन्त्र)

(५) अेक भैंस पाळनू, रेवे निसदिन चरन्ती।
न चर चार निराट, पवन आहान भखन्ती।
दूध मार दरडाट, कर काळे उनाळे।
अस्ट मास बहती रहे, मर माते बरसाळे।
ऊठमी दव फिर होसी अमर, रात दिवस बाधी रहे।
सुर नर ग्यानी समझया, कवित अेह पिगळ कहे। (कोल्हू)

(६) स्याम बरण पिणिहारी नही, तिरिया नही मुख ध्यार।
बैल चढ़े सकर नही, सुरता करो विचार॥ (परवाल)

(७) सरड सरड साप चाले, परड परड पागली।
मोटियार रो बरवनी लागे, लुगाई घाले आगळी॥ (चरखा)

(४) शस्त्रास्त्रों से सम्बन्धित पहेलियाँ

मानव का जीवन संघर्षमय रहा है। मनुष्य का प्रकृति के साथ, मनुष्यों का जीवन की कठिनाइयो के साथ और मनुष्य का मनुष्य के साथ संघर्ष होता रहा है। जगली जानवरो स अपनी रक्षा करने के लिए और भयकर युद्ध जीतने के लिए मनुष्य को भाँति-भाँति के अस्त्र-शस्त्र प्रयोग मे लाने पडे। जिज्ञासु मानव-मानस ने विभिन्न शस्त्रास्त्रो के सम्बन्ध में भी अनेक पहेलियाँ सर्जित कर ली। इन पहेलियो मे वर्णित उपकरणो के आधार पर मनुष्य के सामरिक इतिहास को निर्मित किया जा सकता है। आधुनिक युद्ध के परिप्रेक्ष्य मे ये उपकरण भले ही निरर्थक सिद्ध हो पर उस जमाने म मनुष्य के लिए ये कितने आवश्यक थे, इस बात का पता ऐसी पहेलिया की सख्या से सहज ही मे लग जाता है। शस्त्रास्त्रो से रक्षा करने वाली ढाल के बारे म भी पहेलियाँ मिलती है। अब हम इस प्रकार की पहेलियो का उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं—

(१) रग-बिरगा अेक पछी बिणा, छाती चाच म काटे पणा।
तीस तीस मिळ बिन मे बस, जिण निण न ढक्के हसे। (तीर)

(२) बाक मुही कड पातळो, नाम भणीजे मार।
जेहने गुणे पुरखा मरे, राजा भोज करो विचार॥ (धनुष)

(३) काळी है कबडाळी है, काळे बिल में रहती है।
लाल पाणी पीती है, मरदा रे कारे चढ़ती है॥ (तलवार)

(४) मूसो लाकड है सखी, मे फळ लागा दीठ।
खाखे सो जीवे नही, जो जीवे तो नीठ॥ (बर्छी)

(५) स्याम बरण वा सोहणी, फूना छाई पीठ।
सब पुरखा रे गळे पडे एडी नमर दीठ॥ (ढाल)

(६) भाटा रा कुरळा करे, काना घाले तेल ।
मूंडे मायकर करे मीमणी, देख दई का खेल ।। (वदूक)

(७) सरण मरण री वाजरी, सरणाटा करती जाय ।
पूछे राजा भाज ने, काई जिनावर जाय ।। (वदूक की गोली)

(८) काळी आप पुतर ई काळो, काळी आई नार ।
जटाधारी घर म आयो, बडके मारे च्यार ।। (तोप)

(९) जोगी अेक मढी मे सूवे, मद पीवे पण मसतन हूवे ।
जद बाळक कान मे लागे, जोगी छोड मठी सू भागे ।।
(तोप का गोला)

(५) पौराणिक चरित्रों एव देवी-देवताओं से सम्बधिक पहेलियाँ

लोक ने केवल अपने सम्बन्ध मे ही कुछ नही कहा है । उसने वर्तमान के एक छोर को अतीत के साथ जोडा है तो दूसरे छोर को भविष्य तक ले जाने का प्रयत्न किया है । राजस्थानी पहेलियो मे विषय को मानव-जीवन तक ही सकुचित नही रखा गया है, इनमे पौराणिक चरित्र भी उभारे गये है । हिन्दू धर्म के विविध देवी देवताओ के बारे म भी अनेकानक पहेलियाँ मिलती है । प्राचीन भारतीय सस्कृति के सद् और असद दोनो प्रकार के चरित्र इन पहेलियो मे वर्णित हैं । पहेलियो के ब्याज से लोक अपने श्रद्धेय चरित्रो को सदैव स भावना के प्रसून चढाता आया है । लोक इनके अनुकरणीय चरित्रो की विशेषताओ को अपनाने का प्रयत्न करता रहा है और असद् चरित्रो की बुराइयो स बचने का प्रयत्न भी करता रहा है । ऐसी पहेलियाँ मनुष्य को कर्मण्य एव कर्तव्यनिष्ठ बनाने की प्रेरणा देती रही हैं । ऐस अलौकिक चरित्रो द्वार सम्पन्न किये गय अदभुत कार्यो के उल्लेख भी इन पहेलियो म मिलते हैं । ऐसी पहेलिया मे कई प्राचीन घटनाओ के वर्णन भी मिलते हैं । एस चरित्रो से सम्बन्ध रखने वाली कुछ पहेलियाँ यहाँ दी जा रही है—

(१) बिना फूक वजावै बाजा, बिना राज रै बाजै राजा ।
बतावौ रै माइडा, औ कुण है राजा ? (इन्द्र राजा)

(२) अेक जिवो जंडो तपियो, दूजौ तपियो नी कोई
अेक जिणो जंडो कूदियो, दूजौ कूदियो नी कोई ।
अेक जिणो जंडो वैठियो, दूजौ वैठियो नी कोई ।
अेक जिणो जंडो लायो, दूजो लायो नी कोई ।
(क्रमश —ध्रुव, हनुमान, गणेश, भागीरथ)

(३) च्यार पाया रो ढोलियो, दो बाही दो ईस,
उण पर सूता दो जिणा, नाक कान तैंतीस । (रावण मदोदरी)

अब हम यहाँ पर केवल एक पहेली ऐसी भी उद्धृत कर रहे हैं जिसमे

पौराणिक पात्रों का उल्लेख मिलता है। वस्तुत यह एक गूढार्थक पहेली है। इस प्रकार की पहेलियों का विवेचन हम आगे करेंगे। यद्यपि इस पहेली का अन्तिम अर्थ तो कुछ और ही निकलता है तथापि उसके अन्य गूढार्थक शब्द पौराणिक एव सास्कृतिक पात्रों का अर्थ-द्योतन कराते हैं।

(१) श्री पति, सुत-अरि महणो, भोजण नदन नाह।
तस अरि बधव वल्लही, पिव जोवौ निवाह ॥
(लक्ष्मी, कृष्ण, प्रद्युम्न, कामदेव, शिव, सर्प, पवन, हनुमान, राम, रावण, कुंभकर्ण, नींद)

राजस्थानी पहेलियों के कुछ विशिष्ट प्रकार

यहाँ तक हमने वर्ण्य-विषय की दृष्टि से पहेलियों की चर्चा की है। अब यहाँ हम पहेलियों के गठनात्मक स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ चर्चा करेंगे। यद्यपि पहेलियों के स्वरूप के सम्बन्ध में वर्गीकरण से पूर्व कुछ प्रकाश डाला गया है तथापि इस सम्बन्ध में कुछ विशेष जानकारी उक्त शीर्षक के अन्तर्गत दी जायेगी। कलात्मकता की दृष्टि से इस प्रकार की पहेलियाँ विशेष महत्त्व रखती हैं।

कई पहेलियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें किसी एक वस्तु का वर्णन होता है, पर यह आवश्यक नहीं कि उस पहेली के उत्तर का उस वर्णन से सम्बन्ध हो। वह वर्णन उत्तर से सम्बन्धित हो भी सकता है और नहीं भी। इस प्रकार की पहेलियों के उत्तर पहेलियों के अन्तर्गत ही मिल जाते हैं। कभी तो पहेली के प्रत्येक चरण के प्रथम अक्षरों के योग से उत्तर मिल जाता है, कभी प्रथम शब्द के मध्याक्षरों के योग से और कभी प्रथम शब्द के अन्त्याक्षरों के योग से उत्तर मिल जाता है। कभी-कभी इन अक्षरों में न्यूनाधिक मात्रिक परिवर्तन करने से उत्तर मिल जाते हैं। कभी प्रत्येक चरण के अक्षरों के योग की आवश्यकता भी नहीं रहती। केवल एक चरण के शब्दों के प्रथम या अन्त्य अक्षरों के योग से ही उत्तर निकल जाता है। इस प्रकार के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) पौढो पीतम पिलग पर, साहिब अरज सुणीजे।
कवळा दसी कांच, करमेवचली टीलणी जे।
रस कर साहं राज, आतुर इण समें न होईजे।
हू है घणा हत कर दीजें, तोरण मत करीजे
प्यारो कहे प्रीतम सुणो, धुर अस्तर मन में धरो।
विलब हूत मिवा नहीं, धीरज यें मन करो।

उक्त पहेली में मोटे अक्षरों के योग से 'पौशाक' शब्द बनता है, इस पहेली का उत्तर यह है—प्रियतमा प्रिय से कह रही है कि, 'हे प्रिय ! आप थोड़ा धैर्य रखो मैं 'पौशाक' पहिन कर आती हूँ।

हुआ 'सूवा चूवा' दीजिये।

विशिष्ट प्रकार की पहेलियों का उल्लेख करते समय हम 'मूगल के मेसले' नाम से जानी जाने वाली लोक-प्रचलित पहेलियों को कदापि भूल नहीं सकते। इन पहेलियों में हास्य-जनक भावना सर्वोपरि है। इनकी अतुकान्तता ने भी इन्हें अधिक हास्य-जनक बनाने में बहुत योगदान दिया है। कटु-व्यंग्य के कारण ही ये सप्राण हैं। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

(१) गवाड बिचाळै पीपळी म्हैं जाणियो बडबोर।
नीचो लुळने झकझो मार्यो, छाछ पडी मण च्यार।
लुगाया वादा चुगली जैं, चिणा री दाळ सा। (आक का पौधा)

(२) भैंस ब्याई मूरकी, आवलियेक पै सींग।
रावळै कवर ने बळी भावै, दो मोमर में माथो। (मक्के का सेहरा)

जवाई जब ससुराल जाता है तो उसके समक्ष कुशल गृहिणियाँ ऐसे पेचीदे प्रश्न प्रस्तुत करती हैं कि चतुर जवाई की बुद्धि चकरा जाती है। इन प्रश्नों को भी पहेलियों में ही परिगणित किया जाता है। ये प्रश्न पद्य और गद्य दोनों रूपों में पूछे जाते हैं। हम कुछ गद्यात्मक प्रश्न ही उदाहरणार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं—

(१) प्रश्न—आप विराजो जदै पैली काई टिकै सा ?
उत्तर—दीठ (दृष्टि)।

(२) प्रश्न—आपरै घर मे चुतर कुण है सा ?
उत्तर—बुहारी।

(३) प्रश्न—जवाई सा धोती बाधी है सा ?
उत्तर—रग मैला म रग रा ख्याल, फूल मैल मे पोथी।
बाप्यो राज रो धूम घाघरो, छोडो म्हारी धोती।

राजस्थान मे लोक-प्रचलित गूढार्थक दोहों, दृष्टिकूट पदों और उलटवासियों का भी विशेष महत्त्व है। ये गूढार्थक पौराणिक चरित्रों एवं सास्कृतिक तत्त्वों को उभारने वाले है। कुछ गूढार्थक ऐसे भी है जिनम अर्थ भी बता दिया गया है। इन गूढार्थक पहेलियों मे द्वयर्थक और बहुलार्थक शब्दों का प्रयोग अधिकता से हुआ है। *विस्तारभय से इनका विशद् विवेचन सम्भव नहीं अत यहाँ कुछ पद्य* ही उद्धृत किये जा रहे हैं—

(१) जनक सुता पिव सू कहै, धण रिप वाहन मार।
रिव सुत विप्रा देत है, जो उणरै उणिहार॥ (स्वर्ण मृग)

(२) गिर-धी कतज-आभरण, तस मख-सुत जे स्याम।
तस-रिप-बधव-वल्लही, तिण थी यारे काम॥
(पार्वती, शिव, सर्प, पवन, हनुमान, राम, रावण, कुंभकर्ण, नींद)

(३) अजा-सहेली तास रिप, ता जनती भरतार।
ताके सुत के मित को भजियै वारवार॥
(भेड़, मुरट (काँटा), पृथ्वी, इन्द्र, अर्जुन एव कृष्ण)

(४) आद अत अरु मध्य नही, नही इद्री मन देह।
नाम गोत्र आकार नही, जात-पात नह जेह।
नार पुरस अर नज नही जनम मरण नह होय।
ताही कू वदन करू, निरजन कहियै सोय॥ (निरजन)

(५) सारग सें सारग उड्यो, सारग मारग जाय।
(जै) सारग मुख सू सारग कहे, (तो) सारग नीचो आय॥
(मयूर, सर्प एव बादल)

राजस्थानी पहेलियो के विवेचन मे 'इकस्वरी' नाम से जानी जाने वाली पहेलियो का उल्लेख करना अत्यावश्यक है। इस प्रकार की पहेलियाँ में एकाधिक प्रश्न पूछे जाते हैं और उन सभी प्रश्नो का उत्तर एव शब्द द्वारा दे दिया जाता है। यह शब्द द्वयर्थक होता है। उदाहरणार्थ कुछ इकस्वरी पहेलियाँ प्रस्तुत हैं—

(१) हाथी क्यू रूसी कलाळ क्यू मूसी ?
(मद नही—(१) हाथी का मद (२) शराब)

(२) दीवो क्यू न जळै मथी क्यू न चलै ?
(बाट नही— (१) बत्ती नही (२) रास्ता नही)

(३) तरवर पखी न बैसै, लहै न दाम विणज बौपारी।
परजा केण सचीनी, इक अखर उत्तर देहि। (साख नही)

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान मे विभिन्न प्रकार की पहेलियाँ मिलती हैं। इनके प्रतिपाद्य विषयो की भी कोई सीमा नही है। इस समय कुछ पहेलियाँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमे आधुनिक वैज्ञानिक उपकरणो का उल्लेख हुआ है। इनमें रेल, इजन, टेलीफोन आदि से सम्बन्धित पहेलियाँ अधिकता मे मिलती है। यह पहेलियो की जीवन्त शक्ति का परिचायक है कि इनमे यथावधि नितनूतन आविष्कृत उपादानो के चित्र भी मिल जाते हैं। कुछ पहेलियाँ ऐसी भी हैं जिनके द्वारा मुख्य रूप से यौन सम्बन्धी चित्र उभरकर आते हैं। राजस्थान में कई ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं जिनमे एक पात्र दूसरे पात्र से कुछ प्रश्न पूछता है। ऐसी कथाओ मे 'चौबोली' की कथा एव युधिष्ठिर-राक्षस' की कथाएँ उल्लेख्य हैं। ये प्रश्न भी उलझे हुए हैं। इन प्रश्नों के सहज मे उत्तर दे देना साधारण बुद्धि का काम नही है। निष्कर्षत यही कहा जा सकता है कि राजस्थानी प्रहेलिका साहित्य बहुत ही समृद्ध एव सौष्ठवपूर्ण है।

• • •